बिट्ठलदास संस्कृत सीरीज - ७

ईश्वरप्रोक्तं

ज्ञानार्णवतन्त्रम्

(श्रीविद्याविवरणात्मकम्)

'सरला' हिन्दीटीकोपेतम्

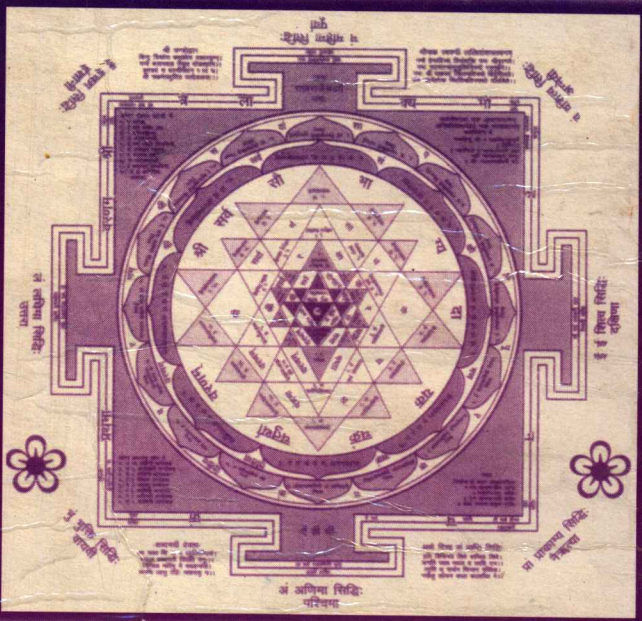

हिन्दी व्याख्याकार:
पं. रामरंजन मालवीय:

सम्पादक:
डॉ. सुधाकर मालवीय:

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

विविध पुरस्कार
हेतु
प्रेषित
रामरंजन मालवीय

विट्ठलदास संस्कृत सीरीज

७

ईश्वरप्रोक्तं

ज्ञानार्णवतन्त्रम्

(श्रीविद्याविवरणात्मकम्)

सम्पादकः भूमिकालेखकश्च

डॉ० सुधाकर मालवीयः

एम. ए., पीएच.डी., साहित्याचार्य,
संस्कृतविभागः, कलासंकायः
काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी

हिन्दी व्याख्याकारः

पं० रामरंजन मालवीयः

महामना संस्कृत शोध संस्थान, वाराणसी

कृष्णदास अकादमी

वाराणसी

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०५८, सन् २००१

ISBN : 81-218-0069-2

© कृष्णदास अकादमी

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पोस्ट बाक्स १११८, वाराणसी - २२१००१ (भारत)
फोन : ३३५०२०

अपरञ्च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस

पो० बा० नं० १००८
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास, वाराणसी - २२१००१ (भारत)
फोन : आफिस : ३३३४५८
आवास : ३३४०३२, ३३५०२०
e.mail : cssoffice@satyam.net.in

कम्प्यूटर टाइपसेटर
चित्तरंजन एण्ड कम्पनी

BITTHALDAS SANSKRIT SERIES
7

Īśvarproktam

GYĀNĀRṆAVATANTRAM

(Śrīvidyāvivaraṇātmakam)

Introduction by

Dr. SUDHAKAR MALAVIYA

M.A., Ph.D., Sahityacarya
Department of Sanskrit, Arts Faculty
Banaras Hindu University
Varanasi – 5

Translated by

Pt. RAM RANJAN MALAVIYA

Mahamana Sanskrit Shodha Sansthan, Varanasi

KRISHNADAS ACADEMY

VARANASI – 221001

© *Krishnadas Academy*
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1118, Varanasi - 221001 (India)
Phone : 335020

ISBN : 81-218-0069-2

First Edition
2001

Also can be had from :
Chowkhamba Sanskrit Series Office
Oriental Publishers and Distributors
Post Box No. 1008
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin)
Varanasi - 221001 (INDIA)
Phone : Office : 333458
Res. : 334032, 335020
e.mail : cssoffice@satyam.net.in

Computer Type Setter
Chittaranjan & Co., Varanasi

प्राक्कथन

ज्ञानार्णव तन्त्र का प्रस्तुत संस्करण श्रीविद्या के उपासकों के समक्ष इदं प्रथमतया हिन्दी के साथ प्रस्तुत है । प्रस्तुत संस्करण का मूल आनन्दाश्रम के मुद्रित मूल पर आधारित है तथा अनेक स्थानों पर पाठों को मन्त्रमहोदधि आदि अन्य ग्रन्थों से मिलाकर शुद्ध किया गया है । श्रीविद्या-विषयक अनेक ग्रन्थ सम्प्रदायानुसार प्राप्त होते हैं । इनका एक विवेचन आवश्यक है—

श्रीविद्या-विषयक ग्रन्थ

श्रीविद्या के कादि, हादि और कहादि नामक तीन भेद प्रसिद्ध हैं । कादियों की देवी काली, हादियों की त्रिपुरसुन्दरी और कहादियों की तारा (अथवा नीलसरस्वती) हैं । तीनों सम्प्रदायों के अपने-अपने मान्य ग्रन्थ हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

१. त्रिपुरोपनिषद्, २. भावनोपनिषद्, ३. कौलोपनिषद्, ४. तन्त्रराज (इस ग्रन्थ पर सुभगानन्दनाथ, प्रेमनिधिपन्त इत्यादि विद्वानों की अनेक टीकाएँ उपलब्ध हैं), ५. योगिनीहृदय, ६. परमानन्दतन्त्र, ७. सौभाग्य-कल्पद्रुम (माधवानन्दनाथकृत), ८. वामकेश्वरतन्त्र, ९. **ज्ञानार्णव**, १०. श्रीक्रमसंहिता, ११. दक्षिणामूर्तिसंहिता, १२. स्वच्छन्दतन्त्र, १३. ललिता-र्चनचन्द्रिका (सच्चिदानन्दनाथकृत), १४. सौभाग्यरत्नाकर (विद्यानन्दनाथकृत) १५. सौभाग्यसुभगोदय (अमृतानन्दनाथकृत), १६. शक्तिसंगमतन्त्र, १७. त्रिपुरारहस्य, १८. श्रीक्रमोत्तम (मल्लिकार्जुनकृत), १९. सुभगार्चापारिजात, २०. सुभगार्चारत्न, २१. आशावतार, २२. संकेतपादुका, २३. चन्द्रपीठ, २४. सुन्दरीमहोदय (शंकरनन्दकृत), २५. हृदयामृत, २६. लक्ष्मीतन्त्र, २७. त्रिपुरासारसमुच्चय (लालभट्टकृत), २८. श्रीतत्त्वचिन्तामणि और शाक्तक्रम (पूर्णानन्दपरमहंसकृत), २९. कामकलाविलास (पुण्यानन्दकृत), ३०. सौभाग्यचन्द्रोदय, ३१. वरिवस्यारहस्य, ३२. वरिवस्याप्रकाश, ३३. शाम्भवानन्दकल्पलता (ये चारों ग्रन्थ भास्करराय-विरचित हैं) ३४. त्रिपुरासार, ३५. संकेतपद्धति, ३६. सौभाग्यसुधोदय, ३७. परापूजाक्रम, ३८. सुभगोदयस्तुति और श्रीविद्यारत्नसूत्र (दोनों गौडपादाचार्य (श्रीशंकराचार्य के परमगुरु) विरचित) । श्रीशंकराचार्य स्वयं तान्त्रिक

(त्रिपुरसुन्दरी के) उपासक थे । इसका प्रमाण यह है कि विभिन्न तान्त्रिक सम्प्रदाय अपनी-अपनी गुरुपरम्परा में श्रीशंकराचार्य का निर्देश करते हैं । इन उपर्युक्त सभी ग्रन्थों का प्रकाशन होना चाहिए । इनमें से शुभागम पञ्चक पर शोध का कार्य चल रहा है । भगवती त्रिपुरसुन्दरी से प्रार्थना है कि हमारे इस कार्य को विघ्नरहित सम्पन्न कराने की कृपा प्रदान करें ।

प्रस्तुत संस्करण में यथासम्भव शुद्ध हिन्दी अनुवाद करने का प्रयत्न किया गया है परन्तु त्रुटि होना स्वाभाविक है । इस ग्रन्थ में वर्ण संकेत सूची और श्लोकानुक्रमणिका सम्बद्ध है । जो शोध छात्रों हेतु अत्यन्त उपयोगी होगी ।

प्रस्तुत श्रीविद्याविषयक तन्त्र ग्रन्थ के प्रकाशक कृष्णदास अकादमी के व्यवस्थापकों का मैं हृदय से आभारी हूँ। यद्यपि यह ग्रन्थ दस वर्षों से मेरे शोध कार्यों में सम्मिलित था तथापि भगवान् विश्वनाथ एवं जगदम्बा पार्वती की कृपा से आज यह प्रकाशित हो पाया है । इस ग्रन्थ के भूमिका लेखक एवं सम्पादक डॉ० सुधाकर मालवीय, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, से ग्रन्थ को समझने में अत्यन्त सहायता प्राप्त होती रही है। उन्हीं के निर्देशन के कारण यह कार्य आज पूर्णता को प्राप्त हुआ है, तदर्थ मैं उनसे आशीर्वाद की कामना करता हूँ। अन्त में मैं माँ अन्नपूर्णा एवं काशी विश्वनाथ से करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि इस तन्त्र ग्रन्थ से मानवमात्र का कल्याण होवे ।

नीलोत्पलानां श्रियमाहरन्तीं कान्त्या कटाक्षैः कमलाकराणाम् ।
कदम्बमालाञ्चितकेशपाशां मातङ्गकन्यां हृदि भावयामः ॥

(शारदातिलकम् १२।१६४)

महाकुम्भपर्व
मकरसंक्रान्ति, १४ जनवरी, २००१
३१/२१ ए, लंका,
वाराणसी

विद्वद्वशंवदः
रामरञ्जन मालवीयः

⁂

भूमिका

भारतवर्ष में तान्त्रिक धारा का प्रवाह अनादिकाल से प्रवाहित होता रहा है। वैदिक वाङ्मय में स्थल-स्थल पर इसके उदाहरण स्पष्ट दिखलाई देते हैं। तान्त्रिक विचारधारा का प्रभाव सभी मतों पर पड़ा है । जैन, बौद्ध, शैव एवं वैष्णव साधनाओं में भी इसको अङ्गीकृत किया गया है । भारत के बाहर अन्य देशों में भी जहाँ भारतीय साधना का विस्तार हुआ है, वहाँ भी तान्त्रिक विचारधारा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । इस सम्बन्ध में 'चीनाचार' का उल्लेख मात्र पर्याप्त होगा । 'योगिनी-तन्त्र' के अनुसार गुरु और देव-पूजा में शुद्ध बुद्धि रखने वाले सभी वर्णों के लागों को साधना में अधिकार प्राप्त है—

ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा अर्चायां शुद्धबुद्धयः ।
गुरुदेवद्विजार्चासु रताः स्युरधिकारिणः ॥

इसी प्रकार श्रीविद्यार्णवतन्त्र में भी कहा गया है—

त्रिपुराद्याश्च ये मन्त्रा ये मन्त्रा वटुकादयः ।
सर्ववर्णेषु दातव्याः पुरन्ध्रीणां विशेषतः ॥

अर्थात् 'भगवती त्रिपुरा एवं भगवान् वटुकभैरव के मन्त्रों को सभी वर्णों—विशेषतः स्त्रियों को दिए जाने में कोई आपत्ति नहीं है ।' अस्तु! तान्त्रिक-साधना में श्रीयन्त्र की उपासना का विशेष महत्त्व है । तान्त्रिक वाङ्मय में इस उपासना का विशद विवेचन प्राप्त होता है । दार्शनिक विवेचन भी प्रभूतमात्रा में उपलब्ध होता है । इस साधना में पूरा जीवन समर्पित करना पड़ता है। यह साधना ही मानव-जीवन का परम लक्ष्य है।

श्रीयन्त्र की साधना

ललिता, षोडशी, श्रीविद्या आदि नाम भगवती त्रिपुरसुन्दरी के ही हैं । श्रीविद्या की व्युत्पत्ति करते हुए व्याडिकोश में कहा गया है—

लक्ष्मीसरस्वतीधात्रीत्रिवर्गसम्पद्विभूतिशोभासु ।
उपकरणवेषरचनाविद्यासु श्रीरिति प्रथिता ॥

अर्थात् लक्ष्मी, सरस्वती, ब्रह्माणी—तीनों लोकों की सम्पत्ति एवं शोभा का ही नाम श्री है ।

'त्रिपुरा' शब्द का अर्थ — बताते हुए 'शक्तिमहिम्नःस्तोत्र' में कहा गया है—

'तिसृभ्यो मूर्तिभ्यः पुरातनत्वात् त्रिपुरा ।'

अर्थात् जो ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश इन तीनों से पुरातन हो वही त्रिपुरा है । 'त्रिपुरार्णव' ग्रन्थ में कहा गया है—

नाडीत्रयं तु त्रिपुरा सुषुम्ना पिङ्गला त्विडा ।
मनो बुद्धिस्तथा चित्तं पुरत्रयमुदाहृतम् ।
तत्र तत्र वसत्येषा तस्मात् तु त्रिपुरा मता ॥

अर्थात् 'सुषुम्ना, पिङ्गला और इडा—ये तीनों नाडियाँ हैं और मन, बुद्धि एवं चित्त—ये तीन पुर हैं । इनमें रहने के कारण इनका नाम त्रिपुरा है ।'

'ललिता' नाम की व्युत्पत्ति पद्मपुराण में कही गयी है—**'लोकानतीत्य ललते ललिता तेन चोच्यते ।'** जो संसार से अधिक शोभाशाली है, वही ललिता है । ललितासहस्रनाम—भाष्य में भी कहा गया है—**'ललितं शृङ्गारभावजन्यः क्रियाविशेषः, तद्वती ललिता । तेन शृङ्गाररसप्रधानेयं मूर्तिरिति ध्वनितम ।'** इसमें इन्हें शृङ्गाररसप्रधान बताया गया है ।

तन्त्रशास्त्र में भगवती त्रिपुरसुन्दरी का महत्त्व सर्वोपरि बताया गया है । कहा गया है—

न गुरोः सदृशो दाता न देवः शङ्करोपमः ।
न कौलात् परमो योगी न विद्या त्रिपुरापरा ॥

अन्यत्र इनके महत्त्व के सम्बन्ध में कहा गया है कि जहाँ भोग है, वहाँ मोक्ष नहीं और जहाँ मोक्ष है, वहाँ भोग नहीं किन्तु भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना करने वालों के लिए भोग और मोक्ष दोनों ही सहज हैं—

यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः ।
श्रीसुन्दरीसाधनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥

(मङ्गलस्तव)

ब्रह्माण्डपुराण में कहा गया है—

येनान्यदेवतानाम कीर्तितं जन्मकोटिषु ।
तस्यैव भवति श्रद्धा श्रीदेवीनामकीर्तने ॥

अर्थात् 'जिसने अनेक जन्मों में बहुत साधना की हो उसी को श्रीविद्या की उपासना का सौभाग्य प्राप्त होता है ।'

ललिता की महिमा के सम्बन्ध में **परशुरामकल्पसूत्र** में कहा भी गया है—

पञ्चदशीं षोडशीं च तथा सर्वाङ्गसुन्दरीम् ।
चाण्डालेभ्योऽपि गृह्णीयाद् यदि भाग्येन लभ्यते ॥

श्रीविद्या की साधना के सम्बन्ध में **नित्योत्सव** में कहा गया है—

'इत्थं विदित्वा विधिवदनुतिष्ठन् कुलधर्मनिष्ठः सर्वथा कृतकृत्यो भवति । तस्य शरीरत्यागे श्वपचगृहे वा काश्यां वा न विशेषः । स तु जीवन्मुक्तो भवति ।'

अर्थात् जो श्रीविद्या की साधना को जान लेता है, वह धन्य हो जाता है, उसकी मृत्यु के लिए चाण्डाल गृह या काशी में कोई अन्तर नहीं रह जाता । वह तो जीवन्मुक्त हो जाता है ।

श्रीविद्योपासना का वैदिकत्व—

शक्ति उपासना अनादि वैदिक परम्परा से ही चली आ रही है । वेदों में देवीसूक्त, लक्ष्मीसूक्त, श्रीसूक्तादि शक्ति विषयक अनेक सूक्त एवं मंत्र प्रसिद्ध हैं । त्रिपुरोपनिषत्, भावनोपनिषत्, अरुणोपनिषत् आदि अनेक उपनिषदें भी श्रीविद्या से सम्बन्धित हैं ।

श्रीविद्यासम्प्रदाय

तान्त्रिकों के इस सम्प्रदाय में कादि, हादि और कहादि नामक जो तीन तन्त्रभेद माने जाते हैं उनमें कादि विभाग में प्रधान देवता काली है । इस मत में त्रिपुरा उपनिषद् और भावनोपनिषद् विशेष महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं । हादिमत में त्रिपुरासुन्दरी प्रधान देवता है । त्रिपुरातापिनी उपनिषद् में इस मत का प्रतिपादन हुआ है । दुर्वासा मुनि हादि विद्या (त्रिपुरसुन्दरी) के उपासक माने जाते हैं ।

कहादि-मत में तारा अथवा नीलसरस्वती प्रधान देवता है । क और ह वर्ण महामन्त्र हैं, ककार से ब्रह्मरूपता और हकार से शिवरूपता की प्राप्ति इस मत में मानी जाती है । बंगाल में विरचित तान्त्रिक ग्रन्थों की संख्या अधिक है । श्यामारहस्य, तारारहस्य, छिन्नमस्तामन्त्ररहस्य, महानिर्वाणतन्त्र, कुलार्णवतन्त्र, बृहत्कालीतन्त्र, चामुण्डातन्त्र, बगलातंन्त्र इत्यादि बंगीय

आचार्यों के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में अन्य तान्त्रिकों के अनैतिक वामाचार को टाल कर तन्त्राचार का शुद्धीकरण करने का प्रयास हुआ है ।

श्रीविद्या के उपासक

भगवती त्रिपुरसुन्दरी के चौदह (मतान्तर से १३+१२=२५) उपासक प्रसिद्ध हैं । जैसे—मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, कामराज, अगस्त्य, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, स्कन्द, शिव, दुर्वासा, दत्तात्रेय तथा दक्षिणामूर्ति । इन उपासकों के भेद से भगवती की साधना एवं मन्त्रों में भी भेद है । उदाहरण के लिए बाला त्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र का जो तृतीय बीज 'सौः' है, वह आनन्दभैरव के मत से 'बिन्दु' वाला है । दक्षिणामूर्ति के मत से 'विसर्गयुक्त' है तथा हयग्रीव के मत से 'बिन्दु-विसर्ग' दोनों से युक्त है ।

श्रीचक्र और उनका पूजन

श्रीचक्रराज के निम्नलिखित नौ चक्र हैं—१. त्रैलोक्यमोहन, २. सर्वाशापरिपूरक, ३. सर्वसंक्षोभण, ४. सर्वसौभाग्यदायक, ५. सर्वार्थसाधक, ६. सर्वरक्षाकर, ७. सर्वरोगहर, ८. सर्वसिद्धिप्रद और ९. सर्वानन्दमय । इनकी अधिष्ठात्री नवचक्रेश्वरी हैं । श्रीचक्रराज की आवरण पूजा से पूर्व लयाङ्ग पूजा, षडङ्गार्चन, नित्यादेवी पूजन और गुरुमण्डलार्चन होता है । बाद में नवावरणमयी पूजा होती है । नवावरण के पश्चात् पञ्चलक्ष्मी, पञ्चकोशाम्बा, पञ्चकल्पलता, पञ्चकामदुघा और पञ्चरत्नाम्बा का पूजन होता है । बाद में षड्दर्शन विद्या, षडाधार पूजा एवं आम्नाय समष्टि पूजा होती है ।

श्रीचक्रराज के विषय में तीन मत प्रसिद्ध हैं । हयग्रीव मत और आनन्दभैरव मत में नौ चक्र माने जाते हैं, किन्तु दक्षिणामूर्ति मत में वृत्तत्रय को भी एक चक्र मानते हैं जिसका नाम है—'त्रैवर्गसाधना चक्र' ।

भगवती के आयुध—१. धनुष, २. बाण, ३. पाश और ४. अंकुश। मन धनुष है, राग पाश है, द्वेष अंकुश है तथा पञ्चतन्मात्राएँ पुष्पबाण हैं । पाश को इच्छाशक्ति माना गया है, अंकुश ज्ञानरूप है तथा बाण एवं धनुष क्रिया शक्तिमय हैं । **वामकेश्वर तन्त्र** में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध भगवती के पाँच बाण माने गए हैं और मन को धनुष बताया गया है । **कादि मत** में बाणों के विषय में उद्धृत है कि भगवती के बाण स्थूल, सूक्ष्म और पर भेद से तीन प्रकार के हैं । स्थूल बाण फूलों के हैं, सूक्ष्म मन्त्रमय हैं और पर वासनामय हैं । **कालिका**

पुराण में इन्हीं पाँच बाणों को हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण तथा मारण नाम से कहा गया है । प्रस्तुत **ज्ञानार्णव तन्त्र** में इन्हीं को क्षोभण, द्रावण, आकर्षण, वश्य और उन्माद नाम से कहा गया है ।

इन आयुधों के महत्त्व के विषय में **शक्तिमहिम्नःस्तोत्र** में कहा गया है कि धनुष का ध्यान करने से संसार के महामोह का नाश होता है । बाणों के ध्यान से सुख की प्राप्ति होती है । पाश के ध्यान से मृत्यु वश में हो जाती है तथा अंकुश के ध्यान से मनुष्य माया से पार हो जाता है।

श्रीविद्या के आचार

श्रीचक्र के पूजन में दो आचार प्रसिद्ध हैं—समयाचार तथा कौलाचार। इस सम्बन्ध में **'सौन्दर्यलहरी' (लक्ष्मीधराटीका)** में कहा गया है— 'समयाचार आन्तरिक पूजा है तथा कुलाचार बाह्यपूजा । श्रीचक्र को 'आकाशचक्र' भी कहा गया है । आकाश के दो भेद हैं, दहराकाश तथा बाह्याकाश । बाह्याकाश में भूर्जपत्र, चाँदी-सुवर्ण के पात्र आदि में लिखकर श्रीचक्र का पूजन होता है । यही कौलपूजा है । दहराकाश में हृद्-व्योम में ही श्रीचक्र का पूजन होता है, यही समयाचार है ।' समयाचार में त्रिकोण ऊर्ध्वमुखी होता है । कौलचक्र में त्रिकोण के मध्य बिन्दु होता है । कौल चक्र में नव त्रिकोण होते हैं । इसके बाद दोनों मतों में समानता है अर्थात् नव त्रिकोण के पश्चात् अष्टदल पद्म, षोडशदल पद्म तथा तीन में रचनाओं और चतुर्द्वारयुक्त भूपुरत्रय होता है । यही श्रीचक्र का उद्धार है ।

समयाचार में सदाख्य-तत्त्व की पूजा सहस्रदल कमल में ही होती है, बाह्यपीठादि में नहीं। समयमतानुयायी योगीश्वर जीवन्मुक्त होकर आत्मलीन हो जाते हैं । उन्हें बाह्यपूजा की आवश्यकता नहीं होती । समय मत में मन्त्र का पुरश्चरण, जप एवं होम आदि की आवश्यकता नहीं होती।

ज्ञानार्णव तन्त्र में अन्तर्याग और त्रिविध उपासना

श्रीपरशुरामकल्पसूत्र योगिनीहृदय, त्रिपुरार्णव आदि त्रैपुर-सिद्धान्त के प्रामाणिक ग्रन्थ हैं, इनमें क्रमानुसार हेयोपादेयता से न्यूनाधिक्य रूप से स्थूल, सूक्ष्म, पर, इस त्रिविध साधना का विधान वर्णित है ।

योगिनीहृदय में परा, परापरा, अपरा पूजा के नाम से वर्णित है । अपरा स्थूलोपासना, परापरा सूक्ष्मोपासना, परापर उपासना की विधि एवं महत्त्व का समीचीन प्रतिपादन है । भास्करराय, अमृतानन्द योगी आदि श्रीविद्यानिष्णात आचार्यों की टीका से यह मणि-काञ्चन योग हो गया है ।

१. स्थूलोपासना में शास्त्रोक्त लक्षणयुक्त गुरु से मन्त्रदीक्षा प्राप्त करके, इष्ट मन्त्र का विधिपूर्वक पुरश्चरण रूप में जप करना, विहित पद्धति के अनुसार आह्निक प्रकरणोक्त प्रातःस्मरणादि सन्ध्योपासन सपर्याप्रकरणोक्त भूतशुद्धि, प्राणायाम, मातृकान्यास, इष्टमन्त्रन्यास आदि इसके अनिवार्य अंग है ।

'देवो भूत्वा यजेद्देवान्नादेवो देवमर्चयेत्' । मन्त्र न्यास से शरीर देवमय हो जाता है और साधना में आलस्यादि दोषों का निवारण होता है ।

इस बाह्य अर्चन से स्थूल शरीर में व्याप्त आणव मल का अपनोदन होता है और मानसिक चञ्चलता का भी ह्रास होता है । इसके स्थूलोपासना, बहिर्याग अपरा पूजा आदि नाम हैं । इससे सूक्ष्मोपासना 'अन्तर्याग' करने की योग्यता प्राप्त होती है ।

२. सूक्ष्मोपासना—सूक्ष्मोपासना को 'परापरापूजा' तथा अन्तर्याग भी कहते हैं । पूर्वोक्त स्थूलोपासना से स्थूल शरीर में स्थित आणव मल दूर हो जाने से अन्तर्याग करने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । इसमें सब भावनात्मक मानसिक व्यापार हैं। पूर्वोक्त ग्रन्थों में यह न्यूनाधिक रूप में यत्र-तत्र वर्णित है ।

"मुख्यरूप से इसमें निरन्तर मानसिक जप का विधान है और जैसे श्रीयन्त्र की बाह्य पूजा की जाती है उसी प्रकार हृदय में श्रीयन्त्र का ध्यान करके उस पर विराजमान भगवती का मानसिक पूजन किया जाता है । बाह्यपूजा में गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्यादि जितनी वस्तुएँ समर्पित की जाती हैं, उन सभी वस्तुओं की मानसिक कल्पना करके हृदय स्थित भगवती को समर्पित किया जाता है । **'यद्यद् बाह्ये वक्ष्यमाणं तत्तदन्तरमाचरेत्'** । इस तरह मानसिक पूजा के प्रधान अङ्ग मानसिक भावनात्मक पूजा एवं मानसिक जप हैं । ज्ञानार्णवादि तन्त्र-ग्रन्थों में अन्तर्याग विभिन्न प्रकार से भी वर्णित है—**'आमूलाधाराद् आब्रह्मविलं विलसन्ती'** मूलाधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त कुण्डलिनी का ध्यान करके पुनः षट्चक्रों में श्रीयन्त्र के नवावरण देवताओं का पूजा-विधान वर्णित है । श्रीविद्यारत्नाकर और श्रीविद्यावरिवस्या में यह प्रकार वर्णित है, विस्तृत रूप में वहीं द्रष्टव्य है । योगिनीहृदय में अन्तर्याग के लिए यह वचन है—

'स्वप्रथा प्रसराकारं श्रीचक्रं पूजयेत्युधीः ।'

अमृतानन्द योगी ने इस विषय के व्याख्यान में दीपिका टीका में

'मुख्याम्नायरहस्य' का एक वचन उद्धृत किया है—

इन्द्रियग्राम संग्राह्यैर्गन्धाद्यैरात्मदेवताम् ।
स्वाभेदेन समाराध्य ज्ञातुस्सोऽयं महामखः ॥

बहिर्याग और अन्तर्याग करता हुआ साधक साधना के परिपाक से जब सिद्धि प्राप्ति के सन्निकट पहुँचता है, तो उसमें एक विशिष्ट अवस्था का आविर्भाव होता है । वह इन्द्रियों द्वारा भोग्य पदार्थों को हृदयस्थ देवता के अर्पणबुद्धि से ही सेवन करता है । अर्थात् हृदय में स्थित आत्मदेवता भगवती को अपने से भिन्न न समझकर अभेद भाव से इन्द्रियों द्वारा गृहित गन्धादि विषयों से उनकी पूजा करता है । ये ज्ञाता के लिए महामख है । वह इस प्रकार निरन्तर महायज्ञ कर रहा है ।

३. परोपासना—वह चैतन्यात्मा ही इन्द्रिय और मन के द्वारा समस्त विषयों का उपभोग करता है । उस चैतन्य से रहित दृश्यमान यह स्थूल शरीर जड़ और निष्क्रिय ही है । इसलिए उपरोक्त वचन में **'ज्ञातुस्सोऽयं महामखः'**, ऐसा जिसको ज्ञान है कि मैं जो कुछ ग्रहण करता हूँ, वह स्वात्म देवता की पूजा है । उसके लिए यह महायाग है । इस पूजा का यही वैशिष्ट्य है कि इसमें ऐसी भावना करना अनिवार्य है । इस तरह शनैः-शनै भावित मति होकर शेष में साधक स्वात्मनिष्ठ हो जाता है । योगिनीहृदय में इसको परापरा पूजा की संज्ञा दी गई है । यह द्वैताद्वैत भाव का सम्मिश्रण है । योगिनीहृदय पर आधारित हादि—विद्यापद्धति, 'ज्ञानदीपविमर्शिनी' में तो बहिर्याग और अन्तर्याग दोनों को साथ-साथ करने का विधान हैं, परन्तु यह शुद्धान्तकरण वालों के लिए ही उपयुक्त हो सकता है । अस्तु, द्वैताद्वैतरूप इस परापरा पूजा में साधक की जब तत्परता हो जाती है तो उसको सांसारिक कर्मों से विरति ओर विषयों में निरसता प्रतीत होने लगती है । दीक्षा में प्राप्त मन्त्र का मध्यधाम में स्फुरित स्पन्द में जप होने लगता है । इस जप में मन और प्राण दोनों का ही प्रभाव नहीं रहता है, यह मन्त्र का सकल-निष्कल रूप है । शेष में इसी मन्त्र की निष्कल रूप में परिणति होती है ।

श्रीचक्र निर्माण

श्रीविद्यार्णव के मतानुसार श्रीचक्र निर्माण के तीन प्रकार हैं—१. मेरुपृष्ठ, २. कैलासपृष्ठ तथा ३. भूपृष्ठ । मेरुपृष्ठ चक्र में संहार-क्रम से पूजन नहीं होता, सृष्टिक्रम से ही पूजन होता है । संहार-पूजन कैलास-पृष्ठ में उत्तम होता है । भूप्रस्तार में स्थिति पूजन कहा गया है । स्थिति क्रम

गृहस्थ के लिए, संहारक्रम संन्यासियों के लिए तथा सृष्टिक्रम ब्रह्मचारी एवं स्त्रियों के लिए माना गया है । **'रत्नसागर'** में कहा गया है कि सुवर्ण में जीवनपर्यन्त, चाँदी में बीस वर्ष तथा ताम्र में बारह वर्ष एवं भूर्जपत्र में छः वर्ष तक पूजन का विधान है । **'श्रीविद्यार्णव'** में कहा गया है कि स्फटिक में सदैव पूजन हो सकता है । स्फटिक के श्रीयन्त्र को सर्वोत्तम माना गया है ।

बिन्दु के अष्टकोण तक तीन चक्रों का नाम 'संहार' है । दोनों 'दशार' तथा 'चतुर्दशार'—ये तीनों चक्र स्थिति-संज्ञात्मक हैं । उसके अपर तीन चक्र सृष्ट्यात्मक हैं । रुद्रयामल तथा त्रिपुरोपनिषद् में श्रीचक्र का उद्धार इस प्रकार बताया गया है—

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्म
मन्वस्त्रनागदलसंयुतषोडशारम् ।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च
श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः ॥

अर्थात् बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, दशार-युग्म, चतुर्दशार, अष्टदल, षोडशदल, वृत्तत्रय तथा भूपुरत्रय—यही परदेवता का स्वरूप है । **'सुभगोदय'** ग्रन्थ में स्थितिक्रम का उद्धार दिया गया है । प्रस्तुत **'ज्ञानार्णव'** तन्त्र में सृष्टिक्रम का तथा **तन्त्रराज** में संहारक्रम का उद्धार दिया गया है ।

श्रीविद्या के उपासकों के धर्म

'नित्योत्सव' में श्रीविद्या के उपासकों के धर्म बताये गये हैं । जैसे — 'किसी भी दर्शन की निन्दा नहीं करनी चाहिए । अपने इष्ट देवता के अतिरिक्त अन्य को श्रेष्ठ नहीं मानना चाहिए । योग्य शिष्य को ही रहस्य बताना चाहिए । सदैव अपने मन्त्र का चिन्तन करना चाहिए और 'शिवोऽहम्' की भावना करनी चाहिए । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य को दूर रखना चाहिए । स्त्रियों से द्वेष नहीं करना चाहिए । सर्वज्ञ गुरु की उपासना करनी चाहिए । गुरु वचनों एवं शास्त्रों पर संदेह नहीं करना चाहिए । भोगबुद्धि से रहित होकर कर्म करना चाहिए । पञ्चमकार की प्राप्ति न होने पर भी कर्मलोप नहीं करना चाहिए । सदैव निर्भय रहना चाहिए । उन्हें ईख भी नहीं चूसना चाहिए, सिद्ध द्रव्यों की निन्दा नहीं करनी चाहिए, स्त्रियों को ताडित नहीं करना चाहिए । कुलभ्रष्टों की संगति नहीं करनी चाहिए । कुलग्रन्थों की रक्षा करनी चाहिए आदि ।

इसी ग्रन्थ में पूर्णता-प्राप्त साधकों के भी धर्म बताये गये हैं । उनके लिए सभी विषय हवि हैं । इन्द्रियाँ ही स्रुव हैं । परमशिव की शक्तियाँ ही ज्वाला हैं । स्वात्म शिव अग्नि है एवं साधक स्वयं होता है । निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति ही फल है, अपने पारमार्थिक स्वरूप का लाभ ही लक्ष्य है।

इस साधना में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध सर्वोपरि है । इस सम्बन्ध में **'श्रीविद्यार्णव'** में बताया गया है कि शिष्य को श्रद्धावान्, स्थिर-बुद्धि और जितेन्द्रिय होना चाहिए । उसे गुरुमन्त्र और देवता में एक्य भावना रखनी चाहिए और गुरु के वचनों का पालन करना चाहिए । गुरु में मनुष्य बुद्धि नहीं करनी चाहिए । उन्हें शिवस्वरूप ही समझना चाहिए । जो मनुष्य गुरु को मनुष्य समझता है, मन्त्र को अक्षरमात्र समझता है, प्रतिमा को शिला समझता है, उसे नरक की प्राप्ति होती है । शिव के रुष्ट होने पर कोई रक्षा नहीं कर सकता । गुरु के कठोर वचनों को भी आशीर्वाद समझना चाहिए और उनकी ताड़ना को भी प्रसन्नता समझनी चाहिए ।

श्रीविद्या उपासकों के कर्त्तव्य एवं आचार

साधकों के कर्त्तव्यों का विवरण भी **'श्रीविद्यार्णव'** में दिया गया है । जैसे—मन्त्र को गोपनीय रखना चाहिए । मन्त्रों को गुरुमुख से ही प्राप्त करना चाहिए । गुरुमुख से प्राप्त मन्त्र ही सफलता देते हैं । कुल धर्म का पालन करना चाहिए । गुरु पत्नी, गुरु पुत्र, वरिष्ठ साधक, कुल शास्त्र, योगिनी, सिद्धपुरुष, कन्या तथा स्त्री का सम्मान करना चाहिए, इनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए । कुलवृक्षों के नीचे सोना नहीं चाहिए, कुलवृक्षों को काटना नहीं चाहिए ।

श्रीविद्या का दार्शनिक विवेचन

श्रीविद्या के साधकों को भगवती के दार्शनिक स्वरूप से भी परिचित होना चाहिए । यह विषय दुरूह है । गुरुमुख से एवं अभ्यास के द्वारा इस विषय को समझा जा सकता है । ज्ञानार्णवतन्त्र के बाईसवें पटल में श्रीविद्या का दार्शनिक पक्ष प्रस्तुत किया गया है यहाँ शिव-शक्ति के सामरस्य की दार्शनिक व्याख्या इस प्रकार है—

प्रकृतिः परमेशानि वीर्य पुरुष उच्यते ।
सर्वं साक्षात्सामरस्यं शिवशक्तिमयं ततः ॥

(ज्ञानार्णव. २२। ६७)

हे परमेशानि ! वही रज प्रकृति है, वीर्य पुरुष कहा गया है । उन

दोनों का रज और वीर्य का साक्षात् सामरस्य शिवशक्तिमय होता है महर्षि पुण्यानन्दनाथ द्वारा विरचित **कामकलाविलास** ग्रन्थ के आधार पर श्रीविद्या का दार्शनिक पक्ष इस प्रकार है—

पुण्यानन्द का कामकलाविलास आपाततः यद्यपि कामशास्त्र का ग्रन्थ प्रतीत होता है, किन्तु इसमें श्रीचक्र की आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है । श्रीचक्र एक यन्त्र है । इसमें अपने आवरण देवताओं के साथ भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना की जाती है । त्रिकोण और उसके मध्य में स्थित बिन्दु इसमें प्रधान है । मध्य स्थित बिन्दु में त्रिपुरसुन्दरी की तथा त्रिकोण की तीन रेखाओं में क्रमशः कामेश्वरी, वज्रेश्वरी और भगमालिनी की उपासना की जाती है । ये क्रमशः ओड्याण, कामरूप, जालन्धर और पूर्णगिरि पीठ पर विराजमान हैं । इन चारों देवियों का विग्रह परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी वाणी से बना है ।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी का श्रीचक्र के साथ तादात्म्य है । शिव से लेकर पृथ्वीपर्यन्त ३६ तत्त्वमय समस्त संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय पराम्बा भगवती की क्रीडा है । शक्ति 'विमर्श'-रूपिणी हैं तथा परम शिव 'प्रकाश'-स्वरूप हैं । आदिशक्ति पराभट्टारिका भगवती त्रिपुरसुन्दरी नित्यानन्दमय हैं, न तो कोई उनसे अधिक है और न समकक्ष । वे दृश्यमान चराचर विश्व की जन्मदात्री हैं । स्वयंप्रकाशस्वरूप शिव भी इस विमर्श रूपी आदर्श (दर्पण) में अपने आपके प्रतिबिम्ब को देखकर स्वरूप-ज्ञान प्राप्त करते हैं । उसी पराशक्ति में शिव-शक्तिमय का ऐक्य है। शिव ज्ञानस्वरूप हैं । शक्ति क्रियास्वरूप है । 'अकार' विमर्श है और 'हकार' प्रकाश है । इन दोनों के मिलने से 'अहं' पद इनका वाच्य है । महाबिन्दु में परम शिवशक्तिस्वरूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित हो रहा है । श्वेत-बिन्दु शिवात्मक है । रक्त बिन्दु शक्त्यात्मक है । रक्त और श्वेत बिन्दु के समागम से तीसरे मिश्र 'बिन्दु' का आविर्भाव होता है । यही 'अहं' पद है । रक्त बिन्दु अग्निकला है, श्वेत बिन्दु चन्द्र कला है तथा मिश्र बिन्दु 'सूर्यकला' है । ये तीनों बिन्दु त्रिकोणात्मक हैं । इनसे तथा महाबिन्दु से मिलकर कामकला की अभिव्यक्ति होती है । जो कामकला की श्रीचक्र के क्रम से आराधना करते हैं, उन्हें मुक्ति प्राप्त होती है । रक्त बिन्दु से नाद की उत्पत्ति होती है, उससे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तथा समस्त वर्णमाला की उत्पत्ति हुई । इसी प्रकार श्वेतबिन्दु से भी उत्पत्ति होती है । दोनों बिन्दुओं में अभेद है । जिस प्रकार दोनों बिन्दुओं में अभेद है उसी प्रकार 'कादि' तथा 'हादि' दोनों विद्याओं में भी अभेद है।

वर्ण, पद एवं मन्त्र—ये शब्दाध्व हैं तथा कला, तत्त्व और भुवन—ये तीन अर्थाध्व हैं । इन्हीं से संसार की सृष्टि होती है । जिस प्रकार शब्द और अर्थ अभिन्न हैं, उसी प्रकार शिव-शक्ति का ऐक्य है । ऐं, क्लीं, सौः—इन तीनों बीजों द्वारा क्रमशः उत्पत्ति, स्थिति और लय होता है । प्रमाता, मान तथा मेय अर्थात् परमशिव, पञ्चदशी विद्या एवं भगवती त्रिपुरसुन्दरी—ये तीनों समष्टि रूप से निर्वाणरूपी महाबिन्दु में अवस्थित हैं। इसे ही 'अहं' कहते हैं । यही परब्रह्म-स्वरूप है ।

श्रीविद्या मन्त्र का रहस्य

आकाश का गुण शब्द है । वायु में आकाश और वायु दोनों हैं । तेज में आकाश, वायु और तेज तीनों हैं । जल में जलसहित चार तत्त्व हैं तथा पृथ्वी में पाँचों तत्त्व हैं । ये कुल मिलाकर पन्द्रह होते हैं । यही पञ्चदशाक्षरी श्रीविद्या है । पञ्चदशी-मन्त्र भगवती का सूक्ष्म शरीर है । इस महामन्त्र के हादि एवं कादि जो दो प्रधान भेद हैं उनमें हादि मत में प्रथम कूट में पाँच स्वर एवं सात व्यञ्जन हैं तथा द्वितीय कूट में छः स्वर और आठ व्यञ्जन हैं । यह हादि विद्या लोपामुद्रा द्वारा उपासित है । कादि विद्या के प्रथम कूट में सात स्वर एवं पाँच व्यञ्जन हैं । अन्य कूटों में कोई भेद नहीं है । यह विद्या कामराज उपासित है ।

मूलाधार में शक्ति का प्रथमावतार नाद के रूप में परा वाक् है । इस रूप का अनुभव अन्तःकरण में ही होता हैं यही पर वाक् नाभि चक्र में 'पश्यन्ती', हृदय में 'मध्यमा' एवं कण्ठ में 'वैखरी' बनकर 'अ' से 'अः' तक, 'क' से 'ह' तक, 'य' से 'क्ष' पर्यन्त तीन खण्डों में परिणत है । श्रीचक्रराज इनका स्थूलरूप है । जनकयोन्यात्मक श्रीचक्र का नवमाचरण बिन्दुचक्र के मध्य स्थित है । यही समग्र विश्व के विकास का मूल है । परब्रह्मस्वरूपिणी त्रिपुरा का यही प्रथम सगुण स्थान है । इससे त्रिकोण बनता है । इसके आगे वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका एवं पराशक्ति के पाँच त्रिकोण शक्त्यात्मक हैं । इनकी स्थिति अधोमुख के रूप में है । इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शान्ता—ये चार त्रिकोण शिवात्मक ऊर्ध्वमुख हैं । झल्लक, किंकिणि, घण्टा, शंख, वीणा, वेणु, भेरी, मृदङ्ग और मेघ—ये नव नादमयी सूक्ष्मा हैं । इसी प्रकार अ, लृ, क, च, ट, त, प, य, श—ये नव वर्णमयी स्थूल हैं ।

श्रीविद्या की उपासना में न्यास का रहस्य

श्रीविद्या उपासक के लिए न्यास का अत्यन्त महत्त्व है । न्यास का

अर्थ है स्थापन । बाहर और भीतर के प्रत्येक अङ्ग में इष्टदेवता और मन्त्र का स्थापन ही न्यास है । इस स्थूलशरीर में अपवित्रता का ही साम्राज्य है, इसलिए इसे देवपूजा का तबतक अधिकार नहीं जबतक यह शुद्ध एवं दिव्य न हो जाय । जबतक इसकी अपवित्रता बनी रहती है, तबतक इसके स्पर्श और स्मरण से चित्त में ग्लानि का उदय होता रहता है । ग्लानियुक्त चित्तप्रसाद और भावोद्रेक से शून्य होता है, विक्षेप और अवसाद से आक्रान्त होने के कारण बार-बार प्रमाद और तन्द्रा से अभिभूत हुआ करता है । यही कारण है कि न तो वह एकतार स्मरण ही कर सकता है और न विधि-विधान के साथ किसी कर्म का साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान ही । इस दोष को मिटाने कि लिए न्यास सर्वश्रेष्ठ उपाय है । शरीर के प्रत्येक अवयव में जो क्रियाशक्ति सुषुप्त हो रही है, हृदय के अन्तराल में जो भावनाशक्ति मूर्च्छित है, उनको जगाने के लिए न्यास अव्यर्थ महौषाधि है ।

न्यास के प्रकार

न्यास कई प्रकार के होते हैं । **मातृकान्यास**, स्वर और वर्णों का होता है । **मन्त्रन्यास** पूरे मन्त्र का, मन्त्र के पदों का, मन्त्र के एक-एक अक्षर का और एक साथ की सब प्रकार का होता है । **देवतान्यास** शरीर के बाह्य और आभ्यन्तर अङ्गों में अपने इष्टदेव अथवा अन्य देवताओं के यथास्थान न्यास को कहते हैं । **तत्त्वन्यास** वह है, जिसमें संसार के कार्य-कारण के रूप में परिणत और इनसे परे रहने वाले तत्त्वों का शरीर में यथास्थान न्यास किया जाता है । यही **पीठन्यास** भी है । जो हाथों की सब अंगुलियों में तथा करतल और करपृष्ठ में किया जाता है, वह **करन्यास** है । जो त्रिनेत्र देवताओं के प्रसङ्ग में षडङ्ग और अन्य देवताओं के प्रसङ्ग में पञ्चाङ्ग होता है, उसे **अङ्गन्यास** कहते हैं । जो किसी भी अङ्ग का स्पर्श किये बिना सर्वाङ्ग में मन्त्रन्यास किया जाता है, वह **व्यापकन्यास** कहलाता है । **ऋष्यादिन्यास** के छः अङ्ग होते हैं—सिर में ऋषि, मुख में छन्द, हृदय में देवता, गुह्यस्थान में बीज, पैरों में शक्ति और सर्वाङ्ग में कीलक । इनके अतिरिक्त और भी बहुत से न्यास हैं, जिनका वर्णन प्रसङ्गानुसार किया जा सकता हैं

न्यास चार प्रकार से किए जाते हैं । मन से उन-उन स्थानों में देवता, मन्त्रवर्ण, तत्त्व आदि की स्थिति की भावना की जाती है । अन्तर्न्यास केवल मन से ही होता है । बहिर्न्यास केवल मन से भी होता है और उन-उन स्थानों के स्पर्श से भी । स्पर्श दो प्रकार से किया जाता है, किसी पुष्प से अथवा अंगुलियों से । अंगुलियों का प्रयोग दो प्रकार से

होता है । एक तो अंगुष्ठ और अनामिका को मिलाकर सब अंगों का स्पर्श किया जाता है और दूसरा भिन्न-भिन्न अंगों के स्पर्श के लिए भिन्न-भिन्न अंगुलियों का प्रयोग किया जाता है ।

न्यास में अंगुलियों का क्रम

विभिन्न अंगुलियों के द्वारा न्यास करने का क्रम इस प्रकार है— मध्यमा, अनामिका और तर्जनी से हृदय, मध्यमा और तर्जनी से सिर, अंगूठे से शिखा, दसों अंगुलियों से कवच, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से नेत्र, तर्जनी और मध्यमा से करतल-करपृष्ठ में न्यास करना चहिए । यदि देवता त्रिनेत्र हो तो तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से, द्विनेत्र हो तो मध्यमा और तर्जनी से नेत्र में न्यास करना चाहिए । पञ्चाङ्गन्यास नेत्र को छोड़कर होता है ।

वैष्णवों के लिए इसका क्रम भिन्न प्रकार का है । ऐसा कहा गया है कि अंगूठे को छोड़कर सीधी अंगुलियों से हृदय और मस्तक में न्यास करना चाहिए । अंगूठे को अन्दर करके मुट्ठी बाँधकर शिखा का स्पर्श करना चाहिए । सब अंगुलियों से कवच, तर्जनी और मध्यमा से नेत्र, नाराचमुद्रा से दोनों हाथों को ऊपर उठाकर अंगूठे और तर्जनी के द्वारा मस्तक के चारों ओर करतलध्वनि करनी चाहिए । कहीं-कहीं अङ्गन्यास का मन्त्र नहीं मिलता, ऐसे स्थान में देवता के नाम के पहले अक्षर से अङ्गन्यास करना चाहिए ।

शास्त्र में यह बात बहुत जोर देकर कही गयी है कि केवल न्यास के द्वारा ही देवत्व की प्राप्ति और मन्त्रसिद्धि हो जाती है । हमारे भीतर-बाहर अङ्ग-प्रत्यङ्ग में देवताओं का निवास है, हमारा अन्तस्तल और बाह्य शरीर दिव्य हो गया है— इस भावना से ही अदम्य उत्साह, अद्भुत स्फूर्त्ति और नवीन चेतना का जागरण अनुभव होने लगता है । जब न्यास सिद्ध हो जाता है, तब तो भगवान् से एकत्व स्वयंसिद्ध ही है । न्यास का कवच पहन लेने पर कोई भी आध्यात्मिक अथवा आधिदैविक विघ्न पास नहीं आ सकते । जबकि बिना न्यास के जप, ध्यान आदि करने पर अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित हुआ करते हैं । प्रत्येक मन्त्र के, प्रत्येक पद के और प्रत्येक अक्षर के अलग-अलग ऋषि, देवता, छन्द, बीज, शक्ति और कीलक होते हैं । मन्त्रसिद्धि के लिए इनके ज्ञान, प्रसाद और सहायता की अपेक्षा होती है । जिस ऋषि ने भगवान् शङ्कर से मन्त्र प्राप्त करके पहले-पहल उस मन्त्र की साधना की थी, वह उसका ऋषि है । वह

गुरुस्थानीय होने के कारण मस्तक में स्थान पाने योग्य है । मन्त्र के स्वर-वर्णों की विशिष्ट गति, जिसके द्वारा मन्त्रार्थ, और मन्त्रतत्त्व आच्छादित रहते हैं और जिसका उच्चारण मुख के द्वारा होता है, छन्द है और वह मुख में ही स्थान पाने का अधिकारी है । मन्त्र का देवता, जो अपने हृदय का धन है, जीवन का सञ्चालक है, समस्त भावों का प्रेरक है, हृदय का अधिकारी है, हृदय में ही उसके न्यास का स्थान है । इस प्रकार जितने भी न्यास हैं, सबका एक विज्ञान है और यदि ये न्यास किए जायँ तो शरीर और अन्तःकरण को दिव्य बनाकर स्वयं ही अपनी महिमा का अनुभव करा देते हैं । यहाँ संक्षेप में कुछ न्यासों का विवरण दे रहे हैं—

मातृकान्यास

ॐ अस्य मातृकामन्त्रस्य ब्रह्म ऋषिर्गायत्रीच्छन्दो मातृका सरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयः क्लीं कीलकं मातृकान्यासे विनियोगः ।

यह विनियोग करके जल छोड़ दें और ऋष्यादि का न्यास करे । सिर में—ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः । मुख में—ॐ गायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदय में—ॐ मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः । गुह्यस्थान में—ॐ हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः । पैरों में—ॐ स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः । सर्वाङ्ग में—ॐ क्लीं कीलकाय नमः । इसके पश्चात् करन्यास करे ।

ॐ अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा ।
ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट् ।
ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुम् ।
ॐ ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां वौषट् ।
ॐ अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् ।

इसके अनन्तर इस प्रकार अङ्गन्यास करे—

ॐ अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः ।
ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा ।
ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट् ।
ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुम् ।
ॐ ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः अस्त्राय फट् ।

इस अङ्गन्यास के पश्चात् **अन्तर्मातृकान्यास** करना चाहिए । शरीर में छः चक्र हैं, उनमें जितने दल होते हैं, उतने ही अक्षरों का न्यास किया जाता है । इसकी प्रक्रिया सम्प्रदायानुसार भिन्न-भिन्न है । वैष्णवों की प्रणाली के अनुसार न्यास की प्रक्रिया इस प्रकार है—पायु-इन्द्रिय और जननेन्द्रिय के बीच में सिवनी के पास मूलाधार चक्र है । उसका वर्ण सोने का सा है और उसमें चार दल हैं । उन चारों दलों पर प्रणव के साथ इन अक्षरों का न्यास करना चाहिए—ॐ वं नमः, शं नमः, षं नमः, सं नमः । जननेन्द्रिय के मूल में विद्युत् के समान षड्दल स्वाधिष्ठान कमल है, उसके छः दलों पर प्रणव के साथ इन अक्षरों का न्यास करना चाहिए—

ॐ बं नमः, भं नमः, मं नमः, यं नमः, रं नमः, लं नमः । नाभि के मूल में नील मेघ के समान दशदल मणिपूरकचक्र है, उसमें इन वर्णों का न्यास करना चहिए—ॐ डं नमः, ढं नमः, णं नमः, तं नमः, थं नमः, दं नमः, धं नमः, नं नमः, पं नमः, फं नमः । हृदय में स्थित मूँगे के समान लाल द्वादशदल अनाहतचक्र में—ॐ कं नमः, खं नमः, गं नमः, घं नमः, ङं नमः, चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः, ञं नमः, टं नमः, ठं नमः । कण्ठ में धूम्रवर्ण षोडशदल विशुद्धचक्र है, इसमें—ॐ अं नमः, आं नमः, इं नमः, ईं नमः, उं नमः, ऊं नमः, ऋं नमः, ॠं नमः, ऌं नमः, ॡं नमः, एं नमः, ऐं नमः, ओं नमः, औं नमः, अं नमः, अः नमः । भ्रूमध्यस्थित चन्द्रवर्ण द्विदल आज्ञाचक्र में—ॐ हं नमः, क्षं नमः । इसके पश्चात् सहस्रारपर, जो कि स्वर्ण के समान कान्तिमान् और समस्त स्वर-वर्णों से भूषित है, त्रिकोण का ध्यान करना चाहिए । उसके प्रत्येक कोणपर ह, ल, क्ष—ये तीनों वर्ण लिखे हुए हैं । उसकी तीनों रेखाएँ क्रमशः 'अ' से, 'क' से और 'थ' से शुरु हुई हैं । इस त्रिकोण के बीच में सृष्टि-स्थिति-लयात्मक बिन्दुरूप परमात्मा विराजमान है । इस प्रकार के ध्यान को अन्तर्मातृकान्यास कहते हैं ।

बहिर्मातृकान्यास

इस न्यास में पहले मातृकासरस्वती का ध्यान होता है, वह निम्न-लिखित है—

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोःपन्मध्यवक्षःस्थलां
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम् ।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं विद्याञ्च हस्ताम्बुजै-
र्बिभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ॥

'पचास स्वर-वर्णों के द्वारा जिनके मुख, बाहु, चरण, कटि और वक्षःस्थल पृथक्-पृथक् दीख रहे हैं, सूर्य के समान चमकीले मुकुट पर चन्द्रखण्ड शोभायमान है, वक्षःस्थल बड़ा और ऊँचा है, कर-कमलों में मुद्रा, रुद्राक्षमाला, सुधापूर्ण कलश और पुस्तक धारण किये हुए हैं, अङ्ग-अङ्ग से दिव्य ज्योति बिखर रही है, उन त्रिनेत्रा वाग्देवता मातृकासरस्वती की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।' ऐसा ध्यान करके न्यास करना चाहिए । इस न्यास में अंगुलियों का नियम अनिवार्य है । इसलिए उन-उन स्थानों के साथ ही अंगुलियों की संख्या भी लिखी जा रही है । न्यास करते समय उनका ध्यान रखना चाहिए । संख्या का सङ्केत इस प्रकार है—१. अंगूठा, २. तर्जनी, ३. मध्यमा, ४. अनामिका, और ५. कनिष्ठा । जहाँ जितनी अंगुलियों का संयोग करना चाहिए वहाँ उतनी संख्या लिख दी गयी है ।

ललाट में—ॐ अं नमः ३, ४ । मुख पर—ॐ आं नमः २, ३, ४ । आँखों में—ॐ इं नमः, ॐ ईं नमः १, ४ । इसी प्रकार पहले ॐ और पीछे नमः जोड़कर प्रत्येक स्थान में न्यास करना चाहिए । कानों में—उं, ऊं १ । नासिका में—ऋं, ॠं १, ५ । कपोलों पर—ऌं, ॡं २, ३, ४ । ओष्ठ में—एं ३ । अधर में—ऐं ३ । ऊपर के दाँतों में—ओं ४ । नीचे के दाँतों—औं ४ । ब्रह्मरन्ध्र में—अं ३ । मुख में—अः ४ । दाहिने हाथों के मूल में—कं ३, ४, ५ । केहुनी में—खं ३, ४, ५ । मणिबन्ध में—गं । अंगुलियों की जड़ में—घं । अंगुलियों के अग्रभाग में—ङ् । इसी प्रकार बाएँ हाथ के मूल, केहूनी, मणिबन्ध, अंगुलीमूल और अंगुल्यग्र में—चं छं जं झं ञं । दाहिने पैर के मूल में, दोनों सन्धियों में, अंगुलियों के मूल में और उनके अग्रभाग में—टं ठं डं ढं णं । बायें पैर के उन्हीं पाँच स्थानों में—तं थं दं धं नं । दाहिने बगल में—पं, बायें में—फं और पीठ में—बं (यहाँ तक अंगुलियों की संख्या केहुनी वाली ही समझनी चाहिए) । नाभि में—भं १, ३, ४, ५ । पेट में—मं १ से ५ । हृदय में यं । दाहिने कन्धे पर—रं । गले के ऊपर—लं । बायें कन्धे पर—बं । हृदय से दाहिने हाथ तक—शं । हृदय से बायें हाथ तक—षं । हृदय से पेट तक—लं । हृदय से मुख तक—क्षं । हृदय से अन्त तक हथेली से न्यास करना चाहिए ।

संहारमातृकान्यास

बाह्यमातृकान्यास जहाँ समाप्त होता है । वहीं से संहारमातृकान्यास प्रारम्भ होता है । जैसे हृदय से लेकर मुख तक—ॐ क्षं नमः । मुख से

पेट तक—ॐ लं नमः । इस प्रकार उलटे चलकर ललाट तक पहुँच जाना, यह संहारमातृकान्यास है । इसके पूर्व यह ध्यान किया जाता है—

अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटङ्कं
विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम् ।
अर्द्धेन्दुमौलिकमरुणामरविन्दरामां
वर्णेश्वरीं प्रणमत स्तनभारनम्राम् ॥

'जो अपने चार करकमलों में सदा रुद्राक्ष की माला, हरिण-शावक, पत्थर फोड़ने की तीखी टाँकी और पुस्तक लिए रहती हैं, जिनके तीन आँखें हैं और मुकुट पर अर्द्ध चन्द्रमा हैं, शरीर का रंग लाल है, कमल पर बैठी हुई हैं, स्तनों के भार से झुकी हुई उन वर्णेश्वरी को नमस्कार करो ।' संहारमातृकान्यास के सम्बन्ध में कुछ लोगों की ऐसी सम्मति है कि यह केवल संन्यासियों को ही करना चाहिए । बाह्यमातृकान्यास में अक्षरों का उच्चारण चार प्रकार से किया जा सकता है । केवल अक्षर, बिन्दुयुक्त अक्षर, सविसर्ग अक्षर और बिन्दु-विसर्गयुक्त अक्षर । विशिष्ट कामनाओं के अनुरूप इनकी व्यवस्था है । इन अक्षरों के पूर्व बीजाक्षर भी जोड़े जाते हैं । वाक्सिद्धि के लिए ऐं, श्रीवृद्धि के लिए श्रीं, सर्वसिद्धि के लिए नमः, वशीकरण के लिए क्लीं और मन्त्रप्रसादन के लिए अः जोड़ा जाता है । मन्त्रशास्त्र में ऐसा कहा गया है कि मातृकान्यास के बिना मन्त्रसिद्धि अत्यन्त कठिन है ।

पीठन्यास

देवता के निवास योग्य स्थान को 'पीठ' कहते हैं । जैसे कामाख्यादि स्थानविशेष पीठ के नाम से प्रसिद्ध हैं । जैसे बाह्य आसनविशेष शास्त्रीय विधि के अनुष्ठान से पीठ के रूप में परिणत हो जाता है, वैसे ही पीठन्यास के प्रयोग से साधक का शरीर और अन्तःकरण शुद्ध होकर देवता के निवास करने योग्य पीठ बन जाता है । वर्तमान युग में जो दो प्रकार के पीठ प्रचलित हैं, समन्त्रक और अमन्त्रक उन दोनों की अपेक्षा यह पीठन्यास उत्तम है, क्योंकि इसमें बाह्य आलम्बन की आवश्यकता नहीं है । यह साधक के शरीर में ही मन्त्रशक्ति, भावशक्ति, प्राणशक्ति और अचिन्त्य दैवी शक्ति के सम्मिश्रण से उत्पन्न हो जाता है । विचारदृष्टि से देखा जाय तो पीठन्यास में जितने तत्त्वों का न्यास किया जाता है वे प्रत्येक शरीर में पहले से ही विद्यमान हैं । स्मृति और मन्त्र के द्वारा उन्हें अव्यक्त से व्यक्त किया जाता है, उनके सूक्ष्मरूप को स्थूलरूप में लाया

जाता है । यह सृष्टिक्रम के इतिहास के सर्वथा अनुकूल है और यह साधक को देवता का पीठ बना देने में समर्थ है । इसका प्रयोग निम्नलिखित प्रकार से होता है—

प्रत्येक चतुर्थ्यन्त पद के साथ, जिनका उल्लेख आगे किया जा रहा है, पहले ॐ और पीछे नमः जोड़कर यथास्थान न्यास करना चाहिए—जैसे ॐ आधारशक्तये नमः । इसी प्रकार क्रमशः सबके साथ ॐ और नमः जोड़कर न्यास का विधान है । हृदय में—आधारशक्तये, प्रकृत्यै, कूर्माय, अनन्ताय, पृथिव्यै, क्षीरसमुद्राय, श्वेतद्वीपाय, मणिमण्डपाय, कल्पवृक्षाय, मणिवेदिकायै, रत्नसिंहासनाय ।

दाहिने कन्धे पर—धर्माय, बायें कन्धे पर—ज्ञानाय, बायें ऊरु पर—वैराग्याय, दाहिने ऊरु पर—ऐश्वर्याय, मुख पर—अधर्माय, बायें पार्श्व में—अज्ञानाय, नाभि में—अवैराग्याय, दाहिने पार्श्व में—अनैश्वर्याय

फिर हृदय में—अनन्ताय, पद्माय, अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने, उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने, मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने, सं सत्त्वाय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने, अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने ।

सबके साथ पहले ॐ और पीछे नमः जोड़कर न्यास कर लेने के पश्चात् हृदय-कमल के पूर्वादि केसरों पर इष्टदेवता की पद्धति के अनुसार पीठशक्तियों का न्यास करना चाहिए । उनके बीच में इष्टदेवता का मन्त्र, जो कि इष्टदेवस्वरूप की है, स्थापित करना चाहिए । इस न्यास से साधक के हृदय में ऐसा पीठ उत्पन्न हो जाता है, जो अपने देवता को आकर्षित किए बिना नहीं रहता ।

इन न्यासों के अतिरिक्त और भी बहुत से न्यास हैं, जिनका वर्णन उन-उन मन्त्रों के प्रसङ्ग में आता है । उनके विस्तार की यहाँ आवश्यकता नहीं है । वैष्णवों का एक केशवकीर्त्यादि न्यास है, उसमें भगवान् के केशव, नारायण, माधव आदि मूर्तियों को उनकी शक्तियों के साथ शरीर के विभिन्न अङ्गों में स्थापित करके ध्यान किया जाता है । उस न्यास के फल में कहा जाता है कि यह न्यास प्रयोग करने मात्र से साधक को भगवान् के समान बना देता है । वास्तव में न्यासों में ऐसी ही शक्ति है ।

न्यास के प्रकार-भेदों की चर्चा न करके यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि सृष्टि के गम्भीर रहस्यों की दृष्टि से न्यास भी एक

अतुलनीय साधन है । वर्णों के न्यास से वर्णमयी सृष्टि का उद्‌बोध होकर परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान और प्राप्ति हो जाती है, क्योंकि जब यह सृष्टि नहीं थी, तब प्रथम कम्पन के रूप में प्रणव प्रकट हुआ और उस प्रणव से ही समस्त स्वर-वर्णों का विस्तार हुआ । उनके आनुपूर्वी-संघटन से वेद और वेद से समस्त सृष्टि । इस क्रम से विचार करने पर ज्ञात होता है कि ये समस्त महान् और अणु, स्थूल एवं सूक्ष्म पदार्थ अन्तिम रूप में वर्ण ही हैं । वर्णों के न्यसास और इदनकी वर्णात्मकता के ध्यान से इनका वास्तविक रूप, जो कि दिप्य है, दृष्टिगोचर हो जाता है और फिर तो सर्वत्र दिव्यता ही दिव्यता छा जाती है । समस्त नाम-रूपात्मक जगत् में अव्यक्त रूप से रहने वाली दिव्यता को व्यक्त करने के लिए वर्णन्यास अथवा मन्त्रन्यास सर्वोत्तम साधनों में से एक है ।

पीठन्यास, योगपीठन्यास अथवा तत्त्वन्यास के द्वारा भी हम उसी परिणाम पर पहुँचते हैं, जो साधना का अन्तिम लक्ष्य होना चाहिए । अधिष्ठान परब्रह्म में आधारशक्ति, प्रकृति एवं क्रमशः सम्पूर्ण सृष्टि स्थित है । क्षीरसागर में मणिमण्डप, कल्पवृक्ष, रत्नसिंहासन आदि की भावना करते करते अन्तःकरण सर्वथा अन्तर्मुख हो जाता है और इष्टदेवता का ध्यान करते-करते समाधि लग जाती है । एक ओर तो उस सृष्टिक्रम का ज्ञान होने से बुद्धि अधिष्ठानतत्त्व की ओर अग्रसर होने लगती है और दूसरी ओर मन इष्टदेव को प्राप्त करके उन्हीं में लय होने लगता है । इस प्रकार परमाननदमयी अवस्था का विकास होकर सब कुछ भगवान् ही है और भगवान् के अतिरिक्त और कोई अन्य सत्ता नहीं है, इस सत्य का साक्षात्कार हो जाता है ।

सिर में ऋषि, मुख में छन्द और हृदय में इष्टदेवता का न्यास करने के अतिरिक्त जब सर्वाङ्ग में-रोम-रोम में सशक्तिक देवता का न्यास कर लिया जाता है, तो मन को इतना अवकाश की नहीं मिलता और इससे मधुर अन्यत्र कहीं स्थान नहीं मिलता कि वह और कहीं बाहर जाकर भ्रमित हो जाय । शरीर के रोम-रोम में देवता, अणु-अणु में देवता और देवतामय शरीर! ऐसी स्थिति में यह मन भी दिव्य हो जाता है । जड़ता के चिन्तन से और अपनी जडता से यह संसार मन को जडरूप में प्रतीत होता है । इसका वास्तविक स्वरूप तो चिन्मय के रूप में ही स्फुरित होने लगता है । जब इसकी चिन्मयता का बोध हो जाता है, तब अन्तर्देश में रहने वाला निगूढ़ चैतन्य भी इस चिन्मय से एक हो जाता है और केवल चैतन्य-ही-चैतन्य अवशेष रहता है ।

यहाँ न्यास के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है, वह न्यास के स्वरूप और महिमा को देखते हुए बहुत ही स्वल्प है ।

तन्त्र में गुरुपूजा का महत्त्व

तन्त्र में साधनापद्धति का श्रीगणेश गुरु से ही होता है, अतएव साधना के सभी मार्गों में गुरु का पद सर्वोच्च स्वीकार किया गया है । यद्यपि प्रायः सभी धर्मग्रन्थों ने गुरु की सर्वोच्चता का गान किया है, किन्तु तन्त्र में गुरु की सर्वोत्कृष्टता का जैसा वर्णन किया गया है, वैसा अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता । तन्त्र ने श्रीगुरु और इष्टदेव में अभेद का वर्णन किया है । साधक के प्रति तन्त्र का वाक्य है—

यथा देवे तथा मन्त्रे यथा मन्त्रे तथा गुरौ ।
यथा गुरौ तथा स्वात्मन्येवं भक्तिक्रमः स्मृतः ॥

और भी—

यथा घटश्च कलशः कुम्भश्चैकार्थवाचकाः ।
तथा मन्त्रो देवता च गुरुश्चैकार्थवाचकाः ॥

(सुन्दरीतापिनी)

'तामिच्छाविग्रहां देवीं गुरुरूपां विभावयेत् ।'

(नित्याहृदय)

ललितासहस्रनाम के 'गुरुमण्डलरूपिणी' और 'गुरुप्रिया' (श्लो० १८९-१९०) के गुरुपद से भास्करराय ने अपने सौभाग्यभास्कर-भाष्य में शिव का ही अर्थ ग्रहण किया है । महानिर्वाणतन्त्रानुसार शिव ही गुरु हैं और गुरु, परम गुरु, परमेष्ठी गुरु एवं परात्पर गुरु शिव के ही अंश हैं ।

शिरःपद्मे महादेवस्तथैव परमो गुरुः ।
तत्समो नास्ति देवेशि पूज्यो हि भुवनत्रये ॥
तदंशं चिन्तयेद्देवी बाह्ये गुरुचतुष्टयम् ।

मूलाधारादि षट्चक्रों में सर्वोपरि स्थान श्रीगुरुदेव का ही नियत किया गया है । अधोमुख सहस्रदल-कमल-कर्णिकान्तर्गत मृणालरूपी चित्रिणी नाडी से भूषित गुरु मन्त्रात्मक द्वादश वर्ण (ह स ख फ्रेंह स क्ष म ल व र यं) रूपी द्वादशदल पद्म में अ क थ आदि त्रिरेखा और ह ल क्ष कोण से भूषित कामकला त्रिकोण में नाद-बिन्दुरूपी मणिपीठ अथवा हंसपीठ पर शिवस्वरूप श्रीगुरु का स्थान है (पादुकापञ्चक १, २, ३) ।

शिरःपद्मे शुक्ले दशशतदले केसरगते ।
पतत्त्रीणां तल्पे परमशिवरूपं निजगुरुम् ॥ (अन्नदाकल्प)

सहस्रदलमध्यस्थमन्तरात्मानमुत्तमम् ।
तस्योपरि नादबिन्दोर्मध्ये सिंहासनोज्ज्वलम् ॥
तस्मिन् निजगुरुं नित्यं रजताचलसन्निभम् ।

(कङ्कालमालिनीतन्त्र)

तन्त्रवर्णित श्रीगुरु का ध्यान शिव-शक्ति का ध्यान है—

'निजशिरसि श्वेतवर्णं सहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतचन्द्रमण्डलोपरि स्वगुरुं शुक्लवर्णं शुक्लालङ्कारभूषितं ज्ञानानन्दमुदितमानसं सच्चिदानन्द-विग्रहं चतुर्भुजं ज्ञानमुद्रापुस्तकवराभयकरं त्रिनयनं प्रसन्नवदनेक्षणं सर्वदेवदेवं वामाङ्गे वामहस्तधृतलीलाकमलया रक्तवसाभरणया स्वप्रियया दक्षभुजेनालिङ्गितं परमशिवस्वरूपं शान्तं सुप्रसन्नं ध्यात्वा तच्चरणकमल-युगलविगलदमृतधारया स्वात्मानं प्लुतं विभाव्य मानसौपचारैराराध्य ।'

क्योंकि तन्त्र में श्रीगुरु का सर्वोच्च पद स्वीकार किया गया है, अतएव तन्त्रमतानुयायी साधक के लिए गुरुपूजा अत्यावश्यक मानी गयी है । गुरुपूजा बिना साधक की सब साधना निष्फल होती है—

गुरुपूजां विना देवि स्वेष्टपूजां करोति यः ।
मन्त्रस्य तस्य तेजांसि हरते भैरवः स्वयम् ॥

(कालीविलासतन्त्र १।१३)

रुद्रयामलानुसार—

पूजाकाले च चार्वङ्गि आगच्छेच्छिष्यमन्दिरम् ।
गुरुर्वा गुरुपुत्रो वा पत्नी वा वरवर्णिनि ॥
तदा पूजां परित्यज्य पूजयेत्स्वगुरुं प्रिये ।
देवतापूजनार्थं यद् गन्धपुष्पादिकञ्च यत् ॥
तत्सर्वं गुरवे दद्यात्पूजयेन्नगनन्दिनि ।
तदैव सहसा देवि देवता प्रीतिमाप्नुयात् ॥

श्रीगुरुपूजा का विस्तृत वर्णन तन्त्रों में किया गया है । देवोपासना के पञ्चाङ्ग की तरह गुरुपटल, गुरुपद्धति, गुरुकवच, गुरुस्तोत्र और गुरुसहस्रनाम आदि अनेक तन्त्र-ग्रन्थों में नाना प्रकार से गुरुपूजा वर्णित हैं। स्कन्द-पुराणान्तर्गत गुरुगीता प्रसिद्ध है । रुद्रयामलतन्त्र का गुरुपादुका स्तोत्र एक अद्भुत चमत्कारी रहस्यमय स्तोत्र है । वामकेश्वरतन्त्र में गुरुस्तव वर्णित है । कुब्जिकातन्त्र में छः श्लोकों का श्रीगुरुस्तोत्र है । इसमें शिवरूप से श्रीगुरु की स्तुति की गयी है । श्रीशिवोक्त पादुकापञ्चक

विख्यात है । कालीचरण की 'अमला' नामक टीका में इसके गूढ़ रहस्य का उद्घाटन किया गया है ।

श्रीगुरुमण्डलार्चन

तन्त्रवर्णित श्रीगुरुपूजा में सबसे विचित्र बात श्रीगुरुमण्डलार्चन है । श्रीगुरुमण्डलार्चन-मन्त्र कई एक तन्त्र ग्रन्थों में मिलता है । यह एक अपूर्व अद्भुत रहस्यमय मन्त्र है । प्राय: किसी एक तन्त्र ग्रन्थ में इसका विस्तृत रहस्य नहीं बताया गया है । किसी-किसी तन्त्र में कहीं-कहीं इसका उल्लेख दृष्टिगोचर है । 'आम्नायसप्तविंशतिरहस्य'[१] में इसका अधिकतर रहस्य उद्घाटित है । इस ग्रन्थ में आम्नायभेद से देवसमूह का विभाग करके श्रीगुरुमण्उल के देवताओं का उल्लेख किया गया है । श्रीगुरुमण्डलार्चन के समय साधक पृथक्-पृथक् देवता का मन्त्रसहित नाम उच्चारण करके अन्त में 'श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:' ऐसा उच्चारण करते हैं ।

गुरुवन्दना मन्त्र—

ॐ श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयं भैरवं
सिद्धौघं बटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् ।
वीरानष्ट चतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीं पञ्चकं
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम् ॥

1. श्री० श्रीलक्ष्मी
2. नाथादि०

आम्नायसप्तविंशतिरहस्य में इसका उल्लेख नहीं किया गया, किन्तु विद्यार्णव निबन्ध में जिन ओघत्रय (दिव्य, सिद्ध और मानव) का षोडशोपासना में वर्णन है, वे रूपान्तर से आम्नायसप्तविंशतिरहस्य में दिए गए हैं ।

१. दिव्यौघ:—

१. श्रीशिवानन्दनाथ पराशक्त्यम्बा
२. श्रीसदाशिवानन्दनाथ चिच्छक्त्यम्बा
३. श्रीईश्वरानन्दनाथ आनन्दशक्त्यम्बा

---

१. यह ग्रन्थ अभीतक अप्रकाशित है । इसकी एक हस्तलिखित प्रति जम्मू में श्रीरघुनाथजी के मन्दिर के पुस्तकालय में सुरक्षित है । एक हस्तलिखित प्रति मण्डीनरेश राजा सर योगेन्द्रसेन के चित्र-भण्डार में भी विद्यमान है ।

४. श्रीरुद्रदेवानन्दनाथ इच्छाशक्त्यम्बा
५. श्रीविष्णुदेवानन्दनाथ ज्ञानशक्त्यम्बा
६. श्रीब्रह्मदेवानन्दनाथ क्रियाशक्त्यम्बा

२. सिद्धौघः—

१. श्रीसनकानन्दनाथ २. श्रीसनन्दनानन्दनाथ ३. श्रीसनातनानन्दनाथ ४. श्रीसनत्कुमारानन्दनाथ ५. श्रीशौनकानन्दनाथ ६. श्रीसनत्सुजातानन्दनाथ ७. श्रीदत्तात्रेयानन्दनाथ ८. श्रीरैवतानन्दनाथ ९. श्रीवामदेवानन्दनाथ १०. श्रीव्यासानन्दनाथ ११. श्रीशुकानन्दनाथ

३. मानवौघः—

१. श्रीनृसिंहानन्दनाथ २. श्रीमहेशानन्दनाथ ३. श्रीभास्करानन्दनाथ ४. श्रीमहेन्द्रानन्दनाथ ५. श्रीमाधवानन्दनाथ ६. श्रीविष्णुदेवानन्दनाथ

कादिविद्योपासकों के ओघत्रय—

दक्षिणामूर्तिसम्प्रदायनुसार क्रम इस प्रकार है—

१. दिव्यौघः—

१. परप्रकाशानन्दनाथ २. परशिवानन्दनाथ ३. पराशक्त्यम्बानन्दनाथ ४. कौलेश्वरानन्दनाथ ५. शुक्लदेव्यम्बानन्दनाथ ६. कुलेश्वरानन्दनाथ ७. कामेश्वर्यम्बानन्दनाथ

२. सिद्धौघः—

१. भोगानन्दनाथ
२. क्लिन्नानन्दनाथ
३. समयानन्दनाथ
४. सहजानन्दनाथ

३. मानवौघः—

१. गगनानन्दनाथ २. विश्वानन्दनाथ ३. विमलानन्दनाथ ४. मदनानन्दनाथ ५. भुवनानन्दनाथ ६. लीलानन्दनाथ ७. स्वात्मानन्दनाथ ८. प्रियानन्दनाथ

ज्ञानार्णवतन्त्र के मत से षोडशी-उपासना में भी ओघत्रय की यही परम्परा है ।

हादिविद्योपासकों की परम्परा में ओघत्रय

१. दिव्यौघ.—

१. परमशिवानन्दनाथ २. कामेश्वर्यम्बानन्दनाथ ३. दिव्यौघानन्दनाथ ४. महौघानन्दनाथ ५. सर्वानन्दनाथ ६. प्रज्ञादेव्यम्बानन्दनाथ ७. प्रकाशानन्दनाथ

२. सिद्धौघः—

१. दिव्यानन्दनाथ २. चिदानन्दनाथ ३. कैवल्यानन्दनाथ ४. अनुदेव्यम्बानन्दनाथ ५. महोदयानन्दनाथ ६. सिद्धानन्दनाथ

३. मानवौघः—

१. चिदानन्दनाथ २. विश्वानन्दनाथ (विश्वशक्त्यानन्दनाथ) ३. रामानन्दनाथ ४. कमलानन्दनाथ ५. परानन्दनाथ ६. मनोहरानन्दनाथ ७. स्वात्मानन्दनाथ ८. प्रतिभानन्दनाथ ।

षोडश्युपासकों की परम्परा में श्रीविद्यार्णव के अनुसार ओघत्रय

१. दिव्यौघः—

१. व्योमातीताम्बा २. व्योमेश्यम्बा ३. व्योमाकाम्बा ४. व्योमचारिण्यम्बा ५. व्योमस्थाम्बा

२. सिद्धौघः—

१. उन्मनाकाशानन्दनाथ २. समनाकाशानन्दनाथ ३. व्यापकाकाशानन्दनाथ ४. शक्त्याकाशानन्दनाथ ५. ध्वन्याकाशानन्दनाथ ६. ध्वनिमात्राकाशानन्दनाथ ७. अनाहताकाशानन्दनाथ ८. विन्द्वाकाशानन्दनाथ ९. इन्द्वाकाशानन्दनाथ

३. मानवौघः—

१. परमात्मानन्दनाथ २. शाम्भवानन्दनाथ ३. चिन्मुद्रानन्दनाथ ४. वाग्भवानन्दनाथ ५. लीलानन्दनाथ ६. सम्भ्रमानन्दनाथ ७. चिदानन्दनाथ ८. प्रसन्नानन्दनाथ ९. विश्वानन्दनाथ

मन्त्रादिविद्या के उपासकों की परम्परा में ओघत्रय

१. दिव्यौघः—

१. परप्रकाशानन्दनाथ २. परविमर्शानन्दनाथ ३. कामेश्वर्यम्बानन्दनाथ ४. मोक्षानन्दनाथ ५. अमृतानन्दनाथ ६. सिद्धानन्दनाथ ७. पुरुषानन्दनाथ ८. अघोरानन्दनाथ

२. सिद्धौघः—

१. प्रकाशानन्दनाथ २. सदानन्दनाथ ३. सिद्धौघानन्दनाथ ४. उत्तमानन्दनाथ

३. मानवौघः—

१. उत्तरानन्दनाथ २. परमानन्दनाथ ३. सर्वज्ञानन्दनाथ ४. सर्वानन्दनाथ ५. सिद्धानन्दनाथ ६. गोविन्दानन्दनाथ ७. शङ्करानन्दनाथ

पराविद्या के उपासकों की परम्परा में ओघत्रय

(परशुरामकल्पसूत्र, अष्टम खण्ड, पराक्रम-सूत्र २६)

१. दिव्यौघः—१. पराभट्टारिका २. अघोर ३. श्रीकण्ठ

२. सिद्धौघः—१. शक्तिधर २. क्रोध ३. त्र्यम्बक

३. मानवौघः—१. आनन्द २. प्रतिभादेव्यम्बा ३. वीर ४. संविदानन्द ५. मधुरादेव्यम्बा ६. ज्ञान ७. श्रीराम ८. योग

3. गुरुत्रय—

१. श्रीमदुमाम्बासहित श्रीविश्वनाथानन्दनाथ **श्रीगुरु** ।

२. श्रीमदन्नपूर्णाम्बासहित श्रीविश्वेश्वरानन्दनाथ **श्रीपरमगुरु** ।

३. श्रीमत्पराम्बासहित श्रीपरात्मानन्दनाथ **श्रीपरमेष्ठिगुरु** ।

4. गणपतिः—श्रीमहागणपति

5. पीठत्रय—१. श्रीकामगिरिपीठ ब्रह्मात्मकशक्त्यम्बा २. श्रीपूर्णगिरिपीठ विष्णुवात्मकशक्त्यम्बा ३. श्रीजालन्धरपीठ रुद्रात्मकशक्त्यम्बा

6. भैरव—१. श्रीमन्थान भैरव २. श्रीषट्चक्र भैरव ३. श्रीफट्कार भैरव ४. ऐकात्मक भैरव (एकान्त, आम्नाय) ५. श्रीरविभक्ष्य भैरव (रविभैरव आम्नाय) ६. श्रीचण्ड भैरव ७. श्रीनभोनिर्मल भैरव ८. श्रीभ्रमरभास्कर भैरव

7. सिद्धौघ—

१. श्रीमहादर्मनाम्बा सिद्ध २. श्रीसुन्दर्यम्बा सिद्ध ३. श्रीकरालिकाम्बा सिद्ध (विश्वोदर्यम्बा सिद्ध आम्नाय) ४. श्रीत्रिबाणा सिद्ध (शचीबीजाम्बा सिद्ध आम्नाय) ५. श्रीभीमाम्बा सिद्ध ६. श्रीकराल्यम्बा सिद्ध ७. श्रीखगननाम्बा सिद्ध ८. श्रीविधिशालीनाम्बा सिद्ध (विशालाक्ष्यम्बा आम्नाय)

8. वटुकत्रय—

१. श्रीस्कन्द वटुक २. श्रीचित्र वटुक ३. श्रीविरञ्चि वटुक

9. पदयुग—

१. श्रीप्रकाशचरणम् २. श्रीविमर्शचरणम्

10. दूतीक्रम—

१. श्रीयोन्यम्बा दूती २. श्रीयोनि सिद्धनाथाम्बा दूती ३. श्रीमहायोन्यम्बा दूती ४. श्रीमहायोनि सिद्धनाथम्बा दूती ५. श्रीदिव्ययोन्यम्बा दूती ६. श्रीदिव्य-

योनि सिद्धनाथाम्बा दूती ७. श्रीशङ्खयोन्यम्बा दूती ८. श्रीशङ्खयोनि-सिद्धनाथाम्बा दूती ९. श्रीपद्मयोन्यम्बादूती १०. श्रीपद्मयोनि सिद्धनाथाम्बादूती

आम्नायसप्तविंशतिरहस्य में केवल आठ दूतियाँ वर्णित हैं, प्रथम और द्वितीय नहीं ।

11. मण्डल—

१. सोममण्डल २. सूर्यमण्डल ३. अग्निमण्डल

12. वीरा अष्ट—

१. श्रीसृष्टिवीरभैरव २. श्रीस्थितिवीरभैरव ३. श्रीसंहारवीरभैरव ४.श्रीरक्त-वीरभैरव ५. श्रीयमवीरभैरव ६. श्रीमृत्युभैरव ७. श्रीभद्रवीरभैरव ८. श्रीपरमा-र्कवीरभैरव ९. श्रीमार्तण्डवीरभैरव १०. श्रीकालाग्निरुद्रवीरभैरव

विमर्श—मन्त्र में 'वीर' की गणना ८ है । किन्तु ग्रन्थों में १० का उल्लेख मिलता है ।

13. चतुष्कषष्टि—

श्रीमङ्गलानाथ, चण्डिका, कन्तुका, पटह्य, कूर्म, धनदा, गन्ध, गगन, मतङ्ग, चम्पका, कैवर्त, मातङ्गगम, सूर्यभक्ष्य, नभोभक्ष्य, स्तौतिका, रूपिका, दंष्ट्रापूज्य, धूम्राक्ष, ज्वाला, गान्धार (२०), गगनेश्वर, माया, महामाया, नित्या, शान्ता, विश्वा, कामिनी, उमा, श्रिया, सुभगा, सर्वगा, लक्ष्मी, विद्या, मीना, अमृता, चन्द्र, अन्तरिक्ष, सिद्धा, श्रद्धा, अनन्ता (४०), शम्बरा, उल्क, त्रैलोक्या, भीमा, राक्षसी, मलिना, प्रचण्डा, अनङ्गविधि, रवि, अनभिमता, नन्दिनी, अभिमता, सुन्दरी, विश्वेशा, काल, महाकाल, अभया, विकार, महाविकार, सर्वगा (६०), सकला, पूतना, शार्वरी, व्योम (६४) ।

14. नवक—

१. सर्वसंक्षोभिणी	२. सर्वविद्राविणी	३. सर्वाकर्षिणी
४. सर्वशङ्करी	५. सर्वोन्मादिनी	६. सर्वमहाङ्कुशे
७. सर्वखेचरी	८. सर्वबीजेश्वरी	९. सर्वयोनि

आम्नायसप्तविंशतिरहस्य के अनुसार नवक इस प्रकार हैं—

१. तुरीयाम्बा	२. महार्घाम्बा	३. अश्वारूढाम्बा
४. मिश्राम्बा	५. वाग्वादिन्यम्बा	६. महाकाल्यम्बा
७. ताराम्बा	८. (१. वनदुर्गाम्बा २. जयदुर्गाम्बा ३. महिषमर्दिनी दुर्गाम्बा)	९. मुद्रानयकाम्बा

15. वीरावली—

१. श्रीब्रह्मवीरावली २. श्रीविष्णुवीरावली ३. श्रीरुद्रवीरावली
४. श्रीईश्वरवीरावली ५. श्रीसदाशिववीरावली

16. पञ्चक—

१. पञ्च लक्ष्म्यः—

१. श्रीमहालक्ष्मीश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीविद्यालक्ष्म्यम्बा
२. श्रीमहा.....श्रीएकाक्षरलक्ष्मीलक्ष्म्यम्बा
३. श्रीमहा.....श्रीमहालक्ष्मीलक्ष्म्यम्बा
४. श्रीमहा.....श्रीत्रिशक्तिलक्ष्मीलक्ष्म्यम्बा
५. श्रीमहा.....श्रीसर्वसाम्राज्यलक्ष्मीलक्ष्म्यम्बा

२. पञ्चकोश—

१. श्रीमहाकोशेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीविद्याकोशाम्बा
२. श्रीमहा.....श्रीपरज्योतिःकोशाम्बा
३. श्रीमहा.....श्रीपरनिष्कलशाम्भवीकोशाम्बा
४. श्रीमहा.....श्रीअजपाकोशाम्बा
५. श्रीमहा.....श्रीमातृकाकोशाम्बा

३. पञ्च कल्पलता—

१. श्रीमहाकल्पलतेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीविद्याकल्पलताम्बा
२. श्रीमहा.....श्रीत्वरिताकल्पलताम्बा
३. श्रीमहा.....श्रीपारिजातेश्वरी कल्पलताम्बा
४. श्रीमहा.....श्रीत्रिपुटा कल्पलताम्बा
५. श्रीमहा.....श्रीपञ्चबाणेश्वरी कल्पलताम्बा

४. पञ्च कामदुघा—

१. श्रीमहाकामदुघेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीविद्या कामदुघाम्बा
२. श्रीमहा.....श्रीअमृतपीठेश्वरी कामदुघाम्बा
३. श्रीमहा.....श्रीसुधासूः कामदुघाम्बा

४. श्रीमहा.....श्रीअमृतेश्वरी कामदुघाम्बा
५. श्रीमहा.....श्रीअन्नपूर्णा कामदुघाम्बा

५. पञ्च रत्नविद्या—

१. श्रीमहारत्नेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननीश्रीविद्या-रत्नाम्बा
२. श्रीमहा.....श्रीसिद्धलक्ष्मीरत्नाम्बा
३. श्रीमहा.....श्रीमातङ्गेश्वरीरत्नाम्बा
४. श्रीमहा.....श्रीभुवनेश्वरीरत्नाम्बा
५. श्रीमहा.....श्रीवाराहीरत्नाम्बा । इति पञ्चपञ्चिका

17. श्रीमन्मालिनी—ॐ अं आं.....क्षं

18. मन्त्रराज

इस प्रकार ज्ञानार्णवतन्त्र और अन्य श्रीविद्या के ग्रन्थों पर आधारित शास्त्रीय दृष्टि से संक्षेप में भगवती त्रिपुरसुन्दरी एवं श्रीचक्रराज का प्रतिपादन किया गया है । इस साधना का प्रारम्भ केवल पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर ही नहीं करना चाहिए, अपितु योग्य गुरु परम्परा से ही इसे प्राप्त करना चहिए । इसी में साधक का कल्याण निहित है ।

विद्युद्विलासवपुषः श्रियमावहन्तीं
यान्तीं स्ववासभवनाच्छिवराजधानीम् ।
सौषुम्णमार्गकमलानि विकाशयन्तीं
देवीं भजे हृदि परामृतसिक्तगात्रीम् ॥

—शारदातिलक (१२।९१)

महाशिवरात्रि
२१ फरवरी, २००१

संस्कृत विभाग, कला संकाय
का.हि.वि.वि., वाराणसी

विद्वद्वशंवदः
सुधाकर मालवीयः

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन ५-६

भूमिका ७-३४

विषयानुक्रमणिका ३५-३८

वर्णसंकेतानुक्रमणिका ३९-४०

ज्ञानार्णवतन्त्रम्

प्रथमः पटलः १-६

स्वरूपज्ञेयनाम

श्लोकाङ्काः २८

द्वितीयः पटलः ७-१८

बालान्यासविधिर्नाम

श्लोकाङ्काः ७६

तृतीयः पटलः १९-२४

त्रिपुरेश्वरीध्यानं नाम

त्रिपुरेश्वरीध्यानं १९

श्लोकाङ्काः ३६

चतुर्थः पटलः २५-३७

त्रिपुरेश्वरीपूजाक्रमविधानं नाम

त्रिपुरेश्वरीपूजाविधानं २५

श्लोकाङ्काः ८१

पञ्चमः पटलः ३८-४४

त्रिपुरेश्वरीयजनविधानंनाम

श्लोकाङ्काः ४९

षष्ठः पटलः ४५-५०

पूर्वसिंहासनकथनं नाम

श्लोकाङ्काः ३५

सप्तमः पटलः ५१-५४

रुद्रभैरवीयजनं नाम

(द्वितीयसिंहासने)

रुद्रभैरवीयजनं ५१

त्रिपुरामन्त्रोद्धारः ५२

त्रिपुराध्यानकथनम् ५२

त्रिपुराभैरवीयन्त्रकथनम् ५३

श्लोकाङ्काः २१

अष्टमः पटलः ५५-५८

पश्चिमसिंहासनं नाम

भैरवीध्यानकथनम् ५६

नित्याभैरवीयन्त्रः ५६

श्लोकाङ्काः १६

नवमः पटलः ५९-६९

सिंहासनविद्याविधानं नाम

भुवनेश्वरीभैरवीविद्याकथनम् ५९

अन्नपूर्णामन्त्रोद्धारः ६१

अन्नपूर्णेश्वरीपूजायन्त्रः ६३

अन्नपूर्णेश्वरीपूजाध्यानम् ६४

वराहमन्त्रोद्धारः ६५

आवरणपूजाकथनम् ६६

चतुराम्नायविद्याकथनम् ६८

नित्यावेदाक्षरी ६८

उन्मनीविद्या ६८

कुब्जिकामहाविद्या ६८

श्लोकाङ्काः ६८

दशमः पटलः ७०-८३
षडध्वनिरूपणं नाम
करशुद्धिकरीविद्या ७२
चतुरासनविद्या ७३
मेरुमन्त्रविधानम् ७४
श्रीचक्रोद्धारः ७८
षडध्वनिरूपणम् ८२
श्लोकाङ्काः १०३

एकादशः पटलः ८४-८७
पञ्चदश्युद्धारनिरूपणं नाम
पञ्चदश्युद्धारः ८४
मेरुमण्डलनिरूपणम् ८६
श्लोकाङ्काः १४

द्वादशः पटलः ८८-९३
त्रिपुरसुन्दरीविद्याविवरणं नाम
त्रिपुरसुन्दरीद्वादशभेदनिरूपणम् ८८
श्लोकाङ्काः २६

त्रयोदशः पटलः ९४-१०२
षोडशीविद्याविवरणं नाम
षोडश्युद्धारः ९८
श्लोकाङ्काः ५२

चतुर्दशः पटलः १०३-१२३
श्रीविद्यान्यासविधानं नाम
श्रीविद्यापूजाविधानम् १०३
कलशस्थापनम् १०३
आनन्दभैरवमन्त्रोद्धारः १०५
विशेषार्घ्यलक्षणम् १०६
सर्वसौभाग्यसुन्दरीन्यास-
विधानम् १०८
सम्मोहनन्यासकथनम् १०९
संहारन्यासकथनम् १०९
वाग्देवतान्यासविधानम् १०९
१. गणेशमातृकान्यासः ११२
२. ग्रहन्यासः ११४
३. नक्षत्रमातृकान्यासः ११४
४. योगिनीमातृकान्यासः ११६
५. राशिमातृकान्यासः ११७
सर्वतीर्थमयीपीठन्यासः ११८
कामान्यासः १२०
श्लोकाङ्काः १४८

पञ्चदशः पटलः १२४-१३४
श्रीविद्यान्यासविवरणं नाम
१.कामेश्वरीनित्यामन्त्रोद्धारः १२४
२.भगमालिनी १२५
३.नित्यक्लिन्ना १२६
४.भेरुण्डा १२६
५.वह्निवासिनी १२६
६.महाविद्येश्वरी १२७
७.शिवदूतीमन्त्रोद्धारः १२७
८.त्वरितामन्त्रोद्धारः १२७
९.कुलसुन्दरीविद्यामन्त्रोद्धारः १२७
१०.नित्यामन्त्रोद्धारः १२८
११.नीलयताकिनीमन्त्रोद्धारः १२८
१२.विजयामन्त्रोद्धारः १२८
१३.सर्वमङ्गलामन्त्रोद्धारः १२९
१४.ज्वालामालिनीमन्त्रोद्धारः १२९
१५.विचित्रामन्त्रोद्धारः १२९
विद्यान्यासकथनम् १३०
मुद्रानिरूपणम् १३०
मुद्राणां बीजानि १३१
मुद्राविवरणम् १३१
श्लोकाङ्काः ६९

षोडशः पटलः १३५-१६७
श्रीविद्यायजनविधिर्नाम
अन्तर्यागविधानम् १३५
गुरुपूजानिरूपणम् १४१
आम्नायदेवतायजनम् १४६

पञ्चपञ्चिकायजनम् १४६
१. कोशपञ्चिका १४६
२. लक्ष्मीपञ्चिका १४६
३. कल्पलतिकापञ्चिका १४७
४. कामधेनुपञ्चिका १४७
५. पञ्चरत्नपञ्चिका १४७
१. महालक्ष्मीमन्त्रोद्धारः १४७
२. परात्रिशक्तिबीजविवरणम् १४८
३. परानिष्कलशाम्भवी-मन्त्रोद्धारः १४८
४. पारिजातेशीमन्त्रोद्धारः १४८
५. सुधाश्रीमन्त्रोद्धारः १४९
६. सिद्धलक्ष्मीमन्त्रोद्धारः १५०
७. मातङ्गिनीमन्त्रोद्धारः १५०
८. महाविद्यामन्त्रोद्धारः १५१
सिद्धादिमन्त्रशोधननिरूपणम् १५१
श्रीविद्यापूजनविवरणम् १५४
गुप्तयोगिनीनामानि १५७
श्रीचक्रेश्वरीपूजननिरूपणम् १५८
षोडशारचक्रपूजनकथनम् १५८
चतुर्दशारचक्रपूजनकथनम् १५९
दशारचक्रपूजाविधानम् १६०
चक्रपूजानिवेदनम् १६२
गन्धपुष्पाक्षतादिपूजन-निरूपणम् १६३
आरार्तिकविधानम् १६४
नैवेद्यविधानम् १६५
मण्डलपूजाविधानम् १६६
श्लोकाङ्काः २२८

सप्तदशः पटलः १६८-१८४
श्रीविद्याप्रयोगविधानं नाम
मालाविधानम् १६९
पुरश्चरणकथनम् १७०
श्रीविद्याप्रयोगसाधनम् १७१
साधनान्तरकथनम् १७१
प्रयोगान्तरकथनम् १७७
महापातकनाशकप्रयोग-कथनम् १७९
श्रीविद्यापूजाविधानम् १८२
श्लोकाङ्काः ११८

अष्टादशः पटलः १८५-१८९
श्रीविद्यास्वर्णरत्नपूजाविधि-विवरणं नाम
श्लोकाङ्काः २६

एकोनविंशः पटलः १९०-१९७
त्रिपुराबीजत्रयसाधनविधिर्नाम
त्रैलोक्यमोहनयोग-निरूपणम् १९३
शक्तिबीजस्य साधनम् १९४
श्लोकाङ्काः ४४

विंशः पटलः १९८-२२४
श्रीत्रिपुराजपहोमविधानं नाम
श्रीत्रिपुराजपहोमविधानं १९८
निगद-उपांशु-मानसजप-लक्षणम् १९९
कुण्डनिर्माणनिरूपणम् २०१
दीपस्थानविवरणम् २०५
समिधादूर्वादर्भस्थापनम् २०८
वह्निपूजननिरूपणम् २१०
कामनाहोमविधानम् २१३
होमस्य विशेषविधिकथनम् २२०
सिद्धिक्रमे दिक्विधानम् २२१
सिद्धिक्रमे नक्षत्रविधानम् २२१
सिद्धिक्रमे वारविधानम् २२२
सिद्धिक्रमे समयविधानम् २२२
सिद्धिक्रमे चर्मविधानम् २२२
सिद्धिक्रमे समित्निरूपणम् २२३
सिद्धिक्रमे पूर्णाहुतिविवरणम् २२३
श्लोकाङ्काः १७९

एकविंशः पटलः २२५-२३०
ज्ञानहोमविधिर्नाम
श्लोकाङ्काः ३४

द्वाविंशः पटलः २३१-२४१
श्रीविद्यादूतीयजनविधिर्नाम
मादकद्रव्यनिषेधविधानम् २३३
ब्रह्मतत्त्वेवासनानिषेध-
विवरणम् २३४
दूतीयजननिरूपणम् २३७
कुमारीजननिरूपणम् २३७
श्लोकाङ्काः ७४

त्रयोविंशः पटलः २४२-२४७
ज्ञानदूतीयजनविधिर्नाम
श्लोकाङ्काः ३६

चतुर्विंशः पटलः २४८-२६१
दीक्षाविधिर्नाम
श्लोकाङ्काः ९६

पञ्चविंशः पटलः २६२-२६५
श्रीविद्यापवित्रारोपणविधिर्नाम
श्लोकाङ्काः २३

षडविंशः पटलः २६६-२७०
श्रीविद्यादमनारोपणविधिर्नाम
श्लोकाङ्काः ३१

श्लोकानुक्रमणिका २७१-२९६

पारिभाषिकशब्दावली २९७-३०४

*

वर्णसंकेतानुक्रमणिका

वर्ण		संकेत	पृष्ठ सं०
अम्बु	-	व	१०५
अर्धचन्द्र	-	अनुस्वार	८६
इन्द्र स्वर	-	औ	५९
कामबाण	-	द्रां, द्रीं	१४
कामराज	-	क्लीँ	६१, ७२
कामेशीबीज	-	क्लीं, ह्रीं	८६
कुमारी बीज	-	सौः	७२
कृष्णाध्वा	-	र	७४
क्रम	-	ल्	१४
क्षमा	-	ल	११०
चतुर्दशस्वर	-	औ	१२६
चन्द्र बीज	-	स	७३
जान्त	-	झ	१११
तार	-	ऊँ	६१
तुर्य स्वर	-	ई	११०
तृतीय बीज	-	सौः	७३
तोय	-	व	११०
त्रिपुरा मन्त्र	-	श्रीं ह्रीं क्लीं	१४९
त्र्यक्षरी	-	ऐं क्लीं सौः	७
थान्त	-	द	१३
धान्त	-	न	११०
ध्रुव	-	ॐ	१४९
पञ्चबाण	-	द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः	१३
पराबीज	-	श्रीं	१४७
परात्रिशक्तिबीज	-	श्रीं ह्रीं क्लीं	१४८
पाश	-	आँ	१६२
प्रासाद बीज	-	ह्रीं	६४
फान्त	-	ब	१४, ११०
भुवनेश्वरी	-	ह्रीं	५९, ८५

भू बीज	-	लं	५९
मादन	-	क	८६
मुखवृत्त	-	ऊ	१२
मुखसंस्थ	-	ल	११०
लक्ष्मीबीज	-	श्रीं	१४७
लान्त	-	व	११०
वह्नि	-	र	१०५, ११०
वह्निसंस्थ	-	र	१४७
वाग्भव बीज	-	ऐं	५९
वामकर्ण	-	ऊ	११०
वामनेत्र	-	ई	१११, १४७
वारुणान्त	-	श	१४७
वायु	-	य	१०५, ११०
वेदादि	-	ॐ	१४८
व्योम	-	ह	१११
शक्र	-	ल	९१, १०५
श वर्ग	-	शं, षं, सं	१११
शिव बीज	-	ह	८६, १०५
श्री बीज	-	श्रीं	६१
सर्गवान्	-	विसर्गयुक्त	१४
सूर्यस्वर	-	ऐं	७
हंसः	-	सः	५९

॥ श्रीः ॥

ईश्वरप्रोक्तं

ज्ञानार्णवतन्त्रम्

'सरला' हिन्दीटीकोपेतम्

अथ प्रथमः पटलः

श्रीदेव्युवाच —

गणेशनन्दिचण्डेशसुरेन्द्रपरिवारित ।
सर्ववन्द्य गणाधीश किं त्वया जप्यते सदा ॥ १ ॥

सरला

लौहित्यनिर्जितजपाकुसुमानुरागां
पाशाङ्कुशे धनुरिषूनपि धारयन्तीम् ।
ताम्रे क्षणामरुणमाल्यविशेषभूषां
ताम्बूलपूरितमुखीं त्रिपुरां भजामि ॥ १ ॥
सहस्रकमलाभ्यन्तः बिन्दुसिन्धौ परिप्लुताम् ।
सुधासारैः प्रसिञ्चन्तीं पिण्डाण्डं सकलं जगत् ॥ २ ॥
स्वपादालक्तरतिम्ना रञ्जयन्तीं दिगन्तरम् ।
सदाशिवस्य करुणामरुणां काञ्चिदाश्रये ॥ ३ ॥
ज्ञानेच्छाक्रियारूपां सर्वमङ्गलकारिणीम् ।
सर्वसंपत्तिसंपूर्णां सर्वमन्त्रमयीं तथा ॥ ४ ॥
नमस्कृत्य महाविद्यां श्रीयुक्तः रामरञ्जनः ।
ज्ञानार्णवस्यतन्त्रस्य भाषाटीकां तनोम्यहम् ॥ ५ ॥

श्री देवी ने कहा — गणेश, नन्दी, चण्डेश एवं सुरेन्द्र (विष्णु या इन्द्र) रूप परिवार वाले हे सर्ववन्द्य, हे गणाधीश्वर ! सदाशिव, आप सदैव किसका जप करते हैं ॥ १ ॥

अक्षमालेति किं नाम संशयो मे हृदि स्थितः ।
शब्दातीतं परं ब्रह्म त्वमेव परमार्थवित् ॥ २ ॥
कथयाऽऽनन्दनिष्यन्दसान्द्रमानसनिश्चयात् ।

अक्षमाला क्या वस्तु है ? शब्दातीत परं ब्रह्म क्या है ? हे आनन्द निष्यन्द सान्द्र मानस, आप परमार्थवेत्ता है। मुझे यह संदेह उत्पन्न हो गया है। अतः आप उसे हमें निश्चय ही बताइये॥ २—३ ॥

ईश्वर उवाच —

कथयामि वरारोहे यन्मया जप्यते सदा ॥ ३ ॥
अकारादिक्षकारान्ता मातृका पीठरूपिणी ।
चतुर्दशस्वरोपेता बिन्दुत्रयविभूषिता ॥ ४ ॥
अनुस्वारेण देवेशि बिन्दुनैकेन मण्डिता ।
विसर्गेण च बिन्दुभ्यां संलग्नाभ्यां विराजिता ॥ ५ ॥

ईश्वर ने कहा — हे वरारोहे ! मैं जिसका जप करता हूँ, उसे कह रहा हूँ । अकार से लेकर क्षकारान्त वर्णस्वरूपिणी मातृका पीठरूपिणी हैं । वह चौदह स्वरों से युक्त अनुस्वार एवं विसर्गरूप तीन बिन्दुओं से विभूषित है । हे देवेशि ! इस प्रकार वह देवी अनुस्वार रूप एक बिन्दु से मण्डित हैं और विसर्ग रूप दो बिन्दु से दोनों परस्पर संलग्न होकर विराजित हैं ॥ ३—५ ॥

कलामण्डलमाख्यातं शक्तिरूपं महेश्वरि ।
ककारादिक्षकारान्ता वर्णास्तु शिवरूपिणः ॥ ६ ॥

हे महेश्वरि ! जो शक्तिस्वरूप हैं जिन्हें कला मण्डल भी कहा जाता है । क से लेकर क्षकारान्त वर्ण शिवस्वरूप हैं ॥ ६ ॥

व्यञ्जनत्वात्सदाऽऽनन्देनोच्चारसहिता यतः ।
उच्चरेत्स्वरसंभिन्नांस्तदा देवि न संशयः ॥ ७ ॥

हे देवि ! ये व्यञ्जन वर्ण हैं जो स्वरों की सहायता से आनन्दपूर्वक उच्चारण किये जाते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ७ ॥

पञ्चाशद्वर्णरूपेण शब्दाख्यं वस्तु सुव्रते ।
अकारः प्रथमो देवि क्षकारोऽन्तिम इष्यते ॥ ८ ॥

हे सुव्रते ! पचास वर्णों वाला जो शब्दस्वरूप वस्तु (= ब्रह्म) है, हे देवि! उसमें अकार प्रथम अक्षर है तथा क्षकार अन्तिम अक्षर रूप होता है ॥ ८ ॥

अक्षमालेति विख्याता मातृका वर्णरूपिणी।
शब्दब्रह्मस्वरूपेयं शब्दातीतं तु जप्यते ॥ ९ ॥

इन्हीं वर्णसमुदाय मातृकाओं को अक्षमाला कहा जाता है । यही शब्द ब्रह्मस्वरूप है, किन्तु मैं शब्दातीत किसी अनिर्वचनीय ब्रह्म का जप करता हूँ ॥ ९ ॥

शब्दातीतं परं धाम गणनारहितं सदा ।
आत्मस्वरूपं जानीहि हंसस्तु परमेश्वरः ॥ १० ॥

जो शब्दातीत ब्रह्म है वही सर्वोत्कृष्ट तेज हैं, अनन्त हैं, हे देवि ! वही सदैव आत्मस्वरूप हंस और परमेश्वर है ऐसा समझो ॥ १० ॥

अस्मिन्नेव परे तत्त्वे बिन्दुत्रयविभूषिते ।
मातृकासंपुटत्वेन संस्थितं व्यक्तिमागतम् ॥ ११ ॥

इसी परतत्त्व (स्फोटस्वरूप परब्रह्म) में जो तीन बिन्दुओं से विभूषित है वे मातृकायें संपुट रूप से स्थित होकर व्यक्त होती हैं ॥ ११ ॥

बिन्दुत्रयं प्रवक्ष्यामि बीजरूपं वरानने ।
हकारं बिन्दुरूपेण ब्रह्माणं विद्धि पार्वति ॥ १२ ॥

हे वरानने ! अब बिन्दुत्रय जो बीज रूप है उसे कहता हूँ । हे पार्वति ! बिन्दुरूप से स्थित हकार को ब्रह्म स्वरूप (हर रूप) समझो ॥ १२ ॥

सकारः सर्गबिन्दुभ्यां हरिश्चाहं सुरेश्वरि।
अविनाभावसंस्थानाल्लोके हरिहराविति ॥ १३ ॥

हे सुरेश्वरि ! सर्ग और बिन्दु से युक्त सकार हरि भी मैं ही हूँ । इस प्रकार ह और स (हँसः) अविनाभाव से स्थित हैं (जिसके बिना जो न रह सके वह अविनाभाव है । ह के बिना स नहीं स के बिना ह नहीं) इस प्रकार मै हरि तथा हर हूँ ॥ १३ ॥

विमर्श—प्रत्येक प्राणवायु में श्वास—प्रश्वास द्वारा हम हंसः, सोऽहं, हंसः, सोऽहं का उच्चारण करते रहते हैं। श्वास के बिना निश्वास नहीं और निश्वास के बिना श्वास नहीं। यही अविनाभाव है। इस प्रकार अनवरत प्राणवायु द्वारा सोऽहं का अजपा जप चला करता है।

ब्रह्मबिन्दुर्महेशानि वामा शक्तिर्निगद्यते ।
विश्वं वमति यस्मात्तद्वामेयं परिकीर्तिता ॥ १४ ॥

हे महेशानि ! बिन्दुरूप ब्रह्म को 'वामा' शक्ति के रूप में जाना जाता है क्योंकि वही विश्व का वमन (उत्पन्न) करती है । इसलिये उसे वामाशक्ति कहा जाता है ॥ १४ ॥

ज्येष्ठा तु वैष्णवी शक्तिः पालयन्ती जगत्त्रयम् ।
ततो रौद्री ग्रसन्ती तु क्रमेण परमेश्वरी ॥ १५ ॥

वही तीनो जगत् का पालन करने वाली 'ज्येष्ठा' वैष्णवी शक्ति हैं । इसके बाद 'रौद्री परमेश्वरी शक्ति' क्रमशः उस जगत् का संहार करती है ॥ १५ ॥

एवं बिन्दुत्रयं विद्धि गुणत्रयविभूषितम् ।
बिन्दुशब्देन शून्यं तु तथाऽपि गुणसूचकम् ॥ १६ ॥

हे देवि ! इन तीनो बिन्दुओं को तीनो गुणों से विभूषित समझो । यद्यपि बिन्दुशब्द शून्य का वाचक है फिर भी तीनो गुणों का सूचक है ॥ १६ ॥

इच्छाज्ञानक्रियारूपं भूर्भुवःस्वःस्वरूपकम् ।
पुरत्रयात्मकं विद्धि तत्त्वत्रयमयं प्रिये ॥ १७ ॥

हे देवि ! वह बिन्दुमय इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया स्वरूप है, वह भूः भुवः स्वः स्वरूप है, और हे प्रिये! पुरत्रयात्मक तथा तीन तत्त्वमय उसे जानना चाहिए ॥ १७ ॥

बिन्दुत्रये महेशानि सर्वमेतत्प्रतिष्ठितम् ।
अम्बिकाबिन्दुभिर्देवि गुणत्रयपरम्परा ॥ १८ ॥

हे महेशानि ! यह सभी उसी बिन्दुत्रय में प्रतिष्ठित है । हे देवि ! अम्बिका के बिन्दुओं के द्वारा इस जगत् में तीनो गुणों की परम्परा फैली हुई है॥ १८ ॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च बिन्दुत्रयभवा शिवे ।
जाग्रत्सत्त्वगुणा ज्ञेया केवलं शक्तिरूपिणी ॥ १९ ॥

बिन्दुत्रय से उत्पन्न तीन अवस्थाएँ – हे शिवे ! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीनों बिन्दु से ही उत्पन्न हुये हैं। जिसमें **जाग्रत् अवस्था** को सत्त्वगुण समझना चाहिए जो केवल शक्ति स्वरूपिणी है ॥ १९ ॥

मनोव्यावृत्तिविस्तारा दुःखदोषाभिलाषिणी ।
शिवरूपा सुषुप्तिस्तु सर्वव्यावृत्तिहारिणी ॥ २० ॥

जो दुःख दोषों की अभिलाषा से युक्त होकर कभी मन को विषयों से व्यावृत्त करती हैं और कभी विषयों में अपना विस्तार करती है, वह

सुषुप्ति अवस्था शिवरूपा है, जो सारे प्रपञ्चों को हरण कर अपने में समेट लेती है ॥ २० ॥

देहधर्मपरित्यक्ता शिवतत्त्वस्वरूपिणी ।
तमोगुणमयी कर्म ग्रसन्ती मोक्षरूपिणी ॥ २१ ॥

वह सुषुप्ति देहधर्मात्मिका है और शिवतत्त्वस्वरूपिणी है । इसीलिये तमोगुण कर्म का नाश करती हुई वह जीव को मुक्त कर देती है ॥ २१ ॥

सुषुप्त्यन्ते जागरादौ स्वप्नावस्था रजोमयी ।
उभयैर्लक्षणैर्युक्ता तृष्णालक्षणलक्षिता ॥ २२ ॥

सुषुप्ति के अन्त में तथा जाग्रदवस्था के आदि में रजोगुण वाली **स्वप्नावस्था** होती हैं । वह सत्त्व एवं तम इन दोनों लक्षणों से युक्त होती है और तृष्णा के लक्षण से लक्षित होती है ॥ २२ ॥

अवस्थात्रयमेतत्तु कथितं बिन्दुसंभवम् ।
एतस्मिन्बैन्दवे ज्ञाते तुर्यावस्थां शृणु प्रिये ॥ २३ ॥

हे देवि ! ये उपर्युक्त वर्णित की गई तीनों अवस्थायें बिन्दु से उत्पन्न होती हैं । इस प्रकार से बिन्दु का ज्ञान हो जाने पर, हे प्रिये ! अब आप तुर्यावस्था को सुनिए ॥ २३ ॥

निद्रादौ जागरस्यान्ते स्फुरत्तामात्रलक्षणा ।
अवस्था पूर्णतां प्राप्ता तुर्यावस्था परा कला ॥ २४ ॥

तुर्यावस्था के लक्षण – निद्रा के आदि में तथा जाग्रदवस्था के अन्त में यह केवल संस्फुरण मात्र लक्षण से लक्षित होती है । यही तुर्यावस्था पूर्णता को प्राप्त परा कला कही जाती हैं ॥ २४ ॥

भावाभावपरित्यक्ता गुणातीता सुनिश्चला ।
इयमेव यदा देवि मनसा प्राप्यते सदा ॥ २५ ॥

इसमें न भाव होता है, न अभाव होता है, यह गुणातीत तथा स्थिर कला है। हे देवि ! यह अवस्था सर्वदा केवल मन से प्राप्त होती है ॥ २५ ॥

उन्मनी नाम सद्रूपा ज्ञानवल्ली चिदात्मिका ।
बिन्दुत्रयेण नादेन प्रसृताऽऽनन्दरूपिणी ॥ २६ ॥

इसका दूसरा नाम 'उन्मनी' है । यह सत्त्वगुण विशिष्ट ज्ञानवल्ली एवं चिदात्मिका हैं । यह आनन्दरूपिणी तुर्या (चतुर्थ) अवस्था बिन्दुत्रय से तथा नाद से सर्वत्र फैलती है ॥ २६ ॥

बिन्दुत्रयसमायोगात् त्रिपुरानामरूपिणी ।
वर्णातीता सवर्णाऽपि केवलं ज्ञानचित्कला ॥ २७ ॥

यही तुर्यावस्था तीनों बिन्दुओं से युक्त हो जाने पर त्रिपुरा नाम वाली बन जाती है, वह केवल ज्ञानचित्कला वर्णों से युक्त होने पर भी सभी वर्णों से अतीत रहती है ॥ २७ ॥

एनां विद्यां समाराध्य सर्वज्ञत्वं मयि प्रिये ।
उपास्यते मया देवि त्रिपुरा चाक्षमालया ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे स्वरूपज्ञेयमात्रं
नाम प्रथमः पटलः ॥ १ ॥

हे प्रिये ! इन्ही त्रिपुरा महाविद्या की आराधना के प्रभाव से मैं सर्वज्ञ हुआ हूँ। इसीलिए अक्षमाला से मैं सर्वदा ही इन त्रिपुरा देवी की उपासना किया करता हूँ ॥ २८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'स्वरूपज्ञेय' नामक
प्रथम पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत
हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १ ॥

❋

अथ द्वितीयः पटलः

बालान्यासविधानम्

श्री देव्युवाच —

त्रिपुरा परमेशान ज्ञानमार्गेण सूचिता ।
तत्त्वरूपेण कथय यद्यहं तव वल्लभा ॥ १ ॥

श्री देवी ने कहा — हे परमेशान ! आप ने ज्ञान मार्ग से त्रिपुरा का वर्णन किया । अतः यदि मैं आप की प्रियतमा हूँ, तो तत्त्व स्वरूप से उनका व्याख्यान कीजिये ॥ १ ॥

त्रिपुरायाः प्रकारस्तु मन्त्रभेदश्च किंविधः ।
सर्वं तच्छ्रोतुमिच्छामि येन सौभाग्यमाप्नुयाम् ॥ २ ॥

त्रिपुरा के कितने प्रकार है ? उनके कितने मन्त्र भेद हैं ? यह सब मुझे सुनने की इच्छा है, जिससे मेरे सौभाग्य की अभिवृद्धि हो ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच —

त्रिपुरा त्रिविधा देवि बालां तु प्रथमं शृणु ।
यया विज्ञातया देवि साक्षात्सुरगुरुर्भवेत् ॥ ३ ॥

ईश्वर ने कहा — हे देवि ! त्रिपुरा भगवती के तीन प्रकार हैं जिनमें पहली बाला है । हे देवि ! जिनके ज्ञान से युक्त हो जाने पर साधक साक्षात् बृहस्पति बन जाता है ॥ ३ ॥

सूर्यस्वरं समुच्चार्य बिन्दुनादकलान्वितम् ।
स्वरान्तं पृथिवीयुक्तं तूर्यस्वरविभूषितम् ॥ ४ ॥
बिन्दुनादकलाक्रान्तं सर्गवान्भृगुरव्ययः ।
शक्रस्वरसमोपेतो विद्येयं त्र्यक्षरी मता ॥ ५ ॥

बिन्दुनाद कला से युक्त सूर्यस्वर ऐं, इसके बाद स्वर का अन्त क्, जो पृथ्वी (ल्) से युक्त हो, उस पर चौथा स्वर ई की मात्रा तथा बिन्दुनाद कला जो (अनुस्वार) से युक्त अर्थात् क्लीं, फिर सर्गवान् विसर्ग से युक्त भृगु स्,

शक्रस्वर औ से युक्त हो अर्थात् 'सौः' यह त्र्यक्षरी (ऐं क्लीं सौः) विद्या कही जाती है ॥ ४–५ ॥

गङ्गातरङ्गकल्लोलवाक्पटुत्वप्रदायिनी ।
महासौभाग्यजननी महासारस्वतप्रदा ॥ ६ ॥

यह त्र्यक्षरी बाला विद्या गङ्गा के तरङ्ग कल्लोलों (समूहों) के समान वाक्पटुता प्रदान करती है, महान् सौभाग्य प्रदान करने वाली है और महासारस्वत (विद्या) प्रदान करने वाली है ॥ ६ ॥

महासौन्दर्यसुभगा महामृत्युविनाशिनी ।
ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्रादिवन्दिता पापहारिणी ॥ ७ ॥

यह अत्यन्त सौन्दर्य से सौभाग्यवती हैं, महा मृत्यु का विनाश कर देने वाली हैं और ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रादि देवताओं से वन्दित एवं पापहारिणी हैं ॥ ७ ॥

सर्वतीर्थमयी देवी स्वर्णरत्नादिदायिनी ।
सर्वलोकमयी देवी सर्वलोकवशंकरी ॥ ८ ॥

यह सर्वतीर्थमयी, स्वर्ण रत्नादि प्रदायिनी एवं सर्वलोकवश्यकरी तथा सभी लोगों को वश में करने वाली देवी है ॥ ८ ॥

सर्वक्षेत्रमयी देवी सर्वकार्यार्थसाधिका ।
महामोक्षप्रदा शान्ता महामुक्तिप्रदायिनी ॥ ९ ॥

यह सर्वक्षेत्रमयी, सब के कार्यों को सिद्ध करने वाली, महामोक्षप्रदा, शान्ता एवं महामुक्तिप्रदायिनी है ॥ ९ ॥

वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि ।
वर्णितुं नैव शक्येयं विद्येयं त्र्यक्षरी परा ॥ १० ॥

करोड़ो सहस्रमुखों से यदि एक एक मुख में सौ सौ करोड़ जीभ हों तो भी इस परा त्र्यक्षरी विद्या का गुण वर्णन करना संभव नहीं है ॥ १० ॥

पञ्चवक्त्रेण जिह्वाभिः पञ्चभिर्नैव शक्यते ।
वाग्भवेनेन्दुमहसा वागीशत्वप्रदायिनी ॥ ११ ॥

पञ्चवक्त्र सदाशिव अपने पाँच जीभों से इन भगवती का गुण वर्णन करने में समर्थ नहीं है यह वाग्भव इन्दुबीज (ऐं) के जप से वागीशत्व प्रदान करती है ॥ ११ ॥

कामराजेन बीजेन शक्रगोपस्फुरत्त्विषा ।
त्रैलोक्यं मोहयन्तीयं शक्तिबीजेन सुव्रते ॥ १२ ॥
स्फुरत्सुवर्णवर्णेन सौभाग्यं तस्य मन्दिरे ।

शक्रगोपुर (इन्द्रवधूटी) के समान अपने अरुण वर्ण वाले कामबीज (क्लीं) से यह सर्वदा भासित होती रहती हैं जिससे सारा त्रैलोक्य मोहित हो जाता है। हे सुव्रते ! इन भगवती बाला के तीसरे सुवर्ण के समान देदीप्यमान शक्ति बीज (ह्रीं) से इनका घर सौभाग्य से पूर्ण रहता है ॥ १२–१३ ॥

एतस्याः साधनं देवि कथयामि समासतः ॥ १३ ॥

हे देवि ! अब मैं इन भगवती बाला के साधन का प्रकार यहाँ संक्षेप में कहता हूँ ॥ १३ ॥

प्रातःकृत्यम्

प्रातरुत्थाय देवेशि ब्रह्मरन्ध्रे निजं गुरुम् ।
स्मृत्वा देवीमयो भूत्वा तत्प्रभापटलामलः ॥ १४ ॥

हे देवेशि ! साधक को प्रातः काल उठकर ब्रह्मरन्ध्र में अपने गुरु का ध्यान करना चाहिए तथा देवीमय बनकर उन देवी के तेज से अपने को अमल (स्वच्छ एवं पवित्र) बनावे ॥ १४ ॥

स्नानकर्म ततः कुर्यान्मूलमन्त्रं स्मरन्बुधः ।
त्रिवारमञ्जलौ वारि मन्त्रयित्वा तु मूर्धनि ॥ १५ ॥
निक्षिपेत् परमेशानि त्रिधा चाऽऽचम्य तर्पयेत् ।
त्रिधा च प्रोक्षयेद्देहं सूर्यायार्घं निवेदयेत् ॥ १६ ॥

इसके बाद वह बुद्धिमान साधक मूल मन्त्र का स्मरण करते हुये स्नान कर्म करे । फिर तीन बार आचमन कर हाथ की अञ्जलि में जल लेकर उसे अभिमन्त्रित करे, फिर मस्तक पर रख कर, हे महेशानि ! उससे तर्पण करे । फिर तीन बार अपने शरीर का जल से प्रोक्षण कर सूर्यनारायण को जल प्रदान करे ॥ १५–१६ ॥

मूलमन्त्रेण देवेशि सूर्यमन्त्रेण वा प्रिये ।
शिवबीजं वह्निसंस्थं वामनेत्रविभूषितम् ॥ १७ ॥
बिन्दुनादसमायुक्तं हंसःपदमथोच्चरेत् ।
अनेन मनुना देवि सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥ १८ ॥

हे देवेशि! हे प्रिये! सूर्य को अर्घ्यदान मूलमन्त्र से करे अथवा सूर्यमन्त्र से करे। वह्नि (रेफ) से युक्त शिव बीज (ह) वाम नेत्र (दीर्घ ईकार) से विभूषित बिन्दुनाद से विभूषित इस प्रकार ह्रीँ फिर 'हंस' पद कहे । इस प्रकार 'ह्रीँ हंसाय नमः' इस मन्त्र से सूर्य को अर्घ्यप्रदान करे ॥ १७–१८॥

यथाशक्त्या जपेन्मन्त्रं गायत्रीं परमेश्वरीम् ।
मूलविद्याद्यमुच्चार्य वागीश्वरि च विद्महे ॥ १९ ॥
द्वितीयं बीजमुच्चार्य कामेश्वरि च धीमहि ।
तृतीयं बीजमुच्चार्य तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् ॥ २० ॥

इसके बाद शक्ति के अनुसार – बाला गायत्री मन्त्र का जप करे। मूल विद्या (ॐ ऐं क्लीं सौः) का उच्चारण कर 'वागीश्वरिं च विद्महे' फिर द्वितीय बीज क्लीं का उच्चारण कर 'कामेश्वरि च धीमहि' फिर तृतीय बीज 'सौः' का उच्चारण कर 'तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्' यह बाला गायत्री का मन्त्र है ।

विमर्श – *मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है* – ॐ ऐं क्लीं सौः वागीश्वरिं च विद्महे क्लीं कामेश्वरिं च धीमहि सौः तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् ॥१९–२०॥

यथाशक्त्या जपेत्पश्चाद्यागमण्डपमाविशेत् ।
धातारं च विधातारं गङ्गां च यमुनां तथा ॥ २१ ॥
द्वारश्रियं देहलीं च पुरुषं वास्तुसंज्ञकम् ।
संपूज्य परमेशानि पूजयेदासनं बुधः ॥ २२ ॥

हे परमेशानि! इस बाला गायत्री का यथा शक्ति जप कर 'साधक यागमण्डप में आ कर धाता, विधाता, गङ्गा, यमुना, द्वार की देहली पर स्थित महालक्ष्मी एवं गणेश तथा वास्तुसंज्ञक पुरुष का पूजन कर बुद्धिमान् साधक आसन का पूजन करे ॥ २१–२२॥

पराबीजं समुच्चार्य ततश्चाऽऽधारपूर्वकम् ।
शक्तीतिपदमालिख्य कमलासनमालिखेत् ॥ २३ ॥
ङेन्तं नमःपदं कृत्वा चाऽऽसनस्य मनुः प्रिये ।
उपविश्य ततो देवि भूतान् संत्रासयेद्बुधः ॥ २४ ॥

पराबीज (ऐं क्लीं सौः) का उच्चारण कर 'आधार शक्ति' पद, फिर चतुर्थ्यन्त कमलासन पद (कमलासनाय) फिर 'नमः' पद का उच्चारण करे, हे प्रिये ! यह आसन का मन्त्र है । (मन्त्र – ऐं क्लीं सौः आधार–शक्ति–कमलासनाय नमः) फिर उस आसन पर बैठकर बुद्धिमान् साधक भूतोत्सारण करे ॥ २३–२४ ॥

भूतशुद्धि

भूतशुद्धिविधिं कुर्यात्प्राणायामत्रयेण तु ।
वायुबीजं समुच्चार्य षट्कोणादागतं महत् ॥ २५ ॥
कृष्णवर्णं महेशानि शोषयेदेनसः तनुम् ।

हे महेशानि! तीन प्राणामाय कर भूतशुद्धि का विधान सम्पन्न करे फिर षट् कोण रूप वाले महान् वायुबीज (यं) का उच्चारण कर कृष्ण वर्ण वाले पाप के शरीर का शोषण करें ॥ २५–२६ ॥

आसने सम्यगासीनो वामेनाऽऽपूर्य चोदरम् ॥ २६ ॥
कुम्भकेन त्रिरावृत्त्या दक्षिणेन च रेचयेत् ।
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यन्त्रासापुटधारणम् ॥ २७ ॥

अब प्रथम **प्राणायाम का विधान** कहते हैं । साधक आसन पर अच्छी तरह बैठ कर वायीं नासिका से वायु खींच कर उदर पूर्ण करे। कुम्भक द्वारा उसे रोक कर दाहिनी नासिका से धीरे–धीरे तीन बार में उसे बाहर करे । कनिष्ठा अनामिका अङ्गुली से बायीं नासिका तथा अङ्गुष्ठ से दाहिनी नासिका पकड़े ॥ २६–२७ ॥

प्राणायामः स विज्ञेयस्तर्जनीमध्यमे विना ।
वामकुक्षिस्थितं पापपुरुषं कज्जलप्रभम् ॥ २८ ॥

प्राणायाम में तर्जनी एवं मध्यमा अङ्गुली का प्रयोग न करे । ध्यान रहे बायीं कुक्षि में रहने वाले पाप पुरुष के शरीर का वर्ण काला है ॥ २८ ॥

ब्रह्महत्या शिरो यस्य स्वर्णस्तेयं भुजद्वयम् ।
सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम् ॥ २९ ॥

ब्रह्महत्या उस पाप पुरुष का शिर है स्वर्ण एवं चोरी उसकी दोनों भुजायें हैं । सुरापान उसका हृदय है गुरु स्त्रीगमन उसकी दोनो कटि हैं ॥ २९ ॥

तत्संसर्गिपदद्वन्द्वमङ्गप्रत्यङ्गपातकम् ।
उपपातकरोमाणं कृष्णश्मश्रुविलोचनम् ॥ ३० ॥

पाप पुरुष से संसर्ग रखने वाले व्यक्ति उस पाप पुरुष के दोनों अङ्ग हैं। उसके अङ्ग तथा उपाङ्ग पातक हैं। उपपातक उसके रोयें हैं। उसके श्मश्रु (दाढी) तथा नेत्र काले वर्ण के हैं ॥ ३० ॥

खड्गचर्मधरं क्रुद्धं कुक्षौ पापं विचिन्तयेत् ।
शोषयेद्वायुबीजेन देहं च परमेश्वरि ॥ ३१ ॥

वह तलवार तथा ढाल धारण किये हुये हैं तथा क्रोध से भरा हुआ है, इस प्रकार के पाप पुरुष का अपनी बायीं कुक्षि में ध्यान करे। हे परमेश्वरि! वायु बीज (यं) का उच्चारण कर उस पाप पुरुष के शरीर का शोषण करें ।। ३१ ।।

पापेन सहितं शुष्कं कृत्वा तेन क्रमेण हि ।
वह्निबीजेन संदग्धं पापेन सहितं शिवे ।। ३२ ।।

इस प्रकार पाप के सहित उस पाप पुरुष के शरीर का शोषण क्रमशः क्रमशः करे। फिर वह्निबीज (रं) से पाप सहित उस पाप पुरुष का देह भस्म कर देवे ।। ३२ ।।

पापेन रहितं पश्चात्प्लावयेदमृताम्बुना ।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण जीवं देहे निधापयेत् ।। ३३ ।।

जब उसका शरीर भस्म हो जाय तो पाप रहित उस शरीर को अमृत रूप जल बीज (वं) से उसे सिञ्चित करे। तदनन्तर प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से उसमें जीव का सञ्चार करे ।। ३३ ।।

मुखवृत्तं समुच्चार्य हंसस्तु विपरीततः ।
उच्चरेत्परमेशानि विद्येयं त्र्यक्षरी भवेत् ।। ३४ ।।

मुख वृत्तं (ऊ) का उच्चारण कर 'हंसः' का विपरीत 'सोऽहं' उच्चारण कर उसमें प्राण प्रतिष्ठा करे अर्थात् ॐ सोऽहं कर प्राण प्रतिष्ठा करे। हे परमेशानि! यह त्र्यक्षरी विद्या मन्त्र हैं ।। ३४ ।।

प्राणप्रतिष्ठामन्त्रोऽयं सर्वकर्माणि साधयेत् ।
तेनैव विधिना देवि स्थिरी कुर्यान्निजां तनुम् ।। ३५ ।।

यह प्राणप्रतिष्ठा का मन्त्र है। इससे सारा कार्य साधन करे । हे देवि! इस प्रकार उसी उपर्युक्त विधि से अपना शरीर स्थिर करे ।। ३५ ।।

विशुद्धदेहो देवेशि न्यासं कुर्यात्समाहितः ।
ऋषिरस्य महेशानि दक्षिणामूर्तिरव्ययः ।। ३६ ।।

हे देवेशि ! हे महेशानि ! शरीर के निष्पाप हो जाने पर समाहित मन हो साधक इस प्रकार न्यास करें। इस बाला मन्त्र के अव्यय दक्षिणामूर्त्ति ऋषि हैं।

विनियोग—अस्य श्रीबालामन्त्रस्य दक्षिणामूर्त्तिऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः परमेश्वरी त्रिपुरा बाला देवता ऐं बीजं क्लीं शक्तिः सौः कीलकं अभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।। ३६ ।।

न्यसेच्छिरसि पूज्यत्वात्पङ्क्तिश्छन्दो मुखे प्रिये ।
देवता हृदये बाला त्रिपुरा परमेश्वरी ॥ ३७ ॥

हे प्रिये ! 'दक्षिणामूर्त्ति ऋषये नमः शिरसि' इस ऋषि मन्त्र से शिर में न्यास करें । 'पङ्क्तिश्छन्दसे नमः' से मुख में न्यास करे । 'परमेश्वरी त्रिपुरा बाला देवतायै नमः' से हृदय में न्यास करे ॥ ३७ ॥

बीजं तु वाग्भवं शक्तिस्तार्तीयं कीलकं तथा ।
कामराजं महेशानि छन्दो न्यास उदाहृतः॥ ३८ ॥

वाग्भव (ऐं) बीज से गुह्य में, 'क्लीं' शक्ति से पैर में तथा तृतीय 'सौः' कीलक से नाभि में न्यास करे । हे महेशानि ! इस प्रकार कामराज बीज 'क्लीं' का और छन्द का न्यास हमने आप से कहा ॥ ३८ ॥

नाभ्यादिपादपर्यन्तं गलादानाभि चापरम् ।
मूर्धादिगलपर्यन्तं त्र्यक्षरीं विन्यसेत्क्रमात् ॥ ३९ ॥

शरीर की नाभि से लेकर पादपर्यन्त प्रथम बीज 'ऐं' का न्यास करे । गले से ले कर नाभि पर्यन्त दूसरे बीज क्लीं का तथा शिर से लेकर हृदय तक तीसरे बीज (सौः) से न्यास करे । (मन्त्र का स्वरूप – ऐं नमः नाभेः पादपर्यन्तं, क्लीं नमः गलात् नाभिपर्यन्तं, सौः नमः मूर्ध्नः गलपर्यन्तम्) इस प्रकार त्र्यक्षरी विद्या का न्यास करना चाहिए ॥ ३९ ॥

वामपाणितले चैक दक्षपाणितले तथा ।
उभयोः संपुटे विद्यां त्रिबीजां विन्यसेत्प्रिये ॥ ४० ॥

अब दूसरा न्यास का प्रकार कहते है – प्रथम मन्त्र से बायें हाथ के तलवे का, दूसरे मन्त्र से दाहिने हाथ के तलवे का तथा तीसरे से दोनों हाथों को संपुट रूप में न्यास करे । (इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – 'ऐं नमः वामकरे' क्लीं नमः दक्षिण करे, सौः नमः उभयोः करयोः) हे प्रिये ! इस प्रकार त्रिबीज का दूसरा न्यास कहा गया ॥ ४० ॥

पञ्च बाणान्क्रमेणैव कराङ्गुलिषु विन्यसेत् ।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं क्रमेण परमेश्वरि ॥ ४१ ॥

हे परमेश्वरि ! इसके बाद पञ्चबाण के मन्त्रों से अङ्गुष्ठादि कनिष्ठान्त पाँचों अङ्गुलियो में क्रमशः न्यास करे ॥ ४१ ॥

थान्तद्वयं समालिख्य वन्हिसंस्थ क्रमेण हि ।
मुखवृत्तेन नेत्रेण वामेन परिमण्डितम् ॥ ४२ ॥

बाणद्वयमिदं प्रोक्तं मादनं भूमिसंस्थितम् ।
चतुर्थस्वरबिन्द्वाढ्यं नावरूपं वरानने ॥ ४३ ॥
फान्तं क्रमसमायुक्तं वामकर्णविभूषितम् ।
बिन्दुनादसमायुक्तं सर्गवांश्चन्द्रमाः प्रिये ॥ ४४ ॥

वह्नि बीज से युक्त दो 'द' लिख कर उसे मुखवृत्त (अकार) तथा वाम नेत्र (ईकार) से भूषित करें । इस प्रकार (द्रां द्रीं) यह दो कामबाण के मन्त्र हैं । भूमि (ल्) से युक्त मादनक, जो चतुर्थ स्वर ई तथा बिन्दु से युक्त हो अर्थात् क्लीं यह तृतीय मन्त्र है। फान्त (ब्), जो क्रम (ल्) से युक्त तथा वामकर्ण ऊ एवं नाद बिन्दु से विभूषित हो । इस प्रकार 'ब्लूँ' यह चतुर्थ मन्त्र हुआ । इसके बाद सर्गवान् चन्द्रमा (सः) यह पञ्चम मन्त्र हुआ ॥ ४२–४४ ॥

विमर्श – *मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार हुआ–द्रां द्रीं क्लीं ब्लूँ सः।*

पञ्च बाणा महेशानि नामानि शृणु पार्वति ।
क्षोभणद्रावणौ देवि तथा कर्षणसंज्ञकः ॥ ४५ ॥
वश्योन्मादौ क्रमेणैव नामानि परमेश्वरि ।
कामास्तत्रैव विज्ञेयास्तेषां बीजानि संशृणु ॥ ४६ ॥

हे महेशानि ! ये पञ्चबाण के मन्त्र हैं। हे पार्वति ! अब इनके नामों को सुनिए। हे देवि ! क्षोभण, द्रावण, कर्षण, वश्य और उन्माद–ये क्रमशः उन काम बाणों के नाम हैं । हे परमेश्वरि ! ये काम भी हैं, अब आप इनके बीजों को सुनिए ॥ ४५–४६ ॥

पराबीजं मध्यबाणं वाग्भवं परमेश्वरि ।
तूर्यबाणं ततश्चैव स्त्रीबीजं च क्रमात्प्रिये ॥ ४७ ॥

हे परमेश्वरि ! परा बीज, मध्यबाण, वाग्भव, तूर्यबाण तथा स्त्रीबीज, हे प्रिये ! ये क्रमशः पञ्चकाम हैं ॥ ४७ ॥

पञ्च कामा इमे देवि नामानि शृणु वल्लभे ।
काममन्मथकन्दर्पमकरध्वजसंज्ञकाः ॥ ४८ ॥
मीनकेतुर्महेशानि पञ्चमः परिकीर्तितः ।
एतान्विन्यस्य देवेशि करन्यासं ततः परम् ॥ ४९ ॥

हे वल्लभे ! अब इनके नामों को भी सुनिए। हे देवि ! काम, मन्मथ, कन्दर्प, मकरध्वज और मीनकेतु। हे महेशानि ! ये पाँच काम के नाम हैं। हे देवेशि ! इनका न्यास कर तदनन्तर करन्यास करें ।

विमर्श—बाण न्यास इस प्रकार करे—द्रां क्षोभणाय नमः शिरसि, द्रीं द्रावणाय नमः हृदये आदि और कामन्यास इस प्रकार करें—ॐ ह्रीं कामाय नमः शिरसि ॐ क्लीं मन्मथाय नमः हृदये इत्यादि ॥ ४८—४९ ॥

मूलविद्यां द्विरावृत्त्या सर्वाङ्गुलितलेषु च ।
षडङ्गक्रमयोगेन मातृकां विन्यसेत्ततः ॥ ५० ॥

मूल विद्या का दो बार उच्चारण कर अङ्गुलियों में तथा हाथ के तलवों में करन्यास करे। फिर षडङ्गक्रम के योग से मातृका न्यास करे ॥ ५० ॥

मातृकां शृणु देवेशि न्यासात्पापनिकृन्तनीम् ।
ऋषिर्ब्रह्माऽस्य मन्त्रस्य गायत्रं छन्द उच्यते ॥ ५१ ॥
देवता मातृका देवि बीजं व्यञ्जनसंचयः ।
शक्तयस्तु स्वरा देवि षडङ्गन्यासमाचरेत् ॥ ५२ ॥
अंआंमध्ये कवर्गं च इं ई मध्ये चवर्गकम् ।
उं ऊं मध्ये टवर्गं च एं ऐं मध्ये तवर्गकम् ॥ ५३ ॥
ओं औ मध्ये पवर्गं च क्रमेण परमेश्वरि ।
अनुस्वारविसर्गान्ते यशवर्गौ सलक्षकौ ॥ ५४ ॥
हृदयं च शिरा देवि शिखां च कवचं ततः ।
नेत्रमस्त्रं न्यसेन्ङेन्तं नमःस्वाहाक्रमेण तु ॥ ५५ ॥
वषड्हुंवौषडन्तं च फडन्तं योजयेत्प्रिये ।
षडङ्गोऽयं मातृकायाः सर्वपापहरः स्मृतः ॥ ५६ ॥

हे देवेशि ! अब न्यास से पापों को दूर करने वाली मातृका को सुनिए ।

विनियोग—अस्य श्रीमातृकान्यासस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्रीच्छन्दः (कादि क्ष पर्यन्त संपूर्ण व्यञ्जन रूप) मातृका देवता, अकारादि विसर्गान्ताः षोडशस्वरा शक्तयः षडङ्गन्यासे विनियोगः । अं कं खं गं घं ङं आं नमः हृदये, इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा, उं टं ठं डं ढं णं ऊँ शिखायै वौषट्, एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुँ, ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय स्वाहा, अं वं रं लं वं शं षं सं हं ल क्षं अः अस्त्राय फट् वषड् हुँ वौषट् । इस प्रकार से क्रमशः हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र तथा अस्त्र न्यास करें । हे देवि ! मातृका का यह षडङ्गन्यास समस्त पापों को दूर करने वाला कहा गया है ॥ ५१—५६ ॥

द्व्यष्टपत्राम्बुजे कण्ठे स्वरान्षोडश विन्यसेत् ।
द्वादशच्छदहृत्पद्मे कादीन्द्वादश विन्यसेत् ॥ ५७ ॥

१६ पत्र वाले कण्ठ कमल में १६ स्वरों का न्यास करे और १२ पत्र वाले

हृत्कमल में क से लेकर ठ पर्यन्त द्वादश वर्णों का न्यास करे ॥ ५७ ॥

दशपत्राम्बुजे नाभौ डकारादीन्न्यसेद्दश ।
षट्पत्रे लिङ्गसंस्थे च बकारादीन्न्यसेच्च पट् ॥ ५८ ॥

दश पत्रों वाले नाभिपद्म में ड् से लेकर फ पर्यन्त दश वर्णों का न्यास करे। षट्पत्रात्मक लिङ्ग कमल में ब से लेकर ल पर्यन्त (ब भ म य र ल) छः वर्णों का न्यास करे ॥ ५८ ॥

आधारे चतुरो वर्णान्न्यसेद्वादींश्चतुर्दले ।
हक्षौ भ्रूमध्यगे पद्मे द्विदले विन्यसेत्प्रिये ॥ ५९ ॥

हे प्रिये! चार पत्र वाले आधार कमल में व से स पर्यन्त चार वर्णों का तथा द्विदलात्मक भ्रूपद्म में ह एवं क्ष पर्यन्त दो वर्णों का न्यास करे ॥ ५९ ॥

इत्यन्तर्मातृकां न्यस्य सर्वाङ्गन्यासमाचरेत् ।
मूर्धनि मुखवृत्ते च नेत्रकर्णेषु पार्वति ॥ ६० ॥
नासागण्डोष्ठदन्तेषु मूर्धास्येषु च विन्यसेत् ।
पाणिपादयुगस्यान्ते संध्यग्रेषु क्रमात्प्रिये ॥ ६१ ॥

हे पार्वति ! इस प्रकार अन्तर्मातृका न्यास कर सर्वाङ्गन्यास करे । हे प्रिये! मूर्धा मुखवृत्त, नेत्र कान नासा, गण्डस्थल, ओष्ठ दाँत, मूर्धा तथा मुख में रहने वाल स्थान का न्यास करे । फिर दोनों हाथ, दोनों पैर तथा उनकी सन्धियों में क्रमशः न्यास करे ॥ ६०—६१ ॥

पार्श्वद्वये पृष्ठनाभिजठरेषु क्रमान्न्यसेत् ।
यादीन्सधातुकान्देवि क्रमेणैव ततो न्यसेत् ॥ ६२ ॥

हे देवि ! दोनों पार्श्व, पृष्ठ, नाभि एवं उदर में क्रमशः यकारादि से सात धातुओं में क्रमशः न्यास करे ॥ ६२ ॥

त्वगसृग्मांसमेदोस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ।
प्राणात्मा चैव जीवात्मा परमात्मा च विन्यसेत् ॥ ६३ ॥
हृदये बाहुमूले च तथाऽपरगले प्रिये ।
कक्षयोर्हृदयप्रान्ते पाणिपादयुगे तथा ॥ ६४ ॥
जठराननयोर्देवि व्यापकं च क्रमान्न्यसेत् ।

१. त्वक्, २. असृक् (रक्त), ३. मांस, ४. मेद, ५. अस्थि, ६. मज्जा, ७. शुक्र ये शरीर में सात धातु हैं । इसके बाद हे प्रिये! प्राणात्मा, जीवात्मा तथा परमात्मा का हृदय में, बाहुमूल में क्रमशः और गले में न्यास करे । इसी प्रकार

हे देवि! दोनों कक्ष, हृदय, दोनों हाथ, दोनों पैर, उदर तथा मुख में व्यापक द्वारा न्यास करे । इस प्रकार से उक्त न्यास करने के अनन्तर देवि भगवती बाला का इस प्रकार ध्यान करे ।। ६३–६५ ।।

पञ्चाशद्वर्णरूपां च कन्दर्पशशिभूषणाम् ।। ६५ ।।
शुद्धस्फटिकसंकाशां शुद्धक्षौमविराजिताम् ।
मुक्तावज्रस्फुरद्भूषां जपमालां कमण्डलुम् ।। ६६ ।।
पुस्तकं वरदानं च विभ्रतीं परमेश्वरीम् ।
एवं ध्यात्वा न्यसेत्पश्चाद्विद्यान्यासं सुरेश्वरि ।। ६७ ।।

पञ्चाशद् वर्ण रूपा, कन्दर्प के समान कमनीय, चन्द्रमा का भूषण धारण किये हुए शुद्धस्फटिक के समान गौर वर्ण वाली, शुद्ध वस्त्र से सुशोभित, मोतियों और नाना प्रकार की मणियों के आभूषण से जगमगाती हुई, जपमाला, कमण्डलु, पुस्तक एवं वरदान मुद्रा धारण किये हुए देवी परमेश्वरी बाला का ध्यान करने के अनन्तर, हे सुरेश्वरि ! विद्या न्यास से न्यास करना चाहिए ।। ६६–६७ ।।

कुर्वीत देहसंन्नाहं त्रिभिर्बीजैः क्रमात्प्रिये ।
करयोर्विन्यसेदादौ मणिबन्धे तले नखे ।। ६८ ।।
दक्षे वामे च विन्यस्य कक्षकूर्परपाणिषु ।
पुनर्दक्षे च वामे च पादयोश्च तथा न्यसेत् ।। ६९ ।।

हे प्रिये ! सर्वप्रथम तीन बीजों से देह में कवच धारण करें, तदनन्तर दोनों हाथो में, मणिबन्ध में, दाये बायें दोनों हाथों के तलवो में, नख में न्यास कर दोनों हाथ के (कक्ष) कूर्पर में, फिर दोनों पैरों में न्यास करे ।। ६८–६९ ।।

पादान्ते हृदये लिङ्गे न्यसेद्देवि ततः परम् ।
एतेष्वङ्गेषु देवेशि संहारक्रमतो न्यसेत् ।। ७० ।।

हे देवि ! तदनन्तर पादान्त में, हृदय में तथा लिङ्ग पर इन अङ्गों में हे देवेशि! संहारक्रम से न्यास करे ।। ७० ।।

विद्यां सृष्टिक्रमेणैव जानीहि परमेश्वरि ।
ततो न्यसेन्महादेवि नवयोन्यङ्किताभिधम् ।। ७१ ।।
कर्णयोश्चुबुके भूयः शङ्खयोर्मुखमण्डले ।
नेत्रयोर्नासिकायां च बाहुयुग्मे हृदि प्रिये ।। ७२ ।।
तथा कूर्परयोर्नाभौ जान्वोरन्धुनि विन्यसेत् ।

पादयोर्देवि गुह्ये च पार्श्वयोर्हृत्स्तनद्वये ॥ ७३ ॥
कण्ठे च नवयोन्याख्यं न्यसेद् बीजत्रयात्मकम् ।
षडङ्गमाचरेद्देवि द्विरावृत्त्या क्रमेण तु ॥ ७४ ॥

हे परमेश्वरि ! सृष्टि क्रम से ही विद्या का न्यास समझना चाहिए । इसके बाद हे महादेवि ! नवयोन्यात्मक न्यास दोनों कानों में, दोनों चिबुकों में, दोनों शङ्ख (गाल) में, मुखमण्डल में, दोनो नेत्र, दोनों नासिका, दोनों बाहुओं में, हृदय में, दोनों कूर्पर में, नाभि में, दोनों जानुओं में, घुटनों में, दोनों पैरों में, गुह्य में, दोनों पार्श्वभाग में, हृदय में, दोनों स्तनों में और कण्ठ में तीन बीजो से युक्त नवयोन्यात्मक न्यास करे । फिर मूल मन्त्र की दो आवृत्ति कर षडङ्गन्यास करे ॥ ७०—७४ ॥

विमर्श — *द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, पृ० २१५ ।*

त्रिद्व्येकदशकत्रिद्विसंख्यया शैलसंभवे ।
अङ्गुलीनां पुनर्देवि बाणान्कामांश्च विन्यसेत् ॥ ७५ ॥
ललाटगलहृन्नाभिमूलाधारेषु वै क्रमात् ।
मूलेन व्यापकं कृत्वा प्राणायामं समाचरेत् ॥ ७६ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे बालान्यासविधिर्नाम
द्वितीयः पटलः ॥ २ ॥

फिर हे शैलसंभवे ! ३, २, १, १०, ३, और २ की संख्या से हे देवि ! पञ्चबाणों एवं पञ्चकामों का पुनः अङ्गुलियों में न्यास करे । इसी प्रकार ललाट में, गले में, हृदय में, नाभि में तथा मूलाधार में क्रमशः न्यास करे। तदनन्तर इसी प्रकार मूल मन्त्र से व्यापक कर प्राणायाम करे ॥ ७५—७६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'बालान्यास विधि' नामक
द्वितीय पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत
हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २ ॥

✻

अथ तृतीयः पटलः

त्रिपुरेश्वरीध्यानम्

ईश्वर उवाच –

एवं विन्यस्तदेहः सन्समाहितमनास्ततः ।
अन्तर्यागविधिं कुर्यात्साक्षाद्ब्रह्ममयं प्रिये ॥ १ ॥

ईश्वर ने कहा – हे प्रिये ! इस प्रकार देह में न्यास कर शुद्धचित्तसाधक साक्षाद् ब्रह्ममय अन्तर्यागविधि का साधन करे ॥ १ ॥

अन्तर्यागविधि कथनम्

मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत्कोटिसमप्रभाम् ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिद्रवां प्रिये ॥ २ ॥
बिसतन्तुस्वरूपां तां बिन्दुत्रिवलयां प्रिये ।
ऊर्ध्वशक्तिनिपातेन सहजेन वरानने ॥ ३ ॥
मूलशक्तिदृढत्वेन मध्यबीजप्रबोधतः ।
परमानन्दसंदोहसानन्दं चिन्तयेत्पराम् ॥ ४ ॥

हे प्रिये ! करोडों बिजली के समान प्रकाशवाली, करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान, करोडों चन्द्रमा के समान सुशीतल, कमलतन्तु के समान स्वरूप वाली, बिन्दु के आकार के समान तीन वलयों वाली मूलविद्या का ध्यान करे। हे वरानने ! जो स्वाभाविक रूप से ऊर्ध्व शक्ति के निपातित होने से मध्यबीज को प्रबुद्ध करती हुई तथा मूल शक्ति को दृढ बनाती हुई परमानन्दसंदोह स्वरूप आनन्द का रूप धारण करती हैं उन परा विद्या का ध्यान करे ॥ २–४ ॥

इत्यन्तर्यजनं कृत्वा बाह्यपूजां समाचरेत् ।
तत्र प्राङ्मुख आसीनश्चक्रोद्धारं समाचरेत् ॥ ५ ॥

इस प्रकार अन्तर्याग का विधान कर साधक बाह्यपूजा प्रारम्भ करे । सर्व प्रथम पूर्वाभिमुख आसन पर बैठ कर चक्रोद्धार करे ॥ ५ ॥

सुस्थले श्रीभवे पट्टे लिखेद्यन्त्रमनुत्तमम् ।
ईशानादग्निपर्यन्तमृजुरेखां समालिखेत् ॥ ६ ॥

ईशादग्नेस्तदग्राभ्यां रेखे आकृष्य देशिकः ।
एकीकृत्य च वारुण्यां शक्तिरेखा परा प्रिये ॥ ७ ॥

त्रिकोणाकाररूपेयं तस्या उपरि संलिखेत् ।
त्रिकोणाकाररूपात्तु शक्तिद्वयमुदाहृतम् ॥ ८ ॥

पूर्वशक्त्यग्रभागे तु मानयष्टिवदालिखेत् ।
रेखां तु परमेशानि वायुराक्षसकोणगाम् ॥ ९ ॥

संधिभेदक्रमेणैव तयोः शक्त्योस्ततः परम् ।
रेखे आकृष्य कोणाभ्यां तदग्रात्पूर्वगे कुरु ॥ १० ॥

वह्निमण्डलमेतत्तु पूर्वाग्रं वीरवन्दिते ।
एकेन वह्निना शक्तिद्वयेनैतद्भवेत्प्रिये ॥ ११ ॥

नवयोनिविशोभाढ्यं चक्रराजमिदं प्रिये ।
सर्वसौभाग्यजनकं सर्वैश्वर्यप्रदायकम् ॥ १२ ॥

किसी सुन्दर स्थान पर शोभनीय पट्ट पर उत्तमोत्तम देवी के यन्त्र को लिखे । ईशान से अग्निकोण पर्यन्त सीधी रेखा खींचें । फिर ईशान और अग्निकोण के आगे से क्रमशः दो रेखा खींच कर पश्चिम दिशा में उन्हें मिला देवें । हे प्रिये यही परा शक्तिरेखा त्रिकोणाकार रूप में बन जाती है । इसके बाद उसके ऊपर दो शक्ति रेखा और बनावे । पूर्व की शक्ति के अग्रभाग में मान यष्टि के समान लेखन करे । फिर वायव्य कोण से राक्षस (नैऋत्य) कोण पर्यन्त रेखा खींचकर दोनों शक्तिरेखा से उसे अलग–अलग मिला देवें । फिर दोनों कोणों से दो रेखा खींचकर फिर उसे पूर्व की ओर रेखा खींचे । हे वीरवन्दिते ! इस प्रकार पूर्वाग्र वह्निमण्डल बन जाता है । इस प्रकार एक वह्निमण्डल से और दो शक्तियों से, हे प्रिये ! नवयोनियों की शोभा से युक्त चक्रराज बन जाता हैं जो सारे सौभाग्यों को, तथा समस्त ऐश्वर्यो को प्रदान करने वाला है ॥ ६–१२ ॥

सर्वसिद्धिप्रदं रोगहरणं धनदायकम् ।
एतद्बाह्ये तु संलेख्यं वृत्तं पूर्णेन्दुसंनिभम् ॥ १३ ॥

यह चक्रराज सर्वसिद्धिप्रद, रोगापहारी तथा धन देने वाला है, इस चक्रराज के बाहर पूर्ण चन्द्रमा के समान गोलाकार वृत्त बनाना चाहिए ॥ १३ ॥

तल्लग्नमष्टपत्रं च ग्रन्थिभिश्चाष्टभिर्युतम् ।
ग्रन्थयः प्रणवाभ्यां च संपुटत्वेन कारयेत् ॥ १४ ॥
ग्रन्थयः कुलिशा ज्ञेयाः प्रणवैरेव सुव्रते ।
त्रिशूलाष्टकमालिख्य चतुरस्त्रं लिखेत्प्रिये ॥ १५ ॥

फिर उसके बाहर उसी से सटा हुआ अष्टपत्र जो अष्टग्रन्थियों से युक्त हो उसका निर्माण करना चाहिये। इन ग्रन्थियों को दो प्रणव से संपुटित कर देना चाहिए। हे सुव्रते! ये ग्रन्थियाँ प्रणव के संयोग से वज्र हो जाती हैं, फिर हे प्रिये! उसके बाहर आठ त्रिशूलयुक्त चतुरस्त्र (चौकोर चतुर्भुज) निर्माण करना चाहिए ॥ १४–१५ ॥

चतुर्द्वारविशोभाढ्यं सर्वानन्दकरं तथा ।
हसौःकारं त्रिकोणान्तः सांलिख्य वरवर्णिनि ॥ १६ ॥

यह चतुर्भुज चार द्वारों से इस प्रकार से लिखे जिसे देखने मात्र से ही आनन्द की प्राप्ति हो । हे वरवर्णिनि ! इसके बाद मध्य त्रिकोण के भीतर 'हसौः' यह मन्त्र लिखे ॥ १६ ॥

कामबीजं मध्यमं यदष्टकोणेषु संलिखेत् ।
स्वरान् षोडश देवेशि युग्मयुग्ममभेदतः ॥ १७ ॥
दलाष्टकेषु संलिख्य पश्चिमादिप्रदक्षिणम् ।
ग्रन्थिस्थानेषु वर्गाणां कादीनां परमेश्वरिः ॥ १८ ॥
विलिखेत्सप्तसंख्यानामाद्यार्णं क्रमतः प्रिये ।
क्षकारमष्टमे योज्यं शेषान्वर्णान्क्रमेण तु ॥ १९ ॥

शेष आठ कोणो में मध्यम बीज (क्लीं) लिखे। हे देवेशि! इसके बाद स्वरों को दो दो के क्रम से ८ भाग कर पश्चिमदिशा के प्रदक्षिण क्रम से अष्टकोणों में १६ स्वरों को लिखे। हे परमेश्वरि ! आठो ग्रन्थियों पर सप्तवर्गादि, (सात वर्ग क वर्ग च वर्ग ट वर्ग त वर्ग प वर्ग य वर्ग श वर्ग) के आद्याक्षर लिखें आठवें ग्रन्थि पर केवल 'क्ष' वर्ण लिखे ॥ १७–१९ ॥

विमर्श – अन्य ग्रन्थ में भिन्न क्रम है, *द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, पृ० २१७ ।*

त्रिशूलाग्रेषु संलिख्य पश्चिमादिक्रमेण तु ।
तद्बाह्ये मातृकावृत्तं विलिख्य परमेश्वरि ॥ २० ॥
चतुरस्त्रे महेशानि मातृकां कामगर्भिताम् ।
विलिख्य पूजयेद्यन्त्रं हेमरौप्यादिपट्टके ॥ २१ ॥

हे प्रिये! फिर शेष वर्णों (स्वरों) को त्रिशूलों के अग्रभाग पर पश्चिमादि क्रम से लिख कर हे परमेश्वरि ! उस अष्टदल को मातृका वर्णों से लिखकर घेर देना चाहिए । हे महेशानि ! चतुरस्त्र के भीतर अष्टदल को कामगर्भित (क्लीं) से युक्त मातृका वर्णों से घेर कर चाँदी सोने से बने हुये पट्ट पर उपर्युक्त यन्त्र का पूजन करना चाहिए ।। २०–२१ ।।

ताम्रे वा दर्पणे ताले काश्मीरप्रभवेऽपि वा ।
चन्दनाद्यन्विते भूमौ कुङ्कुमेनाथ वा पुनः ।। २२ ।।
सिन्दूररजसा वाऽपि कस्तूरीघुसृणेन्दुभिः ।
भूर्जे गोरोचनाद्रव्यैः कल्पितं मानसेऽथ वा ।। २३ ।।

अथवा ताँबे, शीशे या ताड़पत्र पर, काश्मीर प्रभव काष्ठ पर अथवा चन्दन से युक्त भूमि पर, केशर एवे कुङ्कुम द्वारा बाला यन्त्र, सिन्दूर के रज द्वारा, कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्यों द्वारा निर्माण करे, अथवा भूर्जपत्र पर गोरोचन द्रव्यों के द्वारा लिखे, अथवा केवल मानस में कल्पित यन्त्र लिखना चाहिए।। २२–२३ ।।

सुवर्णरत्नलेखिन्या सर्वकार्यार्थसाधकः ।
विलिख्य यन्त्रं देवेशि पूजाद्रव्यैः प्रपूजयेत् ।। २४ ।।

सुवर्ण अथवा रत्न निर्मित लेखनी द्वारा लिखा गया यन्त्र समस्त कार्यों को सिद्ध करने वाला होता है, हे देवेशि! इस प्रकार यन्त्र लिख कर पूजा द्रव्यों द्वारा उसका पूजन करना चाहिए ।। २४ ।।

कुलागमक्रमेणैव ध्यात्वा ब्रह्मविकाशिनीम् ।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं बिसतन्तुतनीयतीम् ।। २५ ।।
उद्यदादित्यरुचिरां स्मरेदशुभशान्तये ।
भ्रमद्भ्रमरनीलाभधम्मिल्लामलपुष्पिणीम् ।। २६ ।।

कुलागम तन्त्र के परम्परानुसार ब्रह्मविकाशिनी मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त जाने वाली, कमलतन्तु के समान कोमल, अत्यन्त शुभ्रवर्ण वाली और उदीयमान आदित्य के समान देदीप्यमान श्री भगवती का अशुभ शान्ति के लिए पूजा में प्रथमतः इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ।। २५–२६ ।।

त्रिपुरेश्वरी ध्यानम्

ब्रह्मरन्ध्रस्फुरद्भृङ्गमुक्तारेखाविराजिताम् ।
मुक्तारेखालसद्रत्नतिलकां मुकुटोज्ज्वलाम् ।। २७ ।।

विशुद्धमुक्तारत्नाढ्यां चन्द्ररेखाकिरीटिनीम् ।
भ्रमद्भ्रमरनीलाभनयनत्रयराजिनीम् ॥ २८ ॥
सूर्यभास्वन्महारत्नकुण्डलालङ्कृतां पराम् ।
शुक्राकारस्फुरन्मुक्ताहारभूषणभूषिताम् ॥ २९ ॥
ग्रैवेयाङ्गदमुक्ताभिः स्फुरत्कान्तिविराजिताम् ।
गङ्गातरङ्गकर्पूरशुभ्राम्बरविराजिताम् ॥ ३० ॥
श्रीखण्डवल्लीसदृशबाहुवल्लीविराजिताम् ।
कङ्कणादिलसद्भूषां मणिबन्धलसत्प्रभाम् ॥ ३१ ॥
प्रवालपल्लवाकारपाणिपल्लवराजिताम् ।
वज्रवैदूर्यमुक्तालिमेखलां विमलप्रभाम् ॥ ३२ ॥
रक्तोत्पलदलाकारपादपल्लवभूषिताम् ।
नक्षत्रमालासंकाशमुक्तामञ्जीरमण्डिताम् ॥ ३३ ॥
वामेन पाणिनैकेन पुस्तकं चापरेण तु ।
अभयं च प्रयच्छन्तीं साधकाय वरानने ॥ ३४ ॥
अक्षमालां च वरदं दक्षपाणिद्वयेन हि ।
दधतीं चिन्तयेद्देवीं वश्यसौभाग्यवाक्प्रदाम् ॥ ३५ ॥
क्षीरकुन्देन्दुधवलां प्रसन्नां संस्मरेत्प्रिये ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे त्रिपुरेश्वरीध्यानं नाम
तृतीयः पटलः ॥ ३॥

त्रिपुरेश्वरी का ध्यान – चञ्चल भौरों के समान नीलवर्ण के धम्मिल (केश पाशों पर) में स्वच्छ पुष्पों से युक्त ब्रह्मरन्ध्र में चञ्चलभृङ्ग के समान मोती की रेखा से शोभित, मोती की रेखा के समान रत्नमय तिलक से सुशोभित, रत्नमय मुकुट धारण किये हुये, विशुद्ध मोती एवं रत्नों से जड़े हुये, चन्द्र रेखा से युक्त किरीटों वाली, चञ्चलभौरों के समान नीले नीले तीन नेत्रों वाली, सूर्य के समान देदीप्यमान, महान् रत्न जटित कुण्डल पहने हुए, अत्यन्त शुभ्र देदीप्यमान मोतियों का हार धारण किये हुए, मोतियों से निर्मित ग्रैवेय एवं केयूर की कान्ति से शोभित, गंङ्गा के तरङ्ग के समान, अथवा कर्पूर के समान सर्वथा शुभ्र वस्त्र धारण किये हुये श्री खण्ड वल्ली के समान चमकीले बाहुओं वाली, कङ्गणादि आभूषणो से समन्वित, मणिबन्धों से लसत्प्रभा वाली, प्रवालपल्लवाकार पाणिपल्लव से शोभित, वज्र, वैदूर्य, मुक्ता समूहों से जटित, मणि मेखला के द्वारा कान्ति संपन्न, लाल कमल के समान अरुण वर्ण

के पाद पल्लवों से शोभित, नक्षत्रमाला के समान मोतियों से निर्मित मञ्जीर से मण्डित, अपने बायें हाथ में एक में पुस्तक तथा दूसरे में अभय धारण किये हुए, हे वरानने ! अपने साधक को अभय प्रदान करती हुई, दाहिने हाथ में एक में अक्षमाला तथा दूसरे में वरमुद्रा धारण किये हुए, वशीकरण, सौभाग्य तथा वाणीप्रदान करने वाली, दूध, कुन्द तथा इन्दु के समान धवल वर्ण वाली, हे प्रिये ! प्रसन्न मुद्रा में स्थित भगवती बाला त्रिपुरा का इस प्रकार से साधक को ध्यान करना चाहिए ॥ २७–३६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'त्रिपुरेश्वरी ध्यान' नामक तृतीय पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थः पटलः

त्रिपुरेश्वरीपूजाक्रमविधानम्

श्रीदेव्युवाच —

चक्रमण्डलमाख्यातं न पूजा तत्र मण्डले ।
कथिता परमेशान श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १ ॥

श्री देवी ने कहा — हे भगवन् ! आप ने चक्रमण्डल का वर्णन तो किया किन्तु उस मण्डल में पूजा विधि नहीं बतलाई । अतः मैं चक्रमण्डल की पूजा विधि को तत्त्वतः सुनना चाहती हूँ ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच —

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पूजामण्डलमुत्तमम् ।
पीठपूजां विधायादौ रविदेवीविराजिताम् ॥ २ ॥
वामा ज्येष्ठा च रौद्री च अम्बिकेच्छा ततः परम् ।
ज्ञाना क्रिया कुब्जिका च ऋद्धिश्चैव विषघ्निका ॥ ३ ॥
दूतरी चैव आनन्दा देवि द्वादश शक्तयः ।
मुक्ताफलामलमणिस्फुरच्छत्रं शशिप्रभम् ॥ ४ ॥

ईश्वर ने कहा — हे देवि ! चक्रमण्डल की पूजा विधि को सुनें । सर्वप्रथम रवि देवी से विराजित पीठ पूजा का विधान किया गया है। १. वामा, २. ज्येष्ठा, ३. रौद्री, ४. अम्बिका, ५. इच्छा, ६. ज्ञाना, ७. क्रिया, ८. कुब्जिका, ९. ऋद्धि, १०. विषघ्निका, ११. दूतरी और १२. आनन्दा — ये उनकी द्वादश शक्तियाँ है। उन देवी का छत्र मोतियों एवं स्वच्छ स्फटिक के झालरों से मण्डित चन्द्रमा के समान आभा वाला है ॥ २—४ ॥

गङ्गातरङ्गधवलं चामरद्वयमद्रिजे ।
नवरत्नस्फुरद्दीप्ति ताम्बूलस्य करण्डकम् ॥ ५ ॥

मल्लिकामालतीजातीशतपत्रादिदामभिः ।
पूर्णं रत्नमयं भाण्डं तथाऽलङ्कारपूरिताम् ॥ ६ ॥
पेटिकां व्यजनद्वन्द्वं नवरत्नाभिभूषितम् ।
नीलकण्ठस्य पिच्छैस्तु तथोशीरविराजितम् ॥ ७ ॥
कर्पूरमृगनाभ्याढ्यं कुङ्कुमक्षोदमण्डितम् ।
चषकं स्वर्णरचितं कङ्कतीं हीरराजिताम् ॥ ८ ॥
कज्जलस्य शलाकां च करण्डं चन्द्रपूरितम्।
दधानाः परमेशानि शक्तयः पीठसंस्थिताः॥ ९ ॥

हे गिरिजा! उनके दोनो चामर गङ्गा तरङ्ग के समान धवल हैं । जिनकी ताम्बूल की पिटारी नवरत्नों से देदीप्यमान है । जिनका रत्नजटित भाण्ड मालती, मल्लिका, जाती तथा शतपत्रादि पुष्पों की माला से सुशोभित हैं । अलङ्कारों से परिपूर्ण जिनकी पेटी है । नवरत्नविभूषित जिनके दोनों व्यजन हैं। जो नीलकण्ठ (मयूर) के पिच्छ तथा उशीर चन्दन से निर्मित हैं । कर्पूर एवं कस्तूरी के गन्ध से सुवासित तथा केशर के चूर्णों से परिपूर्ण हैं । स्वर्णरचित जिनका चषक (पान पात्र) है । हीरा की जिनकी कङ्कती (कंघी) है। हे परमेशानि ! जो काजल लगाने की शलाका तथा चन्द्रमा से परिपूर्ण करण्डक (पिटारी) धारण किये हुये है । ऐसी ये सभी शक्तियाँ उस पीठ पर संस्थित है ॥ ५–९ ॥

पूर्वादिपरितः पूज्या रविसंख्या वरानने ।
संपूज्य मध्ये देवेशि प्रेतसिंहासनं यजेत् ॥ १० ॥

हे वरानने ! उस पीठ पर उपर्युक्त १२ संख्याओं वाली सभी शक्तियों की पूर्वादि क्रम से पूजा करनी चाहिए । हे देवेशि ! इस प्रकार से सभी शक्तियों की पूजा कर लेने के पश्चात् मध्य में भगवती के प्रेत सिंहासन की पूजा करनी चाहिए ॥ १० ॥

रत्नस्वर्णाकृति स्फारं दीप्तिमच्छुद्धमव्ययम् ।
पञ्चप्रेतासनं साक्षान्मोक्षदायि न संशयः ॥ ११ ॥

जो रत्नों एवं सुवर्ण से निर्मित विशाल देदीप्यमान स्वच्छ शुद्ध एवं अव्यय है, हे देवि ! भगवती का यह पञ्चप्रेतासन साक्षात् मोक्ष प्रदान करने वाला है, इसमें संशय नहीं ॥ ११ ॥

श्रीदेव्युवाच –
पञ्च प्रेतान् महेशान ब्रूहि तेषां तु कारणम् ।
निर्जीवा अविनाशस्ते नित्यरूपाः कथं विभो ॥ १२ ॥

निर्जीवे नाश एवास्ति ते कथं नित्यतां गताः ।

श्री देवी ने पुनः कहा – हे भगवन् ! हे महेशान ! उन पञ्चप्रेतों के नाम बताइये और उनके प्रेतत्व का कारण बताइये । हे प्रभो ! जो निर्जीव हैं वे विनाश रहित तथा नित्यरूप किस प्रकार हो सकते हैं ? निर्जीव तो नाशवान् होता है फिर ये नित्य किस प्रकार हुये ?॥ १२ ॥

ईश्वर उवाच –

साधु पृष्टं त्वया भद्रे पञ्चप्रेतमयं कथम् ॥ १३ ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
पञ्च प्रेता वरारोहे निश्चला एव सर्वदा ॥ १४ ॥

ईश्वर ने कहा – हे भद्रे ! आपने यह उचित प्रश्न किया कि भगवती का सिंहासन पञ्चप्रेतमय कैसे ? हे वरारोहे ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव – ये ही भगवती के आसन के पञ्च प्रेत हैं, और सर्वदा निश्चल रहते हैं ॥ १३–१४ ॥

ब्रह्मणः परमेशानि मातृत्वं सृष्टिरूपकम् ।
वामाशक्तेस्तु विज्ञेयं ब्रह्मा प्रेतो न संशयः ॥ १५ ॥

हे परमेशानि ! ब्रह्मदेव सृष्टि करते हैं अतः उनमें सृष्टि स्वरूपक मातृत्व रूप वामा शक्ति का हैं इनका नहीं। अतः निर्जीव होने के कारण ब्रह्मदेव प्रेत हैं इसमें संशय नहीं ॥ १५ ॥

शिवस्य करणं नास्ति शक्तेस्तु करणं सदा ।
ब्रह्माण्डलक्षनिर्माणं जायते शक्तितः प्रिये ॥ १६ ॥
अत एव महेशानि शिवः[1] प्रेतो न संशयः ।

शिव में कर्तृत्व शक्ति का सर्वथा अभाव है, कर्तृत्व तो 'शक्ति' में रहता है । हे प्रिये ! इस सारे लक्ष ब्रह्माण्डों का निर्माण 'शक्ति' से ही होता है। इसलिये हे महेशानि ! शिव भी प्रेत ही हैं इसमें संशय नहीं ॥ १६–१७ ॥

विष्णौ च पालनं नास्ति पालयन्ती परा शिवा ॥ १७ ॥
ज्येष्ठाभिधा महेशानि सैव विष्णुरितीरिता ।
विष्णुस्तु निश्चलो देवि वैष्णवी व्याप्तिकारिणी ॥ १८ ॥

---

१. 'ब्रह्मा' इति मुद्रितपाठः।

पालयन्ती जगत्सर्वं विश्वनाटककारिणी ।
अत एव महेशानि विष्णुः प्रेतो न संशयः ॥ १९ ॥

इसी प्रकार विष्णु में भी पालकत्व नहीं है पालकत्व शक्तिसंपन्न शिवा ही पालन करती है जिनका नाम ज्येष्ठा है, इसीलिये वही शक्ति विष्णु नाम से कही जाती है । हे देवि ! विष्णु तो सर्वथा निश्चल एवं निष्क्रिय हैं । सर्वत्र व्याप्त होकर स्थित रहने वाली शक्ति ही वैष्णवी शक्ति हैं जो सारे जगत् का पालन करती एवं विश्व का नाटक करती रहती है। इसलिये हे महेशानि ! विष्णु प्रेत हैं इसमें संशय नहीं ॥ १७–१९ ॥

रुद्रस्तु परमं तत्त्वं शिवो निश्चल एव हि ।
ग्रसन्ती रुद्रशक्तिस्तु तमोरूपा वरानने ॥ २० ॥
गुणत्रयं शिवे नास्ति गुणातीतः परमेश्वरः ।

रुद्र परमतत्त्व हैं । शिव निश्चल हैं । हे वरानने ! तमोरूपा रुद्रशक्ति ही सारे जगत् का संहार करती है । शिव में तीनो गुण सर्वथा नहीं रहते हैं, वे गुणातीत हैं, परमेश्वर हैं ॥ १९–२० ॥

निर्गुणस्य कथं ग्रासो निश्चलस्य वरानने ॥ २१ ॥
ग्रसन्ती रुद्रशक्तिस्तु त्रैलोक्यं सचराचरम् ।

हे वरानने ! जो निर्गुण है, वह संसार का संहार भला किस प्रकार कर सकते हैं । रुद्रशक्ति ही चराचर सहित समस्त त्रिलोकी का संहार करती रहती हैं ॥ २१ ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च गुणातीताः सदा प्रिये ॥ २२ ॥
सगुणाः परमेशानि सृष्टिस्थितिलयात्मकाः ।

हे प्रिये! ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ये सभी गुणों से अतीत है। हे परमेशानि ! सगुणशक्ति ही सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय करने वाली है ॥ २२ ॥

ईश्वरोऽपि वरारोहे महाप्रेतः सदाऽनघे ।
शिवे निश्चलता कस्मादीश्वरत्वं भवेत्प्रिये ॥ २३ ॥

हे सदाशिवे ! हे वरारोहे ! हे अनघे ! ईश्वर भी महाप्रेत ही हैं, क्योंकि उनमें भी क्रिया शक्ति का अभाव होने से निश्चलता विद्यमान है, अतः हे प्रिये ! उनमें ईश्वरत्व किस प्रकार रह सकता है ॥ २३ ॥

यः कर्ता च स्वयं हर्ता स ईशो नान्यथा भवेत् ।
कर्तृहर्तृत्वयुगलं निश्चले न हि सुन्दरि ॥ २४ ॥

क्योंकि जो स्वयं करने वाला तथा स्वयं संहार करने वाला होता है वही ईश्वर कहा जा सकता है अन्यथा नहीं, हे सुन्दरि ! कर्तृत्व एवं हर्तृत्व ये दोनों ईश्वर में बन नहीं सकते ॥ २४ ॥

ईश्वरत्वं शिवायां तु न शिवे परमेश्वरि ।
अत एव महाप्रेत ईश्वरो नान्यथा भवेत् ॥ २५ ॥

इसलिये हे परमेश्वरि ! ईश्वरत्व (सामर्थ्य) शिवा में बन सकता है शिव में नहीं। इसलिये ईश्वर भी महाप्रेत ही हैं, इसलिये वे इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं ॥ २५ ॥

सदाशिवो महाप्रेतः केवलं निश्चलः प्रिये ।
अव्यक्तः परमानन्दो ब्रह्मानन्दमयी शिवा ॥ २६ ॥

हे प्रिये ! केवल निश्चल निष्क्रिय होने के कारण सदाशिव भी महाप्रेत ही हैं। वे अव्यक्त हैं परमानन्द हैं और शिवा ही ब्रह्मानन्दमयी हैं ॥ २६ ॥

शक्त्या विना शिवे देवि वासना न प्रवर्तते ।
अत एव महेशानि महाप्रेतासनं यजेत् ॥ २७ ॥

हे देवि ! शक्ति के बिना शिव में वासना नहीं आती, इसलिये हे महेशानि! महाप्रेतासन की पूजा करनी चाहिए ॥ २७ ॥

चक्रमध्ये स्थितं बीजं सदाशिवमहापदम् ।
प्रेतपद्मासनं ङेन्तं हृन्मनुर्मनुरीरितः ॥ २८ ॥
महासनस्य मन्त्रोऽयं कलार्णः परमेश्वरि ।
सिंहासनं समभ्यर्च्य ततश्चाऽऽवाहनं कुरु ॥ २९ ॥

चक्रमध्य में स्थित बीज ह्सौः (द्र० ३.१६) सदाशिव महापदप्रेतासनाय नमः। हे परमेश्वरि ! यह उस महासन का मन्त्र हैं, जो १६ अक्षरों से बनता है। इस मन्त्र से साधक को सिंहासन की अर्चना करके तदनन्तर आवाहन करना चाहिए ॥ २८–२९ ॥

वहन्नाडीक्रमेणैव मूलादिब्रह्मरन्ध्रगाम् ।
संवित्कलां परेशानि सर्वज्ञां कुलसुन्दरीम् ॥ ३० ॥
आवाह्य चक्रमध्ये तु तर्पयेत्कुलसुन्दरीम् ।
आवाहनादिमुद्रास्तु कथयामि तवानघे[1] ॥ ३१ ॥

---

१. 'तथानघे' इति पाठः मुद्रितः।

मुद्रा निरूपण—हे परमेशानि ! नाडीक्रम में प्रवाहित होती हुई मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक जाने वाली सर्वज्ञा कुलसुन्दरी संवित्कला को चक्र के मध्य में आवाहन करके मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए और तदनन्तर उन कुलसुन्दरी संवित्कला का तर्पण करना चाहिए। हे अनघे ! अब मैं आपसे आवाहनादि की मुद्रा कहता हूँ ।। ३०—३१ ।।

ऊर्ध्वाञ्जलिमधः कुर्यादियमावाहनी भवेत् ।
इयं तु विपरीता स्यात्तदा वै स्थापनी मता ।। ३२ ।।

ऊपर की ओर रहने वाली अञ्जलि को नीचे कर ले तो **आवाहनी मुद्रा** बन जाती है जब इसे विपरीत बना ले तो स्थापनी मुद्रा बन जाती है ।। ३२।।

मिलितं मुष्टियुगलं संनिधापनरूपिणी ।
अन्तरङ्गुष्ठमुष्टिभ्यां संनिरोधनरूपिणी ।। ३३ ।।

दोनों हाथ की मुट्ठियों को एक में मिला देने से **सन्निधापनी मुद्रा** बन जाती है, दोनों मुट्ठियों के भीतर अङ्गुष्ठों को एक में मिला देने से **सन्निरोधन रूपिणी मुद्रा** बन जाता है ।। ३३ ।।

एतस्या एव मुद्रायास्तर्जन्यौ सरले यदा ।
सव्यापसव्यभ्रमणान्मुद्रेयमवगुण्ठनी ।। ३४ ।।

जब इसी मुद्रा की दोनों तर्जनी अङ्गुलियाँ सीधी खड़ी कर बायें से दाहिने घुमाई जायें तो यह **अवगुण्ठनी मुद्रा** हो जाती है ।। ३४ ।।

अङ्गमन्त्रैर्न्यसेद्देवि देव्यङ्गे साधकोत्तमः ।
संकलीकरणं नाम मुद्रेयं व्याप्तिकारिणी ।। ३५ ।।

हे देवि! उत्तम साधक जब अङ्ग के मन्त्रों का देवी के अङ्गों में न्यास कर लेता है, तो व्याप्ति प्राप्त करने वाली यह मुद्रा **संकलीकरण** नाम वाली कही जाती है ।। ३५ ।।

करावेकत्र संयोज्यावङ्गुष्ठौ बन्धयेत्प्रिये ।
परमीकरणं नाम मुद्रेयं तु ततः परम् ।। ३६ ।।

हे प्रिये ! इसके बाद दोनों हाथों को एक में मिला कर दोनों अंगूठो को परस्पर बाँध लेने से **परमीकरण** नामक मुद्रा बन जाती है ।। ३६ ।।

परिवर्त्य करौ पश्चात्तर्जनीमध्यमायुगम् ।
कनिष्ठानामिकायुग्मं परस्परयुतं कुरु ।। ३७ ।।

धेनुमुद्रेवमाख्याता अमृतीकरणं भवेत् ।
एता साधारणा मुद्रा दर्शयित्वा ततः परम् ।। ३८ ।।
वरदाभयमुद्रे च वरदाभयवत्प्रिये ।
पुस्तकवद्वामकरं कुर्यात्समतलं प्रिये ।। ३९ ।।
पुस्तकं नाम मुद्रेयं वाग्विलासं प्रयच्छति ।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगे तु दक्षहस्ते तु पार्वति ।। ४० ।।
अक्षमालेति मुद्रेयं ज्ञानमुद्रा च वै भवेत् ।

दोनों हाथों को उलट कर तर्जनी मध्यमा अङ्गुलियों को तथा कनिष्ठा अनामिका अङ्गुलियों को परस्पर मिला देवें तो इसे **धेनुमुद्रा** कहा जाता है इससे **अमृतीकरण** किया जाता है । इन साधारण मुद्राओं को दिखा देने के पश्चात् वरद एवं अभय देने के समान **वरद और अभय मुद्रा** प्रदर्शित करनी चाहिये। हे प्रिये! जब बायें हाथ को पुस्तक के समान समतल बनावे तो **पुस्तक नाम की मुद्रा** बन जाती है जो वाग्विलास देने वाली है । हे पार्वति! जब दाहिने हाथ की तर्जनी एवं अंगूठे को एक में मिला देवे तो **अक्षमाला मुद्रा** बन जाती है इसे **ज्ञान मुद्रा** भी कहते हैं ।। ३७–४१ ।।

मुष्टिं बध्वा दक्षकरे तर्जन्यङ्कुशरूपिणी ।। ४१ ।।
अङ्कुशाख्या महामुद्रा त्रैलोक्याकर्षिणी भवेत् ।

जब दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँध कर तर्जनी को अङ्कुश के समान मोड़ लेवे तो यह **अङ्कुश मुद्रा** बन जाती है जो त्रैलोक्य का भी आकर्षण कर लेती हैं ।। ४१–४२ ।।

तर्जनीयुगलं देवि वामांसे शृङ्खलाकृति ।। ४२ ।।
पाशमुद्रा समाख्याता त्रैलोक्याकर्षणक्षमा ।

हे देवि ! जब दोनों हाथ की तर्जनी अङ्गुलियों को सीकड़ के आकार में एक दूसरे को जोड़कर बायें कन्धे पर स्थापित कर लेवे तो **पाशमुद्रा** बन जाती है जो त्रिलोकी मात्र का आकर्षण करने में समर्थ हैं ।। ४२–४३ ।।

यथा हस्तगतं चापं तथा हस्तं कुरु प्रिये ।। ४३ ।।
चापमुद्रेयमाख्याता वामहस्ते व्यवस्थिता ।

हे प्रिये ! जिस प्रकार हाथ में धनुष धारण किया जाता हैं । ठीक उसी प्रकार हाथ को बना लेवे तो **चापमुद्रा** बन जाती है, यह बायें हाथ में धारण की जाती हैं ।। ४३–४४ ।।

यथा हस्तगतो बाणस्तथा हस्तं कुरु प्रिये ॥ ४४ ॥
बाणमुद्रेयमाख्याता रिपुवर्गनिकृन्तनी ।

हे प्रिये ! जिस प्रकार हाथ में बाण रखा जाता है उसी प्रकार हाथ की आकृति बना लेवें तो **बाणमुद्रा** बन जाती है जो शत्रुवर्ग का विनाश कर देने वाली होती है ॥ ४४–४५ ॥

वामहस्ततलं देवि कपालाकृति कारयेत् ॥ ४५ ॥
कपालमुद्रा देवेशि देव्यानन्दकरी सदा ।
हस्ताभ्यां कमलाकारो यदा तत्कमलं भवेत् ॥ ४६ ॥

हे देवि ! बायें हाथ के तलवे को जब कपाल की आकृति बना ली जाती है, तो **कपाल मुद्रा** बन जाती है। हे देवेशि! इस मुद्रा से देवी को सदा आनन्द की प्राप्ति होती है । जब हाथ को कमल के आकार में बना लिया जाता है, तो **कमल मुद्रा** बन जाती हैं ॥ ४५–४६ ॥

एषा कमलमुद्रा च लक्ष्मीवृद्धिकरी मता ।
इति चाऽऽयुधमुद्रास्तु दर्शयित्वा वरानने ॥ ४७ ॥
गन्धपुष्पाक्षतादीनि दद्यात्स्त्रीसहितः सदा ।
उपचारैरलंकारैस्तोषयेत् परमेश्वरीम् ॥ ४८ ॥

यह कमलमुद्रा लक्ष्मी बढ़ाने वाली कही गई है। हे वरानने! इतनी आयुध मुद्रा भगवती को प्रदर्शित कर यजमान अपनी स्त्री के साथ सदा भगवती को गन्धपुष्प अक्षतादि उपचारों से तथा अलंकारों से (भगवती बाला त्रिपुरा को) संतुष्ट करे ॥ ४७–४८ ॥

लयाङ्गं कल्पयेद्देहे सम्यक्सन्तर्पयेच्छिवाम् ।
परिवारार्चनं पश्चादादावङ्गाकृतिं प्रिये ॥ ४९ ॥

अपने देह में भगवती के लय की कल्पना करे। शिवा भगवती त्रिपुरा का भली प्रकार संतर्पण करे। हे प्रिये! पहले अङ्गाकृति बना कर पश्चात् परिवारार्चन करे ॥ ४९ ॥

गुरुपूजानन्तरं तु प्रथमं गुरुमर्चयेत् ।
प्राग्योनिमध्ययोन्योस्तु मध्ये निजगुरुं यजेत् ॥ ५० ॥

(दिव्यौघादि) गुरुओं की पूजा के अनन्तर अपने प्रथम गुरु की अर्चना करे। पूर्व योनि त्रिकोण और मध्ययोनि के मध्य में अपने गुरु की अर्चना करनी चाहिए ॥ ५० ॥

विमर्श—द्रष्टव्य मन्त्रमहोदधि, पृ० २२६, श्लो ७३—७४ ।

विशेषमुद्रां देवेशि दर्शयेत्सर्वसिद्धये ।
परिवर्त्य करौ सम्यक्तर्जनीवाहनी समे ॥ ५१ ॥
मध्यमे कुरु तन्मध्ये योजयेत्तदनन्तरम् ।
अन्योन्यामिके देवि कनिष्ठे तु यथास्थिते ॥ ५२ ॥
अङ्गुष्ठाभ्यां योजिताभ्यां योन्याकारं तु कल्पयेत् ।
योनिमुद्रेयमाख्याता परा त्रैलोक्यमातृका ॥ ५३ ॥

हे देवेशि ! सभी कार्यों की सिद्धि के लिए उन्हें विशेष मुद्रा प्रदर्शित करे । हाथ को उलट कर आवाहनी तर्जनी को मध्यमा अङ्गुलियों पर स्थापित करे । फिर अनामिका अङ्गुलियों को परस्पर जोड़ देवे और कनिष्ठा को यथास्थित रहने दे । हे देवि ! दोनों अंगूठों को एक ही में जोड़कर योनि के आकार में बना लेने पर यह **योनि मुद्रा** कही जाती हैं । जो समस्त त्रिलोकी की माता है ॥ ५१—५३ ॥

इयमेव हृदि क्षिप्ता त्रैलोक्यक्षोभिणी भवेत् ।
त्रैलोक्यद्राविणी नाम मुखस्था परमेश्वरी ॥ ५४ ॥

इसी को जब हृदय स्थान पर रखा जाता है तब (१) **त्रैलोक्यक्षोभिणी मुद्रा** बन जाती है और इसी को मुख पर रखने से (२) **त्रैलोक्यद्राविणी** नाम की मुद्रा बन जाती है ॥ ५४ ॥

भ्रूमध्यस्था महादेवि त्रैलोक्याकर्षिणी भवेत् ।
ललाटस्था महादेवि त्रैलोक्यवशकारिणी ॥ ५५ ॥

हे महादेवि ! भ्रूमध्य में स्थापित करने पर (३) **त्रैलोक्याकर्षिणी मुद्रा** बन जाती है, और हे महादेवि ! ललाट पर स्थापित करने से (४) **त्रैलोक्य—वशकारिणी मुद्रा** बन जाती है ॥ ५५ ॥

ब्रह्मरन्ध्रस्थिता देवि त्रैलोक्योन्मादकारिणी ।
पञ्चमुद्रामयीं मुद्रां योनिमुद्रां च दर्शयेत् ॥ ५६ ॥

ब्रह्मरन्ध्र पर स्थापित करने से (५) **त्रैलोक्योन्मादकारिणी मुद्रा** बन जाती हैं। इस प्रकार **पञ्चमुद्रामयीयोनिमुद्रा** भगवती को प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ ५६ ॥

ततः षडङ्गावरणं परितः पीठमद्रिजे ।
अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्षु च पूजयेत् ॥ ५७ ॥

हे अद्रिजे ! तदनन्तर पीठ के चारों ओर अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य एवं वायव्य कोणो में तथा चारो दिशाओं में आवरण की पूजा करे ।। ५७ ।।

अग्रकोणे रतिं यष्ट्वा प्रीतिमुत्तरकोणके।
मनोभवां दक्षकोणे ततो बाणान् समर्चयेत् ।। ५८ ।।

अग्निकोण में रति की पूजा करे, ईशानकोण में प्रीति की नैर्ऋत्य कोण में मनोभवा की पूजा कर काम बाणों की अर्चना करे ।। ५८ ।।

उत्तरस्यां द्वयं देवि दक्षिणस्यां दिशि द्वयम् ।
अग्रे चैकं क्रमेणैव बाणान् पञ्चाद्रिजे यजेत् ।। ५९ ।।

हे देवि ! उत्तर दिशा में दो बाणों की, दक्षिण दिशा में दो बाणों की और आगे एक बाण की हे अद्रिजे ! क्रमशः पञ्च बाणों की पूजा करे ।। ५९ ।।

पञ्च कामांस्तथा देवि बाणवत्परिपूजयेत् ।
अनङ्गकुसुमां देवि तथाऽनङ्गादिमेखलाम् ।। ६० ।।

अनङ्गमदनां पश्चादनङ्गमदनातुराम्।
सुभगां पञ्चमीं देवि भगां च भगसर्पिणीम् ।। ६१ ।।

भगमालां महादेवि पूर्वादिक्रमतो यजेत् ।
अष्टयोनिषु देवेशि ततो ब्राह्म्यादिका यजेत् ।। ६२ ।।

हे देवि! इसी प्रकार बाण की तरह पञ्च कामों की भी पूजा करे । फिर हे देवि ! पूर्वादि क्रम से (द्र० म० म० ८,२५–२७) १. अनङ्गकुसुमा, २. अनङ्गमेखला, ३. अनङ्गमदना, ४. अनङ्गमदनातुरा, ५. सुभगा, ६. भगा, ७. भगसर्पिणी तथा ८. भगमाला की पूजा करे । हे महादेवि ! हे देवेशि ! अष्ट योनियों में ब्राह्म्यादिकों की पूजा करे ।। ६०–६२ ।।

युग्मयुग्मप्रभेदेन वसुपत्रे वरानने ।
असिताङ्गं तथा ब्राह्मीं रुरुं माहेश्वरीं प्रिये ।। ६३ ।।

चण्डं कौमारिकां चैव क्रोधं वैष्णवदेवताम् ।
उन्मत्तं चैव वाराहीं माहेन्द्रीं च कपालिनम् ।। ६४ ।।

भीषणं चैव चामुडां संहारं चाष्टमं यजेत् ।
महालक्ष्मीं महादेवि युग्मानि परिपूजयेत् ।। ६५ ।।

इसके उपरान्त हे वरानने ! हे प्रिये ! अष्टपत्रों पर दो दो के क्रम से पूर्वादि दिशाओं में इस प्रकार से पूजा करें – १. असिताङ्ग ब्राह्मी, २. रुद्र माहेश्वरी,

३. चण्डकौमारिका, ४. क्रोध और वैष्णवी, ५. उन्मत्त वाराही, ६. कपाली और माहेन्द्री, ७. भीषण चामुण्डा, ८. संहार और महालक्ष्मी । इस प्रकार से हे महादेवि ! दो दो की पूजा करे ॥ ६३–६५ ॥

पश्चिमादिक्रमेणैव ततः पीठाष्टकं यजेत् ।
कामरूपं च मलयं ततः कौलगिरिं तथा ॥ ६६ ॥
कुलान्तकं च चौहारं जालन्धरमतः परम् ।
उड्डीयानं द्देवकूटं पीठाष्टकमिदं क्रमात् ॥ ६७ ॥

इसके बाद पश्चिमादि क्रम से भगवती के आठ पीठों की पूजा करें । १. कामरूप, २. मलय, ३. कौलागिरि, ४. कुलान्तक, ५. चौहार, ६. जालन्धर, ७. उड्डीयान और ८. हेमकूट ये आठ पीठों के नाम हैं ॥ ६६–६७ ॥

ग्रन्थिस्थानेषु संपूज्यं पश्चिमादिक्रमेण तु ।
त्रिशूलं परितो देवि मातृकावृत्तमण्डले ॥ ६८ ॥

हे देवि ! इसके बाद ग्रन्थि स्थानों में पश्चिमादि क्रम से मातृकावृत्तमण्डल में चारों ओर त्रिशूल की पूजा करे ॥ ६८ ॥

भैरवा दश संपूज्याः पश्चिमादिक्रमात् प्रिये ।
हेतुकं चैव वेतालं तन्मध्ये त्रिपुरान्तकम् ॥ ६९ ॥
अग्निजिह्वं च कालान्तं तथा चैव कपालिनम् ।
एकपादं भीमरूपं मलयं हाटकेश्वरम् ॥ ७० ॥
दशाभ्यर्च्य महादेवि भैरवान् मातृमण्डले ।
चतुरस्रे महेशानि लोकपालाष्टकं यजेत् ॥ ७१ ॥

हे प्रिये ! इसके बाद पश्चिमादि क्रम से दश भैरवों का पूजन करना चाहिए । १. हेतुक, २. वैताल, ३. त्रिपुरान्तक, ४. अग्निजिह्व, ५. कालान्तक, ६. कपाली, ७. एकपाद, ८. भूमिरूप, ९. मलय, और १०. हाटकेश्वर ये उन भैरवों के नाम हैं । इस प्रकार हे महादेवि ! मातृमण्डल में दश भैरवों की पूजा कर हे महेशानि ! चतुरस्र में ८ लोकपालों की पूजा करे ॥ ६९–७१ ॥

इन्द्रमग्निं यमं देवि राक्षसं वरुणं तथा ।
वायुं कुबेरमीशानं पूर्वादिक्रमतो यजेत् ॥ ७२ ॥

हे देवि ! पूर्व के क्रम में इन्द्र अग्नि यम राक्षस वरुण वायु कुबेर ईशान इन अष्ट लोकपालों का पूजन करे ॥ ७२ ॥

ब्रह्माणं चैव विष्णुं च ऊर्ध्वाधः क्रमतो यजेत् ।
वांकारं बीजमुच्चार्य बटुकाय नमो लिखेत् ॥ ७३ ॥

ऊपर ब्रह्मदेव का तथा नीचे विष्णु का क्रमशः पूजन करे फिर 'वाँ वटुकाय नमः' लिखे ॥ ७३ ॥

यांकारं बीजमुच्चार्य योगिनीभ्यो नमस्तथा ।
क्षांकारं बीजमुच्चार्य क्षेत्रपालाय वै नमः ॥ ७४ ॥

गांकारं बीजमुच्चार्य ततो गणपतिं लिखेत् ।
ङेन्तं नमः पश्चिमादिदिक्षु पूज्याः क्रमेण तु ॥ ७५ ॥

'यां योगिनीभ्यो नमः, क्षां क्षेत्रपालाय नमः और गां गणपतये नमः' लिखकर इनकी पूजा पश्चिमादि क्रम से करे ॥ ७४–७५॥

चतुरस्रे तु संपूज्या विदिक्षु परमेश्वरि ।
वायव्यादिक्रमेणैव वक्ष्यमाणा महेश्वरि ॥ ७६ ॥

वसवो द्वादशाऽऽदित्या रुद्राश्चैव ततः प्रिये ।
सर्वे भूता वरारोहे क्रमेण परिपूजयेत् ॥ ७७ ॥

हे परमेश्वरि ! हे महेश्वरि ! पुनः चतुरस्र में वायव्यादि कोणों के क्रम से वक्ष्यमाण देवों का क्रमशः पूजन करे, अष्टवसुभ्यो नमः वायव्ये, ॐ द्वादशादित्येभ्यो नमः ऐशान्ये, ॐ एकादशरुद्रेभ्यो नमः आग्नेये, ॐ सर्वभूतेभ्यो नमः नैर्ऋत्ये। इस प्रकार अष्टा वसु, द्वादशादित्य, रुद्र, तदनन्तर हे प्रिये ! हे वरारोहे ! सभी भूतगण इनकी पूजा करे ॥ ७६–७७ ॥

पूजां विधाय देवेशीमुपचारैः प्रपूजयेत् ।
उत्तराभिमुखो भूत्वा यदा चक्रं प्रपूजयेत् ॥ ७८ ॥

उत्तराशा तदा देवि पूर्वाशैव व्यवस्थिता ।
पश्चिमाशामुखो देवि यदा चक्रं प्रपूजयेत् ॥ ७९ ॥

पश्चिमाशा तदा देवि पूर्वाशैव व्यवस्थिता ।
दक्षिणाशामुखो देवि तदा चक्रं प्रपूजयेत् ॥ ८० ॥

दक्षिणाशा ततो देवि पूर्वाशैव न संशयः ॥ ८१ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे त्रिपुरेश्वरीपूजाक्रमविधिर्नाम चतुर्थः पटलः ॥ ४ ॥

हे देवेशि! इस प्रकार आवरण देवताओं की पूजा कर सभी उपचारों से भगवती का पूजन करे। जब उत्तराभिमुख हो श्री चक्र का पूजन करे तब हे देवि ! उत्तर दिशा को ही पूर्व दिशा समझे । हे देवि ! जब पश्चिमाभिमुख श्री चक्र का पूजन करे तब पश्चिम दिशा को ही पूर्व दिशा समझे। हे देवि ! जब दक्षिणाभिमुख श्री चक्र का पूजन करे तब दक्षिण दिशा को ही पूर्व दिशा समझे, इसमें संदेह न करे ॥ ७८–८१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'त्रिपुरेश्वरी पूजा क्रमविधि' नामक चतुर्थ पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ४ ॥

❋

अथ पञ्चमः पटलः

त्रिपुरेश्वरीयजनविधानम्

श्रीदेव्युवाच —

कुमारीक्रम आख्यातो मुद्रासनसमन्वितः ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि बलिदानादिकं विभो ॥ १ ॥

श्री देवी ने कहा — हे प्रभो ! आपने मुद्रासन से संयुक्त कुमारी पूजा क्रम का विधान बतलाया । अब हे विभो ! अब मैं उनके बलिदानादि की विधि सुनना चाहती हूँ ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच —

धूपं विस्तारयेत्सम्यङ्मूलमन्त्रं हृदि स्मरन् ।
वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यो धूप उत्तमः ॥ २ ॥
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।
अनेन मनुना देवि देव्यै धूपं निवेदयेत् ॥ ३ ॥

ईश्वर ने कहा — हे देवि ! मूल मन्त्र का हृदय में स्मरण करते हुये वनस्पति रसोत्पन्नो—धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्' इस मन्त्र से भगवती को धूप प्रदान करना चाहिए ॥ २—३ ॥

सुप्रकाशो महादीपः सर्वत्र तिमिरापहः ।
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ ४ ॥
तथैव दीपमन्त्रोऽयं विद्यान्ते परमेश्वरि ।
आरात्रिकं ततः कुर्यात्सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ ५ ॥

फिर 'सुप्रकाशो महादीपः सर्वत्र तिमिरापहः । सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् विद्यायै नमः' साधक इस मन्त्र से देवि को दीप समर्पित करे। इसके बाद हे परमेश्वरी ! समस्त कामनाओं की पूर्त्ति के लिए साधक को देवों की आरती करनी चाहिए ॥ ४—५ ॥

सौवर्णे राजते कांस्ये स्थालके परमेश्वरि ।
कुङ्कुमेन लिखेत्पद्मं वसुपत्रं मनोहरम् ॥ ६ ॥

हे परमेश्वरि ! सुवर्ण, चाँदी, अथवा काँस निर्मित स्थाली में कुङ्कुम के द्वारा अत्यन्त सुन्दर अष्टदल कमल का निर्माण करे ॥ ६ ॥

चन्द्ररूपं चरुं कृत्वा तन्मध्ये मस्तके शिवे ।
दीपमेकं विनिक्षिप्य वसुपत्रेऽष्ट दीपकान् ॥ ७ ॥

हे शिवे ! उसके मध्य में सबसे ऊपर चरु द्वारा चन्द्रमा निर्माण कर उस पर एक दीपक रखे तथा अष्टदल कमल पर आठ दीपक स्थापित करे ॥ ७ ॥

यवगोधूममुद्गादिरचिताञ्च शर्करायुतान् ।
चषकान्वितमुद्राभिः शोभितान्घृतपूरितान् ॥ ८ ॥

उन दीपकों को शर्करायुक्त यव, गेहूँ एवं मूँग के द्वारा घृत में पकाये गये चवक मुद्राओं से युक्त शोभित पदार्थों को रखे ॥ ८ ॥

अभिमन्त्र्य महेशानि रत्नेश्वर्या ततः परम् ।
श्रीबीजं च पराबीजं संलिख्य वरवर्णिनि ॥ ९ ॥
गसौ च मपनाः पश्चादिन्द्रस्थाः क्रमतः प्रिये ।
वामकर्णसमायुक्ता बिन्दुनादविभूषिताः ॥ १० ॥

हे महेशानि ! उन्हें रत्नेश्वरी के बीजों से अभिमन्त्रित करे । हे वरवर्णिनि ! श्री बीज (श्रीं ह्रीं श्रीं ग्लूं स्लूं, म्लूं प्लूं न्लूँ) फिर पराबीज (ह्रीं) लिख कर ग् स् म् प न जो इन्द्र वर्ण (स्) से मिले हों तथा वाम कर्ण (ऊ) से संयुक्त हों और नान्द एवं बिन्दु से विभूषित हों, लिखे ॥ ९–१० ॥

बीजपञ्चकमेतत्तु पञ्चरत्नानि सुन्दरि ।
पूर्वबीजे विलोमेन रत्नेशीयं नवाक्षरी ॥ ११ ॥

हे सुन्दरि ! ये ही पाँच बीज पञ्चरत्न कहे जाते है। पूर्व के दो बीजों को विलोम करने से यह रत्नेशी नवाक्षरी बन जाती हैं ॥ ११ ॥

विमर्श—*रत्नेशी नवाक्षरी मन्त्र इस प्रकार होगा*—श्रीं ह्रीं श्रीं ग्लूँ स्लूँ म्लूँ प्लूँ न्लूँ (९)।

मूलमन्त्रेण चाभ्यर्च्य ततश्चाऽऽरात्रिकं चरेत् ।
स्थालकं तु समुद्धृत्य मस्तकान्तं पुनः पुनः ॥ १२ ॥
नववारं महेशानि ततो नीराजनं चरेत् ।

समस्तचक्रचक्रेशीयुते देवि नवात्मिके ॥ १३ ॥
आरार्तिकमिदं देवि गृहाण मम सिद्धये ।
नीराजनमनुर्देवि विद्यान्ते प्रकटीकृतः ॥ १४ ॥

हे महेशानि ! इसके बाद मूल मन्त्र से आरती की अर्चना कर थाली को ऊपर उठा कर मस्तकान्त बारम्बार नव बार भगवती की आरती करे । हे देवि ! 'समस्त चक्र चक्रेशीयुते देवि नवात्मिके। आरार्तिकमिदं देवि गृहाण मम सिद्धये विद्यायै नमः' यह नीराजँन का मन्त्र है ॥ १२–१४ ॥

आरार्तिके महेशानि चक्रमुद्रा व्यवस्थिता ।
वामहस्ताङ्गुष्ठगर्भे कनिष्ठां दक्षिणां नयेत् ॥ १५ ॥
कनिष्ठागर्भगे वामे दक्षाङ्गुष्ठं विनिक्षिपेत् ।
अन्योन्यकरयोर्देवि चक्रमुद्रेयमीरिता ॥ १६ ॥

हे महेशानि ! आरती में चक्रमुद्रा बनानी चाहिये। बायें हाथ के अङ्गुष्ठ के मध्य में दाहिने हाथ की कनिष्ठा रखे तथा बायें हाथ के कनिष्ठा के मध्य में दाहिने हाथ का अंगूठा सन्निविष्ट करे, इस प्रकार दोनों हाथों को मिलाने से **चक्र मुद्रा** बनती हैं ॥ १५–१६ ॥

आरार्तिकविधिं कृत्वा नैवेद्यं तु निवेदयेत् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशश्चन्द्ररश्मिसमप्रभः ॥ १७ ॥
लसत्तण्डुलजो देवि चारुमृद्वोदनः प्रिये ।
हिङ्गुजीरमरीचाढ्यैरार्द्रकै रुचिरः प्रिये ॥ १८ ॥
वटकः कुङ्कुमाकारः पायसं हेमसंनिभम् ।
दुग्धगम्भीरसुभगं शर्करापूरपूरितम् ॥ १९ ॥
कपिलाघृतसंयुक्तं भूर्जत्वङ्मण्डकाः प्रिये ।
शर्करालोलिता देवि सूपं मुद्गोद्भवं तथा ॥ २० ॥
नानाविधानि पेयानि व्यञ्जनानि बहूनि च ।
इत्याद्यन्नरसोपेतं नैवेद्यं कल्पयेद्बुधः ॥ २१ ॥

उक्त मन्त्र द्वारा आरती कार्य संपादन कर भगवती को इस प्रकार नैवेद्य समर्पित करे । हे प्रिये ! साधक नैवेद्य के लिए शुद्धस्फटिक के समान, चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल, उत्तमोत्तम चावल से बने हुये अत्यन्त सुन्दर कोमल भात का निर्माण करे । हींग, जीरा, मरीच, एवं अदरक से युक्त सुन्दर कुङ्कुमाकार वटक का निर्माण करे । सुवर्णसदृश दूध की अधिकता से सुस्वादु शर्करा से परिपूर्ण पायस का निर्माण करे । उसमें कपिला गाय का घृत भी

होना चाहिए । शर्करासंयुक्त भूर्जत्वक् का माँड़ तथा मूँग की दाल, इसी प्रकार नानाविध पेय तथा अनेक प्रकार के व्यञ्जन इत्यादि जो नाना अन्नों के रसों से युक्त हों नैवेद्य का निर्माण करे ।। १७–२१ ।।

मनःकल्पितरूपं वा त्रिपुरायै निवेदयेत् ।
हेमापात्रगतं दिव्यं परमान्नं सुसंस्कृतम् ।। २२ ।।
पञ्चधा षड्रसोपेतं गृहाण परमेश्वरि ।
विद्यान्ते परमेशानि नैवेद्यमनुरीरितः ।। २३ ।।

अथवा मन के द्वारा कल्पित–साधक को सभी प्रकार का अन्न त्रिपुरा भगवती को समर्पित करना चाहिए–'हेमापात्रगतं दिव्यं परमान्नं सुसंस्कृतम्। पञ्चधा षड्रसोपेतं गृहाण परमेश्वरि विद्यायै नमः'। यह नैवेद्य का मन्त्र कहा गया है ।। २२–२३ ।।

परिषिंच्य ततो देवि नित्यहोमं समाचरेत् ।
मूलमन्त्रेण देवेशि हुनेत्पञ्चाऽऽहुतिः क्रमात् ।। २४ ।।
प्राणापानौ तथा व्यान उदानञ्च समानकः ।
एतत्स्वरूपं जानीयादाहुतीनां च पञ्चकम् ।। २५ ।।
षडाहुतीः षडङ्गेन नित्यहोमोऽयमीरितः ।
नित्यहोमविधिं कृत्वा बलिदानविधिं चरेत् ।। २६ ।।

देवी के आगे अन्न रख कर जल से सेचन कर साधक को नित्य होम इस प्रकार करना चाहिए । मूलमन्त्र पढ़ कर 'प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा' इन मन्त्रों से क्रमशः पञ्च आहुति प्रदान करे । फिर षडङ्ग के द्वारा ६ आहुती प्रदान करे । इस प्रकार नित्य होम का विधान कहा गया । नित्य होम कर लेने के पश्चात् बलिदान का अनुष्ठान करना चाहिए ।। २४–२६ ।।

ईशाने च तथाऽऽग्नेये नैर्ऋत्ये च तथा प्रिये ।
वायव्ये क्रमतो देवि मण्डलानां चतुष्टयम् ।। २७ ।।
श्रीचक्रमभितो देवि त्रिकोणं व्योम चाऽऽलिखेत् ।
पूर्वमन्त्रैः समभ्यर्च्य बटुकादिभिरद्रिजे ।। २८ ।।
एह्येहि देवि पुत्रान्ते वटुकान्तेऽथ नाथ च ।
कपिलान्ते जटाभार भासुरान्ते त्रिनेत्र च ।। २९ ।।
ज्वालामुख च सर्वान्ते विघ्नान्नाशय नाशय ।
सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण द्विधापदम् ।। ३० ।।

वह्निजायान्वितो मन्त्रो बटुकस्य उदाहृतः ।
अनेन विधिना देवि बटुकस्य बलिं प्रिये ॥ ३१ ॥

हे प्रिये ! ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य तथा वायव्य कोणों में क्रमशः चार मण्डल निर्माण करे–हे देवि ! श्री चक्र के चारों ओर त्रिकोण में व्योम (ह) लिखे। फिर हे पार्वति! पहले कहे गये मन्त्र के अनुसार वां वटुकाय नमः, (द्र० ४.७३) – इस मन्त्र से वटुक का पूजन कर 'एह्येहि देविपुत्र वटुकनाथ कपिल जटाभारभासुरत्रिनेत्रज्वालामुख सर्वविघ्नान् नाशय नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' यह वटुक के बलिदान का मन्त्र है । हे देवि ! इस प्रकार वटुक को वक्ष्यमाण दो श्लोकों को कहकर बलिदान भी करे ॥ २७–३१ ॥

ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि वा
गगनतले भूतले निष्कले वा ।
पाताले वाऽनले वा सलिल–
पवनयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा ॥ ३२ ॥
क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च
कृतपदा धूपदीपादिकेन ।
प्रीता देव्यः सदा नः शुभद–
बलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः ॥ ३३ ॥

ब्रह्माण्ड से ऊपर दिव्य लोकों में, अन्तरिक्ष लोक में, भूतल में, एकान्त में, पाताल में, अग्नि या जल में, पवन में, क्षेत्रों में, पीठों में, उपपीठो में अथवा जहाँ कहीं भी रहने वाली वीरेन्द्रवन्द्या सभी देवियाँ हमारे द्वारा दिये गये धूप दीपादि उपचारों से तथा इस शुभदायक बलि के विधान से प्रसन्न हो कर हमारी रक्षा करें ॥ ३२–३३ ॥

एतदन्ते महेशानि यां बीजं योगिनी ततः ।
भ्यः स्वाहा सर्ववर्णान्ते योगिनीपदमालिखेत् ॥ ३४ ॥
कवचं चास्त्रमालिख्य वह्निजायां पुनर्लिखेत् ।
अनेन मनुना देवि योगिनीनां बलिं हरेत् ॥ ३५ ॥

हे महेशानि ! इसके बाद 'यां योगिनीभ्यः स्वाहा', 'सर्ववर्णयोगिनी कवचाय हुं अस्त्राय फट् स्वाहा'। हे देवि ! इस मन्त्र से योगिनियों को बलि प्रदान करे ॥ ३४–३५ ॥

षड्दीर्घस्वरसंभिन्नं क्षकारं विलिखेत्प्रिये ।
स्थानक्षेत्रपदं पालधूपदीपादि चाऽऽलिखेत् ॥ ३६ ॥

सहितं बलिमालिख्य गृह्ण गृह्ण वदेत् ततो ।
वह्निजायान्वितो मन्त्रः क्षेत्रपालस्य सुन्दरि ॥ ३७ ॥
अनेन मनुना देवि क्षेत्रपालबलिः स्मृतः ।

हे प्रिये ! इसके बाद ६ दीर्घ युक्त क्षकार (क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः) लिख कर 'स्थानक्षेत्रपालधूपदीपादिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' इस मन्त्र से क्षेत्रपाल को, हे सुन्दरि ! बलिप्रदान करे ॥ ३६–३८ ॥

गांगींगूंत्रयमालिख्य डेन्तं गणपतिं ततः ॥ ३८ ॥
वरान्ते वरदान्ते च सर्वान्ते जनमालिखेत् ।
मे वशं चाऽऽनय प्रोच्य सर्वोपपदमालिखेत् ॥ ३९ ॥
चारान्ते सहितं चोक्त्वा बलिं गृह्ण द्विधापदम् ।
वह्निजायान्वितो मन्त्रो गणपस्य बलिं हरेत् ॥ ४० ॥

'गां गीं गूं' इन तीन को लिख कर 'गणपति वर वरद सर्वजनं मे वशम् आनय सर्वोपचार सहितं बलिं गृह्ण गृहण स्वाहा' इस मन्त्र से गणपति को बलि प्रदान करना चाहिए ॥ ३८–४० ॥

वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां बटुकस्य बलिं हरेत् ।
तर्जन्यनामिका चैव मध्यमोपरि योजयेत् ॥ ४१ ॥
योन्याकारेण वामेन योगिनीनां बलिर्भवेत् ।
अङ्गुष्ठमध्यमानामा योन्याकारेण योजयेत् ॥ ४२ ॥

बायें अंगूठे और अनामिका को मिलाकर बटुक को बलि देनी चाहिए । बायें हाथ की तर्जनी अनामिका को मध्यमा पर रख कर योनि के आकार से योगिनियों को बलिप्रदान करे अथवा अंगूठा मध्यमा और अनामिका को योनि के आकार में बनाकर योगिनियों को बलि देवें ॥ ४१–४२ ॥

वाममुष्टिं विधायाऽऽदौ तर्जनीं सरलां कुरु ।
अनया मुद्रया देवि क्षेत्रपालबलिर्भवेत् ॥ ४३ ॥

बायें हाथ की मुट्ठी बाँध कर तर्जनी को सीधे ऊपर की ओर खड़ी रखे । हे देवि ! इस मुद्रा से क्षेत्रपाल को बलि देनी चाहिए ॥ ४३ ॥

तथा मुष्टेस्तु मध्यस्थामङ्गुलीं दण्डवत्कुरु ।
गजतुण्डा महामुद्रा गणपस्य बलिर्भवेत् ॥ ४४ ॥

इसी प्रकार मुट्ठी बाँधकर मध्य अङ्गुली को दण्डे के समान ऊपर खड़ी रखे, यह गजतुण्डा महामुद्रा है, इससे गणपति को बलि देनी चाहिए ॥ ४४ ॥

अथवा वामभागे तु मण्डलं चैकमालिखेत् ।
तत्रैव बलिदामं तु कुर्यात्सर्वार्थसिद्धये ॥ ४५ ॥

अथवा अपने बायें भाग में एक गोलाकार मण्डप बनावे, वहीं अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए बलिदान की सारी क्रिया करे ॥ ४५ ॥

आत्मविद्यां शिवैस्तत्त्वैर्गुरुं संतर्प्य देवताम् ।
संतोष्याऽऽनन्दसहितः सर्वकर्माणि साधयेत् ॥ ४६ ॥

इसके पश्चात् शिवतत्त्वों से आत्मविद्या को, गुरु को और देवता को तर्पण कर संतुष्ट करे। इस प्रकार आनन्दपूर्वक सारा कार्य संपन्न करे ॥ ४६ ॥

अनेन विधिना देवि पूजयेत्परमेश्वरीम् ।
पञ्चसिंहासनोन्नद्धां परमानन्दरूपिणीम् ॥ ४७ ॥
पञ्चसिंहासनोन्नद्धां चित्कलां चिन्तयेत्सदा ।
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्प्रिये ॥ ४८ ॥
तर्पणं तु तथा कुर्यात्सर्वसौभाग्यवान्भवेत् ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे त्रिपुरेश्वरीयजनविधिर्नाम पञ्चमः पटलः ॥ ५ ॥

हे देवि ! इस प्रकार उक्त रीति से परमेश्वरी त्रिपुरा का पूजन करे और पञ्चसिंहासन पर आसीन, परमानन्दरूपिणी तथा पञ्चसिंहासनस्था चित्कला का सदैव स्मरण करे। हे प्रिये ! मन्त्र में जितने वर्ण हैं उतने लाख जप कर उसका दशांश हवन करे। फिर उसका दशांश तर्पण भी करे । ऐसा करने से साधक समस्त सौभाग्यों को प्राप्त कर लेता हैं ॥ ४७–४९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'त्रिपुरेश्वरी यजनविधि' नामक पञ्चम पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ५ ॥

✽

अथ षष्ठः पटलः

श्रीदेव्युवाच —

पञ्चसिंहासनगता कथं सा त्रिपुरा परा ।
कथयस्व महेशान कथं सिंहासनं भवेत् ॥ १ ॥

श्री देवी ने कहा — हे महेशान ! पञ्चसिंहासन पर निवास करने वाली परा त्रिपुरा का स्वरूप क्या है, और उनका सिंहासन किस प्रकार होना चाहिए ? इसे कहिए ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच —

यथा श्रीत्रिपुरा बाला तथा त्रिपुरभैरवी ।
संपत्प्रदा नाम तस्याः शृणु निर्मलमानसे ॥ २ ॥

ईश्वर ने कहा — हे देवि ! जैसी श्री त्रिपुरा बाला सर्व संपत्प्रदा हैं वैसे ही त्रिपुर भैरवी भी सर्वसंपत्प्रदा हैं । हे निर्मल मन वाली! अब उन त्रिपुरभैरवी के विषय में सुनिए ॥ २ ॥

पूर्वसिंहासननिरूपणम्

शिवचन्द्रौ वह्निसंस्थौ वाग्भवं तदनन्तरम् ।
कामराजं तथा देवि शिवचन्द्रान्वितं ततः ॥ ३ ॥
पृथ्वीबीजान्तवह्न्याढ्यं तार्तीयं शृणु वल्लभे ।
शक्तिबीजे महेशानि शिवं वह्निं च योजयेत् ॥ ४ ॥
व्योमादिवह्निसंस्थं तु विशेषं शृणु वल्लभे ।
कुमार्याः परमेशानि हित्वा सर्गं तु बैन्दवम् ॥ ५ ॥
त्रिपुरा भैरवी देवी महासंपत्प्रदा प्रिये ।

शिव (ह) चन्द्र (स्) जो रेफ पर स्थित हों (अर्थात् ह्स्रौः) यह **वाग्भव बीज** है । इसके बाद शिव (ह) चन्द्र (स्) जो परस्पर मिले हों ।

फिर पृथ्वीबीज (ल्) और अन्त में अन्त्यस्वर युक्त वह्नि (र) से युक्त इस प्रकार (ह्स्ल्र:) यह **कामराज** बीज है । हे वल्लभे ! अब तृतीय शक्ति बीज सुनिए। शिव (ह) वह्नि (र्) दोनों को एक में मिलावे । फिर आदि में व्योम (ह) जो वह्नि पर (र्) स्थित हों इस प्रकार (ह्र: ह्र:) यह तृतीय **शक्ति बीज** है । हे परमेशानि ! इसमें बाला के वैन्दव सर्ग (विसर्ग) को हटा देवे तो त्रिपुरा भैरवी का मन्त्र बन जाता है । हे प्रिये ! जो महा संपत्प्रदा हैं? (ह्सौ: ह स् ल् र: ह्र: ह्र: ऐं क्लीं सौ)?।। ३–६।।

विमर्श–*द्रष्टव्य शाक्तप्रमोद।*

अनया सदृशी विद्या त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ।। ६ ।।
ब्रह्मानन्दमयी साक्षात्सर्वसाम्राज्यदायिनी ।
ध्यानमस्या: प्रवक्ष्यामि महासंपत्प्रदं प्रिये ।। ७ ।।

इन महाविद्या के समान तीनों लोकों में कोई भी नहीं है। ये महादेवी साक्षात् ब्रह्मानन्ददायिनी तथा सर्वसाम्राज्यदायिनी हैं । हे प्रिये ! अब संपूर्ण संपत्तियों को प्रदान करने वाला इनका ध्यान कहता हूँ ।। ६–७ ।।

आताम्रार्कसहस्राभां स्फुरच्चन्द्रजटाशिखाम् ।
किरीटरत्नविलसच्चित्रचित्रितमौक्तिकाम् ।। ८ ।।
स्रवद्रुधिरपङ्काढ्यमुण्डमालावलीयुताम् ।
नयनत्रयशोभाढ्यां पूर्णेन्दुवदनान्विताम् ।। ९ ।।
मुक्ताहारलताराजत् पीनोन्नतघनस्तनीम् ।
त्रिवलीखचितालग्नां नानाभरणभूषिताम् ।। १० ।।
रक्ताम्बरपरीधानां यौवनोन्मत्तरूपिणीम् ।
पुस्तकं चाभयं वामे दक्षिणे चाक्षमालिकाम् ।। ११ ।।
वरदानरतां नित्यं महासंपत्प्रदां स्मरेत् ।
न्यासपूजादिकं सर्वं कुमार्या इव सुव्रते ।। १२ ।।

सहस्रों लाल सूर्यों के समान कान्तिमती, जटा के अग्रभाग में देदीप्यमान चन्द्रमा से समन्वित, चित्र विचित्र मोतियों से युक्त, किरीट में लगे रत्नों से दीप्तिमती, चूते हुये रुधिर के पङ्क से युक्त, मुण्डमाला धारण किये हुये, तीन नेत्रों से विभूषित, पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली, पीन एवं उन्नत तथा घने स्तनों पर मोतियों की हार लता धारण किये हुए, त्रिवली रेखा युक्त कटिभाग में वाली, अनेक आभूषणों से विभूषित, रक्त वस्त्र धारण किये हुए, यौवन की मस्ती से भरी हुई, बायें हाथ में पुस्तक तथा अभयमुद्रा दाहिने हाथ

में अक्षमाला तथा वरदान मुद्रा धारण किये हुये महान् संपत्ति प्रदान करने वाली त्रिपुरा का इस रूप में ध्यान करना चाहिए । हे सुव्रते! इनका विशेष न्यास पूजनादि समस्त कार्य बाला की भाँति ही करना चाहिए ॥ ८–१२ ॥

त्रिपुरा भैरवी देवी पञ्चसिंहासनान्विता ।
प्रथमं शृणु देवेशि ब्रह्मा सृष्टिकरो यदा ॥ १३ ॥
निश्चेतनोऽपि देवेशि तदा त्रिपुरदेवताम् ।
समाराध्याभवत्कर्ता सृष्टेस्तु परमेश्वरि ॥ १४ ॥

ये त्रिपुरा भैरवी देवी पञ्चसिंहासन पर विराजमान रहने वाली हैं – सर्व प्रथम हे देवेशि ! उसका कारण सुनिए सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मदेव प्रथम अचेतन थे। हे देवेशि! सृष्टि विषयक ज्ञान उनमें नहीं था। तब उन्होंने त्रिपुरा बाला देवता की आराधना कर हे परमेश्वरि ! सृष्टि कर्तृत्व प्राप्त किया ॥ १३–१४ ॥

ब्रह्माणं तं समाराध्य तपसा महता प्रिये ।
शक्रोऽभूद्देवराजोऽयं पूर्वस्यां दिशि पालकः ॥ १५ ॥

हे प्रिये ! उन ब्रह्मदेव की महती तपस्या द्वारा आराधना कर देवराज इन्द्र पूर्वदिशा के दिक्पाल बन गये ॥ १५ ॥

तदा प्रसन्ना त्रिपुरा पूर्वसिंहासनस्थिता ।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पूर्वसिंहासनस्थिताम् ॥ १६ ॥

उस समय प्रसन्न हुई त्रिपुरा पूर्वसिंहासन पर स्थित थी, हे देवि ! अब पूर्वसिंहासन स्थित त्रिपुरा के पूजन का विधान सुनिए ॥ १६ ॥

पूर्वसिंहासनपूजाविधानम्

वाग्भवं बीजमुच्चार्य जीवप्राणसमन्विताम् ।
सकला भुवनेशानि द्वितीयं बीजमुद्धृतम् ॥ १७ ॥
जीवं प्राणं वह्निसंस्थं शक्रस्वरविभूषितम् ।
विसर्गाढ्यं महेशानि विद्या त्रैलोक्यमातृका ॥ १८ ॥

प्रथम वाग्भव बीज (ऐं) का उच्चारण कर जीव प्राण समन्वित सकला भुवनेशानी (ह्रीं) का उच्चारण करे यह द्वितीय बीज है। फिर शक्रस्वर (औ) से विभूषित वह्नि (रेफ) पर संस्थित विसर्गाढ्य जीव प्राण (सोऽहं) का उच्चारण करे । हे महेशानि ! यही त्रैलोक्य मातृका विद्या है ॥ १७–१८ ॥

त्रैलोक्यमोहनी देवी परब्रह्मचिदात्मिका ।
चैतन्यभैरवी नाम चेतना निष्कले शिवे ॥ १९ ॥

यह देवी परब्रह्मचिदात्मिका त्रैलोक्यमोहिनी है। इनका नाम चैतन्यभैरवी है, जो निष्कल शिव में चेतना प्रदान करती है ॥ १९ ॥

उद्यद्भास्वत्सहस्राभां नानालंकारभूषिताम् ।
मुकुटोज्ज्वलसच्चन्द्रलेखां रक्ताम्बरान्विताम् ॥ २० ॥

जो सहस्रों उदीयमान सूर्य के समान आभावाली, नाना अलङ्कारों से भूषित एवं मुकुट में लगे हुए उज्ज्वल चन्द्रलेखा वाली तथा रक्ताम्बर से विभूषित है ॥ २० ॥

पाशाङ्कुशधरां नित्यां वामहस्तकपालिनीम् ।
वरदाभयशोभाढ्यां पीनोन्नतघनस्तनीम् ॥ २१ ॥

पाश एवं अङ्कुश धारण किये हुये अपने बायें हाथ में कपाल लिए हुये वरद एवं अभय मुद्रा से शोभित पीत उन्नत और घने स्तनो वाली हैं ॥ २१ ॥

एवं ध्यात्वा भजेद्देवीं पूर्वसिंहासनस्थिताम् ।
द्विरावृत्त्या षडङ्गानि न्यसेत्सर्वाङ्गलक्षणाम् ॥ २२ ॥
यन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि देवि त्रैलोक्यमोहनम् ।

इस प्रकार ध्यान कर भगवती का भजन करना चाहिए और मन्त्र की दो आवृत्ति कर षडङ्गन्यास करना चाहिए । अब हे देवि! सर्वाङ्गलक्षण युक्त इनका यन्त्र कह रहा हूँ, जो समस्त त्रिलोकी का मोहन करने वाला है ॥ २२–२३ ॥

त्रिकोणं चैव षट्कोणं वसुपत्रं वरानने ॥ २३ ॥

हे वरानने ! पहले त्रिकोण लिखें, फिर षट्कोण लिखें। इसके बाद अष्टदल कमल लिखें ॥ २३ ॥

चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् ।
तत्राऽऽवाह्य महादेवीं पूर्ववत्परमेश्वरीम् ॥ २४ ॥

फिर चार द्वार युक्त चौकोर चतुरस्र मण्डल लिखे। उस पर महादेवी परमेश्वरी का पूर्ववत् आवाहन करे ॥ २४ ॥

मुद्राः प्रदर्शयेत्पश्चात्परिवारार्चनं यजेत् ।
प्रथमावरणं देवि षडङ्गानां तु पूर्ववत् ॥ २५ ॥

इसके बाद मुद्रा प्रदर्शित करे, फिर परिवारार्चन करे। हे देवि! प्रथमावरण में पूर्ववत् षडङ्गपूजन करे ॥ २५ ॥

रत्यादिकास्ततः पूज्याः पूर्ववत्परमेश्वरि ।
अग्रे वसन्तं वामे तु कामदेवं वरानने ॥ २६ ॥

हे परमेश्वरि! तदनन्तर पूर्ववत् रत्यादि का पूजन करे। हे वरानने! आगे वसन्त का तथा बायें कामदेव का पूजन करे ॥ २६ ॥

चापं दक्षिणकोणे च बाणान् पूर्ववदद्रिजे ।
डाकिनीं राकिनीं चैव लाकिनीं काकिनीं तथा ॥ २७ ॥
शाकिनीं हाकिनीं देवि पश्चिमादिक्रमाद्यजेत् ।
अनङ्गकुसुमा मुख्या वसुपत्रेषु पूर्ववत् ॥ २८ ॥
परभृत्सारसौ चैव शुकमेघाह्वयौ पुनः ।
अपाङ्गभ्रूविलासौ च हावभावौ प्रपूजयेत् ॥ २९ ॥

हे अद्रिजे! दक्षिण कोण में धनुष की और पूर्ववत् वाणों की पूजा करे । फिर डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी का पश्चिम के क्रम से हे देवि! पूजन करे । अष्टपत्रों पर अनङ्गकुसुमादि देवियों का पूर्ववत् पूजन करे। फिर कोयल, सारस, शुक, मेघसंवर्त्तादि अपाङ्गभ्रूविलास एवं हाव भावों का पूजन करे ॥ २७—२९ ॥

इन्द्राद्या लोकपालास्तु क्रमेण परिपूजयेत् ।
पूर्वसिंहासने देवि कथिता वीरवन्दिते ॥ ३० ॥

हे देवि ! साधक फिर पूर्वादि क्रम से इन्द्रादि लोकपालों का पूजन करे । हे वीरवन्दिते ! इस प्रकार से हमने पूर्व सिंहासन की पूजा का प्रकार कहा है ॥ ३० ॥

कामेश्वरी च रुद्राणां पूर्वसिंहासनस्थिता ।
एतस्या एव विद्याया बीजद्वयमुदाहृतम् ॥ ३१ ॥
तदन्ते परमेशानि नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ।
एतस्या एव तार्तीयं रुद्राणां परमेश्वरि ॥ ३२ ॥
पूजाध्यानादिकं देवि चैतन्यायाश्च पूर्ववत् ।
त्रिकोणे तु विशेषोऽस्ति कथयामि तवानघे ॥ ३३ ॥

रुद्रों में कामेश्वरी पूर्वसिंहासन पर अधिष्ठित हैं इन्हीं महाविद्या का दो बीज पहले कह आये हैं । उसके अन्त में हे परमेशानि ! हे परमेश्वरि ! नित्यक्लिन्ने मदद्रवे यह इन्हीं रुद्रों का तार्तीय बीज है, इन चेतना का पूर्ववत् पूजा ध्यानादि करे। त्रिकोण में कुछ विशेष है हे अनघे! उसे कहता हूँ॥ ३३ ॥

अग्रकोणक्रमेणैव नित्यां क्लिन्नां मदद्रवाम् ।
षडङ्गावरणात्पश्चात्पूजयेत्सर्वसिद्धये ॥ ३४ ॥
अनेनैव प्रकारेण पूर्वसिंहासनस्थिताम् ।
त्रिपुरां भैरवीं देवीं पूजयेत्परमेश्वरीम् ॥ ३५ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे पूर्वसिंहासनकथनं नाम
षष्ठः पटलः ॥ ६ ॥

षडङ्गावरण पूजा के पश्चात् आगे के कोण के क्रम से नित्या, क्लिन्ना और मदद्रव से युक्त देवी का सर्वार्थ सिद्धि के लिए पूजन करना चाहिए । इसी प्रकार पूर्व सिंहासन पर स्थित त्रिपुरा भैरवी परमेश्वरी देवी का पूजन करना चाहिए ॥ ३४—३५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'पूर्वसिंहासनकथन'
नामक षष्ठ पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत
हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ६ ॥

अथ सप्तमः पटलः

ईश्वर उवाच —

एतामाराध्य देवेशि महात्रिपुरभैरवीम् ।
पालकोऽभून्निश्चलोऽपि प्रेतत्वात्सुरवन्दिते ॥ १ ॥

ईश्वर ने कहा — हे देवेशि ! इन महात्रिपुरभैरवी देवता की आराधना कर प्रेत होने से सर्वथा निश्चल—विष्णु भी, हे सुरवन्दिते! जगत् के पालक बन गये ॥ १ ॥

रुद्रभैरवीयजनम्

योगनिद्राछलाद्देवि प्रेतत्वं तस्य निश्चलम् ।
तद्ध्यानेन स्वयं शक्तिरभूत्कुवलयेक्षणे ॥ २ ॥

हे देवि! योगनिद्रा के बहाने से वे निश्चल रूप से प्रेत ही थे। हे कमलनेत्रे! केवल इन त्रिपुरभैरवी की आराधना से उनमें शक्ति का संचार हुआ ॥ २ ॥

तामाराध्य महाविष्णुरघोरेण मुखेन च ।
त्रिपुरो निर्जितो देवि त्रैलोक्यभयकारकः ॥ ३ ॥

महाविष्णु ने उन त्रिपुरा में तथा शिव ने अघोर मुख से आराधना कर त्रैलोक्य को भयभीत करने वाले त्रिपुरासुर पर अघोरमुखी सदाशिव की सहायता से विजय प्राप्त किया ॥ ३ ॥

विमर्श — *(रथचरणपाणिः शर इति) महिम्नस्तोत्रे।*

तदा सिंहासने प्रौढा दक्षिणे परमेश्वरि ।
मन्त्रं तस्याः प्रवक्ष्यामि रिपुभारनिकृन्तनम् ॥ ४ ॥

हे परमेश्वरि ! विष्णु के आराधनकाल में वह प्रौढा त्रिपुरेश्वरी दक्षिण आसन पर संस्थित थीं । अब मैं शत्रुओं का नाश करने वाला त्रिपुरा मन्त्र कह रहा हूँ ॥ ४ ॥

त्रिपुरामन्त्रोद्धारः

शिवचन्द्रौ मादनान्तं वान्तं वह्निसमन्वितम् ।
शक्तिभिन्नं बिन्दुनादकलाढ्यं वाग्भवं प्रिये ॥ ५ ॥

संपत्प्रदाया भैरव्याः कामराजं तदेव हि ।
सदाशिवस्य बीजं तु सिंहासनगतस्य च ॥ ६ ॥

त्रिपुरामन्त्रोद्धार – शिव (ह) चन्द्र (स्) मादनान्तं (क्) वान्त (ल्), जो वह्निसमन्वित अर्थात् जो (रेफ) से युक्त हो और बिन्दु, नाद, कला से युक्त हो तथा शक्ति (ह्रीं) से युक्त हो । हे प्रिये ! यह वाग्भव मन्त्र है। यही सज्जनों को संपत्ति प्रदान करने वाली भैरवी का कामराज मन्त्र है तथा सिंहासन में विद्यमान सदाशिव का बीज भी हैं ॥ ५–६ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है। (ह्रं स् क्रं ल् र्रं ह्रीं)।

एषा विद्या महेशानि वर्णितुं केन शक्यते ।
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि रिपुभारनिकृन्तनम् ॥ ७ ॥

हे महेशानि ! इस विद्या के वर्णन करने की शक्ति किसी में नहीं है। अब शत्रुविनाशक इन भगवती का ध्यान कहता हूँ ॥ ७ ॥

त्रिपुराध्यानकथनम्

उद्यत्सूर्यसहस्राभां चन्द्रचूडां त्रिलोचनाम् ।
नानालंकारसुभगां सर्ववैरिनिकृन्तनीम् ॥ ८ ॥

स्रवद्रुधिरमुण्डालिकलितां रक्तवाससम् ।
त्रिशूलं डमरुं चैव खड्गं खेटकमेव च ॥ ९ ॥

पिनाकं च शरान्देवि पाशाङ्कुशयुगं क्रमात् ।
पुस्तकं चाक्षमालां च शिवसिंहासने स्थिताम् ॥ १० ॥

जो उदीयमान सहस्रों सूर्य के समान आभा वाली हैं। जिनके मस्तक पर चन्द्रमा की कला शोभायमान है । तीन नेत्रों वाली जो भगवती अनेक अलङ्कारों से शोभित है। जो समस्त बैरियों का विनाश कर देने वाली है । रक्त वस्त्र को धारण की हुई जो भगवती चूते हुये रक्त की धार वाला कपाल धारण किये हुये हैं । जिनके हाथों में त्रिशूल, डमरु, खड्ग, खेटक, पिनाक, शर, पाश, अङ्कुश, पुस्तक और अक्षमाला है, तथा जो शिवसिंहासन पर विराजमान हैं ॥ ८–१० ॥

त्रिपुराभैरवी यन्त्रकथनम्

एवं ध्यात्वा महेशानि पूजामण्डलमारभेत् ।
त्रिकोणं चैव वृत्तं च वृत्ताष्टदलनीरजम् ॥ ११ ॥
वृत्तं भूसदनोपेतमेषा त्रिपुरयन्त्रिका ।

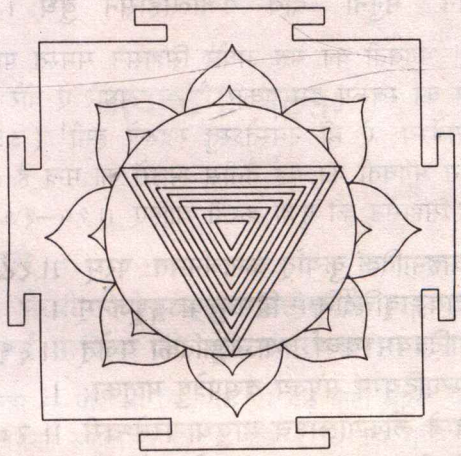

त्रिपुरभैरवी पूजा यन्त्र

हे महेशानि ! इस प्रकार भगवती का ध्यान कर पूजा मण्डल का निर्माण करे । पहले त्रिकोण, फिर वृत्त, फिर वृत्त, उसमें अष्टदल कमल, उसके बाद पुनः वृत्त, फिर भूपुर, यही त्रिपुरा भगवती का यन्त्र है ॥ ११–१२ ॥

वामां ज्येष्ठां च रौद्रीं च काली च वरलोचने ॥ १२ ॥
कलाढ्यां च बलाढ्यां च यजेद्विकरिणीं प्रिये ।
बलप्रमथिनीं चैव सर्वभूतान्तमावदेत् ॥ १३ ॥
दमनीं च तथाऽर्चित्वा मनोन्मनीपदान्विताम् ।
एवं पीठं समभ्यर्च्य ततः सिंहासनं यजेत् ॥ १४ ॥

हे वरलोचने ! [1]वामा, [2]ज्येष्ठा, [3]रौद्री, [4]काली, [5]कलाढ्यां, [6]बलाढ्यां, [7]विकरिणी, [8]बलप्रमथिनी [9]सर्वभूतान्तदमनी, मनोन्मनीपद युक्त इन ९ शक्तियों का पीठ पर पूजन कर सिंहासन की पूजा करे ॥ १२–१४ ॥

अघोरविद्यारूपं तु महापापनिकृन्तनम् ।
अघोरे वाग्भवं देवि घोरे तु भुवनेश्वरीम् ॥ १५ ॥

घोरघोरतरेभ्यश्च विलिख्य सुरवन्दिते ।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो देव्या बीजयुगं लिखेत् ॥ १६ ॥
नमस्तेऽस्तुपदं कुर्याद्रुद्ररूपे ह्सौ लिखेत् ।
त्रिंशद्भिश्च त्रिभिर्वर्णैर्विद्येयं कथिता प्रिये ॥ १७ ॥
अनेन मनुना देवि यजेत्सिंहासनं बुधः ।

हे देवि ! भगवती का यह अघोर सिंहासन समस्त पापों को दूर करने वाला है। मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – 'अघोरे ऐं घोरे ह्रीं घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यः ऐं ह्रीं नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपे ह्सौ' (३३) । हे प्रिये ! महाविद्या त्रिपुरा भगवती का यह तैतीस अक्षरों का मन्त्र हैं । साधक को इसी मन्त्र से उनके सिंहासन की पूजा करनी चाहिए ॥ १५–१७ ॥

आवाहनादिकं कुर्यात् क्रमार्चनमतः परम् ॥ १८ ॥
आदावङ्गावृत्तिर्देवि द्विरावृत्त्याऽङ्गपूजनम् ।
रत्यादित्रयमभ्यर्च्य तथाऽनङ्गादिका यजेत् ॥ १९ ॥
ब्राह्म्यादियुग्मं संपूज्य वसुपत्रेषु मातृकाः ।
भूबिम्बे लोकपालांश्च सायुधान्परमेश्वरी ॥ २० ॥
द्वितीयसिंहासनगां पूजयेद्रुद्रभैरवीम् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे द्वितीयसिंहासने रुद्रभैरवीयजनं नाम सप्तमः पटलः ॥ ७ ॥

साधक पहले क्रमशः आवाहन, तदन्तर अर्चन करे। हे देवि ! सर्वप्रथम अङ्गमन्त्र की दो बार आवृत्ति कर अङ्गपूजन करे। फिर रत्यादि तीन की पूजा कर अनङ्गादिक की पूजा करे, तदनन्तर ब्राह्मी आदि दो दो माताओं की पूजा कर अष्ट पत्रों पर अष्ट मातृकाओं का पूजन करे । भूपुर में आयुध सहित सभी लोकपालों की पूजा करे । इस प्रकार साधक द्वितीय सिंहासन पर रुद्रभैरवी की पूजा करे ॥ १८–२० ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'रुद्रभैरवीयजन' नामक सप्तम पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ७ ॥

❀

अथाष्टमः पटलः

ईश्वर उवाच –

पश्चिमे भैरवी देवी षट्कूटा परमेश्वरी ।
यत्स्फूर्त्या स शिवो देवि सृष्टिसंहारणक्षमः ।। १ ।।

ईश्वर ने कहा – पश्चिम सिंहासन पर षट् कूटों वाली परमेश्वरी भैरवी देवी बैठती हैं जिनकी स्फूर्त्ति से ही, हे देवि! शिव इस सृष्टि के संहार करने में समर्थ हैं ।। १ ।।

पश्चिमसिंहासनार्चनविधानम्

डाकिनीराकिनीबीजे लाकिनीकाकिनीयुगात् ।
बीजे आहृत्य देवेशि योजयेच्चन्द्रसूर्ययोः ।। २ ।।

हे देवेशि ! डाकिनी राकिनी के दो बीजों में लाकिनी काकिनी के दो बीजों को जोड़कर उसे चन्द्रमा और सूर्य में युक्त करे ।। २ ।।

आद्यमैकारसंयुक्तमन्यदीकारमण्डितम् ।
शक्रस्वरसमायुक्तं तार्तीयं बीजमालिखेत् ।। ३ ।।

पहला ऐकार से संयुक्त कर, दूसरा ईकार से संयुक्त कर और तृतीय शक्रस्वर (औ?) से युक्त कर लिखे ।। ३ ।।

बिन्दुनादकलाक्रान्तं तृतीयं शैलसम्भवे ।
एषा विद्या महेशानि रुद्रसिंहासेन स्थिता ।। ४ ।।

हे शैलराजपुत्रि ! फिर तृतीय बीज को नाद और कला से संयुक्त करे, इस प्रकार हे महेशानि ! यही विद्या रुद्र सिंहासन पर स्थित होती है ।। ४ ।।

भैरवीध्यानकथनम्

ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि सर्वभूतनिकृन्तनम् ।
बालसूर्यप्रभां देवीं जपाकुसुमसन्निभाम् ॥ ५ ॥

मुण्डमालावलीरम्यां बालसूर्यसमांशुकाम् ।
सुवर्णकलशाकारपीनोन्नतपयोधराम् ॥ ६ ॥

पाशाङ्कुशौ पुस्तकं च दधानां जपमालिकाम् ।
एवं ध्यात्वा यजेद्देवीं मानसैरुपचारकैः ॥ ७ ॥

अब समस्त भूतों का विनाश कर देने वाली इन देवी का ध्यान कहता हूँ, जपा कुसुम के समान तथा उदीयमान सूर्य के समान अरुण वर्ण वाली, मुण्डमाला धारण करने से रम्य, बालसूर्य के समान प्रभा वाले, रक्तवर्ण के वस्त्रों से अलंकृत, सुवर्ण कलश के समान, पीन एवं उन्नत पयोधरों वाली, पाश, अङ्कुश, पुस्तक तथा जपमाला धारण किये हुये भगवती भैरवी का ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार से देवी का ध्यान कर मानसोपचारों से साधक उनकी पूजा करे ॥ ५–७ ॥

द्विरावृत्त्यां षडङ्गानि विधाय परमेश्वरि ।
यन्त्रमस्या वरारोहे त्रिकोणं तत्पुटं लिखेत् ॥ ८ ॥

बहिरष्टदलं पद्मं रविपत्रं समालिखेत् ।
चतुरस्त्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् ॥ ९ ॥

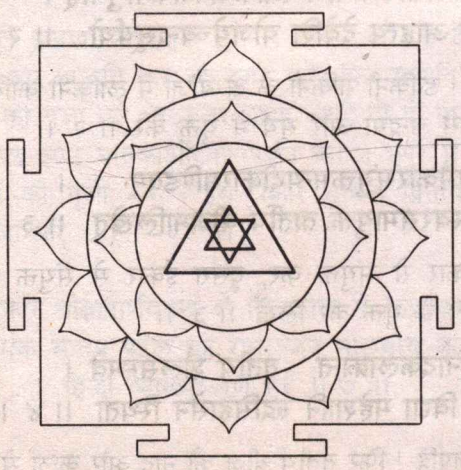

नित्या भैरवी यन्त्र

हे परमेश्वरि ! दो आवृत्ति से षडङ्ग का पूजन करे, तदनन्तर हे वरारोहे ! इनका त्रिकोण एवं षट्कोण यन्त्र लिखें उसके बाहर अष्टदल पद्म तथा उसके भी बाहर द्वादशदलात्मकपद्म का निर्माण करे । इसके बाद चतुर्द्वारयुक्त चौकोर भूपुर मण्डल लिखें ॥ ८–९ ॥

षडङ्गावरणं देवि पूर्ववत्पूजयेत्प्रिये ।
रत्यादित्रितयं देवि त्रिकोणे परिपूजयेत् ॥ १० ॥
डाकिन्याद्यास्तु षट्कोणे वसुपत्रे ततः परम् ।
ब्राह्म्यादियुगलं पश्चाद्रविपत्रे ततः परम् ॥ ११ ॥
बालायाः पीठशक्तीस्तु वामाद्याः पूजयेत्प्रिये ।
चतुरस्रे लोकपालान् सायुधान् परमेश्वरि ॥ १२ ॥

हे प्रिये ! साधक फिर पूर्ववत् षडङ्गावरण की पूजा करें । हे देवि! त्रिकोण में रति, प्रीति और काम, इन त्रितय की त्रिकोण में पूजा करे। डाकिन्यादि ६ देवियों की षट्कोण में पूजा करे। उसके बाद अष्टपत्रों पर ब्राह्मी आदि आठ देवियों की पूजा करे । इसके बाद हे प्रिये ! द्वादश पत्र पर बाला की वामादि पीठ शक्तियों की पूजा करे। हे परमेश्वरि ! साधक फिर चतुरस्र में सायुध अष्ट लोकपालों की पूजा करे ॥ १०–१२ ॥

एवं पूजाविधिं कुर्याद्भोगमोक्षफलाप्तये ।
अनेनैव विधानेन नित्याख्यां भैरवीं यजेत् ॥ १३ ॥
सर्वसौभाग्यदां नित्यां सर्वसाम्राज्यदायिनीम्।

हे देवि ! साधक इस प्रकार भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए पूजा का विधान संपन्न करे । इसी विधान से संपूर्ण सौभाग्य प्रदान करने वाली और सब प्रकार का साम्राज्य देने वाली नित्या भैरवी का पूजन करे ॥ १३–१४ ॥

एतस्या एव विद्यायाः षड्वर्णान् क्रमतः स्थितान् ॥ १४ ॥
विपरीतान् वद प्रौढे विद्येयं भोगमोक्षदा ।
नित्याख्या भैरवी देवि रिपुभारनिकृन्तनी ॥ १५ ॥
न्यासपूजादिकं सर्वमस्याः पूर्ववदाचरेत् ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे पश्चिमसिंहासनकथनं नामाष्टमः पटलः ॥ ८ ॥

हे प्रौढे ! इन्हीं विद्या के उपर्युक्त ६ वर्णों को विपरीत क्रम से उच्चारण करे तो वह भोग एवं मोक्ष देने वाली हो जाती है । हे देवि ! यह नित्या नामक भैरवी देवी शत्रुजन्य बाधा का विनाश करने वाली हैं । इनका न्यास एवं पूजादि समस्त कार्य पूर्व की भाँति ही संपन्न करे ।। १५–१६ ।।

।। इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'पश्चिमसिंहासन अर्चन' नामक अष्टम पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।। ८ ।।

अथ नवमः पटलः

ईश्वर उवाच —

शृणु देवि महाविद्यां चिन्तितेष्टफलप्रदाम् ।
यस्या विज्ञानमात्रेण भुवनाधिपतिर्भवेत् ॥ १ ॥

ईश्वर ने कहा — हे देवि ! अब चिन्तित मनोरथ पूर्ण करने वाली महाविद्या को सुनिए । जिसके विज्ञान मात्र से ही साधक त्रैलोक्याधिपति बन जाता है ॥ १ ॥

सिंहासनविद्याविधानम्

हंसाद्यं वाग्भवं चाऽऽद्यं हसकान्ते सुरेश्वरि ।
भूबीजं भुवनेशानी द्वितीयं बीजमुद्धृतम् ॥ २ ॥

हे सुरेश्वरि ! हस (सः) और वाग्भव (ऐं), आदि बीज हैं ह स् क् ल्, उसके अन्त में भू बीज (ल्), फिर भुवनेशानी (ह्रीं), यह द्वितीय बीज हुआ ॥ २ ॥

शिवचन्द्रौ महेशानि शक्रस्वरविभूषितम् ।
बिन्दुनादकलाक्रान्तं तृतीयं बीजमुद्धृतम् ॥ ३ ॥

हे महेशानि! शिव (?) चन्द्र और जो शक्रस्वर (औ) एवं बिन्दु कला से युक्त है यह तृतीय बीज हुआ ॥ ३ ॥

एषा विद्या महेशानि भुवनेश्वरभैरवी ।
मध्यबीजेन देवेशि षड्दीर्घस्वरभेदिना ॥ ४ ॥
षडङ्गानि प्रविन्यस्य ध्यायेद्देवीं चतुर्भुजाम् ।
जपाकुसुमसंकाशां दाडिमीकुसुमप्रभाम् ॥ ५ ॥

चन्द्ररेखाजटाजूटां त्रिनेत्रां रक्तवाससम् ।
नानालंकारसुभगां पीनोन्नतघनस्तनीम् ॥ ६ ॥
पाशाङ्कुशवराभीतीर्धारयन्तीं शिवां स्मरेत् ।
एवं ध्यात्वाऽर्चयेद्देवीं यन्त्रोद्धारं च पूर्ववत् ॥ ७ ॥

हे महेशानि ! यह भुवनेश्वरभैरवी विद्या है । मध्य बीज में षड् दीर्घ स्वरों को लगा कर षडङ्ग न्यास करे । तदनन्तर चतुर्भुजा देवी का इस प्रकार से ध्यान करे—जपा कुसुम के समान कान्ति वाली, दाडिमी पुष्प के समान प्रभा युक्त, जटाजूट में चन्द्र रेखा धारण करने वाली, रक्त वस्त्र पहने हुए, तीन नेत्रों से युक्त, अनेक अलंकारों से विभूषित, पीन एवं उन्नत घने स्तनों वाली, पाश, अङ्कुश, वर तथा अभय मुद्राओं से युक्त भगवती शिवा देवी का स्मरण कर ध्यान करे, तदनन्तर उनका अर्चन करे । अर्चन के लिए प्रयुक्त मन्त्र का उद्धार पहले ही कहा जा चुका है ॥ ४—७ ॥

चैतन्यभैरवी देवी यन्त्रवत्परमेश्वरि ।
सिंहासनं समभ्यर्च्य परिवारार्चनं यजेत् ॥ ८ ॥

हे परमेश्वरि! चैतन्य भैरवी देवी के समान ही यन्त्र का निर्माण कर पूर्वोक्त विधि से सिंहासन की अर्चना कर परिवारार्चन करना चाहिए ॥ ८ ॥

षडङ्गावरणं देवि पूर्ववत्परिपूजयेत् ।
रत्याद्याः पूजयेद्देवि त्रिकोणे तदनन्तरम् ॥ ९ ॥

हे देवि ! पूर्व में कही गई विधि के अनुसार षडङ्गावरण पूजा करे। इसके बाद त्रिकोण में रति, प्रीति एवं काम का पूजन करे ॥ ९ ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च पूज्यास्तत्रैव सुन्दरि ।
डाकिन्याद्यास्तथा पूज्या वसुपत्रे ततः परम् ॥ १० ॥

हे सुन्दरि! फिर उसी त्रिकोण में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का भी पूजन करे। इसके बाद अष्टपत्र में डाकिनी आदि का पूजन करे ॥ १० ॥

अनङ्गकुसुमाद्याश्च ब्राह्म्यादियुगलं ततः ।
भूबिम्बे लोकपालांश्च बटुकाद्यांश्च पूजयेत् ॥ ११ ॥
योगिनीनां चतुःषष्टिं पूजयेत्सुरवन्दिते ।

इसके बाद अनङ्ग कुसुमादि तथा ब्राह्मी आदि युगलों का भी उसी में पूजन करे । भूपुर में लोकपालों का एवं बटुकादिकों का तथा चौंसठ योगिनियों का, हे सुरवन्दिते ! पूजन करे ॥ ११—१२ ॥

सदाशिवसखा यस्मात्कुबेरः परमेश्वरि ॥ १२ ॥
येनेयं प्रार्थिता देवी राजराजस्ततो भवेत् ।
तेनैव प्रार्थिता विद्या गौरी गौरफलप्रदा ॥ १३ ॥

हे परमेश्वरि ! यतः सदाशिव के सखा कुबेर हैं, जो इन भगवती की प्रार्थना कर राजराजेश्वर बन गये हैं। उन्होंने ही गौरफलप्रदान करने वाली इन विद्या रूपा गौरी भगवती की प्रार्थना की थी ॥ १२–१३ ॥

अन्नपूर्णेश्वरी नाम सर्वसंपत्प्रदा सताम् ।
अनया विद्यया देवि कुबेरो धननायकः ॥ १४ ॥

उन गौरी देवी का नाम अन्नपूर्णेश्वरी हैं जो सज्जनों को समस्त फल प्रदान करती है। हे देवि ! इन्हीं महाविद्या की ही उपासना से कुबेर धन नायक बन गये हैं ॥ १४ ॥

लोकपालेषु सर्वेषु धनरत्नादिपूर्णता ।
तथाऽन्नपूर्णता तस्मिन्सुस्थिराऽस्याः प्रसादतः ॥ १५ ॥

इन्हीं अन्नपूर्णा की कृपा प्राप्त कर कुबेर सभी लोकपालों की अपेक्षा धन रत्न और अन्न से परिपूर्ण रहते हैं ॥ १५ ॥

अन्नपूर्णा महादेवि साक्षात्कामदुघाऽद्रिजे ।
मन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ १६ ॥

हे अद्रिजे! हे महादेवि ! यह भगवती अन्नपूर्णा साक्षात् कामधेनु हैं। अब सम्पूर्ण सिद्धियों को प्रदान करने वाला इनका मन्त्र कहता हूँ ॥ १६ ॥

तारं च भुवनेशानीं श्रीबीजं कामराजकम् ।
हृदन्ते भगवत्यर्णा माहेश्वरि पदं लिखेत् ॥ १७ ॥
अन्नपूर्णेऽग्निजाया च विद्येयं विंशदक्षरी ।
अनया सदृशी विद्या सिद्धिदा नास्ति भूतले ॥ १८ ॥

तार (ॐ), भुवनेशानी (ह्रीं), श्री बीज (श्रीं), इसके बाद कामराज (क्लीं) फिर 'नमः भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा'। यह २० अक्षरों का अन्नपूर्णा मन्त्र हैं । इनके समान इस पृथ्वी तल में सिद्धि प्रदान करने वाली अन्य कोई विद्या नहीं है ॥ १७–१८ ॥

भुवनेशी महेशानि षड्दीर्घस्वरभिन्नया ।
षडङ्गानि महेशानि च्छन्दोन्यासानन्तरम् ॥ १९ ॥

हे महेशानि! भुवनेशी के षड्दीर्घस्वरों (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रं ह्रः) से षडङ्ग न्यास कर, तदनन्तर छन्दो न्यास इस प्रकार करना चाहिए ॥ १९ ॥

ऋषिर्ब्रह्माऽस्य मन्त्रस्य पङ्तिश्छन्दो वरानने ।
अन्नपूर्णेश्वरी देवि देवता परिकीर्तिता ॥ २० ॥

हे वरानने ! इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि है; पंक्ति छन्द हैं तथा अन्नपूर्णेश्वरी देवी देवता कही गई हैं ॥ २० ॥

बीजं च भुवनेशानी श्रीबीजं शक्तिरुच्यते ।
कीलकं कामराजं स्यात्षडङ्गानन्तरं ततः ॥ २१ ॥

एकमेकं पुनश्चैकं पुनरेकं द्वयं चतुः ।
चतुश्चतुस्तथा द्वाभ्यां पदान्येतानि पार्वति ॥ २२ ॥

पदानि नव देवेशि नव द्वारेषु विन्यसेत् ।
मूर्धादिगुदपर्यन्तं पुनस्तेषु वरानने ॥ २३ ॥

गुदादिब्रह्मरन्ध्रान्तं पदानां नवकं न्यसेत् ।
ब्रह्मरन्ध्रास्यहृदयमूलाधारेष्वनुक्रमात् ॥ २४ ॥

चतुर्बीजानि विन्यस्य शेषेष्वन्यान् प्रविन्यसेत् ।
गोलकं च ततो देवि विन्यस्य विधिवत्प्रिये ॥ २५ ॥

प्राणायामं प्रकुर्वीत पूजामण्डलमालिखेत् ।

भुवनेश्वरी (ह्रीं) बीज तथा श्रीबीज (श्रीं) शक्ति हैं और कामराज (क्लीं) कीलक है। इस प्रकार षडंग के पश्चात् हे पार्वति ! मन्त्र के १, १, १, १, २, ४, ४, ४ एवं २ पदों से शरीर के नव द्वारो में न्यास करे । हे वरानने ! फिर १. मुख, २. दाहिनी नासिका, ३. बाई नासिका, ४. दक्षिण नेत्र, ५. वाम नेत्र, ६. दक्षकर्ण, ७. वामकर्ण, ८. लिङ्ग, एवं ९. मूलाधार में न्यास करे । पुनः मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र में इसी प्रकार न्यास करे । पुनः ब्रह्मरन्ध्र मुख, हृदय एवं मूलाधार मे क्रमशः चारो बीजों का, शेष में अन्य का न्यास करे । हे प्रिये ! इस प्रकार गोलक (इन्द्रियों) में विधिवत् न्यास करने के पश्चात् हे देवि! प्राणायाम कर पूजा मण्डल यन्त्र का निर्माण करे ॥ २१–२६ ॥

पूजामण्डल यन्त्र निर्माण

त्रिकोणं च चतुःपत्रं वसुपत्रं ततः परम् ॥ २६ ॥
कलापत्रं च भूबिम्बं चतुर्द्वारं समालिखेत् ।
सिंहासनस्य परितः पीठदेवीः समर्चयेत् ॥ २७ ॥

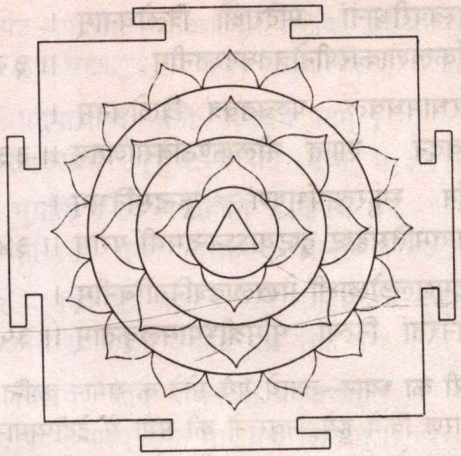

अन्नपूर्णेश्वरी पूजामण्डल यन्त्र

पहले त्रिकोण, फिर क्रमशः चतुर्दल, अष्टदल, षोडशदल एवं चतुर्द्वार से युक्त भूपुर का निर्माण करे । तदनन्तर सिंहासन के चारो ओर शक्तियों का अर्चन करे ॥ २६–२७ ॥

सिंहासने दक्षिणे तु कथिताः पीठनायिकाः ।
ता एव पूजयेत्पीठे वामाद्याः परमेश्वरि ॥ २८ ॥

हे परमेश्वरि ! दक्षिण सिंहासन के प्रकरण में जो वामा आदि पीठ शक्तियाँ कही गई हैं (द्र० ८. १२–१५) उनका भी पूजन करे ॥ २८ ॥

जया च विजया चैव अजिता चापराजिता ।
नित्या विलासिनी दोग्ध्री अघोरा मङ्गलात्मिका ॥ २९ ॥
नवमी परमेशानी सिंहासनसमीपगाः ।
समावाह्य यजेद्देवीं ध्यानं कुर्वन्समाहितः ॥ ३० ॥

फिर सिंहासन के समीप रहने वाली १. जया, २. विजया, ३. अजिता, ४. अपराजिता, ५. नित्या, ६. विलासिनी, ७. दोग्ध्री, ८. अघोरा और ९. मङ्गलात्मिका, इन नव शक्तियों का आवाहन कर समाहित चित्त से ध्यान करते हुये पूजन करे ॥ २९–३० ॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभां बालेन्दुकृतशेखराम् ।
नवरत्नप्रभादीप्तमुकुटां कुङ्कुमारुणाम् ॥ ३१ ॥

चित्रवस्त्रपरीधानां मदिराक्षीं त्रिलोचनाम् ।
सुवर्णकलशाकारपीनोन्नतघनस्तनीम् ॥ ३२ ॥

गोक्षीरधामधवलं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
प्रसन्नवदनं शान्तं नीलकण्ठविराजितम् ॥ ३३ ॥

कपर्दिनं स्फुरत्सर्पभूषणं कुन्दसंनिभम् ।
नृत्यतन्तमतिसंहृष्टं दृष्ट्वाऽऽनन्दमयीं पराम् ॥ ३४ ॥

सानन्दमुद्यल्लोलाक्षीं मेखलाढ्यनितम्बिनीम् ।
अन्नदानरतां नित्यां भूमिश्रीभ्यामलंकृताम् ॥ ३५ ॥

अन्नपूर्णेश्वरी का ध्यान—तपाये गये सोने के समान कान्ति वाली, मस्तक पर चन्द्रकला धारण किये हुये, नवरत्नों की प्रभा से देदीप्यमान, मुकुट धारण किये हुए, कङ्कुम के समान अरुण कान्ति से युक्त, चित्र वस्त्र धारण किये हुए, चञ्चल नेत्रों वाली, त्रिनेत्रा, सुवर्ण कलश के समान पीन, उन्नत तथा घने स्तनों वाली जो भगवती अन्नपूर्णा गो दुग्ध के समान धवल वर्ण वाले पञ्चवक्त्र, त्रिलोचन, प्रसन्नवदन, अत्यन्त शान्त, नीलकण्ठ से सुशोभित, कुन्द के समान स्वच्छ, चञ्चल सर्पों के आभूषणों से युक्त, अत्यन्त संतोष से परिपूर्ण, सदाशिव को अपने आगे नृत्य करते देख अत्यन्त आनन्द से परिपूर्ण हो जाती है । आनन्द से नेत्र विकसित हो जाते हैं । ऐसी मेखला सुशोभित नितम्बों वाली, अन्न दान में निरत भूमि और श्री देवियों से युक्त श्रीअन्नपूर्णा देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ३१—३५ ॥

एवं ध्यात्वा यजेद्देवि षडङ्गावरणं यजेत् ।
अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्ष्वङ्गपूजनम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार ध्यान कर हे देवि! उनका पूजन करे और षडङ्गावरण की पूजा करनी चाहिए । अग्नि एवं ईशान के मध्य में नैर्ऋत्य तथा वायव्य के मध्य में एवं चारो दिशाओं में षडङ्गपूजन करना चाहिए ॥ ३६ ॥

अथ वक्ष्ये महेशानि त्रिकोणस्य च पूजनम् ।
तारं प्रासादबीजं च हृच्छिवाय ततः परम् ॥ ३७ ॥

हे महेशानि ! अब त्रिकोण पूजन का प्रकार कहता हूँ ॥ तार (ॐ), प्रासादबीज (ह्रीं), फिर नमः, फिर शिवाय, (ॐ ह्रीं नमः शिवाय) ॥ ३७ ॥

सप्ताक्षरी महाविद्या त्वनया देवि पूजयेत् ।
नृत्यन्तमीश्वरं देवि त्रिकोणाग्रे सुरेश्वरि ॥ ३८ ॥

हे सुरेश्वरि! यह सप्ताक्षरी महाविद्या है। हे देवि! इस मन्त्र से त्रिकोण के अग्र में नृत्य करते हुये सदाशिव का पूजन करना चाहिए ॥ ३८ ॥

ॐ नमः पदमाभाष्य ततो भगवते पदम् ।
ततो वराहरूपाय भूर्भुवःस्वःपतिं तथा ॥ ३९ ॥

ङेन्तं च भूपतिं च त्वं मे देहीति च दापय ।
वह्निजायान्वितो मन्त्रो वराहस्य वरानने ॥ ४० ॥

वराहमन्त्रोद्धार – फिर ॐ नमः भगवते वराहरूपाय भूर्भुवः स्वः पतये भूपतित्वं मे देहि दापय स्वाहा, हे वरानने यह वराह मन्त्र है ॥ ३९–४०॥

अनया विद्यया देवि वामकोणे प्रपूजयेत् ।
ॐ नमः पदमाभाष्य ङेन्तं नारायणं लिखेत् ॥ ४१ ॥

नारायणं दक्षकोणे क्रमेण परिपूजयेत् ।
वामदक्षिणयोः पूज्ये भूश्रियौ परमेश्वरि ॥ ४२ ॥

हे देवि ! इस विद्या से वामकोण में वराह भगवान् का पूजन करें । 'ॐ नमः नारायणाय' इस मन्त्र से नारायण की दाहिने कोण में पूजा करनी चाहिये। फिर हे परमेश्वरि ! बायें और दक्षिण भाग में भूमि और श्री देवियों का पूजन करना चाहिए ॥ ४१–४२ ॥

एकेन मनुना देवि कथयामि तवानघे ।
ॐ नमो हि पदं चान्नं मे देह्यन्नाधिपान्तङे ॥ ४३ ॥

तथेयमान्नं संलिख्य प्रदापय ततः परम् ।
वह्निजायान्वितो मन्त्रः संपुटीकृत्य योजयेत् ॥ ४४ ॥

ग्लौमात्मकेन रमया वामदक्षिणयोः क्रमात् ।
ततश्चर्तुर्दले पूज्या पश्चिमादिक्रमेण तु ॥ ४५ ॥

तारेणं परविद्यां च भुवनेशीं तदात्मना ।
कमलां रमया भद्रे कामेन सुभगां यजेत् ॥ ४६ ॥

हे अनघे ! ॐ नमो अन्नं में देहि अन्नाधिपतये, अन्नं प्रदापय स्वाहा ! इस मन्त्र को 'ग्लौं' इस मन्त्र से संपुटित कर बायें भूमि का पूजन करे और 'श्रीं' इस मन्त्र से संपुटित कर दक्षिण भाग में श्री देवी का पूजन करना चाहिए । इसके बाद चतुर्दल में पश्चिमादिक्रम से ॐ से पराविद्या, पुनः उसी से भुवनेशी का और रमा (श्रीं) से कमला का तथा काम (क्लीं) से सुभगा का यजन करे ॥ ४३–४६ ॥

वसुपत्रे महेशानि ब्राह्म्याद्याः पश्चिमादितः ।
षोडशारे परेशानि चन्द्रमण्डलरूपिणीः ॥ ४७ ॥

कलाः षोडश संपूज्याः पश्चिमादिक्रमेण हि ।
अमृता मानसी पुष्टिस्तुष्टिः प्रीती रतिस्तथा ॥ ४८ ॥

श्रीश्च ह्रीश्च स्वधा रात्रिर्ज्योत्स्ना हैमवती तथा ।
छाया च पूर्णिमा नित्या अमावास्या च षोडशी ॥ ४९ ॥

हे महेशानि ! इसके बाद अष्टदल पर पश्चिमादि क्रम से ब्राह्मी आदि आठ देवियों का पूजन करे ।

हे परेशानि ! षोडशार में चन्द्रमण्डलरूपिणी १६ कलाओं का पश्चिमादि क्रम से पूजन करना चाहिए। १. अमृता, २. मानसी, ३. पुष्टि, ४. तुष्टि, ५. प्रीति, ६. रति, ७. श्री, ८. ह्रीं, ९. स्वधा, १०. रात्रि, ११. ज्योत्स्ना, १२. हेमवती, १३. छाया, १४. पूर्णिमा, १५. नित्या और १६. अमावास्या – यह १६ कलायें हैं ॥ ४७–४९ ॥

शेषवर्णैः प्रपूज्यास्तु अन्नपूर्णान्तशब्दकाः ।
चतुरस्रे लोकपालान्क्रमेण परिपूजयेत् ॥ ५० ॥

इनमें शेष मन्त्र के (ॐ नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा) एक एक वर्ण को लगा करके इस प्रकार पूजन करना चाहिए–यथा ॐ नं अमृतायै अन्नपूर्णायै नमः, ॐ मों मानदायै अन्नपूर्णायै नमः, ॐ भं तुष्ट्यै अन्नपूर्णायै नमः इत्यादि (द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, पृ० २५५) । चतुरस्र में क्रमशः इन्द्रादि लोकपालों का पूजन करे ॥ ५० ॥

इत्युत्तरपतेः सम्यक्पूजितान्नसुवर्णदा ।
स्वशक्त्या या करोत्येव राजराजं धनाधिपम् ॥ ५१ ॥

इस प्रकार अन्नपति भगवती अन्नपूर्णा का सम्यक् पूजन अन्न और सुवर्ण प्रदान करने वाला है । जो अन्नपूर्णा अपनी शक्ति से केवल पूजन के ही द्वारा कुबेर को राजराजेश्वर तथा धनाधिप बना देती है ॥ ५१ ॥

सिद्धिप्रदा सिद्धिविद्या ममाप्यन्नप्रदा प्रिये ।
भुवनेश्वरभैरव्या भेदान्तरमथोच्यते ॥ ५२ ॥

हे प्रिये ! वही सिद्धिप्रदा सिद्धिविद्या हमें भी अन्न प्रदान करती है । अब भुवनेश्वरी भैरवी के अन्य भेदों को भी कहता हूँ ॥ ५१–५२ ॥

सहाद्या सैव देवेशि तदा स सकलेश्वरी ।
ध्यानपूजादिकं सर्वमेतस्या एव पार्वति ॥ ५३ ॥

हे देवेशि ! आदि में स ह लगा देने से ही सकलेश्वरी हो जाती है । हे पार्वति ! उनका ध्यान तथा पूजा आदि माता अन्नपूर्णा जी के समान ही करना चाहिए ॥ ५३ ॥

उत्तरस्यां वरारोहे सिंहासनमिदं दिशि ।
संपत्प्रदा भैरवी च विद्धि कौलेशभैरवी ॥ ५४ ॥

हे वरारोहे ! इनका सिंहासन उत्तरदिशा मे हैं। इन्हीं को संपत्प्रदा भैरवी और कौलेश भैरवी नाम वाली समझो ॥ ५४ ॥

हसराद्या भैरवी सा त्रिषु बीजेषु पार्वति ।
इयं तु सहराद्या स्यात्पूजाध्यानादिकं तथा ॥ ५५ ॥

ह स् र् इन आदि वर्णों वाली त्रिपुरा है । हे पार्वति ! यह इन तीनों बीजों में निवास करती हैं जब इनके आदि में स् ह र् बीज हो जाते हैं तो उनसे इनका ध्यान पूजन करना चाहिए ॥ ५५ ॥

एतस्या एव विद्याया आद्यन्ते रेफवर्जिते ।
तदेयं परमेशानि नाम्ना सकलभैरवी ॥ ५६ ॥

इन्हीं विद्या के आदि अन्त वाले उपरोक्त दोनों बीजों में जब 'रेफ' वर्जित कर दिया जाता है । (अर्थात ह्सौं स्हौ) तब यह सकल भैरवी नाम वाली हो जाती है ॥ ५६ ॥

संपत्प्रदा भैरवी च ध्यानपूजादिकं प्रिये ।
पञ्चसिंहासनमयी महात्रिपुरभैरवी ॥ ५७ ॥

हे प्रिये ! यह भैरवी ध्यान पूजादि करने से सम्पत्ति प्रदान करती है महात्रिपुरभैरवी तो पञ्चसिंहासनमयी हैं ॥ ५७ ॥

चतुराम्नायविद्याभिर्मान्यं सिंहासनं प्रिये ।
हस्त्रीमात्मकमुच्चार्य सह्रीमात्मकमद्रिजे ॥ ५८ ॥
शक्तिः सकलह्रीमन्ते चतुर्बीजमुदाहृतम् ।
श्रीबीजं कुरु तार्तीयं नित्या वेदाक्षरी भवेत् ॥ ५९ ॥
उन्मनी नाम विद्येयं भोगमोक्षफलप्रदा ।
पूर्वाम्नाये महाविद्या दक्षिणाम्नाय उच्यते ॥ ६० ॥

वाग्भवं बीजमुच्चार्य क्लिन्ने कामस्य बीजकम् ।
मदद्रवे कुले हस्रौ विद्येयं भोगिनी प्रिये ।। ६१ ।।
दक्षिणाम्नायविद्येयं पश्चिमाम्नाय उच्यते ।

हे प्रिये ! इनका सिंहासन चतुराम्नाय विद्याओं से मान्य है। हे अद्रिजे! 'ह स्त्रीं' का उच्चारण कर 'स्ह्रीम्' उच्चारण करे, इसमें तीसरा श्री बीज (श्रीम्) का उच्चारण करें तो यह नित्यावेदाक्षरी हो जाती है। यथा–हस्त्रीं स ह्रीं, श्रीं ह्रीम् (सकल ह्रीम्)। यह उन्मनी नाम की विद्या है जो भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करने वाली है यह पूर्वाम्नाय की विद्या है। अब दक्षिणाम्नाय की विद्या कहता हूँ । पहले वाग्भव (ऐं) का उच्चारण कर 'क्लिन्ने', फिर काम के बीज (द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः) का उच्चारण कर 'मदद्रवे कुलेहस्रौः' कहे । हे प्रिये ! यह भोग देने वाली महाविद्या है, जो दक्षिणाम्नाय की विद्या कही जाती हैं । अब साधकों के लिए पश्चिमाम्नाय की विद्या भी कहता हूँ ।। ५८–६२ ।।

वाग्भवं च परा श्रीश्च हसखफ्रोमिति प्रिये ।। ६२ ।।
हस्रौभस्तास्ततो देवि पञ्चैते प्रणवाः स्मृताः ।
भगवत्यम्ब आलिख्य पृथक्पदमथेश्वरि ।। ६३ ।।
चतुर्थं प्रणवं चैव हसकफ्रोमिति प्रिये ।
कुब्जिके चैव हस्रां च हस्रीं हस्रौ ततः परम् ।। ६४ ।।
अघोरे चैव घोरे च त्वघोरमुखि चाऽऽलिखेत् ।
हस्रां हस्रीं किणिद्वन्द्व विच्चे द्वात्रिंशदक्षरी ।। ६५ ।।
पूर्वोक्तैः प्रणवैर्देवि संपुटीकृत्य संस्मरेत् ।
कुब्जिकेयं महाविद्या पश्चिमाम्नायदेवता ।। ६६ ।।

१. वाग्भव (ऐं), २. परा (ह्रीं), ३. श्री (श्रीं), फिर ४. ह्स स् ख् फ् रोम्, फिर ५. हस्रौभस्ताः – ये पाँच प्रणव कहे गये हैं। इन पाँच प्रणवों के बाद 'भगवत्यम्ब' लिख कर 'ईश्वरि' यह पृथक् पद लिखे । फिर चतुर्थप्रणव ह स ख् फ् रोम्' लिखे । फिर कुब्जिके 'ह, स्रां, हस्रीं, हस्रौः' इसके बाद 'अघोरे घोरे घोरमुखि' लिखे। पुनः 'हस्रां हस्रीं, दो बार किणि (किणि किणि), फिर 'विच्चै' लिखे । हे देवि ! इस ३२ अक्षरों वाले मन्त्र को पूर्वोक्त प्रथम पाँच प्रणव से संपुटित करें तो यह कुब्जिका महाविद्या कही जाती है जो पश्चिमाम्नाय की विद्या हैं ।। ६२–६६ ।।

खफ्रेमात्मकमुच्चार्य महाचण्डपदं लिखेत् ।
योगेश्वरीपदं पश्चाद्विद्येयं कालिका प्रिये ।। ६७ ।।

उत्तराम्नायविद्येयं नाम्ना कालीति विश्रुता ।
एताभिः परमेशानि पूज्यं सिंहासनं सदा ॥ ६८ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे सिंहासनविद्याविधानं नाम नवमः पटलः ॥ ९ ॥

'ख् फ्रें' का उच्चारण कर, महाचण्ड पद लिखे। पश्चाद् 'योगीश्वरि' पद लिख कर, हे प्रिये 'कालिका' लिखे। यह काली नाम की महाविद्या हैं । जो उत्तराम्नाय की विद्या कही जाती हैं। हे परमेश्वरि! इन इन मन्त्रों से तत्तत्सिंहासनों की पूजा करनी चाहिए ॥ ६७—६८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'सिंहासन विद्याविधान' नामक नवम पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ९ ॥

अथ दशमः पटलः

श्री देव्युवाच —

त्रिपुरा द्विविधा देव भवता प्रकटी कृता ।
त्रिविधेति यदुक्तं तत्प्रकटी कुरु शंकर ॥ १ ॥

श्रीदेवी ने कहा — हे देव ! आप ने त्रिपुरा के दो भेद कहे। इसके पहले आप ने तीन भेद कहे थे, अतः हे शङ्कर! शेष भेद भी कहिए ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच —

परं ब्रह्मस्वरूपं यन्नादबिन्दुत्रयात्मकम् ।
शिवशक्तिमयं तत्तु कथयामि तवानघे ॥ २ ॥

ईश्वर ने कहा — हे अनघे! जो ब्रह्मस्वरूप, नादबिन्दुत्रयात्मक एवं शिवशक्तिमय है उसे मैं आपसे कह रहा हूँ ॥ २॥

व्याप्य तिष्ठति विश्वं सा शिवं च परमेश्वरि ।
पूर्वं गुणैस्तु कथिता शिवशक्त्यात्मकं शणु ॥ ३ ॥

हे परमेश्वरि ! पूर्व में हम कह आये हैं कि वह गुणों से सारे विश्व को तथा शिव को भी व्याप्त कर स्थित है अतः उस शिवशक्त्यात्मक तत्त्व को सुनिए ॥ ३ ॥

हकारादिसकारान्ता मातृका शक्तिरव्यया ।
हकारः परमेशानि केवलं शिव उच्यते ॥ ४ ॥

आदि में 'ह' अन्त में 'स' यह अव्यया मातृका शक्ति है । हे परमेशानि ! केवल 'हकार' शिव कहा जाता है ॥ ४ ॥

आद्यन्ताक्षरभावेन तदाऽहं सकलात्मकः।
यदुच्यते मातृकार्णैस्तत्सर्वमहमीश्वरि ॥ ५ ॥

जब आदि अ और अन्त के अक्षर 'ह' एक हो जाने पर अहं (मैं) सकलात्मक (सगुण) हो जाता हूँ, तब मातृका वर्णों से जो कहा जाता है, हे ईश्वरी ! वह सब मैं ही होता हूँ ॥ ५ ॥

हकारः परमेशानि शून्यरूपी सदाऽव्ययः ।
सकारः शक्तिरूपत्वात्परावाची विसर्गवान् ॥ ६ ॥

हे परमेशानि ! हकार शून्य है और सदा विकार रहित है । सकार शक्ति रूप होने से पराशक्ति का वाचक है और सृष्टिकर्त्ता हैं ॥ ६ ॥

उत्पत्तेः कारणं यस्माच्छक्तिरित्यभिधीयते ।
आत्मानं दर्शयेद्योगः सोऽहंशब्देन सुन्दरि ॥ ७ ॥

क्योंकि वह उत्पत्ति का कारण है, अतः उसे शक्ति कहा जाता है । हे सुन्दरि ! इस प्रकार सः अहं दोनो मिल जाने पर आत्मा का दर्शन करा देते हैं ॥ ७ ॥

बिन्दुत्रयसमायोगान् महात्रिपुरसुन्दरी ।
नादरूपेण सा देवी हकारार्धस्वरूपिणी ॥ ८ ॥
हकारः परमेशानि शिवरूपी यतस्तदा ।
तस्यार्धाङ्गं महाशक्तिर्हकारार्धस्वरूपिणी ॥ ९ ॥

तीन बिन्दुओं का इसमें संयोग है इसलिये उसे महात्रिपुरसुन्दरी कहते हैं नाद रूप होने से वह हकारार्धस्वरूपिणी हैं। हे परमेशानि! उस समय वह अर्ध हकार शिव स्वरूप वाला बन जाता है उसका आधा अङ्ग हकारार्धस्वरूपिणी महाशक्तिस्वरूप हो जाता है ॥ ८–९ ॥

अत एव महाविद्या महात्रिपुरसन्दरी ।
नित्येति कथ्यते देवि चित्कला परमेश्वरी ॥ १० ॥

हे देवि! इसलिये वह महाविद्या, महात्रिपुरसुन्दरी, नित्या, चित्कला, एवं परमेश्वरी कही जाती है ॥ १० ॥

श्रीगुरोः कृपया भद्रे संप्रदायकुलान्वितः ।
प्रातरुत्थाय देवेशि गुरुं नत्वा स्वनामभिः ॥ ११ ॥

हे भद्रे ! साधक स्वगुरु की कृपा प्राप्त कर (मन्त्र ग्रहण कर) अपने संप्रदायानुसार प्रातःकाल उठ कर, हे देवेशि ! अपना नाम ग्रहण कर गुरु का अभिवादन करे ॥ ११ ॥

विमर्श – *अमुक गोत्रोऽमुकोऽहं भो गुरों त्वामहमभिवादये।*

संध्यास्नानादिकं देवि विधाय मनुवित्तमः ।
सर्वशृङ्गारवेषाढ्यः कर्पूरघुसृणादिभिः ॥ १२ ॥

महार्हैश्चन्दनाद्यैश्च दीप्ताङ्गः कुङ्कुमारुणः ।
नवरत्नविभूषाढ्यो रक्ताम्बरविराजितः ॥ १३ ॥

तदनन्तर मन्त्रवेत्ता साधक सन्ध्या स्नानादि नित्य कर्म का सम्पादन कर कर्पूर इत्रादि सुगन्धित पदार्थों से तथा अत्यन्त महार्ह चन्दनादि से कुङ्कुम के समान अरुणवर्ण, तेजस्वी सर्वशृङ्गार युक्त वेशों से अपने को सुन्दर ढंग से सजावें ॥ १२–१३ ॥

ताम्बूलरागवदनो मदिरानन्दमानसः ।
यागमन्दिरमागत्य लाक्षाचित्रविचित्रितम् ॥ १४ ॥

मुख में ताम्बूल धारण करते हुये मदिरानन्द से प्रसन्न मानस यज्ञ मण्डप में पधारे जो यागमन्दिर लाक्षा के रङ्ग से चित्र विचित्र हो गया हो ॥ १४ ॥

अनेकधूपबहलं पुष्पप्रकरपूरितम् ।
गोमयेन च संलिप्तं चारुपुष्पवितानितम् ॥ १५ ॥

वह यज्ञ मन्दिर अनेक प्रकार से धूपों से सुगन्धित, पुष्प समूहों से परिपूर्ण, गोमय से उपलिप्त तथा मनोहर पुष्पवितान से संयुक्त होना चाहिए ॥ १५ ॥

मनोहरे मृदुश्लक्ष्ण आसने उपविश्य तु ।
मन्त्रोद्धारं प्रकुर्वीत सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ १६ ॥

इस प्रकार के यज्ञ मन्दिर में अत्यन्त मृदु, कोमल एवं मनोहर आसन पर बैठ कर अपने समस्त कार्यों की सिद्धि के लिए मन्त्रोद्धार करे ॥ १६ ॥

आद्यं वाग्भवमुच्चार्य कामराजं द्वितीयकम् ।
कुमार्यास्तु तृतीयं तु त्रिपुरा परमेश्वरी ॥ १७ ॥

सर्वप्रथम आद्य वाग्भव (ऐं) का उच्चारण, फिर द्वितीय कामराज बीज (क्लीं) तथा तदनन्तर तृतीय कुमारी बीज (सौः) का उच्चारण करना चाहिए । यही त्रिपुरा परमेश्वरी है ॥ १७ ॥

करशुद्धिकरी विद्या प्रथमा परमेश्वरि ।
कुमारी तु द्वितीया स्यात्त्रिपुरेशी महेश्वरि ॥ १८ ॥

त्रिपुरेश्यादिमं त्यक्त्वा भुवनेशीं परिक्षिपेत् ।
अनयाऽऽत्मासनं दद्यात्त्रिपुरेश्या षडङ्गकम् ॥ १९ ॥

हे परमेश्वरि ! इसमें प्रथमा (ऐं) कर शुद्धिकरी विद्या है । हे महेश्वरि ! द्वितीया त्रिपुरेशी कुमारी विद्या कही जाती है । त्रिपुरेशी के आदि (ऐं) को हटा कर जब उस स्थान पर भुवनेशी का उच्चारण करे, तो इससे आत्मासन प्रदान करना चाहिए । इसके अनन्तर त्रिपुरेशी के मन्त्र से षडङ्ग करना चाहिए।

विमर्श–(यथा ह्रीं क्लीं सौः देव्यासनाय नमः) ऊँ ह्रीं हृदयाय नमः हृदि, ॐ क्लीं शिरसे स्वाहा आदि दो आवृत्ति में आत्मासन प्रदान करे ।।१८–१९।।

त्रिपुरेशी महेशानि त्रिबीजा हस्थिता यदा ।
चक्रासनगतां देवि विद्धि त्रिपुरवासिनीम् ।। २० ।।

हे महेशानि ! जब त्रिबीजा त्रिपुरेश्वरी ह पर स्थित रहती हैं तब हे देवि! उन्हें चक्रासन पर स्थित त्रिपुरवासिनी समझना चाहिए ।। २० ।।

त्रिपुरेशी महेशानि वाग्भवे कामराजके ।
शिवचन्द्रसमायुक्ता तार्तीये शिवरूपिणी ।। २१ ।।

हे महेशानि ! जब वही त्रिपुरेशी वाग्भव (ऐं) एवं कामराज (क्लीं) पर तथा शिव (ह) और चन्द्र (स्) से युक्त हो कर तृतीय बीज (सौः) पर युक्त हो जाती है तब वही शिवस्वरूपिणी हो जाती हैं ।। २१ ।।

सर्वमन्त्रासनगता त्रिपुरा श्रीरियं प्रिये ।
आत्मासनगतायास्तु हित्वा तार्तीयमद्रिजे ।। २२ ।।
ब्लेमात्मकमारोप्य साध्यसिद्धासनस्थिता ।
(त्रिपुरामालिनी प्रोक्ता सिद्धाख्यां त्रिपुरां शृणु ।। २३ ।।

हे प्रिये ! यह त्रिपुरा श्रीं (विद्या) सभी मन्त्रों वाले आसन के लिए बताई गई हैं । आत्मासन के लिए तो तृतीय (सौः) को छोड़ कर उसके स्थान पर ब्लें उच्चारण करें । यह साध्य सिद्धासन स्थिता कही जाती है। यहाँ तक त्रिपुरामालिनी के बारे में बतलाया गया । अब हे प्रिये! सिद्धा त्रिपुरा के मन्त्र को सुनिए ।। २२–२३ ।।

भुवनेशी श्रिया युक्ता कुमारी च तथोत्तमा ।
मूर्तिविद्या समुद्दिष्टा माया लक्ष्मीः परास्थिता ।। २४ ।।

श्री से युक्त भुवनेशी (श्रीं ह्रीं) फिर कुमारी सौः यह सिद्धा त्रिपुरा देवी का मन्त्र हैं। माया (ह्रीं), लक्ष्मी (लं) और परा (श्रीं) पर स्थित यह मूर्त्ति विद्या कही गई है ।। २४ ।।

अनया विद्यया देवि यजेत्त्रिपुरसिद्धिकाम्।)।
मायालक्ष्म्योस्तु बीजे द्वे शक्तिबीजं तृतीयकम् ॥ २५ ॥

त्रिपुराद्या त्र्यम्बिकेयमष्टमी परिकीर्तिता ।
संपत्प्रदा भैरवी या तस्यास्तार्तीयबीजके ॥ २६ ॥

बिन्दुं हित्वा तत्र सर्गं निक्षिपेत्सुरसुन्दरि ।
अनयाऽऽवाहनं देवि कारयेत्सुरवन्दिते ॥ २७ ॥

मूर्तिविद्या समुद्दिष्टा माया लक्ष्मीः परा स्थिता ।
अनया विद्यया देवि यजेत्त्रिपुरसिद्धिदा {म्} ॥ २८ ॥

हे देवि ! इस विद्या से सिद्धा त्रिपुरा का पूजन करना चाहिए । माया (ह्रीं) और लक्ष्मी (लं) – यह दो बीज, इसके बाद तृतीय शक्ति बीज (ह्री) – यह आठवीं त्र्यम्बिका त्रिपुरा का मन्त्र है । संपत्प्रदा भैरवी (द्र० ९. ५४–५७) मन्त्र जिसे पहले ही कहा जा चुका हैं उसके तृतीय बीज में बिन्दु को हटा कर विसर्ग कर दे । हे सुरसुन्दरि ! हे सुरवन्दिते ! इससे आवाहन करना चाहिए, माया, लक्ष्मी तथा परा से युक्त (द्र० १०.२४) मूर्त्ति मन्त्र होता है । यह पहले हम कह आये हैं । हे देवि ! इस मूर्त्ति विद्या से त्रिपुर सिद्धिदा का पूजन करना चाहिए।। २५–२८ ॥

सिद्धाम्बावाहिनीमूर्तिर्विद्या च सुरसुन्दरि ।
मूलविद्यां शृणु प्रौढे सकलागमसेविताम् ॥ २९ ॥
सर्वदर्शनवन्द्यां च चित्कलामव्ययां प्रिये ।

हे सुरसुन्दरि ! सिद्धाम्बा तथा मूर्त्तिविद्या आवाहन के मन्त्र हैं । अब, हे प्रौढे ! सम्पूर्ण मन्त्र शास्त्रों से सेवित सर्वदर्शनवन्द्या चित्कला स्वरूपा अव्यया मूलविद्या को सुनिए ॥ २९–३० ॥

मेरुमन्त्रविधानम्

भूमिश्चन्द्रः शिवो माया शक्तिः कृष्णाध्वमादनौ ॥ ३० ॥
अर्धचन्द्रश्च बिन्दुश्च नवार्णो मेरुरुच्यते ।
महात्रिपुरसुन्दर्या मन्त्रा मेरुसमुद्भवाः ॥ ३१ ॥

भूमि (ल) चन्द्र (स) शिव (ह) माया (ह्रीं) शक्तिं (क्लीं) कृष्णाध्वा (र) मादन (क) अर्धचन्द्र (अनुस्वार) और बिन्दु – इन्हीं नव अक्षरों का मेरुमन्त्र कहा गया है । महात्रिपुरसुन्दरी के सभी मन्त्र इसी मेरु से उत्पन्न कहे गए हैं ॥ ३०–३१ ॥

लकारात्पृथिवी देवि सशैलवनकानना ।
पञ्चाशत्पीठसंपन्ना सर्वतीर्थमयी परा ॥ ३२ ॥
सर्वगङ्गामयी सर्वक्षेत्रस्थानमयी शिवे ।

हे देवि ! भूमिरूप लकार से शैल, वन एवं काननों सहित ५० पीठों वाली, सर्वतीर्थमयी, परा, सर्वगङ्गामयी, सर्वक्षेत्रमयी एवं सर्वस्थानमयी पृथ्वी शक्ति समझना चाहिए ॥ ३२ ॥

सकाराच्चन्द्रतारादिग्रहराशिस्वरूपिणी ॥ ३३ ॥
हकाराच्छिवसंवादव्योममण्डलसंस्थिता ।
ईकाराद्विश्वकर्त्रीयं माया तुर्यात्मिका प्रिये ॥ ३४ ॥

हे शिवे ! चन्द्र रूप सकार से चन्द्र, तारा, ग्रह, राशिस्वरूपिणी आकाश शक्ति समझना चाहिए तथा शिवस्वरूप हकार से व्योम मण्डल संस्थिता शिव शक्ति समझना चाहिए । हे प्रिये ! ईकार से विश्वकर्त्री चतुर्थी माया समझना चाहिए ॥ ३३–३४ ॥

एकाराद्वैष्णवी शक्तिर्विश्वपालनतत्परा ।
रकारात्तेजसा युक्ता परं ज्योतिः स्वरूपिणी ॥ ३५ ॥

वैष्णवी एकार से विश्वपालनतत्परा वैष्णवी शक्ति समझना चाहिए । कृष्णाध्व (अग्नि) बीज र से तेजसा युक्ता परं ज्योतिः स्वरूपिणी शक्ति समझना चाहिए ॥ ३५ ॥

ककारात्कामदा कामरूपिणी स्फुरदव्यया ।
अर्धचन्द्रेण देवेशि विश्वयोनिरितीरिता ॥ ३६ ॥

मादन ककार से कामरूपिणी कामदा शक्ति जो सर्वत्र स्फुरित हो रही हैं और अव्यय हैं, उसे समझना चाहिए। हे देवेशि ! अर्धचन्द्र से विश्वयोनि शक्ति कही गई हैं ॥ ३६ ॥

बिन्दुना शिवरूपेण शून्यरूपेण साक्षिणी ।
अनया सह सर्वत्र व्याप्तिनिश्चलताऽऽत्मना ॥ ३७ ॥

शिव स्वरूप बिन्दु से शून्य रूपा साक्षिणी शक्ति समझना चाहिए। इसके साथ आत्मा सर्वत्र निश्चल रूप से व्याप्त है ॥ ३७ ॥

एवं परब्रह्मरूपा मेरुणाऽनेन सुव्रते ।
एभिर्नवात्मकैर्वर्णैर्जायते त्रिपुरामनुः ॥ ३८ ॥

हे सुब्रते! इस प्रकार के मेरु से परब्रह्मस्वरूपा भगवती का बोध होता है। इन्हीं ९ वर्णों से त्रिपुरा मन्त्र की उत्पत्ति होती है।। ३८ ।।

अन्यथा नैव निष्पत्तिर्नास्ति श्रीत्रिपुरामनौ ।
श्रीचक्रमपि देवेशि मेरुरूपं न संशयः ।। ३९ ।।

अन्यथा श्रीत्रिपुरा मन्त्र की अन्य किसी से उत्पत्ति की संभावना नहीं है। हे देवेशि ! श्रीचक्र भी मेरु स्वरूप हैं, इसमें संशय नहीं ।। ३९ ।।

लकारः पृथिवीबीजं तेन भूबिम्बमुच्यते ।
सकारश्चन्द्रमा भद्रे कलाषोडशकात्मकः ।। ४० ।।

यन्त्रगत लकार पृथ्वीबीज है अतः उसे भू बिम्ब कहा जाता है । हे भद्रे! सकार चन्द्रात्मक है जिसमें षोडशकलाओं का निवास है ।। ४० ।।

तस्मात्षोडशपत्रं तु हकारः शिव उच्यते ।
अष्टमूर्तिः सदा भद्रे तस्माद्वसुदलं भवेत् ।। ४१ ।।

इस कारण षोडश पत्र सकारात्मक चन्द्रमा है । हे भद्रे ! शिव अष्टमूर्त्ति हैं। इसलिये अष्टदल कमल हकार रूप शिव कहा जाता है ।। ४१ ।।

ईकारस्तु महामाया भुवनानि चतुर्दश ।
पालयन्तो परा तस्माच्छक्रकोणं भवेत्प्रिये ।। ४२ ।।

ईकार महामाया है जो चतुर्दश भुवनों का पालन करती है और यह परा है अतः इसे, हे प्रिये ! चतुर्दशदलात्मक समझना चाहिए ।। ४२ ।।

शक्तिरेकादशस्थाने स्थित्वा सूतै जगत्त्रयम् ।
विश्वयोनिरिति ख्याता सा विष्णुर्दशरूपकम् ।। ४३ ।।

एक मात्र शक्ति दश स्थान पर स्थित हो कर तीनों जगत् को उत्पन्न करती हैं। इस कारण उसे विश्वयोनि भी कहते हैं, इसीलिये विष्णु के दशावतार भी कहे गये है ।। ४३ ।।

रकारात्परमेशानि चक्रं व्याप्य विजृम्भते ।
दशकोणकरी यस्माद्रकारो ज्योतिरव्ययः ।। ४४ ।।

हे परमेशानि ! रकार से व्याप्त होने के कारण श्रीचक्र बढ़ता है। इसलिये रकार अव्यय है, और यह ज्योति है क्योंकि यह दशकोणात्मक है ।। ४४ ।।

कलादशान्वितो वह्निर्दशकोणप्रकारकः ।
ककारान्मदनो देवि शिवश्चाष्टस्वरूपकः ।। ४५ ।।

योनिवश्यं तदा चक्रे वसुयोन्यङ्कितं भवेत् ।
अर्धमात्रा गुणान्सूते नादरूपा यतस्ततः ॥ ४६ ॥
त्रिकोणरूपा योनिस्तु बिन्दुना बैन्दवं भवेत् ।
कामेश्वरस्वरूपं तु विश्वाकारस्वरूपकम् ॥ ४७ ॥

दशकलात्मक वह्नि श्री चक्र में दशकोणों के रूप में स्थित है। हे देवि ! ककार से मदन तथा शिव अष्ट स्वरूप कहे गये हैं, जो योनि के वृक्ष में रहने वाले हैं।.इसलिये चक्र में आठ योनियाँ बनाई जाती है । नाद रूप अर्ध मात्रा जहाँ तहाँ गुणों को उत्पन्न करती है। योनि त्रिकोणात्मक है, बिन्दु से युक्त होने के कारण वह स्थान वैन्दव कहा जाता है। यह बिन्दु कामेश्वर का स्वरूप है जो विश्व के आकार तथा स्वरूप वाला है ॥ ४५–४७ ॥

श्रीचक्रं तु वरारोहे श्रीविद्यार्णवसंभवम् ।
तत्र प्राङ्मुख आसीनश्चक्रराजं समालिखेत् ॥ ४८ ॥

हे वरारोहे ! श्रीचक्र श्रीविद्या के वर्ण से उत्पन्न हुआ है। पूर्वाभिमुख बैठकर इस चक्रराज को लिखना चाहिए ॥ ४८ ॥

भूप्रदेशे समे वर्ये सिन्दूररजसाऽथ वा ।
कुङ्कुमस्य रजोभिस्तु भूमौ चक्रं समालिखेत् ॥ ४९ ॥
ऋजुरेखं नेत्ररम्यं सन्धिभेदसमं ऋजु ।
अथ वा हेमरौप्याभ्यां ताम्रेण बहुधातुभिः ॥ ५० ॥
पट्टं विरच्य श्रीखण्डरक्तचन्दनसंभवे ।
पट्टे संस्थाप्य विलिखेल्लेखन्या हेमया प्रिये ॥ ५१ ॥

श्रेष्ठ समतल भूमि में, सिन्दूर के रज से अथवा कुङ्कुम के रज से चक्र यन्त्र बनाना चाहिए। श्रीचक्र की रेखायें ऋजु तथा नेत्राह्लादकारिणी होनी चाहिए। रेखा एवं सन्धि के स्थान भी समान और सीधे होने चाहिए। सुवर्ण का, चाँदी का, ताँबें का तथा अनेक धातुओं का पट्ट निर्माण करना चाहिए अथवा चन्दन का अथवा हे प्रिये! रक्तचन्दन का पट्ट निर्माण कर सोने की लेखनी से श्री चक्र लिखना चाहिए ॥ ४९–५१ ॥

रोचनाकुङ्कुमाभ्यां तु कस्तूरीचन्दनेन्दुभिः ।
ईशानादग्निपर्यन्तमृजुरेखां समालिखेत् ॥ ५२ ॥

ईशादग्नेस्तदग्राभ्यां रेखे आकृष्य देशिकः ।
एकीकृत्य च वारुण्यां शक्तिरेखा परा प्रिये ॥ ५३ ॥
त्रिकोणाकाररूपेयं तस्या उपरि संलिखेत् ।
त्रिकोणाकाररूपं तु शक्तिद्वयमुदाहृतम् ॥ ५४ ॥
पूर्वशक्त्यग्रभागे तु मानयष्टिवदालिखेत् ।
रेखा तु परमेशानि वायुराक्षसकोणगाम् ॥ ५५ ॥
सन्धिभेदक्रमेणैव तयोः शक्त्योस्ततः परम् ।
रेखे आकृष्य कोणाभ्यां तदग्रात्पूर्वगे कुरु ॥ ५६ ॥
वह्निमण्डलमेतत्तु पूर्वाग्रं वीरवन्दिते ।
चक्रत्रयमभूत्तत्र ततः शृणु वरानने ॥ ५७ ॥

गोरोचन, कुङ्कुम, कस्तूरी तथा चन्दन एवं कपूर को एक में मिलाकर ईशान से अग्नि कोण पर्यन्त सीधी रेखा खींचे। फिर ईशान और अग्नि से आगे दो दो रेखा खींच कर दोनों को पश्चिम दिशा में मिला देवे । हे प्रिये! यही पर शक्ति रेखा हैं । इस प्रकार जब त्रिकोण का आकार बन जाय तब उसके ऊपर त्रिकोणाकार रूप दो शक्तिरेखा और खींचे । पूर्वशक्ति के अग्रभाग में मानयष्टि (नापने की लकड़ी) के समान लिखे । फिर हे परमेशानि ! वायव्य कोण से नैर्ऋत्यकोण पर्यन्त रेखा, उन दोनो शक्ति रेखाओं की सन्धि का भेद करते हुये खींचे, फिर दोनों कोणों से दो रेखा खींच कर उसके आगे से पूर्व की ओर मिला देवें। हे वीरवन्दिते ! यही पूर्वाग्र भाग वह्निमण्डल है — इस प्रकार तीन चक्र बन जाते हैं। हे वरानने ! इसके बाद सुनिए ॥ ५२—५७ ॥

पूर्वशक्तीशवह्निभ्यां कोणाभ्यां सुरवन्दिते ।
पूर्वरेखां तु विस्तार्य तथा पश्चिमवह्नितः ॥ ५८ ॥
वायुराक्षसकोणाभ्यां रेखां पश्चिमगां तथा ।
विस्तार्य योजयेद्देवि संधिभेदक्रमेण तु ॥ ५९ ॥

हे सुरवन्दिते ! पूर्व दिशा में स्थित शक्तीश (ईशान) वह्नि (आग्नेय) कोणों से पश्चिम आग्नेयकोण से पूर्व रेखा को विस्तृत करे । फिर वायव्य और नैर्ऋत्य कोण से पश्चिम की ओर रेखा खींच कर, हे देवि ! सन्धि स्थल पर उसे मिला देवे ॥ ५८—५९ ॥

योन्यग्रगां पूर्वदेशे दक्षिणोत्तरतः क्रमात् ।
तथा रेखे वह्निसंस्थे पश्चिमस्यां दिशि क्रमात् ॥ ६० ॥
कोणाग्राभ्यां योजयित्वा दशकोणं तथा भवेत् ।

तथैव देवदेवेशि द्वितीयं दशकोणकम् ॥ ६१ ॥
ईशानवह्निगे रेखे पूर्वयोन्यग्रयोः क्रमात् ।
विस्तार्य योजयेत्पश्चात्पश्चिमायां दिशि क्रमात् ॥ ६२ ॥
वायुराक्षसकोणाग्ने रेखे विस्तार्य सुन्दरि ।
पश्चिमाग्रे तथा देवि योजयेदिन्द्रदिग्गते ॥ ६३ ॥
एकत्र पूर्वकोणाग्रचुम्बिनी तु मनोहरा ।
योजयेद्देवदेवेशि यथा पङ्क्त्यस्त्रकं भवेत् ॥ ६४ ॥
दक्षकोणस्य देवेशि त्यक्त्वा कोणचतुष्टयम् ।
दशकोणान्तरे देवि मध्ये रेखे प्रकाशयेत् ॥ ६५ ॥
द्वे दक्षिणे विभागे तु तथा चोत्तरभागके ।
षट्कोणस्य ततो देवि सन्धिभेदक्रमेण तु ॥ ६६ ॥
योनिं वह्निं च संयोज्य शकारं जायते सदा ।
कक्षामध्यगता रेखा ऋजुरूपास्तु योजयेत् ॥ ६७ ॥
ऋज्वाकृति यथा देवि जायतेऽतिमनोहरम् ।
संमुखं पञ्चशक्त्यग्रं प्राग्वक्त्रं चतुरग्निकम् ॥ ६८ ॥
बिन्दुत्रिकोणे वस्वारचक्रमेतद्वरानने ।
चक्रमध्यं तु जानीहि दशारयुगलं तथा ॥ ६९ ॥

श्रीविद्या के चित्र से श्लोक सं० ६० से ६९ तक के श्लोकों की हिन्दी स्पष्ट है ॥ ६०—६९ ॥

शक्रयोन्यङ्कितं देवि बाह्यमध्यगतं भवेत् ।
एतच्चक्रं महेशानि सर्वसौभाग्यवर्धनम् ॥ ७० ॥
सर्वसाम्राज्यदं देवि सर्वोपद्रवनाशनम् ।
अनेकरत्नमाणिक्यसुवर्णपरिपूरकम् ॥ ७१ ॥
महामोक्षप्रदं देवि वाग्विलासकरं महत् ।
एतद्बाह्ये महेशानि वृत्तं पूर्णेन्दुसंनिभम् ॥ ७२ ॥
तद्युक्तं कुरु मीनाक्षि वसुपत्रं मनोहरम् ।
ततः षोडशपत्रं तु विलिखेत्सुरवन्दिते ॥ ७३ ॥
तद्बाह्ये देवदेवेशि निवृत्तं मातृकान्वितम् ।
चतुरस्त्रं चतुर्द्वारसहितं परमेश्वरि ॥ ७४ ॥

चतुःषष्टियुताः कोट्यो योगिनीनां महौजसाम् ।
चक्रेस्मिन्संनिविष्टास्ताः साधकं मानयन्ति हि ॥ ७५ ॥

हे देवि! बाहर के मध्य में १४ त्रिकोणों से युक्त यह श्रीचक्र सर्वसौभाग्य वर्धक, सर्वसाम्राज्यप्रद, सर्वोपद्रवनाशक—अनेक रत्न, मणि, माणिक्यों से साधक को पूर्ण करने वाला महामोक्षप्रद वाणी विलास कर रहे हैं। हे महेशानि! इस चक्र के बाहर पूर्ण चन्द्र के समान गोल वृत्त निर्माण करना चाहिए। फिर हे मीनाक्षी ! उस वृत्त में मनोहर अष्टदल कमल निर्माण करना चाहिए, हे सुरवन्दिते! उसके बाद बाहर पुनः षोडशदल कमल का निर्माण करें। हे देवदेवेशि ! उसके बाहर मातृका युक्त चतुर्द्वार सहित चतुरस्र भूपुर का निर्माण करना चाहिए। हे परमेश्वरि ! इस चक्र में अत्यन्त तेजस्वी योगिनियों का समूह सन्निविष्ट रह कर साधक का आदर करती हैं।। ७०—७५ ॥

चतुरस्रं मातृकार्णैर्मण्डितं सिद्धिहेतवे ।
मुक्तामाणिक्यघटितं समस्थलविराजितम् ॥ ७६ ॥

त्रैलोक्यमोहनं नाम कल्पद्रुमफलप्रदम् ।
षोडशारं चन्द्रबिम्बरूपं तु सकलालयम् ॥ ७७ ॥

सर्वाशापूरकं भद्रे स्रवत्पीयूषवर्षणम् ।

साधक अपने मनोभीष्टसिद्धि के लिए चतुरस्र भूपुर को मातृका वर्णों से मण्डित करे और समतल भूमि पर बनाये गये इस चतुरस्र को मोती और मणियों से मण्डित करें। यह चतुरस्र भूपुर त्रैलोक्य मोहन नाम वाला है जो कल्पद्रुम के समान फल प्रदान करता है। अपनी षोडशकलाओं से युक्त चन्द्रविम्बस्वरूप यह षोडशार सभी आशाओं को पूर्ण करने वाला है इससे अमृत बिन्दुओं की वर्षा होती रहती है।। ७६—७८ ॥

अष्टपत्रं महेशानि जपाकुसुमसंनिभम् ॥ ७८ ॥

सर्वसंक्षोभणं नाम सर्वकामप्रपूरकम् ।
एतत्त्रयं महेशानि सृष्टिचक्रं सुखप्रदम् ॥ ७९ ॥

हे महेशानि ! जपाकुसुम के सदृश लालवर्ण वाला अष्टपत्र सभी को संक्षोभण करने वाला तथा सभी आशाओं (मनोरथों) को पूर्ण करने वाला है । हे महेशानि! इस प्रकार भूपुर, षोडशार और अष्टपत्र — ये तीनों सुखदायक सृष्टिचक्र कहे गये हैं ॥ ७८—७९ ॥

पूर्वाम्नायाधिदेव्या तु मण्डितं सर्वसिद्धिदम् ।
चतुर्दशारं देवेशि दाडिमीकुसुमप्रभम् ॥ ८० ॥

अनन्तफलदं भद्रे सर्वसौभाग्यसंप्रदम् ।
दशारं तप्तहेमाभं सिन्दूरसदृशं प्रिये ॥ ८१ ॥
सर्वार्थसाधकं चक्रं मनश्चिन्तितदं सदा ।
द्वितीयमपि पङ्क्त्यस्त्रं जपाकुसुमसंनिभम् ॥ ८२ ॥
सर्वरक्षाकरं चक्रं महाज्ञानमयं शिवे ।
एतत्त्रयं महेशानि स्थितिचक्रं सुखप्रदम् ॥ ८३ ॥

(यह सृष्टिचक्र) पूर्वाम्नाय में कही गई अधि देवियों से मण्डित तथा सब प्रकार की सिद्धियों को देने वाला है । हे देवेशि ! चतुर्दशार जो अनार के पुष्प के समान वर्ण वाला है अनन्त फल देने वाला तथा सर्वसौभाग्य संपत्प्रद है । हे प्रिये ! तपाये गये सुवर्ण के समान चमकीले सिन्दूर के सदृश दशार सर्वार्थसाधक है । हे शिवे ! द्वितीय पंक्ति में रहने वाला जपाकुसुम के सदृश दूसरा दशार भी सर्वरक्षाकर तथा महाज्ञानमय है । हे महेशानि ! इस प्रकार चतुर्दशार तथा दोनों दशार ये तीनों सुख प्रदान करने वाले स्थिति चक्र कहे गये हैं ॥ ८०–८३ ॥

दक्षिणाम्नायपूज्यं तु यथेप्सितफलप्रदम् ।
अष्टकोणं वरारोहे बालार्ककिरणारुणम् ॥ ८४ ॥
पद्मरागसमप्रख्यं सर्वरोगहरं सदा ।
उद्यत्सूर्यसहस्राभं बन्धूककुसुमप्रभम् ॥ ८५ ॥
सर्वसिद्धिप्रदं चक्रं सकलालयमीश्वरि ।
त्रिकोणं सर्वसंभूतिकारणं भूतिदं सदा ॥ ८६ ॥
बिन्दुचक्रं वरारोहे सर्वानन्दमयं परम् ।
सदाशिवमयं चक्रनायकं परमेश्वरि ॥ ८७ ॥
एतच्चक्रं तु संहाररूपं ब्रह्ममयं सदा ।
पश्चिमाम्नायसंसेव्यं त्रयमुत्तरसेवितम् ॥ ८८ ॥

हे देवि ! यह दक्षिणाम्नाय से पूजित है और अभीष्ट फल देने वाला है। हे वरारोहे ! अष्टकोण वाले सूर्य के समान अरुण वर्ण, पद्मरागमणि के समान समस्त रोगों को दूर करने वाला, बन्धूक कुसुम के समान प्रभा वाला एवं उदीयमान सहस्त्रों सूर्यों के समान है । सर्वसिद्धिप्रद चक्र है तथा हे ईश्वरि ! यह सबका आलय है । श्री चक्र में रहने वाला त्रिकोण सभी संभूति का कारण एवं ऐश्वर्य प्रदान करने वाला है । हे वरारोहे ! त्रिकोण के भीतर रहने वाला बिन्दु चक्र सर्वानन्दमय, सदाशिवमय तथा चक्रनायक है । हे परमेश्वरि ! यह

चक्र संहारस्वरूप ब्रह्ममय है। ये तीनों उत्तर में रहने वाले अष्टकोण, त्रिकोण और बिन्दु पश्चिमाम्नाय से सेवित हैं ॥ ८५–८८ ॥

अस्मिंश्चक्रे षड्ध्वानो वर्तन्ते वीरवन्दिते ।
चक्रपत्रेषु देवेशि पदाध्वा तु निगद्यते ॥ ८९ ॥

चक्रत्रिसंधिभागेषु भुवनाध्वा व्यवस्थितः ।
वर्णाध्वा मातृकारूपी कथयामि तवानघे ॥ ९० ॥

हे वीरवन्दिते ! इस चक्र में षड्ध्वा है । हे देवेशि ! चक्र के पत्रों में पदाध्वा १ है । चक्र की तीन सन्धियों में भुवनाध्वा २ है । हे अनघे ! अब मातृकारूपी वर्णाध्वा आप से कहता हूँ ॥ ८९–९० ॥

वर्गाष्टकं मातृकाया दिक्षु सिद्धं यतः क्रमात् ।
पार्थिवं तन्मयं विद्धि षोडशारं कलात्मकम् ॥ ९१ ॥

अतः मातृकाओं के वर्गाष्टक क्रमशः दिशाओं में स्थित हैं। उन्हें पार्थिव समझो और षोडशार को कलात्मक अध्वा जानो ॥ ९१ ॥

अष्टपत्रं कादिवर्णैः क्षान्तैर्दिक्षु विदिक्षु च ।
कादिढान्ताः शक्रवर्णाः शक्रकोणेषु संस्थिताः ॥ ९२ ॥
णकारादिभकारान्ता दशवर्णा दशारके ।
मकारादिशकारान्ता द्वितीयेऽपि दशारके ॥ ९३ ॥
वर्णाष्टकं चाष्टकोणे त्रिकोणे कथयामि ते ।
अकथादित्रिकोणान्तं हक्षयुग्मं तु मध्यगम् ॥ ९४ ॥

क्षान्तकादि वर्णों से अष्टपत्र दिशाओं में एवं कोणों में व्याप्त है। क से ले कर ढ पर्यन्त १४ वर्ण १४ कोणों पर स्थित हैं। णकारादि भकारान्त दश वर्ण दशार में स्थित हैं और मकारादि शकारान्त(?) दश वर्ण द्वितीय दशार में स्थित हैं । अ क थ आदि त्रिकोण के अन्त में तथा ह क्ष दो वर्ण त्रिकोण के मध्य में स्थित हैं ॥ ९३–९४ ॥

वर्णाध्वा कथितो देवि मातृकापीठरूपकः ।
षट्विंशत्तत्त्वभरितं चक्रं मूलानुसारतः ॥ ९५ ॥
तत्त्वाध्वा कथितो देवि तत्त्वरूपो वरानने ।
पञ्चसिंहासनोन्नद्धकलाध्वा चक्रशासनात् ॥ ९६ ॥
साबाला भैरवीयुक्ता महात्रिपुरसुन्दरी ।
त्रिपुरा त्र्यम्बिकान्साढ्या चक्रं प्राप्य विजृम्भते ॥ ९७ ॥

हे देवि ! इस प्रकार मातृका पीठ रूपों वाला वर्णाध्वा हमने कहा। समूचा श्रीचक्र मूल के अनुसार से २६ तत्त्वों से परिपूर्ण है। हे देवि! इस प्रकार, हे वरानने! हमने तत्त्वरूप तत्त्वाध्वा भी कह दिया। चक्र के प्रसङ्गों में हमने पञ्चसिंहासन पर रहने वाला कलाध्वा भी कह दिया है । बाला से युक्त भैरवी महात्रिपुरसुन्दरी त्रिपुरा तीन वर्ण रूपों से चक्र में रह कर निरन्तर वर्धमान रहती हैं ॥ ९५–९७ ॥

मन्त्राध्वाऽयं समाख्यातो निश्चयेन सदाऽनघे ।
एवं षडध्वविमलं श्रीचक्रं परिचिन्तयेत् ॥ ९८ ॥

हे अनघे ! इस प्रकार निश्चयपूर्वक मन्त्राध्वा भी हमने कह दिया । इस प्रकार षडध्वा से युक्त श्री चक्र का ध्यान करना चाहिए ॥ ९८॥

उत्तराशामुखो देवि यदा चक्रं समुद्धरेत् ।
उत्तराशा तदा देवि पूर्वाशैव निगद्यते ॥ ९९ ॥

ईशानकोणं देवेशि तदाऽऽग्नेयं न संशयः ।
पश्चिमादिङ्मुखो मन्त्री यदा चक्रं समुद्धरेत् ॥ १०० ॥

पश्चिमाशा तदा ज्ञेया पूर्वाशैव न संशयः ।
वायुकोणं तदाग्नेयमैशानं राक्षसं भवेत् ॥ १०१ ॥

हे देवि ! जब उत्तराभिमुख हो चक्र का लेखन किया जावे तो उस समय उत्तर दिशा को ही पूर्व दिशा मानना चाहिये। हे देवि! जब ईशान कोण के अभिमुख यन्त्र लिखे तो हे देवेशि! ईशान कोण को आग्नेय कोण मानना चाहिए। यदि मन्त्रज्ञ पश्चिमाभिमुख यन्त्र का निर्माण करे तो निःसन्देह पश्चिम दिशा को पूर्व दिशा ही समझें। इसी प्रकार वायुकोण को आग्नेय कोण तथा ईशान कोण को नैर्ऋत्य कोण समझे॥ ९९–१०१॥

दक्षिणाभिमुखो मन्त्री यदा चक्रं समुद्धरेत् ।
पूर्वाशैव तदा सा दिग्रक्षःकोणं तु वह्निवत् ॥ १०२ ॥

एतच्चक्रं मेरुरूपं श्रीविद्यार्णैः समुद्धृतम् ।
सर्वागममयं देवि कथितं वीरवन्दिते ॥ १०३ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे करशुद्धिविद्याचतुरासनविद्यावाहन–
विद्यायजनविद्यामेरुस्वरूपश्रीचक्रोद्धारषडध्व निरूपणं
नाम दशमः पटलः ॥ १० ॥

जब मन्त्रज्ञ दक्षिणाभिमुख हो मन्त्र लिखे, तब उसे दक्षिण दिशा को ही पूर्व दिशा माननी चाहिए। नैर्ऋत्य कोण को अग्निकोण जानना चाहिये। यह श्रीविद्या से युक्त मेरु स्वरूप श्री चक्र का स्वरूप कहा गया । हे वीरवन्दिते! हे देवि! यह श्रीचक्र सर्वागममय है ॥ १०२–१०३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'करशुद्धिविद्याचतुरासन–विद्यावाहनविद्यायजनविद्यामेरुस्वरूपश्रीचक्रोद्धारषडध्व निरूपणं' नामक दशम पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १० ॥

अथैकादशः पटलः

ईश्वर उवाच —

एभिर्वर्णैस्तु देवेशि त्रिपुरा कथ्यतेऽधुना ।
नवाक्षरो महामेरुरयं ब्रह्माण्डगोलकः ॥ १ ॥

पञ्चदश्युद्धार एवं कादिविद्या निरूपण

ईश्वर ने कहा—हे देवेशि ! अब इन वर्णों से त्रिपुरा विद्या को कहता हूँ। यह नव अक्षरों का महामेरु है और यही ब्रह्माण्ड गोलक हैं ॥ १ ॥

चतुरस्त्रं च कोदण्डं त्रिकोणं तत्पुटं मुखम् ।
निरालाम्बं तवाऽऽख्यातमेतद्ब्रह्माण्डमण्डलम् ॥ २ ॥

यह चतुरस्त्र है, कोदण्ड है, एवं उससे सम्पुटित मुख है और निरालम्ब हैं। इसे पहले हमने कह दिया है। इसी को ब्रह्माण्ड मण्डल भी कहते हैं ॥ २ ॥

लकारश्चतुरस्त्रं स्यात्पृथ्वीबीजतया प्रिये ।
अर्धमात्रा तु कोदण्डं स्रवत्पीयूषवर्षिणी ॥ ३ ॥

चतुरस्त्र एवं कोदण्ड निरूपण—हे प्रिये! पृथ्वीबीज होने से लकार चौकोर है और टपकते हुये अमृत की वर्षा करने वाली अर्धमात्रा कोदण्ड है॥ ३ ॥

त्रिकोणरूपी वह्निः स्यात्त्रिकोणत्वात्परा शिवा ।
एकारश्च रकारश्च ईकारश्च त्रयं भवेत् ॥ ४ ॥

मायाविकाररूपेण षट्कोणाश्रयरूपिणी ।
हकारो व्योमरूपत्वाद् बिन्दुश्च मुखमण्डले ॥ ५ ॥

त्रिकोण एवं मुखमण्डल निरूपण—वह्नि त्रिकोण है, त्रिकोण होने से वही परा शिवा है उसमें त्रिकोण में एकार, रकार और ईकार तीन बीज हैं। माया

विकार रूप से वह षट्कोणाश्रयरूपिणी है हकार आकाशस्वरूप हैं तथा बिन्दु मुखमण्डल में स्थित है ॥ ४–५ ॥

इच्छारूपेण कामस्तु सर्वत्र परमेश्वरि ।
तस्मान्मादनव्याख्यातमेतद्वै मेरुमण्डलम् ॥ ६ ॥

मेरुमण्डल निरूपण–हे परमेश्वरि ! इच्छा रूप होने से काम सर्वत्र व्याप्त है, इसलिये मादन (क) स्वरूप है। बस इतना ही मेरुमण्डल है ॥ ६ ॥

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि बीजं कामेश्वरीमतम् ।
सकला भुवनेशानि कामेशीबीजमुत्तमम् ॥ ७ ॥

हे देवि ! कामेश्वरी का अभिमत बीज कहता हूँ, उसे सुनिए कला के साथ भुवनेशानी (क्लीं ह्रीं) यह कामेशी का उत्तम बीज है ॥ ७ ॥

अनेन सकला विद्याः कथयामि विशेषतः ।
शक्त्यर्णस्तुर्यवर्णोऽयं कलमध्ये सुलोचने ॥ ८ ॥
वाग्भवं पञ्चवर्णं तु कामराजमथोच्यते ।
मादनं शिवचन्द्राद्यं शिवान्तं मीनलोचने ॥ ९ ॥

इन्हीं कामेशी से संपूर्ण विद्यायें हैं, उन्हें विशेष रूप से कहता हूँ। शक्ति वर्ण चार वर्णों का है । हे सुलोचने ! उसके मध्य में क और ल वर्ण है, वाग्भव बीज पाँच वर्णों वाला है। अब कामराज (उपासित विद्या) कहता हूँ। हे मीनलोचने, उसके आदि में शिव वर्ण (ह) एवं चन्द्र (स) वर्ण है तब मादन क है अन्त में शिव वर्ण है ॥ ८–९ ॥

विमर्श – कामेशीमन्त्र का स्वरूप–ह स क ल ह्रीं । किन्तु मन्त्रमहोदधि में इस प्रकार है–ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूँ स्त्रीं (५)।

कामराजमिदं भद्रे षड्वर्णं सर्वमोहनम् ।
शक्तिबीजं वरारोहे चन्द्राद्यं सर्वसिद्धिदम् ॥ १० ॥
चतुरक्षररूपं तु त्र्यक्षरी त्रिपुरा परा ।
सर्वतीर्थमयी देवि सर्वदेवस्वरूपिणी ॥ ११ ॥
सर्वशास्त्रमयी विद्या सर्वयोगमयी परा ।
सर्वयज्ञमयी संवित्सर्वज्ञानस्वरूपिणी ॥ १२ ॥
सर्वदेवमयी साक्षात्सर्वसौभाग्यसुन्दरी ।

हे भद्रे ! यही कामराज ६ वर्णों का सर्वमोहन होता है । हे वरारोहे ! आदि में चन्द्र (अनुस्वार) से युक्त शक्ति बीच चतुरक्षर (ह्रीं) है, परा त्रिपुरा (स्त्रीं)

त्र्यक्षरी है । वह सर्वतीर्थमयी, सर्वदेवमयी एवं सर्वदेवस्वरूपिणी है । सर्व शास्त्रमयी, सर्वयोगमयी, परा, सर्वयज्ञमयी, संवित्स्वरूपा, सर्वज्ञानस्वरूपिणी, सर्वदेवमयी तथा साक्षात् सर्वसौभाग्यसुन्दरी है ॥ १०–१३॥

एनामुपास्य देवेशि कामः सर्वाङ्गसुन्दरः ॥ १३ ॥
कामराजो भवेद्देवि नित्येयं ब्रह्मरूपिणी ।

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे एकादशः पटलः ॥ ११ ॥

हे देवेशि ! इन त्र्यक्षरा त्रिपुरा की उपासना कर कामदेव सर्वाङ्गसुन्दर एवं कामराज बन गए । हे देवि ! यही नित्या एवं ब्रह्मस्वरूपिणी हैं ॥ १३–१४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'पञ्चदशयुद्धारकादिविद्या निरूपण' नामक एकादश पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ११ ॥

✻

अथ द्वादशः पटलः

श्री देव्युवाच —

एतस्या देवदेवेश भेदान् कथय सुन्दर ।
केन केनोपासितेयं विशदी कुरु तत्त्वतः ॥ १ ॥

श्री देवी ने कहा — हे देवदेवेश ! हे सुन्दर! अब त्रिपुरा विद्या के भेदों को कहिए । इन भेदों की किस किसने उपासना की है, उसे तत्त्वतः प्रतिपादित कीजिये ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि लोपामुद्राभिधां वराम् ।
कामराजाख्यविद्यायाः शक्तिं तुर्यां च सुन्दरि ॥ २ ॥

लोपामुद्रोपासित विद्या — ईश्वर ने कहा — हे देवि ! अब लोपामुद्रा नामक विद्या को कहता हूँ । हे सुन्दरि । जो कामराज नामक विद्या की चतुर्थ शक्ति है ॥ २ ॥

हित्वा मुखे शिवेन्द्वाढ्या लोपामुद्रा प्रकाशिता ।
अगस्त्योपासिता विद्या त्रैलोक्यक्षोभकारिणी ॥ ३ ॥

कामराजविद्या के मुख (प्रथम) कूट के दो वर्णों को हटा कर उसके स्थान में शिव (हकार) इन्दु (सकार) लगा देने से लोपामुद्रा द्वारा प्रकाशित विद्या बन जाती है। इसके बाद अगस्त्योपासिता विद्या भी हैं जो त्रिलोकी को क्षुब्ध करने वाली हैं ॥ ३ ॥

एषा विद्या कामराजपूजितैव न संशयः ।
विद्याद्वयमिदं भद्रे दुर्लभं भुवनत्रये ॥ ४ ॥

हे भद्रे ! यह विद्या कामराज द्वारा पूजित हैं इसमें संशय नहीं । ये दोनों विद्यायें तीनों लोकों में दुर्लभ हैं ॥ ४ ॥

विमर्श – क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं सकल ह्रीं यह कामराज विद्या का त्रिकूट है, इसमें प्रथमकूट के ए ई को हटा कर उसके स्थान में प्रथम ह स लगा देवें शेष दो कूट जैसे का तैसा रहने दे तो लोपामुद्रा विद्या बन जाती है । यथा – ह स क ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीँ । (द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, पृ० ३८५ नौका टीका)

कामराजाख्यविद्याया वाग्भवेन वरानने ।
विद्योद्धारं प्रवक्ष्यामि शक्तिमादनमध्यगम् ॥ ५ ॥

मनु उपासित विद्या – हे वरानने ! अब कामराज नामक विद्या के वाग्भव (ऐं) के साथ शक्ति (ह्रीं) एवं मादन (क) को मध्य में स्थापित कर अन्य विद्योद्धार कहता हूँ ॥ ५ ॥

शिवं कुर्याद्वाग्भवे तु शिवाद्यं कामराजकम् ।
चन्द्राद्यं तु तृतीयं स्याद्विद्येयं मनुपूजिता ॥ ६ ॥

वाग्भव (प्रथम कूट) में आदि क के बाद शिव (ह) लगा देवें; तथा तृतीय कूट में चन्द्र (स) को आदि में लगा देवें तो यह विद्या मनुपूजित बन जाती है ॥ ६ ॥

विमर्श – यथा – क ह ए ई ल ह्रीं, ह क ए ई ल ह्रीं, स क ए ई ल ह्रीँ (द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, ३८५ नौका टीका)।

सहाद्यं वाग्भवं देवि चन्द्राद्यं शिवमध्यगम् ।
मादनं कामराजे तु शक्तिबीजं सहाननम् ॥ ७ ॥
चन्द्राराधितविद्येयं भोगमोक्षफलप्रदा ।

चन्द्राराधिता विद्या–हे देवि ! वाग्भव (प्रथम कूट) के आदि में स ह लगा देवें मध्य में चन्द्र (स) तथा शिव (ह) लगा देवें इसी प्रकार कामराज के शक्तिबीज में स ह के साथ मादन (क) लगा देवे तो यह चन्द्राराधित विद्या बन जाती है जो भोग मोक्ष रूप फल देने वाली है ॥ ७–८ ॥

विमर्श – यथा स ह क ए ल ई ल ह्रीं, स ह क ह ई ल ह्रीं, स ह क ए ई ल ह्रीँ (द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, ३८५ नौका टीका)।

कुबेरोपासितविद्योद्धारः

हसाद्यं वाग्भवं विद्धि शिवाद्यं सहमध्यगम् ॥ ८ ॥
मादनं कामराजे तु तार्तीयं शृणु पार्वति ।
हसाद्यं शक्तिबीजं तु कुबेरेण प्रपूजिता ॥ ९ ॥

वाग्भव (प्रथम कूट) के प्रथम में ह स लगावे और मध्य कूट को भी शिवादि ह स से युक्त करे । इसी प्रकार शक्ति तृतीय कूट के भी आदि में ह स लगा देवे तो कुबेर द्वारा पूजित विद्या बन जाती है ।

विमर्श – यथा – ह स क ए ई ल ह्रीं, ह स क ए ई ल ह्रीं, ह स क क ए ई ल ह्रीं ॥ ८–९ ॥

अगस्त्योपासितविद्योद्धारः

कामराजाख्यविद्यायास्तार्तीयं सुरवन्दिते ।
शक्तिबीजं सहाद्यं स्याद्विद्याऽगस्त्यप्रपूजिता ॥ १० ॥

कामराज विद्या के तृतीय शक्ति कूट के आदि में स ह लगा देवे तो अगस्त्यपूजिता विद्या बन जाती है ।

विमर्श – यथा स ह स क ल ह्रीम् ॥ १० ॥

नन्दपूजितविद्योद्धारः

लोपामुद्रा प्रभावेन् साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणी ।
कामराजाख्यविद्याया वाग्भवे मादनं त्यज ॥ ११ ॥
चन्द्रं तत्रैव संयोज्य कामराजे ततः परम् ।
हित्वा चन्द्रं मुखे कुर्याद्विद्येयं नन्दिपूजिता ॥ १२ ॥

इस कामराज विद्या के प्रभाव से लोपामुद्रा साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी बन गई। कामराज विद्या के वाग्भव (प्रथमकूट) में मादन (क) को हटा कर उसके स्थान में चन्द्र (स) लगा दीजिये । फिर कामराज के चन्द्र को हटाकर मुख प्रथम स्थान में कर दीजिये तो यह नन्दिपूजिता विद्या बन जाती है ॥ ११–१२॥

विमर्श – यथा स ए ई ल ह्रीं, स ह क ह ह्रीं, सकल ह्रीँ ।

इन्द्राराधितविद्योद्धारः

कामराजाख्यविद्याया हित्वा भूमिं तृतीयके ।
शक्तिकण्ठे स्थितां देवि चन्द्राधः कुरु तत्र च ॥ १३ ॥
इन्द्राराधितविद्येयं भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।

कामराज विद्या के तृतीय शक्ति कूट में रहने वाले भूमि (ल) को हटा दीजिये और चन्द्र (स) को नीचे कर दीजिये तो यह इन्द्राराधिता विद्या बन जाती है । जो भोग मोक्ष दोनों प्रकार का फल प्रदान करती है॥ १३–१४ ॥

विमर्श – यथा – क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, क स ह्रीँ ।

सूर्याराधितविद्योद्धारः

लोपामुद्राख्यविद्याया द्वितीयाया महेश्वरि ॥ १४ ॥
कामराजे भृगुं हित्वा तार्तीये शक्रगः शिवः ।
एषा विद्या वरारोहे त्रिपुरा सूर्यपूजिता ॥ १५ ॥

हे महेश्वरि ! लोपामुद्रा की द्वितीय विद्या में कामराज में भृगु (स) को हटा दीजिये तृतीय में शक्र (ल) और शिव (ह) लगा दीजिये । हे वरारोहे ! तो यह सूर्यपूजित त्रिपुरा विद्या बन जाती है ॥ १४–१५ ॥

विमर्श – सूर्यपूजिता क ए ई ल ह्री, ह स क ह ल ह्रीं, सकल ह्रीम्।

शङ्करोपासितचतुष्कूटाविद्योद्धारः

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि चतुष्कूटां च शाङ्करीम् ।
लोपामुद्रां द्वितीयां तु विलिख्य सुरवन्दिते ॥ १६ ॥
पुनर्विलिख्य तामेव चतुर्थे पञ्चमे स्थिताम् ।
हित्वा तु भुवनेशानीमेकोच्चारेण प्रपूजिता ॥ १७ ॥
चतुष्कूटा महाविद्या शङ्करेण प्रपूजिता ।

हे देवि ! अब शंकर द्वारा उपासित चतुष्कूटा विद्या को सुनिए । हे सुरवन्दिते ! लोपामुद्रा की द्वितीय विद्या को लिखिए, तदनन्तर पुनः उसी को लिखकर चतुर्थ पञ्चम में भुवनेशानी ह्रीं को केवल एक बार उच्चारण कर लिखे तो वह चतुष्कूटा महाविद्या बन जाती है, जिसकी पूजा स्वयं महेश्वर ने की है ॥ १६–१८ ॥

विमर्श – क ए ई ल ह्रीं, ह स क ल ह्रीं, क ए ई ल ह स क ह ल, सकल ह्रीँ ।

नन्दिकेश्वरपूजितविद्योद्धारः

लोपामुद्रां पुनर्देवि विलिख्य तदनन्तरम् ॥ १८ ॥
नन्दिकेश्वरविद्यां च षट्कूटा वैष्णवी भवेत्।

हे देवि ! लोपामुद्रा को दो बार लिखकर उसके बाद नन्दिकेश्वर द्वारा पूजित विद्या लिखे तो षट् कूटा वैष्णवी विद्या हो जाती है ॥ १८–१९ ॥

विमर्श – क ए ई ल ह्रीं, ह स क ल ह्रीं, स ह स क ल ह्रीं, स ए ई ल ह्रीं, स ह क ह ल ह्रीं, स क ह ह्रीँ ।

दुर्वाससा पुरा देवि निष्कूटा पूजिता परा ॥ १९ ॥

हे देवि ! पूर्वकाल में दुर्वासा महर्षि ने सर्वश्रेष्ठ निष्कूटा (कूटरहित) भगवती त्रिपुरा की उपासना की थी जो इस प्रकार है ॥ १९ ॥

दुर्वासोपासितविद्योद्धारः

कामराजाख्यविद्यायास्त्रिकूटेषु वरानने ।
या स्थिता भुवनेशानि द्विधा कुरु महेश्वरी ॥ २० ॥
बिन्दुहीना नादहीना दुर्वासःपूजिता भवेत् ।

हे वरानने ! कामराजविद्या के तीन कूटों में जो भुवनेशानी (ह्रीं) स्थित है। हे महेश्वरि ! उसका दो भाग करें जो नादहीन तथा बिन्दुहीन हो (ह्री)। इसी विद्या की दुर्वासा ने पूजा की थी ॥ २०—२१ ॥

विमर्श — यथा—क ए इ ल ह री, ह स क ह ल ह री, स ह ल ह री। यह दो श्लोक मन्त्र महोदधि की नौका टीका में भी उद्धृत है । (द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, पृ० ३८४)।

एतैर्द्वादशसंख्याकैर्मन्त्रैस्तु सुरवन्दिते ॥ २१ ॥
द्वादशान्ता स्थिता देवि परब्रह्मस्वरूपिणी ।
राज्ञीयं सर्वविद्यानां सर्वाम्नायैस्तु सेविता ॥ २२ ॥

हे सुरवन्दिते ! इन द्वादश संख्या वाले मन्त्रों से (द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, २।२१) पूजित होने के कारण परब्रह्मस्वरूपिणी श्रीत्रिपुरा द्वादशान्त में स्थित हैं । यह सभी प्रकार की विद्याओं की महारानी है, और सभी वेद समाम्नायों से पूजित है ॥ २१—२२ ॥

विमर्श — आगम शास्त्र में षोडशी विद्या के कुछ और भी भेद मिलते हैं जो इस प्रकार हैं।

कामराजविद्या	—	कएलईह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं।
प्रथमलोपामुद्रा	—	हसकलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं।
मनुपूजिता	—	कहएईलह्रीं, हकएईलह्रीं, सकएईलह्रीं।
चन्द्रपूजिता	—	सहकएलईलह्रीं, सहकहईलह्रीं, सहकएईलह्रीं।
कुबेरपूजिता	—	हसकएईलह्रीं, हसकएईलह्रीं, हसकएईलह्रीं।
द्वितीयलोपामुद्रा	—	कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सहसकलह्रीं।
नन्दिपूजिता	—	सएईलह्रीं, सहकहलह्रीं, सकलह्रीं।
सूर्यपूजितः	—	कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं।
शङ्करपूजिता	—	कएईलह्रीं, हसकलह्रीं, सहसकलह्रीं, कएईलहसकहलसकसकलह्रीं।

विष्णुपूजिता — कएईलह्रीं, हसकलह्रीं, सहसकलह्रीं, सएईलह्रीं, सहकहलह्रीं, सकलह्रीं।
दुर्वासापूजिता — कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं।

सर्वागममहामन्त्रवन्दिता देववन्दिता ।
सर्वयोगैर्नता नित्या केवलं ब्रह्मरूपिणी ॥ २३ ॥

सभी आगमों के महामन्त्रों से वन्दित है सभी देवसमूहों से वन्दित है सभी योग इन महा विद्या को नमस्कार करते हैं, केवल यही एक मात्र नित्या ब्रह्मस्वरूपा है ॥ २३ ॥

एवं त्रिधा महाविद्या विद्या त्रिपुरसुन्दरी ।
इयमेव महादेवी त्रिकूटा परमेश्वरी ॥ २४ ॥

यही त्रिपुर सुन्दरी विद्या तीन भागों में प्रविभक्त हैं। यही महाविद्या हैं। यही महादेवी त्रिकूटा परमेश्वरी हैं ॥ २४ ॥

वक्तुं न शक्यते सर्वैर्ब्रह्मविष्णवादिभिः सदा ।
नो वाचा मनसा बुद्ध्या तुर्या वक्तुं न शक्यते॥ २५ ॥

ब्रह्मा विष्णु आदि देवता भी इनके माहात्म्य का प्रतिपादन वाणी से, मन से, बुद्धि से तथा चतुर्थ परा (वाक्) से भी नहीं कर सकते ॥ २५॥

साक्षाद्ब्रह्ममयी देवी षोडशार्णस्वरूपिणी।
मनसैव महेशानि स्मृत्वाऽहं तु सदाशिवः ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे त्रिपुरसुन्दरी (विद्याविवरणं नाम) द्वादश पटलः ॥ १२ ॥

यह षोडश वर्णस्वरूपिणी भगवती त्रिपुरा साक्षात् ब्रह्म स्वरूपा हैं । हे महेशानि ! मै मन से इनका स्मरण कर सदाशिव बन गया हूँ ॥ २६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'त्रिपुरसुन्दरीविद्याद्वादशभेद (विद्या विवरण)' नामक द्वादश पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १२ ॥

✻

अथ त्रयोदशः पटलः

श्री देव्युवाच –

परब्रह्मतया साक्षाच्छ्रीविद्या षोडशाक्षरी ।
कथय त्वं महादेव यद्यहं तव वल्लभा ॥ १ ॥

श्री देवी ने कहा – हे महादेव यतः षोडशाक्षरी श्री विद्या परब्रह्म का साक्षात् स्वरूप है अतः यदि मैं आप की वल्लभा हूँ तो उसे बताइये ॥ १ ॥

त्रिकूटाः कथिताः सर्वाश्चतुष्कूटा च शाङ्करी ।
षट्कूटा वैष्णवी चैव मनवः कथिता विभो ॥ २ ॥

यह शांकरी त्रिकूट कही गई है और साथ ही चतुष्कूट भी कही गई है, इसके अतिरिक्त वैष्णवी षट्कूटा भी हैं । हे विभु ! इन मन्त्रों को आप ने मुझको बतलाया ॥ २ ॥

एतास्तु सकला विद्यास्त्रिविधास्तु श्रुता मया ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि श्रीविद्यां षोडशाक्षरीम् ॥ ३ ॥

कलाओं के सहित यह विद्या तीन प्रकार की है, इसे मैंने सुन लिया, इस समय मैं षोडशाक्षरी विद्या सुनना चाहती हूँ ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच –

शठत्वेन वरारोहे श्रीविद्यामन्त्रविद्बुधः ।
योगिनीनां भवेद्भक्ष्यः श्रीगुरोः शासनात्प्रिये ॥ ४ ॥

ईश्वर ने कहा – हे वरारोहे ! श्री विद्यामन्त्रवेत्ता यदि कुछ भी इस विषय में शठता करता है तो, हे प्रिये! वह श्रीगुरु के अनुशासन के कारण योगिनियों का भक्ष्य हो जाता है ॥ ४ ॥

षोडशार्णां महाविद्यां न दद्यात्कस्यचित् प्रिये ।
राज्ञे राज्यप्रदायापि पुत्राय प्राणदाय वा ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! यह षोडशाक्षरी विद्या किसी को भी नहीं देनी चाहिये। राज्य देने वाले राजा को तथा प्राण देने वाले पुत्र को भी नहीं देना चाहिए ॥ ५ ॥

देयं तु सकलं भद्रे साम्राज्यमपि पार्वति ।
शिरोऽपि प्राणसहितं न देया षोडशाक्षरी ॥ ६ ॥

हे भद्रे हे पार्वति ! सब कुछ दिया जा सकता है, साम्राज्य दिया जा सकता है, प्राण के सहित शिर भी दिया जा सकता है किन्तु षोडशाक्षरी नहीं देना चाहिए ॥ ६ ॥

उच्चार्यमाणा ये मन्त्रास्ते सर्वे वाचिकाः प्रिये ।
उच्चाररहितं वस्तु श्रीविद्या षोडशाक्षरी ॥ ७ ॥

हे भद्रे ! जिन मन्त्रों का उच्चारण संभव है । हे प्रिये ! वे सब तो वाचिक हैं। किन्तु षोडशाक्षरी विद्या रूप वस्तु उच्चारण से रहित है ॥ ७ ॥

सवर्णाऽपि वरारोहे वस्तु साक्षान्निरक्षरम् ।
भृङ्गोपभुक्तपुष्पं तु शिवे योग्यं यथा भवेत् ॥ ८ ॥
तथा निरक्षरं वस्तु ह्यक्षरैरपि संयुतम् ।
उदके लिखितं यद्वन्मन्त्रोच्चारस्तथा भवेत् ॥ ९ ॥

हे वरारोहे ! यद्यपि वह वर्णों से युक्त है, किन्तु वह साक्षार होते हुए अक्षर रहित भी है। जिस प्रकार भृङ्गोपयुक्त पुष्प शिव के भोग्य होता है उसी प्रकार अक्षरों से युक्त भी यह षोडशाक्षरी निरक्षर वस्तु है। जैसे उदक में लिखी हुई रेखा मिट जाती है उसी प्रकार मन्त्र का उच्चारण भी होता है ॥ ८–९ ॥

भोगमोक्षप्रदा विद्या श्रीविद्या षोडशाक्षरी ।
विना गुरूपदेशेन शापो भवति निश्चयात् ॥ १० ॥

यह षोडशाक्षरी श्री विद्या भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली है। किन्तु बिना गुरुपदेश के इसका अनुष्ठान करने से निश्चय ही शाप लगता है ॥ १० ॥

चन्द्रान्तं वारुणान्तं च शक्रादिसहितं पृथक् ।
वामाक्षि बिन्दुनादाढ्यं विश्वमातृकलात्मकम् ॥ ११ ॥
चतुर्विधप्रकारेण शृणु देवि प्रकथ्यते ।
त्वं मनोहारिणी यस्मात्कथ्यते भुवि दुर्लभम् ॥ १२ ॥

वारुणान्त (ल्) जो चन्द्रान्त हों वह शक्र (क) के सहित, वामाक्षि दीर्घ ईकार तथा नाद बिन्दु से युक्त हों इस प्रकार 'क्लीं' विश्वमातृ कलात्मक (ऐं) से युक्त हों अर्थात् ऐं क्लीं । अब इन दो बीजों को चार प्रकार से कहता हूँ।

हे देवि ! आप इसे सुनिए। क्योंकि आप हमारे मन को हरण करने वाली हैं, इसलिए पृथ्वी में दुर्लभ' इसके प्रकार को मैं कहता हूँ ।। ११–१२।।

विद्यादौ योजयेद्देवि साक्षाज्जाग्रत्स्वरूपिणी ।
उत्पत्तिर्जागरो बोधो व्यावृत्तिर्मनसः सदा ।। १३ ।।

कलाचतुष्टयं जाग्रदवस्थायां व्यवस्थितम् ।
जाग्रत्सत्त्वगुणा प्रोक्ता केवलं शक्तिरूपिणी ।। १४ ।।

हे देवि ! यह प्रथम जाग्रत्स्वरूपिणी है। अतः इस विद्या के आदि में इसे जोड़े, उत्पत्ति, जागरण, बोध एवं मन की व्यावृत्ति (विकास) – ये चार कलायें जाग्रत् अवस्था में व्यवस्थित रूप से रहती है। जाग्रत् अवस्था सत्वगुण हैं और वह केवल शक्ति स्वरूपा है ।। १३–१४ ।।

त्रिकूटा सकला भेदाः पञ्चकूटा भवन्ति हि ।
वैष्णवी वसुकूटा स्यात्षट्कूटा शांकरी भवेत् ।। १५ ।।

इस अवस्था में कला सहित त्रिकूट पञ्चकूट हो जाता है, वैष्णवी, अष्टकूटा तथा शांकरी षट्कूटा बन जाती है ।। १५ ।।

द्वितीयोऽयं प्रकारः स्याद्दुर्लभो भुवनत्रये ।
एषैव शिवरूपा तु व्यापकत्वात्सुरेश्वरि ।। १६ ।।

दूसरा प्रकार इस प्रकार है, जो तीनों लोकों में दुर्लभ है । हे सुरेश्वरि ! यही व्यापक होने से शिवरूपा बन जाती है ।। १६ ।।

निश्चला सर्वभूतेषु सदाशिवमयी परा ।
सुषुप्तिरूपिणी साक्षाद्ब्रह्मरूपा यतः प्रिये ।। १७ ।।

हे प्रिये ! अतः साक्षात् ब्रह्मस्वरूपा सुषुप्तिरूपिणी है और सर्वभूतों में निश्चल होने के कारण परा सदा शिवमयी है ।। १७ ।।

मरणं विस्मृतिर्मूर्छा निद्रा च तमसा वृता ।
सुषुप्तिस्तु कला ज्ञेया सुषुप्तिः शिवरूपिणी ।। १८ ।।

मरण, विस्मृति, मूर्च्छा एवं निद्रा ये तमोगुण के ही गुण हैं यह चार सुषुप्ति की कलायें हैं और सुषुप्ति शिवस्वरूपिणी है हीं ।। १८ ।।

केवलत्वेन जाग्रत्स्यात्पञ्चकूटा च शाम्भवी ।
सुषुप्त्यन्ते जागरादौ स्वप्नावस्था रजोमयी ।। १९ ।।

अभिलाषो भ्रमश्चिन्ता विषयेषु पुनः स्मृतिः ।
कलाचतुष्टयं स्वप्नावस्थायां तु विधीयते ॥ २० ॥

यह पञ्चकूटा शाम्भवी विद्या केवल अकेले रहने से जाग्रत रहती है और सुषुप्ति के अन्त में तथा जाग्रत के अन्त में यह रजोमयी स्वप्नावस्था होती है। अभिलाषा, भ्रम, चिन्ता तथा विषयों का बारम्बार स्मरण होना—ये चार कलायें स्वप्नावस्था में होती हैं ॥ १९—२० ॥

शिवरूपा शक्तिरूपा महात्रिपुरदेवता ।
वेदादिमण्डिता देवि शिवशक्तिमयी सदा ॥ २१ ॥

महात्रिपुरदेवता शिवरूपा एवं शक्तिरूपा हैं। हे देवि! ये सदा शिवशक्तिमयी वेदादि से मण्डित रहती है॥ २१॥

सप्त भेदास्तु सकलाः षट्कूटाः परमेश्वरि ।
वैष्णवी नवकूटा स्यात्सप्तकूटा च शाङ्करी ॥ २२ ॥
अस्याः स्मरणमात्रेण गजदानं शतं भवेत् ।
भेदत्रयं तु कथितं तूर्यां विद्यां शृणु प्रिये ॥ २३ ॥

हे परमेश्वरि ! सप्त के भेद कला सहित होने के कारण षट्कूट वाली हैं, वैष्णवी नवकूटों वाली हैं और शाङ्करी सप्तकूटा है। इस सप्तकला के स्मरण मात्र से १०० हाथियों के दान जैसा फल प्राप्त होता है । इसके तीन भेद — १. पञ्चकूट, २. षट्कूट, और ३. सप्तकूट — कह दिये गये हैं । हे प्रिये ! अब चौथे भेद को सुनिये ॥ २२—२३ ॥

यस्या विज्ञानमात्रेण ब्रह्म साक्षान्न संशयः।
सुषुप्त्यादौ जागरान्ते स्फुरत्तामात्रलक्षणा ॥ २४ ॥

जिसके जान लेने पर ब्रह्म तत्त्व का साक्षात् हो जाता है। इसमें संशय नहीं। यह सुषुप्ति के आदि में तथा जागरण के अन्त में होती है। मात्र स्फुरित होते रहना, इसके लक्षण हैं ॥ २४ ॥

अवस्थाशेषतां प्राप्ता तुर्या तु परमा कला ।
भावाभावविनिर्मुक्ता गुणातीता निगद्यते ॥ २५ ॥

यह चतुर्थी परमा कला अवस्था विशेष में प्राप्त होती है, इसे भाव अभाव से परे तथा त्रिगुणों से अतीत भी कहा जाता है ॥ २५ ॥

वैराग्यं च मुमुक्षत्वं शमादि विमलं मनः ।
सदसद्वस्तुनिर्धारस्तुर्यायास्तु कला इमाः ॥ २६ ॥

इस अवस्था में मन वैराग्य, मुमुक्षुत्व तथा शमादि संपत्ति से युक्त रहने के कारण विमल हो जाता है । सदसद् वस्तु का निर्धारण होता है। इस प्रकार ये तुर्याकला के लक्षण हैं ॥ २६ ॥

आद्यबीजद्वयं भद्रे विपरीतक्रमेण हि ।
विलिख्य परमेशानि ततोऽन्यानि समुद्धरेत् ॥ २७ ॥
अन्तर्मुखा वरारोहे कुमारी त्रिपुरेश्वरी ।
एभिस्तु पञ्चसंख्याकैर्बीजैः संपुटिता यजेत् ॥ २८ ॥
षट्कूटा परमेशानि विद्येयं षोडशाक्षरी ।

हे भद्रे ! हे परमेशानि! आदि के दो बीज २ श्रीं ह्रीं, पुनः इसके विपरीत ॐ ३ ह्रीं श्रीं बीच में कुमारीं ३ क्लीं ऐं सौः इसके बाद त्रिकूट १. क ए ई ल ह्रीं २. ह स क ह ल ह्रीं ३. सकल ह्रीं तदनन्तर ५ बीजों का संपुट सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं, इस प्रकार १६ अक्षरों के मन्त्र का उद्धार कहा गया है ।

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है । ८ श्रीं ह्रीं ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं सौः १क ए ई ल ह्रीं २ ह स क ह ल ह्रीं ३ स क ल ह्रीं ५ सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं ॥ (८ + १ + १ + १ + ५ = १६)

हे परमेशानि ! इस प्रकार यह षट्कूटा षोडशाक्षरी विद्या छठा कूट बन जाती है॥ २७–२९॥

त्रिकूटा सकला भद्रे षोडशार्णा भवन्ति हि ॥ २९ ॥
वैष्णव्येकोनविंशार्णा शैवी सप्तदशाक्षरी ।

हे भद्रे! कला के साथ (१) त्रिकूट (क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, सकल ह्रीं) १६ अक्षर हो जाते हैं । वैष्णवी १९ अक्षरों की तथा शैवी १७ अक्षरों वाली हो जाती हैं ॥ ३० ॥

वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि ॥ ३० ॥
वर्णितुं नैव शक्येयं श्रीविद्या षोडशाक्षरी ।
वैष्णवी पञ्चमी चैव कः शक्तो गुणवर्णने ॥ ३१ ॥

करोड़ों सहस्रमुखों से एक एक मुख में १००, १०० करोड़ जीभों से इन षोडशाक्षरी श्री विद्या का वर्णन शक्य नहीं है । किं बहुना पञ्चमी वैष्णवी के गुणवर्णन में कौन समर्थ हो सकता है ॥ ३१ ॥

यतो निरक्षरं वस्तु परा तत्र तु कारणम् ।
मूकीभूता हि पश्यन्ति मध्यमा मध्यमा भवेत् ॥ ३२ ॥

जो निरक्षर वस्तु है उसमें परा ही कारण है, उस परा का दर्शन मूक हो जाने वाले साधक को प्राप्त होता है, मध्यमा तो मध्यम है ही ॥ ३२ ॥

ब्रह्मविद्यास्वरूपेण भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
एकोच्चारेण देवेशि बाजपेयस्य कोटयः ॥ ३३ ॥

यह षोडशाक्षरी ब्रह्म विद्या का स्वरूप हैं जो भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली है। हे देवेशि! इनके एक बार के उच्चारण से करोड़ों वाजपेय का फल प्राप्त होता है॥ ३३ ॥

अश्वमेधसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा ।
काश्यादितीर्थयात्राश्च सार्धकोटित्रयान्विताः ॥ ३४ ॥
तुलां नार्हन्ति देवेशि नात्र कार्या विचारणा।
एकोच्चारेण गिरिजे किं पुनर्ब्रह्म केवलम् ॥ ३५ ॥

सहस्रों अश्वमेध यज्ञ, समस्त पृथ्वी की प्रदक्षिणा, साढ़े तीन करोड़ की संख्या वाले काश्यादि तीर्थों की यात्रा हे देवेशि ! इसकी एक कला की बराबरी नहीं कर सकते । इसमें विचार करने की आवश्यकता नही है। हे गिरिजे! जब एक बार के उच्चारण का यह फल है तो फिर ब्रह्म की तो बात ही क्या है ॥ ३४–३५ ॥

षोडशार्णा महाविद्या न प्रकाश्या कदाचन ।
गोपितव्या त्वया भद्रे स्वयोनिरिव पार्वति ॥ ३६ ॥

हे भद्रे ! १६ वर्णों वाली यह विद्या कभी किसी भी दशा में प्रकाशित नहीं करनी चाहिए। हे पार्वति! इसे अपनी योनि के समान आपको गुप्त रखना चाहिए ॥ ३६ ॥

शिवशक्तिसमायोगाद्यद्यत्कर्म प्रजायते ।
वेद्यं तन्न भवेत्तद्वच्छ्रीविद्यां षोडशाक्षरीम् ॥ ३७ ॥

जिस प्रकार शिव शक्ति के योग से जो जो कर्म होते हैं उन्हें कोई नहीं जान सकता उसी प्रकार यह षोडशाक्षरी महाविद्या भी है ॥ ३७ ॥

विना गुरूपदेशेन श्रीविद्या षोडशाक्षरी ।
दृष्ट्वा प्रजपते यस्तु स भक्ष्यो योगिनीगणैः ॥ ३८ ॥

बिना गुरु के उपदेश के केवल अक्षरों को देख कर जो षोडशाक्षरी मन्त्र का जप करता है वह योगिनियों का भक्ष्य हो जाता है ॥ ३८ ॥

श्रीगुरोः कृपया लब्धा सर्वसाम्राज्यदायिनी ।
भुवनत्रयसौभाग्यं ददाति विपुलां श्रियम् ।। ३९ ।।

यह श्री विद्या श्री गुरु की कृपा से प्राप्त की जाने पर सर्वसाम्राज्यदायिनी हो जाती है। यह तीनों लोकों का सौभाग्य तो देती ही है, विपुल लक्ष्मी भी प्राप्त करा देती हैं ।। ३९ ।।

साक्षान्मदनसौभाग्यं त्रैलोक्याकर्षणक्षमम् ।
सुधातरङ्गिणीवेयं शब्दचातुर्यदायिनी ।। ४० ।।

समस्त त्रिलोकों की स्त्रियों के आकर्षण की क्षमता रखने वाला कामदेव का सौभाग्य भी देती हैं। अमृत सरिता के लहरी के समान यह वाक् चातुर्य प्रदान करने वाली हैं ।। ४० ।।

सौभाग्यभाग्यसंपन्नकलापटलदायिनी ।
परब्रह्मणि लीनत्वं ददाति यश उत्तमम् ।। ४१ ।।

सौभाग्य, भाग्यसंपन्न कला समूह प्रदान करती हैं। पर ब्रह्म में लीनता तथा उत्तम यश प्रदान करती हैं ।। ४१ ।।

प्रपञ्चसागरे लीनानुद्धरेद्वेदमातृका ।
यस्याः सामर्थ्यतो देवि भुवनानि चतुर्दश ।। ४२ ।।
अभूवन्परमेशानि तेषां कारणरूपिणी ।
चतुःसागरसामर्थ्यं कृपालोकनतो भवेत् ।। ४३ ।।

ये वेदमातृका प्रपञ्चसागर में गिरे हुये अपने साधकों का उद्धार करती हैं। हे देवि ! जिनके सामर्थ्य से चतुर्दश भुवन हो जाते हैं, हे परमेशानि! जो समस्त कार्यों की कारणभूता है। जिनके कृपावलोकनमात्र से चारों सागर के समान सामर्थ्यवान् हो जाता है ।। ४२–४३ ।।

ब्रह्माण्डकोटिजननी महामोक्षप्रदायिनी ।
निःसरन्ति महामन्त्रा विस्फुलिङ्गा यथा प्रिये ।। ४४ ।।
वह्नेः सकाशाद् बहवो विद्यास्तु बहवस्तथा ।
वाग्भवात्तु समुत्पन्नास्तस्माद्वाग्भवमुच्यते ।। ४५ ।।

जो करोडों ब्रह्माण्डों की जननी है और महामोक्ष प्रदायिनी है। हे प्रिये ! जिस प्रकार अग्नि से अनेक विस्फुलिङ्ग उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार जिनसे

अनेक मन्त्र तथा विद्यायें उत्पन्न होती है। यह विद्या वाग्भव (ऐं) से उत्पन्न होने के कारण 'वाग्भव' कही जाती हैं ।। ४४–४५ ।।

मातृकार्णास्तथा भद्रे वाग्भवान्निसृताः क्रमात् ।
अत एव महेशानि शब्दब्रह्ममयी प्रिये ।। ४६ ।।

इसी प्रकार हे भद्रे ! सभी मातृका वर्ण क्रमशः वाङ् मन्त्र (ऐं) से निकले हुये हैं। (इसलिये इन्हें वाग्भव भी कहा जाता है।) इसलिए, हे महेशानि ! हे प्रिये! यह (ऐं) शब्दब्रह्ममयी कही जाती है ।। ४६ ।।

पालयन्ती जगत्सर्वं तथा त्रैलोक्यमोहिनी ।
मोहयन्ती कामकला पुत्रपौत्रप्रवर्धिनि ।। ४७ ।।

स्त्रीपुंभावेन सकलं ग्रथितं कामसूत्रके ।
तदा सौभाग्यसंपन्ना ब्रह्मस्थाननिवासिनी ।। ४८ ।।

यह सारे जगत् का पालन करती है, कामकला त्रैलोक्य मोहिनी है जो सारे जगत् को मोहित करती है, पुत्र पौत्र प्रवर्द्धिनी है, इसी के काम सूत्र में स्त्री पुरुष भाव से सारा जगत् गूँथा हुआ है। यह सौभाग्य संपन्न होकर ब्रह्मस्थान में निवास करती है ।। ४७–४८ ।।

सौभाग्यगर्वगहना विश्वयोनिरितीरिता ।
चतुर्वाङ्मयनिष्ठेयं त्रैलोक्यवशकारिणी ।। ४९ ।।

यह सौभाग्य के गर्व से भरी हुई है। यह विश्वयोनि कही जाती है। अतः यह चारों प्रकार के वांङ्मय में परिनिष्ठित रूप से रहने वाली त्रैलोक्यवशकारिणी है ।। ४९ ।।

साक्षात्संविन्मयी ज्ञानरूपिणी भोगदायिनी ।
महासंपत्प्रदा नित्या साक्षादक्षररूपिणी ।। ५० ।।

साक्षात् संवित्स्वरूपा, ज्ञानरूपिणी, भोगदायिनी, महासंपत्प्रदा, नित्या एवं साक्षात् अक्षरस्वरूपा है ।। ५० ।।

षोडशार्णा मया भद्रे श्रीविद्या कथिता परा ।
निधानमिव चोरेभ्यो रक्षणीया तथा प्रिये ।। ५१ ।।

हे भद्रे! हमने षोडश अक्षरों वाली परा श्री विद्या कह दी। हे प्रिये! जिस प्रकार चोर से खजाने की रक्षा की जाती है उसी प्रकार प्रयत्नपूर्वक जागरुकता के साथ इसकी रक्षा करनी चाहिए ।। ५१ ।।

न देया यस्य कस्यापि देया प्राणप्रदायिने ।
निर्मलाय स्वभक्ताय प्राणेभ्योऽप्यधिकाय च ॥ ५२ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे षोडशीविद्याविवरणं
नाम त्रयोदशः पटलः ॥ १३ ॥

यह विद्या जिस किसी को नहीं देनी चाहिए। अपने लिए प्राण प्रदान करने वाले अथवा निर्मल चित्त वाले अपने भक्त को जो अपने प्राणों से भी प्रिय हो उसी को इस विद्या का उपदेश करना चाहिए ॥ ५२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'षोडशीविद्याविवरण'
नामक त्रयोदश पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत
हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १३ ॥

❁

अथ चतुर्दशः पटलः

श्रीविद्यान्यासविधानम्

श्रीदेव्युवाच —

चक्रमण्डलमाख्यातं न पूजा तत्र मण्डले ।
कथिता परमेशान श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १ ॥

श्री देवी ने कहा—आप ने चक्रमण्डल का वर्णन तो किया किन्तु उस मण्डल पर पूजा विधान नहीं कहा, हे परमेशान ! मैं तत्त्वत चक्र पूजा विधान सुनना चाहती हूँ ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच —

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पूजाविधिमनुत्तमम् ।
तदङ्गकलशादीनां स्थापनं प्रथमं भवेत् ॥ २ ॥

ईश्वर ने कहा — हे देवि! मैं उत्तमोत्तम पूजा विधान कहता हूँ, उसे सुनिये। सर्वप्रथम पूजा के अङ्गभूत कलशादि का स्थापन यह पहला कार्य है ॥ २ ॥

तद्विधानं शृणु प्राज्ञे यथाविधि समासतः ।
मण्डलं वामतः कृत्वा जलेन चतुरस्रकम् ॥ ३ ॥
बृहत्कराभ्यां देवेशि तत्राऽऽधारं मनोहरम् ।
सौवर्णरौप्यताम्रादिरचितं पूजयेत्प्रिये ॥ ४ ॥

हे प्राज्ञे ! उसकी विधि संक्षेप में यथाविधि कहता हूँ सुनें, अपनी बाई ओर दोनों हाथों से बहुत बड़ा चौकोर मण्डल निर्माण करे । हे देवेशि! उस पर देवी का मनोहर आधार कलश निर्माण करे । हे प्रिये! कलश सोने का या चाँदी का या ताम्र को होना चाहिए, उसी पर देवी की पूजा करनी चाहिए ॥ ४ ॥

वह्निमण्डलरूपं तु कलादशकमर्चयेत् ।
धूम्रा च नीलवर्णा च कपिला विस्फुलिङ्गिनी ॥ ५ ॥

ज्वाला हैमवती कव्यवाहिनी हव्यवाहिनी ।
रौद्री संकर्षिणी चैव वैश्वानरकला दश ॥ ६ ॥

उस कलश पर वह्निमण्डल की दश कलाओं का अर्चन करना चाहिए। धूम्रा, नीलवर्णा, कपिला, विस्फुलिङ्गिनीज्वाला, हैमवती, कव्यवाहिनी, हव्यवाहिनी, रौद्री एवं संकर्षिणी – ये अग्नि की दशकलायें हैं ॥ ५–६ ॥

आभिः कलाभिः सहितं वह्निं तत्र प्रपूजयेत् ।
कलशं हेमजं वाऽन्यं स्थापयेत्तत्र सुन्दरि ॥ ७ ॥

इन कलाओं के सहित अग्नि का उस कलश पर पूजन करे । हे सुन्दरि ! इसके अतिरिक्त सुवर्ण निर्मित या अन्य (चाँदी या ताम्र) कलश वहाँ स्थापित करना चाहिए ॥ ७ ॥

पूजयेत्सूर्यरूपं तु कलाभिः परमेश्वरि ।
तपिनी तापिनी चैव विबुधा बोधिनी तथा ॥ ८ ॥

कलिनी शोषणी चैव वारुण्याकर्षिणी तथा ।
माया विश्वावती हेमा प्रभा सौरकला इमाः ॥ ९ ॥

हे परमेश्वरि ! उस कलश पर कलाओं के सहिति सूर्य का पूजन करना चाहिये। तपिनी, तापिनी, विबुधा, बोधिनी, कलिनी शोषिणी वारुणी आकर्षिणी माया विश्वावती हेमा और प्रभा ये १२ सूर्य कलाओं के नाम हैं॥ ८–९ ॥

कलशं तु समापूर्य जलेन कमलेक्षणे ।
तत्रस्थममृतं साक्षाच्चन्द्ररूपं विचिन्तयेत् ॥ १० ॥

हे कमलेक्षणे ! इसके अनन्तर एक ओर कलश जल से पूर्ण करे, उसमें रहने वाले उस अमृतमय जल में चन्द्रमा की भावना करे ॥ १० ॥

चन्द्रमण्डलमभ्यर्च्य कलाभिः सुरवन्दिते ।
अमृता मानसी तुष्टिः पुष्टिः प्रीति रतिस्तथा ॥ ११ ॥

श्रीश्च ह्रींश्चं स्वधा रात्रिर्ज्योत्स्ना हैमवती तथा ।
छाया च पूर्णिमा नित्या अमावास्या च षोडशी ॥ १२ ॥

हे सुरवन्दिते ! उस कलश पर कलाओं के सहित चन्द्रमण्डल की अर्चना करें । अमृता, मानसी, तुष्टि, पुष्टि, प्रीति, रति, श्री, ह्रीं, स्वधा, रात्रि,

ज्योत्स्ना, हैमवती, छाया, नित्या, पूर्णिमा और अमावास्या – ये सभी उनकी १६ कलाओं के नाम हैं ॥ ११–१२ ॥

एभिः समभ्यर्च्य मन्त्रैर्यजेदानन्दभैरवम् ।
शिवचन्द्रौ मातृकान्तं कलाशक्राम्बुवह्नयः ॥ १३ ॥
वायुश्च वामकर्णेन योजितो बिन्दुलाञ्छितः ।
बीजमेतत्समुच्चार्य तथा चाऽऽनन्दभैरवम् ॥ १४ ॥
ङेन्तं शिखामन्त्रयुक्तं पुनर्बीजं तु संलिखेत् ।
चन्द्रं हित्वाऽऽदिमं कुर्यात्कर्णे वामाक्षि योजयेत् ॥ १५ ॥
सुरादेव्यै ततो वौषडियमानन्दभैरवी ।
अनेन चन्द्रं संपूज्य पूजार्हः कलशो भवेत् ॥ १६ ॥

इन कलाओं की अर्चना कर आनन्दभैरव की अर्चना करे । शिव (ह्), चन्द्र (स्), मातृकान्त कला (क्ष्), शक्र (ल्), अम्बु (व्), वह्नि (र्), वायु (य) – इन्हें बिन्दु से लाञ्छित वाम कर्ण (ऊँ) से संयुक्त बीज मन्त्र का उच्चारण करते हुये (ह् स् क्ष् ल् व् र् यूँ) आनन्दभैरवाय, फिर शिखा मन्त्र (वौषट्) उच्चारण कर, पुनः बीज मन्त्र का उच्चारण करे । फिर आदि के चन्द्र बीज (स्) को छोड़ कर कर्ण के (ऊ) स्थान पर वामाक्षि (ई) जोड़ देवें फिर 'सुरादेव्यै वौषट्' यह आनन्दभैरवी मन्त्र है । (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – ह् क्ष् ल् व् रीं सुरादेव्यै वौषट्) इस मन्त्र से चन्द्रमा की पूजा कर लेने पर वह कलश पूजा के योग्य हो जाता है ॥ १३–१६ ॥

विधाय वामभागे तु चतुरस्रं तु मण्डलम् ।
यन्त्रिकां तत्र संस्थाप्य शङ्खं तत्र विनिक्षिपेत् ॥ १७ ॥
शुद्धोदकेन संपूर्य पूजयेत्कारणान्वितम् ।
षडङ्गं तत्र संपूज्य सामान्यार्घ्यमिदं प्रिये ॥ १८ ॥

अपने बायें भाग में चौकोर मण्डल निर्माण कर उस पर यन्त्रिका रखे । पुनः उस पर शङ्ख रखे । फिर उस शङ्ख को शुद्ध जल से परिपूर्ण कर सर्वकारणभूता भगवती की पूजा करे । हे प्रिये ! उस स्थान पर षडङ्ग का पूजन कर सामान्यार्घ्य प्रदान करे ॥ १७–१८ ॥

अथ वक्ष्ये महेशानि विशेषार्घ्यस्य लक्षणम् ।
आत्मश्रीचक्रयोर्मध्ये चतुरस्रं तु मण्डलम् ॥ १९ ॥
सामान्यार्घ्यस्य तोयेन देशिको भूमिजानुकः ।
वहत्करोर्ध्वपुटतो यन्त्रिकां तत्र योजयेत् ॥ २० ॥

कुमार्यास्त्रिपुरेशान्याः षडङ्गानि च पूर्ववत् ।

सर्वमन्त्रासन देवे। तदनन्तर अपने साध्य के सिंहासन की पूजा करे । दोनों पैरों में, दोनों जाँघों मे, दोनों जानुओं में तथा लिङ्ग में इन चार स्थानों में देव्यासन, चक्रासन, सर्वमन्त्रासन, साध्य सिद्धासन इन चार का न्यास करे। (द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, पृ० ३१४–३१५) वाला एवं त्रिपुरेशानी का षडङ्गन्यास पूर्ववत् करे ।। ३४–३५ ।।

अथ वक्ष्ये महेशानि श्रीविद्यान्यासमुत्तमम् ।। ३५ ।।

हे महेशानि ! अब श्री विद्या का सर्वोत्तम न्यास कहता हूँ ।। ३५ ।।

सम्पूर्णां चिन्तयेद्विद्यां ब्रह्मरन्ध्रेऽरुणप्रभाम् ।
स्रवत्सुधां षोडशार्णां महासौभाग्यदां स्मरेत् ।। ३६ ।।

साधक ब्रह्मरन्ध्र में अरुणप्रभा वाली संपूर्ण श्रीविद्या का ध्यान करे । जिन षोडशार्णा महाविद्या से सुधा के बिन्दु चूते रहते हैं जो महासौभाग्यप्रदा हैं, उन श्रीविद्या का ध्यान करे ।। ३६ ।।

वामांसदेशे सौभाग्यदण्डिनीं भ्रामयेत्ततः ।
रिपुजिह्वाग्रहां मुद्रां पादमूले न्यसेत्प्रिये ।। ३७ ।।

सर्वसौभाग्य सुन्दरी न्यास प्रकार – इस प्रकार ध्यान करने के पश्चात् उनके बायें कन्धे पर सौभाग्यदण्डिनी मुद्रा प्रदर्शित करे । हे प्रिये ! पादमूल में रिपुजिह्वागुहा मुद्रा प्रदर्शित करे। (द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, पृ० ३१६) ।। ३७ ।।

त्रैलोक्यस्य त्वहं कर्ता ध्यात्वैवं तिलके न्यसेत् ।
सम्पूर्णमिव वदने वेष्टनत्वेन विन्यसेत् ।। ३८ ।।
पुनः सम्पूर्णया देहे गलोर्ध्वे विन्यसेत्ततः ।
पुनः सम्पूर्णया देहे व्यापकत्वेन विन्यसेत् ।। ३९ ।।

त्रैलोक्य का मैं ही कर्त्ता हूँ, इस प्रकार ध्यान कर मस्तक में न्यास करे, फिर प्रणवादि नमोऽन्त मूल मन्त्र का न्यास मुख के ऊपर घुमाते हुये दाहिने कान से बायें कान तक करें । पुनः उसी प्रकार प्रणवादि नमोऽन्त मूल मन्त्र का उच्चारण कर कण्ठ से मुख तक न्यास करे । फिर उसी सम्पूर्ण मन्त्र से व्यापक मुद्रा द्वारा सारे अङ्गों में न्यास करे ।
(द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, पृ० ३१६) ।। ३८–३९ ।।

व्यापकान्ते योनिमुद्रां मुखे क्षिप्त्वाऽभिवन्द्य च ।
श्रीविद्यापूर्णरूपोऽयं न्यासः सौभाग्यवर्धनः ।। ४० ।।

व्यापक के बाद मुख पर योनिमुद्रा, बाँध कर त्रिपुरसुन्दरी देवी को प्रणाम करना चाहिए, सौभाग्य का अभिवर्द्धन करने वाला श्रीविद्या का यह पूर्ण न्यास है यहाँ तक सर्व सौभाग्यसुन्दरीन्यास कहा गया है।

(द्रष्टव्य : व्याख्याकारकृत मन्त्रमहोदधि, पृ० ३१६)॥ ४० ॥

परिभ्राम्यानामिकां तु मूर्धानं परितः प्रिये ।
ब्रह्मरन्ध्रे क्षिपेद्देवि मणिबन्धे न्यसेत्ततः ॥ ४१ ॥
ललाटेऽनामिका कुर्यात्षोडशार्णा स्मरन्बुधः ।
संमोहनाख्यो देवेशि न्यासोऽयं क्षोभकारकः ॥ ४२ ॥

सम्मोहन न्यास प्रकार – हे प्रिये ! अनामिका मुद्रा को शिर के चारों ओर घुमा कर उसे ब्रह्मरन्ध्र पर स्थापित करे, फिर हे देवि ! मणिबन्ध में न्यास करे; फिर षोडशार्णा भगवती का स्मरण करते हुये उस अनामिका को ललाट पर स्थापित करें । हे देवेशि ! यह सम्मोहन रूप न्यास है, जो सबको क्षुब्ध कर देने वाला है ॥ ४१–४२ ॥

त्रैलोक्यमरुणं ध्यायेच्छ्रीविद्यां मनसि स्मरेत् ।

इस न्यास में समस्त त्रिलोकी को अरुण वर्ण के रूप में ध्यान करे और मन में श्रीविद्या का स्मरण करे ॥ ४३ ॥

पादयोर्जङ्घयोर्जान्वोः कट्योरन्धुनि पृष्टके ॥ ४३ ॥
नाभौ पार्श्वद्वये चैव स्तनयोरंसयोस्तथा ।
कर्णयोर्ब्रह्मरन्ध्रे च वदनेऽक्षिणि पार्वति ॥ ४४ ॥
ततः कण्ठप्रदेशे तु करवेष्टनयोः क्रमात् ।
संहारोऽयं महान्यासो बीजैः षोडशभिः क्रमात् ॥ ४५ ॥

(अ) **संहारन्यास** (मन्त्रमहोदधि, पृ० ३१७) = हे पार्वति! दोनों पैरों में, दोनो जाँघों में, दोनो जानुओं में, दोनो कटियो में, लिङ्ग में, पीठ में, नाभि में, दोनो पार्श्व में, दोनों स्तनो में, दोनो कन्धों में, दोनो कानों में, ब्रह्मरन्ध्र में, मुख में, दोनों आँखो में, कण्ठप्रदेश में, दोनों कर एवं वेष्टन (तलों) में क्रमशः षोडश मन्त्रों के एक एक अक्षर से न्यास करे तो, हे पार्वति ! यह महान् संहार न्यास कहा जाता है ॥ ४३–४५ ॥

वाग्देवतान्यासविधानम्

श्रीविद्याया षोडशार्णैर्न्यासैर्विश्वेश्वरो भवेत् ।
सृष्ट्यन्तां विन्यसेद्देवि मातृकां पूर्ववत्प्रिये ॥ ४६ ॥

मातृकार्णस्वरूपां च वर्गाष्टकसमन्विताम् ।
वशिनीं मातृकां न्यस्येद् बीजाष्टकसमन्विताम् ॥ ४७ ॥
अवर्गान्ते लिखेद्बीजं वह्निफान्तं क्षमान्वितम् ।
वामकर्णविशोभाढ्यं बिन्दुनादाङ्कितं प्रिये ॥ ४८ ॥
वशिनीं पूजयेद्वाचां देवतां देवि सुव्रते ।

हे देवि ! श्रीविद्या का षोडशाक्षरों से जो न्यास करता है, वह साक्षात् विश्वेश्वर बन जाता है। हे प्रिये ! इस प्रकार, हे देवि ! पुनः वाग्देवता से आरम्भ कर सृष्ट्यन्त न्यास करे। आठ वर्गों से (अ क च ट त प य श) युक्त मातृकावर्णों को अष्टबीजों से युक्त वशिनी आदि के द्वारा न्यास वाग्देवता न्यास हैं । अब उसका प्रकार कहता हूँ । हे प्रिये ! अ वर्ग में अन्त में वह्नि (र), फान्त (ब) उसे क्षमा (ल्) से समन्वित कर, पुनः वामकर्ण एवं बिन्दुनाद से संयुक्त (ऊँ) करें । हे देवि ! हे सुव्रते ! इस प्रकार (रब्लूँ) इस बीज से युक्त वशिनी वाग्देवता का पूजन करे ।

विमर्श—(१) ॐ अं आ इं ईं ऊ ऊँ एं ऐं ओं अं अः रब्लूं वशिनी वाग्देवतायै नमः शिरसि ॥ ४६—४९ ॥

कवर्गान्ते महेशानि कामेशीबीजमुत्तमम् ॥ ४९ ॥
मेरूद्धतं समुच्चार्य वाग्देवीं पूजयेत्ततः ।

(२) हे महेशानि ! क वर्गान्त के बाद मेरूद्धत क ल ह्रीं—इस उत्तम बीज से युक्त कामेशी का पूजन करे ।

विमर्श—यथा — कं खं गं घं ङं — कल ह्री कामेश्वरी वाग्देवतायै नमः ललाटे ॥ ४९—५० ॥

च वर्गान्ते धान्तलान्तं क्षमातुर्यस्वरान्वितम् ॥ ५० ॥
मोदिनीं पूजयेद्वाचां देवतां तदनन्तरम् ।

(३) चवर्ग के अन्त में धान्त (न), लान्त (व्), क्षमा (ल्) में चौथा स्वर (ई) लगा कर वाणी के देवता मोदिनी का पूजन करे ।

विमर्श—पूर्ण स्वरूप इस प्रकार है—चं छं जं झं ञं न्व्लीं मोदिनी वाग्देवतायै नमः भ्रूमध्ये ॥ ५०—५१ ॥

टवर्गान्ते वायुतोयं मुखसंस्थं महेश्वरि ॥ ५१ ॥
वामकर्णेन्दुबिद्वाढ्यं विमलां वागधीश्वरीम् ।

(४) हे महेश्वरि ! ट वर्गान्त में वायु (य्), तोय (व्), मुखसंस्थ (ल्), इन्हें वामकर्ण (ऊ) तथा नाद समन्वित कर (य्व्लूँ) विमला वाग्देवता का पजन करे ॥ ५१ ॥

विमर्श – यथा टं ठं डं ढं णं य्ल्लूँ विमला वाग्देवतायै नमः भ्रूमध्ये।

तवर्गान्ते जमक्ष्माद्यं वामनेत्रविभूषितम् ॥ ५२ ॥
बिन्दुनादाङ्कितं बीजं वाग्देवीमरुणां यजेत् ।

(५) त थ द ध न इसके अन्त में ज् म क्षमादि र् इन्हें वाम नेत्र (ई) जो नाद बिन्दु से युक्त हो लगा कर अरुणा का यजन करना चाहिए ।

विमर्श – तं थं दं धं नं ज्म्रीं अरुणा वाग्देवतायै नमः हृदि ॥ ५२–५३ ॥

पवर्गान्ते व्योमचन्द्रं क्षमातोयाग्निमुख्यकम् ॥ ५३ ॥
उकारस्वरसंयुक्तं बिन्दुनादकलाङ्कितम् ।
जयिनीं पूजयेद्वाचां देवतां वीरवन्दिते ॥ ५४ ॥

(६) हे वीरवन्दिते! प वर्ग के अन्त में व्योम (ह्), चन्द्र (स्), क्षमा (ल्), तोय (व्) और अग्नि (र्) से युक्त कर उसे बिन्दुनाद समन्वित उकार से युक्त कर जयिनी वागधीश्वरी की पूजा करे ॥ ५३–५४ ॥

विमर्श – पं फं बं भं मं हस्ल्व्रुँ जयिनी वाग्देवतायै नमः नाभौ ।

यवर्गान्ते जान्तकालरेफवायुसमन्वितम् ।
ऊमाढ्यं देवतां वाचां सर्वेशीं परिपूजयेत् ॥ ५५ ॥

(७) य वर्ग के अन्त में जान्त (झ्), काल (म्), रेफ (र) एवं वायु (य) में नाद बिन्दु समन्वित (ऊँ) लगा कर वाणी की अधीश्वरी सर्वेश्वरी की पूजा करे ॥ ५५ ॥

विमर्श – यथा यं रं लं वं झ् म् र् यूँ सर्वेश्वरी वाग्देवतायै नमः मूलाधारे ॥ ५५ ॥

क्षमोवह्निगतं तुर्यं बीजेन परिमण्डितम् ।
बिन्दुनादकलाक्रान्तं कौलिनीं वाचमर्चयेत् ॥ ५६ ॥
शवर्गान्ते महेशानि न्यसेत् सर्वार्थसिद्धये ।

(८) हे महेशानि ! तदनन्तर अपनी सर्वार्थसिद्धि के लिए श वर्ग के अन्त में क्ष् म् और वह्नि र इसमें चौथा स्वर ई जो नाद बिन्दु से परिमण्डित हो लगाकर कौलिनी वागधीश्वरी की पूजा करे ॥ ५६–५७ ॥

विमर्श – शं षं सं हं क्षं क्ष्मरीं कौलिनी वाग्देवतायै नमः ऊर्वादिपादान्तम्।

शिरोललाटभ्रूमध्यकण्ठहृन्नाभिगोचरे ॥ ५७ ॥
आधारे व्यूहकं यावन्न्यसेद्देवीः क्रमात्प्रिये ।

षोढान्यासं ततः कुर्याद्येन ब्रह्माण्डरूपकः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार शिर, ललाट, भ्रूमध्य, कण्ठ, हृदय, नाभि, आधार, चक्र एवं ऊर्वादि पादान्त न्यास करे । इसके बाद षोढान्यास करे ॥ ५७–५८ ॥

विराट्स्वरूपी वर्णात्मा शिवः साक्षान्न संशयः ।
गणेशः प्रथमो न्यासः सर्वविघ्नविनाशनः ॥ ५९ ॥

इन षोढान्यासों को करने वाला साधक ब्रह्माण्ड रूप विराट् एवं वर्णात्मा का साक्षात् स्वरूप होता है इसमें संशय नहीं । इन षोढा न्यासों में गणेश न्यास प्रथम है, जो सारे विघ्नों को नष्ट कर देता है ॥ ५९ ॥

अरुणादित्यसंकाशान्गजवक्त्रांस्त्रिलोचनान् ।
पाशाङ्कुशवराभीतिकराञ्शक्तिसमन्वितान् ॥ ६० ॥
ध्यात्वा प्रविन्यसेद्देवि मातृकान्यासवत्ततः ।

लाल वर्ण के सूर्य के समान आभा वाले गजवक्त्र, त्रिलोचन, हाथ में पाश, अंकुश, वर, अभय तथा शक्ति लिए हुये गणेश का ध्यान करे । हे देवि ! मातृका न्यास के समान गणेश न्यास करे । (द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, पृ० ६८०)॥ ६०–६१ ॥

१. गणेशमातृकान्यासः

विघ्नेश्वरस्तथा श्रीश्च विघ्नराजस्तथा ह्रिया ॥ ६१ ॥
विनायकस्तथा तुष्टिः शान्तियुक्तः शिवोत्तमः ।
विघ्नकृत्पुष्टियुक्तस्तु विघ्नहृच्च सरस्वती ॥ ६२ ॥
विघ्नराड्रतियुक्तस्तु मेधावान् गणनायकः ।
एकदन्तश्च कान्तिश्च द्विदन्तः कामिनीयुतः ॥ ६३ ॥
गजवक्त्रो मोहिनी च निरञ्जनजटा ततः ।
कपर्दी तु तथा तीव्रा दीर्घवक्त्रस्ततः प्रिये ॥ ६४ ॥
ज्वालिनीसहितः पश्चान्नन्दासंकर्षणौ ततः ।
वृषध्वजश्च शुभगा गणनाथेन संयुता ॥ ६५ ॥
कामरूपिणिका पश्चाद्गजेन्द्रः शुभ्रया युतः ।
शूर्पकर्णस्तु जयिनी त्रिनेत्रः सत्ययाऽन्वितः ॥ ६६ ॥
लम्बोदरश्च विघ्नेशी महानादस्वरूपिणी ।
चतुर्मूर्त्तिः कामदा च सदाशिवयुता ततः ॥ ६७ ॥

मदविह्वलनाम्नी च आमादविकटे ततः ।
दुर्मुखश्च तथा घूर्णा सुमुखो भूतिमांस्ततः ॥ ६८ ॥
प्रमोदश्च तथा भूमीरेकपादस्तथा सती ।
द्विजिह्वश्च रमायुक्तः शूरश्चैव तु मानुषी ॥ ६९ ॥
वीरेण सहिता पश्चाच्छैलजे मकरध्वजः ।
षण्मुखश्च विकर्णा च वरदो भृकुटी तथा ॥ ७० ॥
वामदेवस्तथा लज्जा वक्रतुण्डस्तथा परम् ।
दीर्घघोणान्वितः पश्चाद्विरण्डकधनुर्धरा ॥ ७१ ॥
सेनानीर्यामिनीयुक्तो ग्रामणी रात्रिसंयुतः ।
मत्तश्च चण्डिकायुक्तो विमत्तश्च शशिप्रभा ॥ ७२ ॥
मत्तवाहनलोले च जटी च चपलेक्षणा ।
शुण्डि ऋज्वीयुतः पश्चात्खड्गी दुर्भगयाऽन्वितः ॥ ७३ ॥
वरेण्यश्चैव सुभगा वृषकेतुस्तथा शिवा ।
भक्ष्यप्रियश्च दुर्गा च मेघनादश्च कालिका ॥ ७४ ॥
गणेशः कालकुब्जा च गणपो विघ्नहारिणी ।
मातृवर्णैर्न्यसेद्देवि ग्रहन्यासं ततो न्यसेत् ॥ ७५ ॥

१. विघ्नेश्वर श्री, २. विघ्नराज ह्री, ३. विनायक तुष्टि, ४. शिवोत्तम शान्ति, ५. विघ्नकृत् पुष्टि(स्वस्ति), ६. विघ्न(हर्त्ता) सरस्वती, ७. विघ्नराट् रति, ८. गणनायक मेधा (गण स्वाहा), ९. एकदन्त कान्ति (सुमेधा), १०. द्विदन्त कामिनी (कान्ति), ११. गजवक्त्र मोहिनी (कामिनी), १२. निरञ्जन और जटा (नटी), १३. कपर्द्दी तीव्रा (मोहिनी), १४. दीर्घवक्त्र ज्वालिनी (दीर्घजिह्व पार्वती), १५. नन्दो संकर्षण (शङ्कुकर्ण ज्वालिनी), १६. वृषध्वज शुभगो (वृषभध्वज नन्दा), १७. गणनाथ कामरूपिणिका (सुरेश गणनायक), १८. गजेन्द्र शुभ्रा (कामरूपिणी), १९. शूर्पकर्ण जयिनी (उमा), २०. त्रिनेत्र सत्या, २१. लम्बोदर विघ्नेशी, २२. महानाद स्वरूपिणी, २३. चतुर्मूर्त्ति कामदा, २४. सदाशिव मदविह्वला, २५. आमाद विकटा, २६. दुर्मुख घूर्णा, २७. सुमुख भूति, २८. प्रमोद भूमि, २९. एकपाद सती, ३०. द्विजिह्व रमा, ३१. शूर मानुषी, ३२. मकरध्वज वीरसहिता, ३३. षण्मुख विकर्णा, ३४. वरद भृकुटी, ३५. वामदेव लज्जा, ३६. वक्रतुण्ड दीर्घघोणा, ३७. द्विरण्डक धनुर्धरा, ३८. सेनानी यामिनी, ३९. ग्रामणी रात्रि, ४०. मत्त चण्डिका, ४१. विमत्त शशिप्रभा,

४२. मत्तवाहन लोला, ४३. जटी चपलेक्षणा, ४४. शुण्डी ऋज्वी, ४५. खड्गी दुर्भगा, ४६. वरेण्य सुभगा, ४७. वृषकेतु शिवा, ४८. भक्ष्यप्रिय दुर्गा, ४९. मेघनाद कालिका, ५०. गणेश कालकुब्जा, ५१. गणप विघ्नहारिणी ।

यथा गं अं विघ्नेश्वरश्रीभ्यां नमः शिरसि, गं आं विघ्नराजह्रीभ्यां नमः ललाटे इत्यादि । अब ग्रहन्यास कहते हैं ॥ ६१–७५॥

२. ग्रहन्यासः

पद्मरागं सितं रक्तं श्यामं पीतं च पाण्डुरम् ।
धूम्रकृष्णं कृष्णधूम्रं धूम्रधूम्रं विचिन्तयेत् ॥ ७६ ॥
रविमुख्यान्कामरूपान्सर्वाभरणभूषितान् ।
वामोरुन्यस्तहस्तांश्च दक्षहस्ताभयप्रदान् ॥ ७७ ॥

साधक (१) पद्मराग, (२) श्वेत (३) रक्त (४) श्याम (५) पीत (६) पाण्डुर (७) धूम्रकृष्ण (८) कृष्णधूम्र और (९) धूम्रधूम्र ग्रहों के इन वर्णों का ध्यान करे। सूर्यादि सभी ग्रह रूप कामरूपधारी एवं सर्वाभरणभूषित अपने बायें ऊरू पर हाथ रखे हुये दाहिने हाथ में अभयमुद्रा से संयुक्त हैं ॥ ७६–७७ ॥

स्वरैरर्कं हृदि न्यस्य यवर्गेण शशी ततः ।
भ्रूमध्येऽथ कवर्गेण भौमं नेत्रत्रये न्यसेत् ॥ ७८ ॥
चवर्गेण बुधो हृत्स्थष्टवर्गेण बृहस्पतिः ।
हृदयोपरि देवेशि तवर्गेण गले भृगुः ॥ ७९ ॥
पवर्गेण शनिर्नाभौ राहुर्वक्त्रे शवर्गतः ।
लक्षाभ्यां तु गुदे केतुर्न्यसेदेवं वरानने ॥ ८० ॥

साधक को स्वरों से सूर्य का न्यास हृदय स्थान में, तदनन्तर य वर्ग से युक्त शशी का भ्रूमध्य में, कवर्ग से युक्त भौम का न्यास तीनों नेत्रों में, च वर्ग से बुध का न्यास हृदय में, ट वर्ग से युक्त बृहस्पति का न्यास हृदय के ऊपर, त वर्ग से युक्त भृगु का न्यास कण्ठ प्रदेश में, पवर्ग से युक्त शनि का न्यास नाभि में, शवर्ग से युक्त राहु का न्यास मुख में, लक्ष के साथ केतु का न्यास गुप्ताङ्ग में करना चाहिए । यथा – अं १६ सूर्याय नमः हृदि, यं ४ चन्द्राय नमः भ्रूमध्ये इत्यादि ॥ ७८–८० ॥

३. नक्षत्रमातृकान्यासः

अथ नक्षत्रवृन्दस्य न्यासं कुर्यात्सुखप्रदम् ।
ज्वलत्कालाग्निसंकाशाः सर्वाभरणभूषिताः ॥ ८१ ॥

इसके बाद हे देवि ! सुख प्रदान करने वाले नक्षत्र समूहों से न्यास करे। ये सभी अश्विन्यादि नक्षत्र वृन्द जलते हुये कालाग्नि के समान भयङ्कर तथा सर्वाभरणभूषित हैं ॥ ८१ ॥

नतिपाण्योऽश्विनीमुख्या वरदाभयपाणयः ।
युग्मं युग्मं तथा युग्मं युग्मयुग्मेन रोहिणीम् ॥ ८२ ॥
एकमेकं तथा द्वन्द्वमेकं पुष्यान्तमुच्यते ।
ललाटे चक्षुषोः पश्चाद्वामदक्षिणकर्णयोः ॥ ८३ ॥
नासाद्वये च देवेशि तथा कण्ठे क्रमान्न्यसेत् ।
पुष्यान्तं च प्रविन्यस्य खगार्णाभ्यां तु सार्पकम् ॥ ८४ ॥
दक्षस्कन्धे घङाभ्यां तु मघां स्कन्धे द्वितीयके ।
चपूर्वाफाल्गुनीं दक्षे कूर्परे छजसंयुताम् ॥ ८५ ॥
उत्तरफाल्गुनीं वामे कूर्परे विन्यसेत्प्रिये ।
झञवर्णास्थितो हस्तो मणिबन्धेऽथ दक्षिणे ॥ ८६ ॥
चित्रां टठस्थां वामे च मणिबन्धे न्यसेत्प्रिये ।
डकारेण युतां स्वातीं दक्षहस्ते प्रविन्यसेत् ॥ ८७ ॥
ढणयुक्तां विशाखां तु वामहस्ते प्रविन्यसेत् ।
तथदस्थानुराधां तु नाभौ विन्यस्य पार्वति ॥ ८८ ॥
धकारेण युतां ज्येष्ठां न्यसेद्दक्षकटौ प्रिये ।
नपफस्थं तथा मूलं न्यसेद् वामकटौ प्रिये ॥ ८९ ॥
पूर्वाषाढां वकारेण दक्षोरौ विन्यसेत्प्रिये ।
भकारेणोत्तराषाढां वामोरौ तदनन्तरम् ॥ ९० ॥

हाथ जोड़े हुये तथा वरद एवं अभय मुद्रा से युक्त है, दो दो, दो दो के साथ रोहिणी तक फिर १, १, २, १ पुष्य तक इनके क्रम से ललाट, दोनों नेत्र, वाम कर्ण, दक्षिण कर्ण, दोनों नासिका और कण्ठ स्थान में क्रमशः न्यास करें। पुष्य तक न्यास कर ख ग वर्णों से आश्लेषा का न्यास दाहिने कन्धे पर, घ ङ से युक्त मघान्यास द्वितीय कन्धे पर, च युक्त पूर्वाफाल्गुनी का न्यास दाहिने कूर्पर में, छ ज से युक्त उत्तराफाल्गुनी का न्यास वाम कूर्पर में, झ ञ संयुक्त हस्त का न्यास दक्षिण मणिबन्ध में, ट ठ के साथ चित्रा का न्यास बायें मणिबन्ध में, डकार से युक्त स्वाती का न्यास दाहिने हाथ में, ढ ण से युक्त विशाखा का न्यास बायें हाथ में, त थ द से युक्त अनुराधा का न्यास, हे पार्वति! नाभि में, ध से युक्त ज्येष्ठा का न्यास दाहिनी कटि में, न प फ से

युक्त मूल का न्यास वामकटि में, बकार के साथ पूर्वाषाढ़ का न्यास दाहिने ऊरु में और भकार से युक्त उत्तराषाढ का न्यास बायें ऊरु में करना चाहिए ॥ ८२–९० ॥

मकारयुक्तं श्रवणं दक्षजानुनि विन्यसेत् ।
यरस्थितां धनिष्ठां तु वामजानुनि विन्यसेत् ॥ ९१ ॥
लकारेण ततो देवि शतभिषं न्यसेत्प्रिये ।
दक्षजङ्घागतां पश्चात्पूर्वाभाद्रपदां ततः ॥ ९२ ॥
वशवर्णस्थितां न्यस्य वामजङ्घागतां क्रमात् ।
षसहस्थोत्तराभाद्रपदां दक्षिणापादके ॥ ९३ ॥
क्षकारेण ततो बिन्दुविसर्गाभ्यां च रेवती ।
वामपादे प्रविन्यस्य योगिनीन्यासमाचरेत् ॥ ९४ ॥

हे देवि ! मकार से युक्त श्रवण का न्यास दाहिने जानु में, य र के साथ धनिष्ठा का न्यास बायें जानु में करे। हे प्रिये ! लकार से युक्त शतभिषा का न्यास दाहिने जंघे में, व श वर्ग से युक्त पूर्वाभाद्रपदा का न्यास वाम जंघे में, ष स ह से युक्त उत्तरा भाद्रपदा का न्यास दाहिने पैर में, तदनन्तर क्षकार, बिन्दु अं, विसर्ग अः के साथ रेवती का न्यास बायें पैर में करें । तदनन्तर योगिनी न्यास करे ।

विमर्श – उक्त न्यासविधि यथा अं आं अश्विन्यै नमो ललाटे, इ ई भरण्यै नमः चक्षुषोः, ऊँ ऊं कृत्तिकायै नमः दक्षिण नेत्रे, ऋं ॠं लृं लॄं रोहिण्यै नमः वाम नेत्रे, एं मृगशिरसे नमः दक्षिण कर्णे, ऐं आर्द्रायै नमः वामकर्णे, ओं औं पुनर्वसवे नमः नासिकयोः, अं अः पुष्याय नमः कण्ठे । पुनः – कं आश्लेषायै नमः दक्षस्कन्धे – इत्यादि ॥ ९१–९४ ॥

४. योगिनीमातृकान्यासः

सितासितारुणा बभ्रूचित्रापीताश्च चिन्तयेत् ।
चतुर्भुजाः समैर्वक्त्रैः सर्वाभरणभूषिताः ॥ ९५ ॥

अब योगिनी न्यास कहते हैं – १. श्वेत, २. काले वर्ण की ३. लाल, ४. बभ्रु, ५. चित्रा और ६. पीता – ये योगिनियों के वर्ण हैं । सभी चतुर्भुज हैं । सभी के मुख एक समान हैं और यह सभी सब प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित हैं ॥ ९५ ॥

डांडींबीजद्वयं चोक्त्वा डमला वरयाः प्रिये ।
वामकर्णेन्दुनादाढ्यं डाकिन्यै नम इत्यपि ॥ ९६ ॥

स्वरान्ते तु प्रवक्तव्यं मान्ते रक्षपदद्वयम् ।
त्वगात्मने कण्ठदेशे विशुद्धौ विन्यसेत्प्रिये ॥ ९७ ॥

डां डीं दो बीज उच्चारण कर, हे प्रिये ! ड म ल व र य इन्हें वाम कर्ण (ऊँ) से तथा नाद बिन्दु से युक्त कर डाकिन्यै नमः इतना स्वरान्त में कह कर फिर मम त्वगात्मने में दो बार रक्ष रक्ष पद कहकर, त्वक् में, कण्ठ में और विशुद्धचक्र में न्यास करे ॥ ९६–९७ ॥

कण्ठवर्णै राकिनीं तु रकाराद्यक्षरैः क्रमात् ।
पूर्ववद्बीजसंयुक्तैरसृगात्माऽत्र संवदेत् ॥ ९८ ॥
अनाहते न्यसेत्पश्चाड्डकारादिफकारकैः ।
लाकिनी च तथा देवि मांसात्मा मणिपूरके ॥ ९९ ॥
बंलवर्णैः काकिनीं तु स्वाधिष्ठाने तथाविधाम् ।
भेदस्वरूपां विन्यस्य वसवर्णैस्तु साकिनीम् ॥ १०० ॥
अस्थिरूपां च पूर्वोक्तबीजेनाऽऽधारके न्यसेत् ।
हक्षवर्णास्थितां तद्वन्मज्जारूपिणिकां यजेत् ॥ १०१ ॥
भुवोर्मध्ये महेशानि हाकिनीं द्विदले न्यसेत् ।
पूर्ववद्बीजसंयुक्तां तद्वच्छुक्रात्मिकां यजेत् ॥ १०२ ॥
सर्वधातुगतां देवीं शुक्लवर्णां तु याकिनीम् ।
ब्रह्मरन्ध्रे महेशानि न्यासोऽयं योगिनीयुतः ॥ १०३ ॥

यथा डां डीं डूं मूं लूं वूं रूं यूं **डाकिन्यै** नमः अं (१६ स्वर) मम त्वचं रक्ष रक्ष त्वगात्मने नमः कण्ठदेशे विशुद्धे ॥ १ ॥ रां रीं रूं मूं लूं वूं रूं यूं **राकिन्यै** नमः कं १२ मम रक्तँ रक्ष रक्ष असृगात्मने हृद्यनाहते ॥ २ ॥ लां लीं लूं मूं लूं वूं रूं यूं **लाकिन्यै** नमः डं १० मम मांसं रक्ष रक्ष मांसात्मने नमः नाभौ मणिपूरे ॥ ३ ॥ कां कीं कूं मूं लूं वूं रूं यूं **काकिन्यै** नमः वं ६ मम मेदो रक्ष रक्ष मेदसात्मने नमः लिङ्गमूले स्वाधिष्ठाने ॥ ४ ॥ शां शीं शूं मूं लूं वूं रुं यूं **शाकिन्यै** नमः ममास्थीनि रक्ष रक्ष अस्थ्यात्मने नमः गुदे मूलाधारे ॥ ५ ॥ ह्रां ह्रीं ह्रूं मूं लूं वूं रूं यूं **हाकिन्यै** नमः हं क्षं मम मज्जानं रक्ष रक्ष मज्जात्मने नमः, भ्रूमध्य आज्ञाचक्रे ॥ ६ ॥ यां यीं यूं मूं लूं वूं रूं यूं **याकिन्यै** नमः मम शुक्रं रक्ष रक्ष शुक्रात्मने नमः, ब्रह्मरन्ध्रे ॥ ७ ॥ इति योगिनी मातृकान्यासः ॥ ९८–१०३ ॥

५. राशिमातृकान्यासः

राशिन्यासं ततः कुर्यात्सर्वरक्षाकरं सदा ।
रक्तश्वेतहरिद्वर्णपाण्डुचित्राशितान्स्मरेत् ॥ १०४ ॥

पिशङ्गपिङ्गलौ बभ्रुकर्बुरासितधूम्रकान् ।
अकारादिचतुष्केण विन्यसेत्सुरवन्दिते ॥ १०५ ॥

मेषं दक्षिणपद्गुल्फे ततो द्वन्द्वेन वै वृषम् ।
न्यसेज्जानुनि वेदैस्तु मिथुनं वृषणे ततः ॥ १०६ ॥

द्वाभ्यां कर्कटकं कुक्षौ द्वाभ्यां स्कन्धे च सिंहकम् ।
अनुस्वारविसर्गाभ्यां शवर्गेण च कन्यकाम् ॥ १०७ ॥

दक्षिणे तु शिरोभागे विन्यसेद्वीरवन्दिते ।
तथा वामशिरोभागे कवर्गेण तुलाभृतम् ॥ १०८ ॥

चवर्गेण तथा स्कन्धे वृश्चिकं विन्यसेत्प्रिये ।
टवर्गेण तथा कुक्षौ धन्विनं विन्यसेत्प्रिये ॥ १०९ ॥

मकरं तु तवर्गेण वृषणे विन्यसेत्क्रमात् ।
पवर्गेण तथा कुम्भं वामजानुनि विन्यसेत् ॥ ११० ॥

यवर्गेणं क्षकारेण मीनं गुल्फेऽथ वामके ।
अथ पीठानि विन्यस्येत्सर्वतीर्थमयानि हि ॥ १११ ॥

हे वीरवन्दिते ! हे प्रिये ! इसके बाद सर्वदा सबकी रक्षा करने वाला राशि न्यास करे। जो १. रक्त, २. श्वेत, ३. हरित्, ४. पाण्डु, ५. चित्र, ६. काले, ७. पिशङ्ग, ८. पिङ्गल, ९. बभ्रू, १०. कर्बुर, ११. असित तथा १२. धूम्र वर्ण वाले हैं । इनका ध्यान करे । यथा १ अं आं इं ईं मेषाय नमः दक्षपादगुल्फे २ उं ऊं वृषाय नमः दक्षजानूनि ॥ ३ ऋं ॠं ऌं ॡं मिथुनाय नमः दक्ष वृषणे, ४ एं ऐं कर्काय नमः दक्ष कुक्षौ, ५ ओं औं सिंहाय नमः दक्षस्कन्धे, ६ अं अः शं षं सं हं लं कन्यायै नमः दक्षशिरो भागे, ७ कं खं गं घं ङं तुलायै नमः वामशिरो भागे । ८ चं छं जं झं ञं वृश्चिकाय नमः वामस्कन्धे, ९ टं ठं डं ढं णं धनुषे नमः वामकुक्षौ, १० तं थं दं धं नं मकराय नमः वामवृषणे, ११ पं फं बं भं मं कुम्भाय नमः वामजानूनि, १२ यं रं लं वं क्षं मीनाय नमः वाम गुल्फे । इति राशिमातृका न्यासः। इसके बाद सर्वतीर्थमय पीठों का न्यास करे ॥ १०४–१११ ॥

सर्वतीर्थमयपीठन्यासः

सितासितारुणाश्यामहारित्पीतान्यनुक्रमात् ।
पुनः पुनः क्रमाद्देवि पञ्चाशत्पीठसंचयः ॥ ११२ ॥

पीठों का न्यास – श्वेत, काला, अरुण, श्याम, हरा, पीला ये हे देवि! क्रमशः पुनः पुनः ५० पीठों के वर्ण का ध्यान करे ॥ ११२ ॥

पीठानि संस्मरेद्विद्वान् सर्वमातृकया युतान्(?) ।
मातृकार्णैर्न्यसेद्विद्वान् सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ११३ ॥

विद्वान् साधक सर्वमातृकाओं से समन्वित पीठों का ध्यान कर मातृका वर्णों के साथ अपनी कामना की सिद्धि के लिए इस प्रकार न्यास करे ॥ ११३ ॥

कामरूपं महापीठं पीठं वाराणसीं ततः ।
नेपालं च तथा पीठं तथा वै पौण्ड्रवर्धनम् ॥ ११४ ॥
पुरस्थिरं तथा पीठं चन्द्रस्थिरमतः परम् ।
पूर्णशैलं महापीठमर्बुदं च ततः परम् ॥ ११५ ॥
आम्रातक्रेश्वरं पीठमेकाम्रं च ततः परम् ।
विस्रोतःपीठमनघं कामकोटं ततः परम् ॥ ११६ ॥
कैलासभृगुकेदारं पीठं चन्द्रपुरं ततः ।
श्रीपीठं च तथोंकारं जालन्धरमतः परम् ॥ ११७ ॥
मालवं च ततः पीठं कुलान्तं देवकोटकम् ।
गोकर्णं च महापीठं मारुतेश्वरमेव च ॥ ११८ ॥
अट्टहासं च विरजं राजगेहं महापथम् ।
पीठं कोल्लगिरिं प्रोक्तमेलापुरमतः परम् ॥ ११९ ॥
कामेश्वरं महापीठं महापीठं जयन्तिका ।
पीठमुज्जयनी चैव चरित्रं क्षीरकाभिधम् ॥ १२० ॥
हस्तिनापुरपीठं च उड्डीशं च प्रयागकम् ।
षष्ठीशं पीठश्रीशैलं मायापूरजलेश्वरम् ॥ १२१ ॥
मलयं च महापीठं श्रीशैलं मेरुकं गिरिम् ।
महेन्द्रं वामनं चैव हिरण्यपुरमेव च ॥ १२२ ॥
महालक्ष्मीमयं पीठमुड्डीयानमतः परम् ।
छायाच्छत्रपुरं पीठं तथैव परमेश्वरि ॥ १२३ ॥
पञ्चाशत्पीठविन्यासं मातृकाविन्यसेत् सदा ।
षोढान्यासो महादेवि न्यस्त्वा साक्षात्स्वयं शिवः ॥ १२४ ॥

१. कामरूप, २. वाराणसी, ३. नेपाल, ४. पौण्ड्रवर्धन, ५. पुरस्थिर, ६ चन्द्रस्थिर, ७. पूर्णशैल, ८. महापीठ, ९. अर्बुद, १०. आम्रातकेश्वर, ११ एकाम्र, १२. विस्रोत, १३. कामकोट, १४. कैलास, १५. भृगु, १६. केदार १७. चन्द्रपुर, १८. श्रीपीठ, १९. ॐकार, २०. जालन्धर, २१. मालव, २२ कुलान्त, २३. देवकोटक, २४. गोकर्ण, २५. मारुतेश्वर, २६. अट्टहास, २७

विरज, २८. राजगेह महापथ, २९. कोल्लगिरि, ३०. एलापुर, ३१. कामेश्वर महापीठ, ३२. जयन्तिका, ३३. उज्जयिनी महापीठ, ३४. क्षीरका, ३५. हस्तिनापुर, ३६. उड्डीश, ३७. प्रयाग, ३८. षष्ठीश, ३९. श्रीशैल, ४०. मायापुर, ४१. जलेश्वर, ४२. मलयमहापीठ, ४३. मेरुगिरि, ४४. महेन्द्र, ४५. वामन, ४६. हिरण्यपुर, ४७. महालक्ष्मीमय, ४८. उड्डीयान, ४९. छाया, ५०. छत्रपुर – हे परमेश्वरि ! ये ५० पीठ है । इन्हें मातृकावर्णों से युक्त कर सर्वदा न्यास करे । इस प्रकार हे महादेवि ! षोढा न्यास करने वाला साक्षात् स्वयं शिव बन जाता है ॥ ११४–१२४ ॥

विमर्श – ५० पीठों के न्यास इस प्रकार करना चाहिए – अं कामरूपपीठाय नमः, आं वाराणसीपीठाय नमः, इं नेपालपीठाय नमः इत्यादि (द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, पृ० ३२६)

अथ कामान्न्यसेद्देवी दाडिमीकुसुमप्रभान् ।
वामाङ्कशक्तिसहितान्पुष्पबाणेक्षुकार्मुकान् ॥ १२५ ॥
शक्तयः कुङ्कुमनिभाः सर्वाभरणभूषिताः ।
नीलोत्पलकरा ध्येयास्त्रैलोक्याकर्षणक्षमाः ॥ १२६ ॥

हे देवि ! इसके अनन्तर अनार पुष्प के समान रक्तवर्ण वाले कामों का न्यास करे । जो अपनी बाईं ओर अपनी अपनी शक्ति लिए हुये हैं, पुष्पों के बाण तथा अस्त्र के धनुष् हाथ में धारण किये हुये हैं, उनकी शक्तियाँ कुंकुम वर्ण युक्त सर्वाभरणभूषित हाथों में नीलकमल लिए समस्त त्रिलोकी को आकर्षण करने में समर्थ हैं ॥ १२५–१२६ ॥

न्यसेत्कामरतिं पश्चात्कामप्रीतिं सुरेश्वरि ।
कान्तश्च कामिनीयुक्तो भ्रान्तो वै मोहिनीयुतः ॥ १२७ ॥
कामाङ्गः कमले तद्वत्कामचारो विलासिनी ।
कर्णकल्पलते तद्वत्कोमलश्यामले तथा ॥ १२८ ॥

पहले १. काम रति और २. काम प्रीति का, हे सुरेश्वरि ! न्यास करे। फिर ३. कामिनीयुक्त कान्त, ४. मोहिनीयुक्त भ्रान्त, ५. कमलायुक्त कामाङ्ग, ६. कामचारविलासिनी, ७. कर्णकल्पलता, ८. कोमलश्यामला ॥ १२७–१२८॥

कामवर्धनसंयुक्ता विज्ञेया तु शुचिस्मिता ।
कामश्च विस्मितायुक्तो विशालाक्षीयुतो रमः॥ १२९ ॥
रमणो लेलिहायुक्ता रतिनाथदिगम्बरे ।
रतिप्रियश्च वामा च रात्रिनाथश्च कुब्जिका ॥ १३० ॥

स्मरेण च युता कान्ता रमणः सत्यया युतः ।
निशाचरश्च कल्याणी नन्दनो भोगिनी तथा ॥ १३१ ॥

नन्दकः कामदायुक्तो मदनश्च सुलोचना ।
सुलावण्यायुतो देवि तथा नन्दसुताभिधः ॥ १३२ ॥

निशाचरश्च मर्दिन्या रतिर्हंसस्ततः परम् ।
कलहः प्रियया युक्तः पुष्पधन्वा च काङ्क्षिणी ॥ १३३ ॥

महाधनुश्च सुमुखा ग्रामणीर्नलिनीयुतः ।
भीमश्च जटिनीयुक्तो भ्रामणः पालिनीयुतः ॥ १३४ ॥

भ्रमणः शिखिनीयुक्तो शान्तमुग्धे ततः परम् ।
भ्रामणो रमया युक्तो भृगुर्भूमा ततः परम् ॥ १३५ ॥

भ्रान्तश्चामरलोला च भ्रमावहसुचञ्चले ।
मोहनो दीर्घजिह्वा च मोचकश्च तथा सती ॥ १३६ ॥

तथा मुग्धश्च लोलाक्षी मोहमर्दनभृङ्गिणी ।
मोहकश्च चपेटा च मन्मथो नाथया युतः ॥ १३७ ॥

मातङ्गमालिनीयुग्मं भृङ्गा च कलहंसिनी ।
गायकेन समायुक्ता तथा वै विश्वतोमुखी ॥ १३८ ॥

गजःनन्दिकया युक्तो गीतिश्च तदनन्तरम् ।
नर्तकः सह रञ्जिन्या खेलः कान्तिसमन्वितः ॥ १३९ ॥

उन्मत्तः कलकण्ठे च मत्तकश्च वृकोदरी ।
मेघः श्यामान्वितो देवी विमलश्रीः क्रमात्प्रिये ॥ १४० ॥

मातृकार्णैर्न्यसेद्देवि मातृकावत्सदाऽनघे ।

९. कामवर्धन, शुचिस्मिता, १०. काम विस्मिता, ११. रम विशालाक्षी, १२. रमण लेलिहा, १३. रतिनाथ दिगम्बरा, १४. रतिप्रिय वामा, १५. रात्रिनाथ कुब्जिका, (१२९–१३०) १६. स्मर कान्ता, १७. रमण सत्या, १८. निशाचर कल्याणी, १९. नन्दन भोगिनी, २०. नन्दक कामदा, २१. मदन सुलोचना, २२. सुलावण्या नन्दसुत, २३. निशाचर मर्द्दिनी, २४. रति हंस, २५. प्रिया कलह, २६. पुष्पधन्वाकांक्षिणी, २७. महाधनु सुमुखा, २८. ग्रामणी नलिनी, २९. भीम जटिनी, ३०. भ्रमाण पालिनी, ३१. भ्रमण शिखिनी, ३२. शान्त मुग्धा, ३३. भ्रामण रमा, ३४. भृगु भूमा, ३५. भ्रान्त अमरलोला, ३६. भ्रमावह सुचञ्चला, ३७. मोहन दीर्घजिह्वा, ३८. मोचक सती, ३९. मुग्ध लोलाक्षी, ४०. मोहमर्द्दन

भृङ्गिणी, ४१. मोहक चपेटा, ४२. मन्मथ नाथा, ४३. मातङ्ग मालिनी, ४४. भृङ्ग कलहंसिनी, ४५. गायक विश्वतोमुखी, ४६. गज नन्दिका, ४७. गीतिनर्त्तक रञ्जिनी, ४८. खेल कान्ति, ४९. उन्मत्त कलकण्ठा, ५०. मत्तक वृकोदरी, ५१. मेघ श्यामादेवी, ५२. विमल श्री, हे प्रिये ! इनका मातृका वर्णों के एक एक अक्षर से क्रमशः न्यास करे ॥ १३०–१४० ॥

विमर्श – अं कामरतिभ्यां नमः, आं कामप्रीतिभ्यां नमः इत्यादि ।

अनेन न्यासयोगेन त्रैलोक्यक्षोभको भवेत् ॥ १४१ ॥
बालायास्त्रिपुरेशान्या नवयोन्यङ्कितं न्यसेत् ।
श्रोत्रयोश्चुबुके चैव शङ्खास्येषु दृशोर्नसि ॥ १४२ ॥
अंसद्वये च हृदये न्यसेत्कूर्परकुक्षिषु ।
जान्वन्धुपादगुह्येषु पार्श्वहृत्सु स्तनद्वये ॥ १४३ ॥
कण्ठे च नवयोन्याख्यं न्यसेद्बीजत्रयात्मकम् ।

हे देवि ! इस न्यास को अपने शरीर से युक्त कर लेने पर साधक तीनों लोकों को क्षोभ करने में समर्थ हो जाता है । फिर त्रिपुरेशानी बाला का बीजत्रयात्मक नवयोन्यात्मक न्यास – दोनों श्रोत्र, दोनों चिबुक २, दोनों शंख, १ मुख, दोनों नेत्र, दोनों कन्धा, १ हृदय, दोनों कूर्पर २ दोनों कुक्षि २, २ दोनों जानु, १ लिङ्ग, दोनों पैर, १ गुह्य–दोनों २ पार्श्व, हृदय के दोनों २ स्तनः और कण्ठ, इन २७ स्थानों में करे । (द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, पृ० २१५)॥ १४१–१४४ ॥

पुनर्बालां समुच्चार्य षोडशार्णां प्रविन्यसेत् ॥ १४४ ॥
पुनर्बालां समुच्चार्य चतुरस्रं च चिन्तयेत् ।
गोलकं न्यासयोगेन श्रीचक्रं परिचिन्तयेत् ॥ १४५ ॥
षट्चक्रेषु ललाटे च सीमन्ते च शिरोबिले ।
नव स्थानानि संकल्प्य न्यसेद्देवि ततः परम् ॥ १४६ ॥

फिर बाला मन्त्र का उच्चारण कर त्रिपुरा के षोडश वर्णों से न्यास करे। फिर बाला मन्त्र का उच्चारण कर चतुरस्र का ध्यान करे। फिर श्री चक्रस्थ बिन्दु का न्यास करे । हे देवि ! षट्चक्रों में ललाट में सीमन्त में तथा ब्रह्मरन्ध्र में इन नवों स्थानों में भी न्यास करे ॥ १४४–१४६॥

श्रीविद्यां ब्रह्मरन्ध्रे च पृष्ठतो गुरवः क्रमात् ।

तिथिनित्यास्ततो देवि मातृकास्वरसंयुताः ॥ १४७ ॥
मातृकावन्न्यसेद्वक्त्रे सर्वसौभाग्यदायकाः ॥ १४८ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे श्रीविद्यान्यासविधानं नाम चतुर्दशः पटलः ॥ १४ ॥

फिर साधक क्रमशः श्रीविद्या से ब्रह्मरन्ध्र में तथा पीठ में गुरुओं का न्यास करे। फिर, हे देवि ! मातृका स्वर से संयुक्त तिथि नित्याओं का क्रमशः न्यास करे। मातृकावर्णों के समान इनका मुख में न्यास सभी सौभाग्यों को देने वाला होता है ॥ १४७–१४८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'श्रीविद्यान्यास विधान' नामक चतुर्दश पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशः पटलः

श्रीविद्यान्यासविवरणम्

ईश्वर उवाच –

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि नित्यामण्डलमुत्तमम् ।
कामेश्वरी महाविद्या सर्वलोकवशंकरी ॥ १ ॥

ईश्वर ने कहा – हे देवि ! अब सर्वोत्तम नित्यामण्डल कह रहा हूँ सुनिए। (नित्याओं में प्रथम) यह कामेश्वरी महाविद्या समस्त लोकों को अपने वश में करने वाली हैं ॥ १ ॥

बालां तारं च हृत्प्रान्ते कामेश्वरिपदं लिखेत् ।
इच्छाकामफलप्रान्ते प्रदेसर्वपदं लिखेत् ॥ २ ॥

ततः सत्त्ववशं ब्रूयात्करिसर्वजगत्पदम् ।
क्षोभणान्ते करि ब्रूयाद्धुंकारत्रितयं लिखेत् ॥ ३ ॥

पञ्च बाणान्समालिख्य संहारेण कुमारिकाम् ।
एषा कामेश्वरी नित्या प्रसङ्गात्कथिताऽद्रिजे ॥ ४ ॥

(i) कामेश्वरीनित्या मन्त्र का उद्धार – बाला (ऐं क्लीं सौः) तार (ॐ) हृत् (नमः) तदनन्तर 'कामेश्वरि' फिर 'इच्छाकामफल' तदनन्तर 'प्रदे सर्व' फिर 'सत्त्ववशंकरि सर्वजगत्', फिर 'क्षोभणकरि', फिर तीन बार 'हुँ', फिर पञ्चबाण (द्रां द्रीं क्लीं ब्लूँ सः) लिख कर संहार (उलटे) क्रम से कुमारिका (सौः क्लीं ऐं) मन्त्र लिखे । यह कामेश्वरी नित्या मन्त्र हैं । हे अद्रिजे ! प्रसङ्गवशात् यह हमने आपसे कहा है ॥ २–४ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – ऐं क्लीं सौः ॐ नमः कामेश्वरि इच्छकामफलप्रदे सर्वसत्त्ववशंकरि सर्वजगत्क्षोभणकरि हुं हुं हुं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूँ सः सौः क्लीं ऐं ॥ ४६ अक्षरों का यह मन्त्र है॥

वाग्भवं भगशब्दान्ते भुगे भगिनि चाऽऽलिखेत् ।
भगोदरीति वर्णान्ते[1] च भगमाले भगावहे ॥ ५ ॥
भगगुह्ये भगप्रान्ते योनिप्रान्ते भगान्तिके ।
निपातिनि च सर्वान्ते ततो भगवशंकरि ॥ ६ ॥
भगरूपे ततो लेख्यं नीरजायतलोचने ।
नित्यक्लिन्ने भगप्रान्ते स्वरूपे सर्व चाऽऽलिखेत् ॥ ७ ॥
भगानि मे ह्यानयेति वरदेति समालिखेत् ।
रेत सुरेते भग च क्लिन्ने क्लिन्नद्रवे ततः ॥ ८ ॥
क्लेदय द्रावयाथो च सर्वसत्त्वान्भगेश्वरि ।
अमोघे भगविच्चे च क्षुभ क्षोभय सर्व च ॥ ९ ॥
सत्त्वान्भगेश्वरि ब्रूयाद्वाग्भवं ब्लूंजमादिमम् ।
भेब्लूं भोब्लूं च हेंब्लूं च हें क्लिन्ने च ततः परम् ॥ १० ॥
सर्वाणि च भगान्यन्ते मे वशं चाऽऽनयेति च।
स्त्रीबीजं च हर प्रान्ते बलेमात्मकमक्षरम् ॥ ११ ॥
भुवनेशीं समालिख्य विद्येयं भगमालिनी ।
प्रसङ्गात्कथिता पञ्चचत्वारिंशच्छताक्षरी ॥ १२ ॥

(ii) अब भगमालिनी मन्त्र का उद्धार कहते हैं – हे नीरजायतलोचने! वाग्भव (ऐं) फिर 'भग' अन्त में 'भुगे के भगिनि भगोदरि भगमाले भगावहे भगगुहये भगयोनि भयनिपातिनि के बाद 'सर्व' शब्द फिर भगवशंकरि' फिर 'भगरूपे' फिर 'नित्यक्लिन्ने भग' फिर स्वरूपे फिर 'सर्व' 'भगानि में आनय' फिर 'वरदे' रेत 'सुरते' फिर भग क्लिन्ने फिर क्लिन्नद्रवे' फिर क्लेदय फिर द्रावय फिर 'सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि' फिर अमोघे भग विच्चे' फिर क्षुभ क्षोभय सर्व' फिर सत्त्वान् 'भगेश्वरि' फिर वाग्भव (ऐं) ब्लूं जं' फिर में ब्लूं भोब्लूं हे ब्लूं फिर हें क्लिन्ने फिर 'सर्वाणि भगानि' फिर मे वशमानय' फिर स्त्री बीज फिर हर ब्लें फिर भुवनेशी (ह्रीं) लिखे – यह भगमालिनी विद्या १४५ अक्षरों की है। हे देवि ! प्रसङ्ग उपस्थित होने पर इसे मैंने आपसे कहा ॥ ५–१२॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – 'ऐं भगभुगे भगिनि भगोदरि भगमाले भयावहे भगगुह्ये भगयोने भगनिपाविनि सर्वभगवशंकरि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वभगानि मे आनय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने

---

१. 'भगोदरि भगान्ते' अप पाठोऽयम्। मन्त्रमहोदधौ तु 'भगोदरीति वर्णान्ते' इति पाठः।

क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि अमोघे भगविच्चे क्षुभ क्षोभय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि ऐं ब्लूं जं भेब्लूं भोब्लूं हें ब्लूं हें क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्री बीजं हर ब्लें ह्रीं' । यह १४५ अक्षरों का भगमालिनी मन्त्र है । (द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, पृ० ३५१)।। ५–१२ ।।

पराबीजं समुच्चार्य नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ।
अग्निजायान्वितो मन्त्रो नित्यक्लिन्नेयमीरिता ।। १३ ।।
सर्वसौभाग्यदात्री च सर्वैश्वर्यप्रदायिनी ।

(iii) अब नित्यक्लिन्ना मन्त्र का उद्धार कहते हैं – परा बीज (ह्रीं) का उच्चारण कर 'नित्यक्लिन्ने मदद्रवे अग्निजाया (स्वाहा) यह ११ अक्षरों का मन्त्र नित्यक्लिन्न विद्या का कहा गया है। जो सर्वसौभाग्यदायिनी तथा सर्वैश्वर्यप्रदायिनी है।। १३–१४ ।।

विमर्श – नित्यक्लिन्ना मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – 'ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा' – यह ११ अक्षरों का मन्त्र है।

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य तथाऽङ्कुशयुगं लिखेत् ।। १४ ।।
तन्मध्ये विलिखेद्देवि भरोमात्मकमक्षरम् ।
चवर्गमन्त्यहीनं तु विलिखेद्वह्निसंस्थितम् ।। १५ ।।
चतुर्दशस्वरोपेतं बिन्दुनादाङ्कितं पृथक् ।
वह्निजायान्वितो मन्त्रो भेरुण्डायाः फलप्रदः ।। १६ ।।

(iv) अब भेरुण्डा मन्त्र का उद्धार कहते हैं – हे देवेशि! पहले प्रणव लिखें। फिर दो अङ्कुश (क्रों) लिखें, तदनन्तर उन दोनों अङ्कुशों के मध्य में भ्रों लिखे। अन्त्य (ञ्) रहित च वर्ग के चार अक्षरों को चतुर्दश स्वर (औ) तथा नाद बिन्दु से युक्त लिख कर वह्निजाया (स्वाहा) लिखे । इस प्रकार १० अक्षरों का भेरुण्डा मन्त्र बनता हैं, जिसका स्वरूप इस प्रकार है – ॐ क्रों भ्रों क्रों च्रौ छ्रौं ज्रौं झ्रौं स्वाहा ।। १५–१६ ।।

भुवनेशीं समुच्चार्य चतुर्थ्या वह्निवासिनीम् ।
हृदन्तोऽयं मनुर्देवि नित्येयं वह्निवासिनी ।। १७ ।।

(v) अब वह्निवासिनी मन्त्र का उद्धार कहते हैं – प्रणव लिख कर भुवनेशी (ह्रीं) का उच्चारण कर वह्निवासिनी को चतुर्थ्यन्त उच्चारण करे फिर 'नमः' पद लिखे । यह ९ अक्षरों का वह्निवासिनी मन्त्र हैं, जिसका स्वरूप इस प्रकार है – ॐ ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः ।। १७ ।।

प्रणवं भुवनेशानि फरेमात्मकमक्षरम् ।
सविसर्गः शशी पश्चान्नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ॥ १८ ॥

वह्निजायान्विता विद्या सर्वैश्वर्यप्रदायिनी ।
महाविद्येश्वरी नित्या प्रसङ्गेन मयेरिता ॥ १९ ॥

(vi) अब महाविद्येश्वरी मन्त्र का उद्धार कहते हैं – प्रणव (ॐ), भुवनेशानि (ह्रीं), फिर फ्रें, सविसर्ग शशी सः, फिर नित्यक्लिन्ने मदद्रवे, तदनन्तर वह्निजाया स्वाहा । यह सर्वैश्वर्यप्रदायिनी नित्या महाविद्येश्वरी का मन्त्र प्रसंग वश हमने आपसे कहा। मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – ॐ ह्रीं फ्रें सः नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा' १४ अक्षरों का मन्त्र है ॥ १८–१९ ॥

पराबीजं समुच्चार्य शिवदूतीं च ङेयुताम् ।
हृदन्तोऽयं मनुर्देवि दूतीयं सर्वकामदा ॥ २० ॥

(vii) अब शिवदूती मन्त्र का उद्धार कहते हैं – परा बीज (ह्रीं) का उच्चारण कर ङे (=चतुर्थी) युक्त शिवदूती (शिवदूत्यै), तदनन्तर हृदय (नमः) यह सर्वकामदा दूती मन्त्र है। मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – ह्रीं शिवदूत्यै नमः। यह ७ अक्षरों का मन्त्र है ॥ २० ॥

ओंकारबीजमुच्चार्य परां कवचमालिखेत् ।
खे च छे क्षः समालिख्य स्त्रीबीजं च समालिखेत् ॥ २१ ॥

हूंकारं क्षे परा चास्त्रं विद्येयं द्वादशाक्षरी ।
त्वरिता नाम नित्येयं त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ॥ २२ ॥

(viii) अब त्वरिता मन्त्र का उद्धार कहते हैं – १. ॐकार बीज का उच्चारण कर परा २ (ह्रीं), फिर कवच ३ (हुं), फिर ४ खे, ५ चं, ६ छे, ७ क्ष, ८ स्त्री, ९ हुं, १० क्षे, ११ परा (ह्रीं), १२ (फट्) लिखे। यह १२ अक्षरों का त्वरिता मन्त्र बनता है। यह विद्या तीनों लोकों में दुर्लभ है ॥ २१–२२ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – ॐ ह्रीं हुं खें च छे क्षः स्त्रीं हूं क्षे ह्रीं फट् ।

सर्वसिंहासनमयी बालेव कुलसुन्दरी ।
बालया पुटितां कुर्यात्तथा वै नित्यभैरवी ॥ २३ ॥

पञ्च बाणाश्च देवेशी नित्या शक्राक्षरी भवेत् ।
त्रैलोक्यविमला विद्या नित्याख्या परमेश्वरी ॥ २४ ॥

(ix) अब कुलसुन्दरी विद्या का उद्धार कहते हैं – यह विद्या सर्वसिंहासनमयी बाला के समान है । यथा ऐं क्लीं सौः ।

(x) अब नित्या मन्त्र का उद्धार कहते हैं – पहले क्रम से पश्चात् उत्क्रम से बाला मन्त्र द्वारा संपुटित त्रिपुरभैरवी, इसके बाद पञ्चबाणबीज मन्त्र, इस प्रकार कुल १४ अक्षरों का नित्या मन्त्र होता है । यह नित्या नाम की विद्या त्रैलोक्य विमला कही जाती है ।। २३–२४ ।।

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – ऐं क्लीं सौः ह्सौः ह्स्व्ल्रीं ह्सौः सौं क्लीं ऐं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः ।

पञ्चाक्षरी बाणबीजैर्नित्येयमपरा प्रिये ।
प्रणवं भुवनेशानी फरेमात्मकमक्षरम् ।। २५ ।।
स्त्रूमात्मकं द्वितीयं च भुवनेश्यङ्कुशं ततः ।
नित्यशब्दं समुद्धृत्य संबुद्ध्या तु मदद्रवाम्।। २६ ।।
कवचं चाङ्कुशं पञ्चदशैर्नीलपताकिनी ।

हे प्रिये ! वाण बीजों से युक्त पाँच अक्षरों वाली यह दूसरी नित्या है । यथा – द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः।

(xi) अब नीलपताकिनी मन्त्र का उद्धार कहते हैं – यथा प्रणव १ (ॐ), फिर भुवनेशी २ (ह्रीं), फिर ३ फ्रें, फिर ४ स्त्रूं, फिर द्वितीय ५ स्त्रूं, तदनन्तर भुवनेशी ६ (ह्रीं), तदनन्तर अंकुश ७ (क्रों), फिर १३ नित्यमदद्रवे, फिर कवच १४ (हुं), फिर अङ्कुश १५ (क्रों)। यह १५ अक्षरों का नीलपताकिनी मन्त्र कहा गया है ।। २५–२७ ।।

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – ॐ ह्रीं फ्रें स्त्रूं स्त्रूं ह्रीं क्रों नित्यमदद्रवे हुं क्रों । किन्तु मन्त्रमहोदधि में १४ अक्षर का मन्त्र कहा गया है। (द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, पृ० ३५४)

वान्तं कालसमायुक्तं वह्निवायुगतं ततः ।। २७ ।।
पृथक्पञ्समायुक्तं ततः शक्रस्वरान्वितम् ।
बिन्दुनादाङ्कितं बीजं नित्येयं विजया प्रिये ।। २८ ।।

(xii) अब विजया मन्त्र का उद्धार कहते हैं – मन्त्रमहोदधि, पृ० ३५५ के अनुसार 'ह्स्ख्फ्रें विजयायै नमः' यह ७ अक्षर का मन्त्र है।। २७–२८ ।।

चन्द्रवारुणसंयुक्तं तारबीजं समालिखेत् ।

चतुर्थ्या तु ततो देवि विलिखेत्सर्वमङ्गलाम् ॥ २९ ॥
हृदन्तोऽयं मनुर्देवि नित्येयं सर्वमङ्गला ।

(xiii) अब सर्वमङ्गला मन्त्र का उद्धार कहते हैं – हे देवि ! चन्द्र (स) वारुण (व्) इसे तार (ॐ) से युक्त करे। फिर चतुर्थ्यन्त सर्वमङ्गलायै लिख कर नमः लिखे, तो नित्या सर्वमङ्गला मन्त्र बन जाता है । यथा स्वों सर्वमङ्गलायै नमः ॥ २९–३० ॥

तारं हृद्भगवत्यन्ते ज्वालामालिनी देवि च ॥ ३० ॥
द्विरुच्चार्य च सर्वान्ते भूतसंहारकारिके ।
जातवेदसि संलिख्य ज्वलन्तिपदयुग्मकम् ॥ ३१ ॥
ज्वलेतिप्रज्वलद्वन्द्वं हुंकारद्वितयं लिखेत् ।
वह्निबीजत्रयं हुं च अस्त्रस्वाहान्वितो मनुः ॥ ३२ ॥
इयं नित्या महादेवि ज्वालामालिनिका परा ।

(xiv) अब ज्वालामालिनी मन्त्र का उद्धार कहते हैं – तारं (ॐ) हृद् (नमः) फिर भगवती के बाद ज्वालामालिनि ! देवि, फिर इसे दो बार उच्चारण कर 'सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि' ज्वलन्ति इन दो पद को लिखें, फिर ज्वल प्रज्वल द्वन्द्व, फिर दो बार हुं, फिर तीन बार वह्नि बीज रं, फिर हुं फट् स्वाहा–यह परा ज्वालामालिनी का मन्त्र है। मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है– ॐ नमो ज्वालामालिनि देवि ज्वालामालिनि देवि सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वल प्रज्वल हुं हुं रं रं हुं फट् स्वाहा' ॥ ३०–३३ ॥

विमर्श – मन्त्रमहोदधि, पृ० ३५६ से भिन्न मन्त्र है।

कवर्गान्तं स्वरान्तं च शक्रस्वरविभूषितम् ॥ ३३ ॥
बिन्दुनादकलाक्रान्तं विचित्रा परमेश्वरी ।
अकारादिषु सर्वेषु स्वरेषु क्रमतो न्यसेत् ॥ ३४ ॥

(xv) अब विचित्रा मन्त्र का उद्धार कहते हैं – कवर्गान्त (च) तथा स्वरान्त (क) को शक्र स्वर (औ) तथा बिन्दु नाद कला से युक्त करे तो विचित्रा मन्त्र बन जाता है यथा 'च्कौं' इस विचित्रा मन्त्र के द्वारा अकारादि सभी स्वरों से क्रमशः न्यास करे ॥ ३३–३४ ॥

अःस्वरे परमेशानि श्रीविद्यां विश्वमातृकाम् ।
स्वरवद्विन्यसेन्नित्या नीरजायतलोचने ॥ ३५ ॥

हे कमल के समान नेत्रों वाली इसी प्रकार हे परमेशानि ! अः स्वर में विश्वमातृका श्री विद्या का न्यास करे । तदनन्तर नित्या का स्वरवद् न्यास करे ॥ ३५ ॥

प्रकटाद्या न्यसेत्पश्चादाधारादिषु मन्त्रवित् ।
स्थितिन्यासं ततः कुर्याच्छ्रीविद्याषोडशाक्षरैः ॥ ३६ ॥

पञ्चाङ्गुलीषु करयोर्ब्रह्मरन्ध्रे मुखे हृदि ।
त्रयं विन्यस्य नाभ्यादिपादान्ते चैकमद्रिजे ॥ ३७ ॥

गलादिनाभिपर्यन्तमपरं हि ततः परम् ।
ब्रह्मरन्ध्रादिकण्ठान्तमेकं विन्यस्य पादयोः ॥ ३८ ॥

अङ्गुलीषु च विन्यस्य न्यासोऽयं स्थितिकारकः ।
सृष्टिन्यासं ततः कुर्यात्सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ३९ ॥

हे अद्रिजे ! फिर मन्त्रवेत्ता आधारादि में प्रकटादि न्यास कर श्री विद्या के १६ अक्षरों से स्थिति न्यास करे। हाथ के पाँचों अङ्गुलियों में, ब्रह्मरन्ध्र में, मुख में और हृदय में तीन अक्षर से न्यास करे। नाभि से लेकर पादान्त एक अक्षर का गलादिनाभिपर्यन्त अन्य अक्षर का फिर ब्रह्मरन्ध्र से कण्ठान्त का फिर पैर की अङ्गुलियों में यह न्यास स्थितिन्यास कहा जाता है, इसके बाद सर्व सिद्धिप्रदायक सृष्टिन्यास करना चाहिए ॥ ३६–३९ ॥

ब्रह्मरन्ध्रेऽलिके नेत्रश्रुतिघ्राणोष्ठकेषु च ।
दन्तान्तरोर्ध्वके देवि जिह्वायां गलकूपके ॥ ४० ॥

पृष्ठे सर्वाङ्गहृदयस्तनकुक्षिषु लिङ्गके ।
श्रीविद्यार्णैर्न्यसेद्देवि मन्त्रं सर्वसमृद्धये ॥ ४१ ॥

ब्रह्मरन्ध्र में, ललाट में, नेत्र, कान, नाक, ओठ, दन्त, दन्त के भीतर, बाहर जिह्वा, गला, पीठ, सर्वाङ्ग, हृदय, स्तन, कुक्षि, लिङ्ग इन १६ स्थानों में हे देवि! श्रीविद्या के मन्त्रों से सर्वसमृद्धि के लिए न्यास करना चाहिए ॥ ४०–४१ ॥

सर्वाङ्गे विन्यसेत्पश्चाद्व्यापकत्वेन सुन्दरि ।
प्राणानायम्य विधिवन्मुद्रासन्नद्धविग्रहः ॥ ४२ ॥

इसके बाद, हे सुन्दरि ! व्यापक मुद्रा द्वारा सर्वाङ्ग में व्यापक न्यास करें। तदनन्तर प्राणायाम कर मुद्रा प्रदर्शित करने के लिए अपने शरीर को समुद्यत करें ॥ ४२ ॥

संक्षोभद्रावणाकर्षवश्योन्मादमहाङ्कुशाः ।
खेचरी बीजरूपा च योनिमुद्रेत्यनुक्रमात् ॥ ४३ ॥

१. संक्षोभ, २. द्रावण, ३. आकर्षण, ४. वश्य, ५. उन्माद, ६. महाङ्कुश, ७. खेचरी, ८. बीजरूप, एवं ९. योनिमुद्रा – ये क्रमशः ९ मुद्राये हैं ॥ ४३ ॥

मुद्राणां बीजानि

बीजानि वक्ष्ये क्रमतो मुद्राणां परमेश्वरि ।
पञ्चबाणैः पञ्च मुद्राः क्रोमात्मकमक्षरम् ॥ ४४ ॥
आद्यं तु रुद्रभैरव्या बीजं सादाशिवं ततः ।
ततस्तु वाग्भवं देवि क्रमेण हि चतुष्टयम् ॥ ४५ ॥
चतुर्मुद्रासु बीजानि नवमुद्रास्वनुक्रमात् ।
अथ वक्ष्ये महेशत्नि मुद्राविवरणं क्रमात् ॥ ४६ ॥

हे परमेश्वरि ! अब क्रमशः मुद्राओं का बीज कहता हूँ, पञ्च बाण (द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः) ये पञ्चकाम बीज (संक्षोभ आदि) प्रथम पाँच मुद्राओं के बीज हैं । हे देवि ! 'क्रों' रुद्रभैरवी का आदि (क्लीं), तदनन्तर सदाशिव (ह्रीं), फिर वाग्भव (ऐं)–ये चार महाङ्कुश आदि शेष मुद्राओं के बीज हैं। इस प्रकार क्रमानुसार नवों मुद्राओं के बीज कहे गये । हे महेशानि ! अब मुद्राओं का स्वरूप कहता हूँ ॥ ४४–४६ ॥

मुद्राविवरणम्

वामहस्तेन मुष्टिं तु बद्ध्वा कर्णप्रदेशके ।
तर्जनीं सरलां कृत्वा भ्रामयेत्तन्त्रवित्तमः ॥ ४७ ॥
सौभाग्यदण्डिनी मुद्रा न्यासकाले तु सूचिता ।
अन्तरङ्गुष्ठमुष्ट्या तु निरुध्य जगतीमिमाम् ॥ ४८ ॥
रिपुजिह्वाग्रहा मुद्रा न्यासकाले तु सूचिता ।

तन्त्रवेत्ता बायें हाथ से मुट्ठी बाँधकर तर्जनी को सीधे रख कर कान पर घुमावे यह सौभाग्य दण्डिनी मुद्रा है। इसे न्यास काल में (द्र० १४.३७) कहा गया है। जगती (अंगूठे) को मोड़कर मुट्ठी के भीतर अंगूठा रखे तो रिपुजिह्वाग्रहा मुद्रा बन जाती है। इसे भी न्यास काल मे (द्र० १४.३७) कह आये हैं ॥ ४७–४९ ॥

पाणिद्वयं महेशानि परिवर्तनयोगतः ॥ ४९ ॥
योजयित्वा तर्जनीभ्यामनामे वारयेत्प्रिये ।
मध्यमे योजयेन्मध्ये कनिष्ठे तदधस्तथा ॥ ५० ॥
अङ्गुष्ठावपि संयोज्य त्रिधा युग्मक्रमेण तु ।
त्रिखण्डा नाम मुद्रेयं त्रिपुराह्वानकर्मणि ॥ ५१ ॥

हे महेशानि ! दोनों हाथों का परिवर्तन कर दोनों तर्जनी से दोनों अनामिका आच्छादित करें और मध्यमा को मध्य में परस्पर मिला देंवें। दोनों कनिष्ठा को उसके नीचे रखे अंगूठे को परस्पर एक में मिला देंवें। इस प्रकार दो दो क्रम से तीन प्रकार बनते हैं । यह त्रिखण्डा मुद्रा कही जाती है जिसका प्रयोग त्रिपुरा के आवाहन के लिए किया जाता है ॥ ५०–५१ ॥

विरलौ तु करौ कृत्वा मध्यमे मध्यमे कुरु ।
अङ्गुष्ठाभ्यां कनिष्ठे च संपीड्य सरले ततः ॥ ५२ ॥
तर्जन्यौ दण्डवत्कुर्यान्मध्यमस्थ ह्यनामिके ।
सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा त्रैलोक्यक्षोभकारिणी ॥ ५३ ॥

हाथ को फैलाकर मध्यमा को मध्यमा पर रखे । फिर दोनों अंगूठो से दोनों कनिष्ठा को दबा दें, दोनों तर्जनी को डण्डे के समान सीधा रखें और दोनो अनामिका को मध्यमा पर स्थापित करें तो यह संक्षोभिणी मुद्रा होती है जो सारे त्रिलोकी को क्षुब्ध करने वाली हैं ॥ ५२–५३ ॥

मध्यमे तर्जनीयुक्ते सरले स्यात्तदा भवेत् ।
सर्वविद्राविणी मुद्रामोहयेत्सचराचरम् ॥ ५४ ॥

हे प्रिये! दोनों मध्यमा को और दोनों तर्जनी को एक में मिला कर सीधा रखे तो सर्वविद्राविणी मुद्रा बन जाती है यह मुद्रा चराचर जगत् को मोहन करने वाली है ॥ ५४ ॥

मध्यमे तर्जनीयुग्मे वक्रे कुर्यात्सुलोचने ।
एतस्या एव मुद्रायास्तदा कर्षणकारिणी ॥ ५५ ॥

हे सुलोचने ! दोनों मध्यमा तथा दोनों तर्जनी अङ्गुलियों को टेढ़ी रखे तो आकर्षण करने के कारण यह आकर्षणी मुद्रा कही जाती है ॥ ५५ ॥

विपरीतौ तलौ कृत्वा चाङ्गुली ह्यन्मुखा यजेत् ।
परिवर्तनमार्गेण क्रमेण निबिडास्ततः ॥ ५६ ॥

दोनों हाथ के तलवे को उल्टा रख कर परिवर्त्तन मार्ग से अंगुलियों को हृदय पर रखे तो निविडा मुद्रा हो जाती है ।। ५६ ।।

अङ्गुष्ठावग्रदेशे तु तर्जन्यावङ्कुशाकृती ।
सर्वा एकत्र संयोज्य सर्ववश्यकरी भवेत् ।। ५७ ।।

दोनों अंगूठों को आगे रख कर शेष सब को एक में मिला कर दोनों तर्जनियों को अङ्कुश के समान बना लेवें तो यह सर्ववश्यकरी मुद्रा बन जाती है ।। ५७ ।।

पुटाञ्जलिकरौ कृत्वा मध्यमागर्भसंस्थिते ।
परस्परकनिष्ठे तु तर्जन्यग्रगते ततः ।। ५८ ।।
अनामिके तु सरले मध्यमामुखदेशगौ ।
अङ्गुष्ठौ परमेशानि सर्वोन्मादनकारिणी ।। ५९ ।।

मध्यमा को बीच में रख कर दोनों हाथों को संपुट बना ले और दोनों कनिष्ठा को एक में मिला ले। दोनों तर्जनियों को आगे रखे। फिर दोनों अनामिका सीधे रखे। मध्यमा के मुख पर अंगूठा स्थापित करे तो यह सर्वोन्मादनकारिणी मुद्रा बन जाती हैं ।। ५८–५९ ।।

एतस्या एव मुद्राया अनामातर्जनीक्रमात् ।
अङ्कुशाकारूपा तु मुद्रेयं तु महाङ्कुशा ।। ६० ।।

इसी मुद्रा की अनामिका तथा तर्जनियों को जब अङ्कुश के रूप में स्थित करे तो महाङ्कुशामुद्रा बन जाती है।। ६०।।

वामं भुजं दक्षभुजे दक्षिणं वामदेशतः ।
निवेश्य योजयेत्पश्चात्परिवर्त्य क्रमेण हि ।। ६१ ।।
कनिष्ठानामिकायुग्मे तर्जनीभ्यां निरोधयेत् ।
मध्यमे सरले कृत्वा योनिवत्सरलौ ततः ।। ६२ ।।
अङ्गुष्ठौ खेचरी मुद्रा पार्थिवस्थानयोजिनी ।
प्रियेयं सर्वदेवानां खेचरत्वप्रदायिनी ।। ६३ ।।

बायीं भुजा दाहिनी भुजा पर और दाहिनी बाई भुजा पर स्थापित करें। फिर उसे उलट कर एक दूसरे से मिला लेवें। कनिष्ठा और अनामिका के जोड़े को तर्जनी से रोक लेवे और दोनों मध्यमा को सीधी रखे । फिर अंगूठों को योनि के आकार में बना ले तो खेचरी मुद्रा बन जाती है। यह मुद्रा राजदरबार तक पहुँचाने वाली है। यह सभी देवताओं को प्रिय है । किं बहुना आकाशचारित्व प्रदान करती है ।। ६०–६३ ।।

परिवर्त्याञ्जलिं कृत्वा कनिष्ठाग्रगते ततः ।
मध्यमे स्थापयेद्देवि कनिष्ठे धारयेत्ततः ॥ ६४ ॥
अनामिकाभ्यां सुदृढं तर्जनीमध्यमायुगम् ।
अङ्गुष्ठाभ्यां समायोज्यमर्धचन्द्राकृतिं प्रिये ॥ ६५ ॥
बीजमुद्रेयमाख्याता सर्वानन्दकरी प्रिये ।

हे देवि! अञ्जलि बाँध कर उसे उलट देवें और कनिष्ठा के अग्रभाग पर दोनों मध्यमा स्थापित करे । फिर दोनों अनामिकाओं से दोनों तर्जनी एवं मध्यमा को अंगूठे से मिला कर अर्धचन्द्र की आकृति बनावें तो हे प्रिये! यह बीजमुद्रा बन जाती है जो सबको आनन्द प्रदान करती है ॥ ६४–६६ ॥

परिवर्त्य करौ सम्यक्तर्जनीवामने समे ॥ ६६ ॥
मध्यमे कुरु तन्मध्ये योजयेत्तदनन्तरम् ।
अन्योन्यानामिके देवि कनिष्ठे तु यथास्थिते ॥ ६७ ॥
अङ्गुष्ठाभ्यां योजिताभ्यां योन्याकारं तु कारयेत् ।
योनिमुद्रेयमाख्याता परा त्रैलोक्यमातृका ॥ ६८ ॥

हाथ को उलट कर तर्जनी और वाम अंगूठे को समान बना कर दोनों मध्यमा पर रखें और उसके मध्य में दोनों अनामिका को परस्पर मिलाकर स्थापित करे। दोनों कनिष्ठिका को जैसे के तैसे रहने दें तथा दोनों अंगूठो को एक में मिला कर योनि का आकार बना ले, तो यह योनिमुद्रा बन जाती है, यही परा त्रैलोक्यमातृका है ॥ ६६–६८ ॥

एवं विन्यस्तदेहः सन् मुद्रासन्नद्धविग्रहः ।
अन्तर्यागविधिं कुर्याद्येन साक्षात्स्वयं विभुः ॥ ६९ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे श्रीविद्यान्यासविवरणं नाम पञ्चदशः पटलः ॥ १५ ॥

हे देवि ! इस प्रकार न्यास कर मुद्रा के लिए अपने देह को स्थापित करे फिर अन्तर्याग विधि संपन्न करें तो वह साक्षात् विभु बन जाता है ॥ ६९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'श्रीविद्यान्यास विवरण' नामक पञ्चदश पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १५ ॥

❀

अथ षोडशः पटलः

श्री देव्युवाच –

अन्तर्यागविधिं देव बहिर्यागविधिं तथा ।
सकलं कथयेशान यद्यहं तव वल्लभा ॥ १ ॥

श्री देवी ने कहा – हे देव ! हे ईशान ! यदि मैं आप की प्रिया हूँ तो अन्तर्यागविधि तथा बहिर्यागविधि का विधान सम्पूर्ण रूप से कहिये ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच –

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यजनं चाऽऽन्तरं महत् ।

अन्तर्यागविधिम्

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं बिसतन्तुतनीयसीम् ॥ २ ॥
उद्यत्सूर्यप्रभाजालविद्युत्कोटिप्रभामयी ।
चन्द्रकोटिप्रभाद्रावां त्रैलोक्यैकप्रभामयीम् ॥ ३ ॥
अशेषजगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणीम् ।
ध्यायेन्मनो यथा देवीं निश्चलं जायते तथा ॥ ४ ॥

ईश्वर ने कहा – हे देवि ! अब महान् अन्तर्याग विधि कहता हूँ, सुनिए। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त फैली हुई कमलतन्तु के समान, स्वच्छ, उदीयमान सूर्य के समान, प्रभासमूहों से व्याप्त, करोड़ों विद्युत् के समान चमकीली, करोड़ों चन्द्रमा के समान शीतलप्रभा समन्वित, समस्त त्रैलोक्य को प्रकाशित करने वाली, जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार की कारणभूता, भगवती का ध्यान करना चाहिए। जिससे कि मन सर्वथा स्थिर हो जाय ॥ २–४ ॥

सहजानन्दसंदोहमन्दिरं भवति क्षणात् ।
मनो निश्चलतां प्राप्त शिवशक्तिप्रभावतः ॥ ५ ॥

मन के निश्चल हो जाने पर शिव शक्ति के प्रभाव से क्षण मात्र में चित्त स्वाभाविक आनन्द समूहों का मन्दिर बन जाता है ॥ ५ ॥

समाधिर्जायते तत्र संज्ञाद्वयविजृम्भितः ।
स्वयंप्रज्ञातनामैको ह्यसंप्रज्ञातनामधृत् ॥ ६ ॥

इतना ही नहीं मन की निश्चलता से समाधि लग जाती है, इस समाधि के स्वयं प्रज्ञात और—असंप्रज्ञात दो भेद कहे गये हैं ॥ ६ ॥

स्वयंप्रज्ञातसंज्ञस्तु शक्त्याधिक्येन जायते ।
असंप्रज्ञातनामैको शिवाधिक्येन वै भवेत् ॥ ७ ॥

शक्ति की अधिकता होने पर स्वयं प्रज्ञात नामक समाधि होती है, और शिव की अधिकता होने पर असंप्रज्ञात नाम की समाधि होती है ॥ ७ ॥

स्वयंप्रज्ञातभेदस्तु तीव्रस्तीव्रतरो भवेत् ।
असंप्रज्ञातभेदस्तु मन्दो मन्दतरस्तथा ॥ ८ ॥

स्वयं प्रज्ञात समाधि के तीव्र और तीव्रतर दो भेद हैं। इसी प्रकार असंप्रज्ञात समाधि के मन्द और मन्दतर दो भेद कहे गये हैं ॥ ८ ॥

(संज्ञा प्रज्ञान यत्रैवं स्वयंप्रज्ञोऽभिधीयते ।
असंप्रज्ञो हि भूयस्तु स्थितप्रज्ञः प्रतिष्ठितः ॥ ९ ॥

जिसमें संज्ञा का बोध होता है वह स्वयंप्रज्ञ समाधि है तथा जिसमें संज्ञा का बोध नहीं होता है वह स्थितप्रज्ञ रूप में प्रतिष्ठित असम्प्रज्ञात समाधि कही जाती है ॥ ९ ॥

प्रज्ञाप्रज्ञानमेवेदमसंस्मयमिति द्वयम् ।
संज्ञाद्वयमिदं देवि शिवतत्त्वेन वै भवेत् ॥ १० ॥

हे देवि ! इसी को प्रज्ञाप्रज्ञान और असंस्मय इन दो संज्ञाओं से जाना जाता है जो शिवतत्त्वाधिक्य से होता है ॥ १० ॥

हास्यरोदनरोमाञ्चकम्पस्वेदादिलक्षणः ।
तीव्रस्तीव्रतरो देवि समाधिरुपलक्षितः ॥ ११ ॥

हास्य, रोदन, रोमाञ्च, कम्पन और स्वेद लक्षणों से जो समाधि देखी जाती हैं। हे देवि! वह तीव्र तीव्रतर समाधि कही जाती है ॥ ११ ॥

निमेषवर्जिते नेत्रे वपुस्तल्लक्षणं स्थिरम् ।
मन्दो मन्दतरो देवि समाधिः परिकीर्तितः ॥ १२ ॥

नेत्रों के पलक न गिरते हों और शरीर सर्वथा स्थिर एवं निश्चल हो ऐसे लक्षणों वाली समाधि, हे देवि! मन्द मन्दतर नाम से कही जाती है ॥ १२ ॥

शाम्भवेन च वेद्येन सुखी भूयान्निरन्तरम् ।
अन्तर्यागविधिं कृत्वा बहिर्यजनमाचरेत् ॥ १३ ॥

यह समाधि शिव की कृपा से जानी जाती हैं। साधक इस समाधि में लीन हो कर निरन्तर सुखी हो जाता है। इस प्रकार की समाधि से अन्तर्याग की विधि संपन्न कर साधक बहिर्यजन आरम्भ करे ॥ १३ ॥

एवं विन्यस्तदेहः सन्सर्वात्मा साधकोत्तमः ।
ध्यायेन्निरामयं वस्तु जगत्त्रयविमोहिनीम् ॥ १४ ॥
अशेषव्यवहाराणां स्वामिनीं संविदं पराम् ।
उद्यत्सूर्यसहस्राभां दाडिमीकुसुमप्रभाम् ॥ १५ ॥
जपाकुसुमसंकाशां पद्मरागमणिप्रभाम् ।
स्फुरत्पद्मनिभां तप्तकाञ्चनाभां सुरेश्वरीम् ॥ १६ ॥

सर्वात्मा उत्तम साधक इस प्रकार देहन्यास कर तीनो लोकों को मोहित करने वाली, सम्पूर्ण व्यवहारों की कारणभूता, परा विद्या स्वरूपा, उदीयमान सहस्रों सूर्यों के समान अरुण आभा से समन्वित, अनार पुष्प के समान कान्ति वाली, जपा पुष्प के समान तथा पद्मरागमणि के समान प्रभा पुञ्जों से व्याप्त, खिले हुए कमल के सदृश, तपाये गये सुवर्ण के समान देदीप्यमान भगवती सुरेश्वरी का इस प्रकार ध्यान करे ॥ १४–१६ ॥

रक्तोत्पलदलाकारपादपल्लवराजिताम् ।
अनर्घ्यरत्नखचितमञ्जीरचरणद्वयाम् ॥ १७ ॥
पादाङ्गुलीयकक्षिप्तरत्नतेजोविराजिताम् ।
कदलीललितस्तम्भसुकुमारोरुकोमलाम् ॥ १८ ॥
नितम्बबिम्बविलसद्रक्तवस्त्रपरिष्कृताम् ।
मेखलाबद्धमाणिक्यकिङ्किणीनादविभ्रमाम् ॥ १९ ॥

जिनका रक्तचरण रक्तवर्ण के कमल दल के समान शोभित हो रहा है। दोनों चरणों के मञ्जीर द्वय' बहुमूल्य मणियों से जटित हैं, किं बहुना पैरों में धारण की गई मुद्रिकायें अनन्त रत्नों के तेज से शोभा समन्वित हैं। जिनके कोमल दोनों ऊरु प्रदेश कदली के ललित खम्भों के समान शीतल एवं मनोहर हैं। नितम्ब प्रदेश रक्त वस्त्र से परिष्कृत हैं। उस पर बँधी हुई माणिक्य मेखला की मनोहर किङ्किणी शब्दायमान हो रही हैं ॥ १७–१९ ॥

अलक्ष्यमध्यमां निम्ननाभिं शातोदरीं पराम् ।
रोमराजिलतोद्भूतमहाकुचफलान्विताम् ॥ २० ॥

सुवृत्तनिबिडोत्तुङ्गकुचमण्डलराजिताम् ।
अनर्घ्यमौक्तिकस्फारहारभारविराजिताम् ॥ २१ ॥

जिनका कटिप्रदेश अत्यन्त सूक्ष्म, नाभि गम्भीर और उदर अत्यन्त कृश हैं। जिनकी रोमावली रूपी लता में कुचद्वय रूप महाफल लगे हुए है। जो अत्यन्त गोले घने तथा उत्तुङ्ग मण्डल वाले हैं, उन पर बहुमूल्य मोतियों की माला शोभा पा रही हैं ॥ २०–२१ ॥

नवरत्नप्रभाराजद् ग्रैवेयकविभूषणाम् ।
श्रुतिभूषामनोरम्यकपोलस्थलमञ्जुलाम् ॥ २२ ॥

उद्यदादित्यसंकाशताटङ्कसुमुखप्रभाम् ।
पूर्णचन्द्रमुखीं पद्मवदनां वरनासिकाम् ॥ २३ ॥

जिनके गले में नवीन रत्नों का प्रभायुक्त ग्रैवेयक आभूषण विराज रहा हैं। कानों में धारण किये कुण्डलों की प्रभा से जिनका गण्डस्थल अत्यन्त मनोहर हैं। ये कर्ण में पिनद्ध ताटङ्क उदीयमान सूर्य के समान सर्वत्र अपनी प्रभा विकीर्ण कर रहे हैं। कमल के समान मनोहर मुख पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान भासित हो रहा हैं ॥ २२–२३ ॥

स्फुरन्मदनकोदण्डसुभ्रुवं पद्मलोचनाम् ।
ललाटपट्टसंराजद्रत्नाढ्यतिलकाङ्किताम् ॥ २४ ॥

मुक्तामाणिक्यघटितमुकुटस्थलकिंङ्किणीम् ।
स्फुरच्चन्द्रकलाराजन्मुकुटां च त्रिलोचनाम् ॥ २५ ॥

जिनके दो भ्रू कामदेव के धनुष् के समान हैं, नेत्र कमल सरीखे हैं, ललाट पट्ट में रत्नजटित तिलक अंङ्कित है, शिरः स्थान पर धारण किये हुए मुकुटों में मोतियों एवं मणियों की लड़ियाँ लगी हुई हैं तथा देदीप्यमान चन्द्रमा से वह मुकुट शोभित हो रहा है ॥ २४–२५॥

प्रवालवल्लीविलसद्बाहुवलीचतुष्टयाम् ।
इक्षुकोदण्डपुष्पेषुपाशाङ्कुशचतुर्भुजाम् ॥ २६ ॥

सर्वदेवमयीमम्बां सर्वसौभाग्यसुन्दरीम् ।
सर्वतीर्थमयीं दिव्यां सर्वकामप्रपूरिणीम् ॥ २७ ॥

सर्वमन्त्रमयीं नित्यां सर्वागमविशारदाम् ।
सर्वक्षेत्रमयीं देवीं सर्वविद्यामयीं शिवाम् ॥ २८ ॥

सर्वयागमयीं विद्यां सर्वदेवस्वरूपिणीम् ।
सर्वशास्त्रमयीं नित्यां सर्वागमनमस्कृताम् ॥ २९ ॥

सर्वाम्नायमयीं देवीं सर्वायतनसेविताम् ।
सर्वानन्दमयीं ज्ञानगह्वरां संविदं पराम् ॥ ३० ॥

एवं ध्यात्वा परामम्बां वहन्नासापुटं क्रमात् ।
आवाह्य चक्रमध्ये तु मुद्रया हि त्रिखण्डया ॥ ३१ ॥

तीन नेत्रों वाली उन भगवती की चारों भुजायें प्रवाल वल्ली के समान है जिनके चारों हाथों में क्रमशः ऊख का धनुष्, पुष्पों के बाण एवं पाश और अङ्कुश शोभा पा रहे हैं ऐसी सर्वदेवमयी, सर्वसौभाग्यसुन्दरी, सर्वतीर्थमयीं, सर्वकामप्रपूरिणी, सर्वमन्त्रमयी, नित्या, सर्वागमविशारद, सर्वक्षेत्रमयीं, सर्वविद्यामयी, सर्वयोगमयी, सर्वदेवस्वरूपिणी, महाविद्या, सर्वशास्त्रस्वरूपा, सर्वागमनामस्कृता, सर्वाम्नायमयी, सर्वायतनसेविता, सर्वानन्दमयी, ज्ञानगह्वरा, परसंवित पराअम्बा का ध्यान प्राणायाम पूर्वक करते हुए त्रिखण्डा मुद्रा से श्रीचक्र के मध्य में आवाहन करे ॥ २६–३१ ॥

संस्थितां चिन्तयेत्तत्र श्रीपीठान्तर्निवासिनीम् ।
मुद्राः संदर्शयेद्देवि तर्पणैस्तु त्रिधा यजेत् ॥ ३२ ॥

श्री चक्र के पीठ पर निवास करने वाली भगवती का इस प्रकार ध्यान कर आवाहनी स्थापनी आदि मुद्रायें प्रदर्शित करनी चाहिए । हे देवि ! तदनन्तर ३ प्रकार के तर्पण से देवी की पूजा करें ॥ ३२ ॥

लयाङ्गं कल्पयेद्देहे देव्यास्तु परमेश्वरि ।
गन्धपुष्पाक्षतादींश्च देव्यै सम्यङ् निवेदयेत् ॥ ३३ ॥

हे परमेश्वरि! प्रथम देवी के देह में अपने अङ्ग के लय होने की कल्पना करें फिर गन्धपुष्प अक्षतादि देवी को सम्यक् रूप से निवेदित करें ॥ ३३ ॥

उपचारैः षोडशभिः संपूज्य परदेवताम् ।
तर्पणानि पुनर्दद्यात्त्रिवारं मूलविद्यया ॥ ३४ ॥

तदनन्तर षोडशोपचारों से पर देवता का पूजन कर मूल विद्या पढ़कर ३ बार तर्पण कर पुनः उनका मार्जन करे ॥ ३४ ॥

एतस्मिन्समये देवि तिथिनित्यां प्रपूजयेत् ।
कामेश्वर्यादिका नित्या विचित्रान्ताः परेश्वरि ॥ ३५ ॥

हे देवि ! इसी समय साधक कामेश्वरी आदि से प्रारम्भ कर विचित्रान्त नित्या पर्यन्त तिथि नित्याओं का पूजन करे ॥ ३५ ॥

प्रतिपत्पौर्णमास्यन्ततिथिरूपाः प्रपूजयेत् ।
विभाव्य च महात्र्यस्त्रं पूर्वदक्षोत्तरं क्रमात् ॥ ३६ ॥
रेखासु विलिखेत्तत्र पञ्चपञ्च क्रमेण हि ।
अकराद्या उवर्णान्ता दक्षिणस्यां विचिन्तयेत् ॥ ३७ ॥
ततश्च पूर्वरेखायामूकारादिकपञ्चकम् ।
विलिख्योत्तररेखायां शक्त्यादि विलिखेत्ततः ॥ ३८ ॥
अनुस्वारान्तमन्त्रस्तु विसर्गे षोडशीं यजेत् ।
वामावर्तेन देवेशि नित्याः षोडश कीर्तिताः ॥ ३९ ॥

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से ले कर पौर्णमास्यन्त तिथिरूपाओं का पूजन करने का विधान हैं। पूर्व दक्षिण और उत्तर में रेखा खींचे। दक्षिण की रेखा पर अ से ले कर उकार पर्यन्त पाँच वर्ण लिखे। पूर्व रेखा पर ऊ से ले कर ऊ ॠ ॠ ऌ ॡ लिखे। उत्तर की रेखा में ए ऐ ओ औ अं अः लिखे । इस प्रकार स्वरान्त वर्ण मन्त्र लिखकर विसर्ग में वामावर्त्त से षोडशी का यजन करे । हे देवेशि ! इस प्रकार हमने षोडश नित्याओं के पूजन की विधि आपसे बतलाई ॥ ३६–३९ ॥

प्रतिपत्तिथिमारभ्य पौर्णमास्यन्तमद्रिजे ।
एकैकां पूजयेन्नित्यां महासौभाग्यमाप्नुयात् ॥ ४० ॥

हे हिमालय पुत्रि ! जो साधक शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से पौर्णमास्यन्त तिथि तक एक–एक नित्याओं का पूजन करता है वह महान् सौभाग्यशाली हो जाता है ॥ ४० ॥

कृष्णपक्षे महेशानि पूजयेत्तिथिमण्डलम् ।
विचित्राद्या वरारोहे यावत्कामेश्वरी भवेत् ॥ ४१ ॥

हे महेशानि ! हे वरारोहे ! कृष्णपक्ष में विलोम क्रम से विचित्रादि से लेकर कामेश्वरी पर्यन्त तिथि नित्याओं के मण्डल का पूजन करना चाहिए ॥ ४१ ॥

पूजनीया विलोमेन भक्त्या तु परमेश्वरि ।
कलाः षोडश देवेशि यस्तु चन्द्रकलाः क्रमात् ॥ ४२ ॥

हे परमेश्वरि ! हे देवेशि ! कृष्णपक्ष में विलोम रीति से ही षोडश चन्द्रकला स्वरूप १६ कलाओं की क्रमशः पूजा का विधान है ॥ ४२ ॥

तिथिनित्यां त्रिधा देवि पूजयेद्भाग्यहेतवे ।
पुनः श्रीत्रिपुरानित्या यजेत्सौभाग्यहेतवे ॥ ४३ ॥
स सौभाग्यं महादेवि प्राप्नोति गुरुशासनात् ।
कामेश्वर्यादिका नित्याः पूजयित्वा क्रमात्ततः ॥ ४४ ॥

हे देवि ! अपने भाग्य की अभिवृद्धि के लिए इन तिथि नित्याओं का ३ प्रकार से पूजन करना चाहिए । इसके बाद अपने उत्तम भाग्य के लिए श्री त्रिपुरा नित्या की पूजा करनी चाहिए । हे महादेवि! गुरु की आज्ञा लेकर जो इस प्रकार क्रमशः कामेश्वरी आदि नित्याओं का पूजन करता है । वह सौभाग्यशाली होता है ॥ ४३–४४ ॥

एतस्मिन्समये देवि गुरुन्संपूजयेद्बुधः ।
पुष्पसंकोचयोगेन कथयामि तवानघे ॥ ४५ ॥

हे देवि ! इसी समय बुद्धिमान् साधक गुरुओं की पूजा करें। पुष्प संकोच के योग(?) से जिस प्रकार गुरुओं की पूजा की जाती है। हे अनघे! उसकी विधि आपसे कहता हूँ ॥ ४५ ॥

रश्मिवृन्दं दलमितं गुरवस्तु शताधिकाः ।
तस्मांत्संकोचयेत्पुष्पममिताः सिद्धिहानिदाः ॥ ४६ ॥
नष्टसंततिविज्ञेया मिताः सर्वसमृद्धिदाः ।
पुष्पं संकोचयेन्नोचेद्द्वादशे नष्टसंततिः ॥ ४७ ॥

ऐसे तो गुरु रश्मिवृन्दं एवं दलमितं आदि शताधिक गुरु कहे गये हैं। यतः अमित गुरुगण सिद्धि में हानि पहुँचाते हैं। अतः पुष्प को संकुचित कर उनकी पूजा करनी चाहिए । ये अमित गुरु नष्टसंततियों वाले हैं। किन्तु मित गुरु सर्वसमृद्धि प्रदान करने वाले हैं। इसलिए पुष्प संकुचित करना चाहिए, नहीं तो १२ गुरुओं की पूजा से साधक नष्ट संतति वाला हो जाता है ॥ ४६–४७ ॥

संतत्या नष्टरूपः सन्न भवेद्देवताप्रियः ।
अत एव मया सम्यक्पुष्पं संकुचितं प्रिये ॥ ४८ ॥

हे देवि! जिसकी संतति नष्ट हो जाती हैं, वह देवता प्रिय नहीं होता। देवता उसकी पूजा ग्रहण नहीं करते। इसलिए, हे प्रिये! मैंने भी गुरु पूजा में पुष्प का संकोच किया है ॥ ४८ ॥

कामराजाख्यविद्याया गुरवस्तु समृद्धिदाः ।
मध्यप्राक्त्र्यश्रमध्ये हि गुरुपङ्क्तिं त्रिधाऽर्चयेत् ॥ ४९ ॥

यहाँ कामराजविद्या में यजन के लिए कहे गये गुरु समृद्धि देने वाले हैं। मध्य से पूर्व त्रिकोण के मध्य में तीन प्रकार के गुरुगणों की पंक्ति की अर्चना करनी चाहिए ॥ ४९ ॥

परारब्धान्पूजयेदादौ परापरविभक्तिकान् ।
ततोऽपरांस्त्रिधा देवि गुरुन् संपूजयेत्प्रिये ॥ ५० ॥

हे देवि! सर्वप्रथम पर गुरुओं से आरम्भ कर पूजा करनी चाहिए । फिर परापर गुरुओं की, फिर अपर गुरुओं की, इस प्रकार, हे प्रिये ! तीन प्रकार के गुरुओं की पूजा करनी चाहिए ॥ ५० ॥

दिव्यौघे तु परान्विद्धि सप्तसंख्यान्वरानने ।
आनन्दनाथशब्दान्ता गुरवः पुरुषाः प्रिये ॥ ५१ ॥
स्त्रियः पराम्बाशब्दान्ता विज्ञेया वीरवन्दिते ।

हे वरानने ! दिव्यौघ में सात संख्या वाले पर गुरु कहे गये हैं । हे प्रिये ! इन गुरुओं के नाम आनन्दनाथ शब्दान्त हैं, जो पुरुष वर्ग के हैं । किन्तु हे वीरवन्दिते ! जो इनमें स्त्रियाँ हैं उनके नाम पराम्बा शब्दान्त हैं । ऐसा समझना चाहिए ॥ ५१–५२ ॥

परप्रकाशो देवेशि ततः परशिवो मतः ॥ ५२ ॥
परा शक्तिस्तथा देवि कौलेश्वर इति प्रिये ।
शुक्ला देवि कुलेशानकामेश्वर्यम्बिकाः क्रमात् ॥ ५३ ॥
मुनिसंख्यास्तु गुरवः पराख्या दिव्यरूपिणः ।
भोगक्लिन्नस्तु समयो वेदाख्यः सहजस्तथा ॥ ५४ ॥
परापराख्यसिद्धौघे मानवौघे शृणु प्रिये ।

पर एवं परापर गुरु—हे देवेशि ! हे देवि ! १. परप्रकाश, उसके बाद २. परशिव, ३. पराशक्ति, ४. कौलेश्वर, ५. शुक्ला देवी, ६. कुलेशान, ७. कामेश्वरी अम्बिका – ये सात परनामक दिव्यौघ गुरु कहे गये हैं। १. भोगक्लिन्न, २. समय, ३. वेद, ४. सहज – ये सिद्धौघ परापराख्य गुरु कहे गये हैं । हे प्रिये ! अब मानवौघ गुरुओं को सुनिए ॥ ५२–५५ ॥

गगनो विश्वविमलौ मदनो भुवनस्तथा ॥ ५५ ॥

लीला स्वात्माप्रियः पश्चान्नागसंख्यास्तु मानवाः।
अपराः परमेशानि नियता अक्षरा इमे ॥ ५६ ॥

अपर गुरु—१. गगन, २. विश्व, ३. विमल, ४. मदन, ५. भुवन, ६. लीला, ७. स्वात्मा, ८. प्रिया — ये मानवौघ गुरु कहे गये हैं। इन्हीं को अपर भी कहा जाता है। ये सभी जितेन्द्रिय एवं अक्षर हैं ॥ ५५—५६ ॥

एतत्त्रयं तु नियतं देशिकानां हिताय च ।
मयोद्धृतं महेशानि पुष्पं संकुचितं प्रिये ॥ ५७ ॥

हे प्रिये ! मैने साधक वर्गों के हित के लिए इन तीन प्रकार (पर, परापर अपर) के गुरुओं का नामोद्धार किया है और हे महेशानि! इस प्रकार पुष्प संकुचित किया है ॥ ५७ ॥

मानवौघान्तिके पश्चात्स्वगुरुत्रितयं यजेत् ।
परमेष्ठी गुरुः पश्चाद्गुरुः परमसंज्ञितः ॥ ५८ ॥

स्वगुरुश्च महेशानि पुजयेत्तु गुरुत्रयम् ।
अथ वा मानवौघान्त एकं स्वगुरुमर्चयेत् ॥ ५९ ॥

मानवौघ गुरुओं के समीप में ही, हे परमेशानि! परमेष्ठी गुरु, परम गुरु और स्वगुरु — इन तीन प्रकार के अपने गुरुओं की भी पूजा करनी चाहिए अथवा मानवौघ गुरुओं के समीप केवल एक अपने गुरु की ही अर्चना करनी चाहिए ॥ ५८—५९॥

अयं प्रकारः कथितः प्रकारान्तरमुच्यते।
वन्द्यं सर्वप्रकाराणां मानवौघाष्टकादथ ॥ ६० ॥

गुरवो नवसंख्याका इह यावद्भवन्ति हि।
नवचक्रेश्वरी यस्मात्तावत्पुष्पं प्रकाशयेत् ॥ ६१ ॥

मानवौघे तदा देवि दशसप्त भवन्ति हि ।
पश्चात्संकोचयेत्पुष्पं नवमं श्रीगुरुं यजेत् ॥ ६२ ॥

यह पूजा का एक प्रकार कहा गया । अब अन्य प्रकार कह रहा हूँ— मानवौघ ८ गुरुओं के बाद केवल अपने गुरु ये ९ ही गुरु वन्दनीय हैं। इधर नवचक्रेश्वरी हैं। इसलिए उतने के लिए ही पुष्प प्रकाशित करना उचित है। हे देवि ! उस समय नवचक्रेश्वरी और ८ मानवौघ, कुल मिला कर मानवौघ में १७ संख्या हो जाती हैं। इसलिए पुष्प संकुचित कर लेना चाहिए। ८ मानवौघ गुरु तथा ९ वें अपने गुरु की ही अर्चना करनी चाहिए ॥ ६०—६२ ॥

अज्ञातगुरुशिष्याणां कथयामि वरानने ।
गुरुभ्यो नम उच्चार्य पादुकाभ्यो नमो लिखेत् ॥ ६३ ॥

गुर्वन्ते परमान्ते च गुरुभ्यो नम इत्यपि ।
एतेषां पादुकास्तद्वदाचार्येभ्यो नमो वदेत् ॥ ६४ ॥

हे वरानने! जब गुरु एवं शिष्यों की परम्परा ज्ञात न हो तो साधक केवल 'गुरुभ्यो नमः' 'पादुकाभ्यो नमः' केवल इतना ही लिखे, अथवा गुरु के अन्त में एवं परम के अन्त में 'गुरुभ्यो नमः' केवल इतना ही लिखें ॥ ६३–६४॥

विमर्श–इनकी पादुका के समान ही 'आचार्येभ्यो नमः' यह लिखे । 'गुरुगुरुभ्यो नमः', 'परमगुरुभ्यों नमः', 'गुरुपादुकाभ्यो नमः' और 'आचार्येभ्यो नमः' ऐसा ही कहे ।

आचार्यपादुकास्तद्वत्पूर्वसिद्धास्तु पादुकाः ।
सामान्यगुरुशिष्याणां गुरुपङ्क्तिरियं भवेत् ॥ ६५ ॥

आचार्य पादुका के समान पूर्वसिद्ध भी पादुका ही है। सामान्य गुरु शिष्यों के लिए यही गुरुपंक्ति निर्दिष्ट है ॥ ६५ ॥

गुरुपङ्क्तिं प्रपूज्याथ स्वयं श्रीत्रिपुरा भवेत् ।
गुरुपङ्क्तिविहीनस्तु पुरुषः पङ्क्तिवर्जितः ॥ ६६ ॥

जो व्यक्ति गुरु पंक्ति की पूजा कर लेता है वह स्वयं त्रिपुरा बन जाता है, किन्तु जो पुरुष गुरु पंक्ति की पूजा नहीं करता वह पंक्ति वर्जित है ॥ ६६ ॥

सामान्यगुरुपङ्क्तित्वान्न भवेत्पङ्क्तिवर्जितः ।
पुष्पसंकोचमार्गोऽयं मया सिद्धः कृतः प्रिये ॥ ६७ ॥
कृपया परमेशानि साधकानां हिताय च ।
कामराजाख्यगुरवः श्रीविद्याविषये क्रमात् ॥ ६८ ॥

सामान्य गुरु पंक्ति की पूजा करने वाला पंक्ति वर्जित नहीं होता। हे प्रिये ! पुष्पसंकोच का यही विधान है । हे परमेशानि! साधकों के हित के लिए और उन पर कृपा की दृष्टि से ही श्रीविद्या के विषय में इन कामराजगुरुओं की मैंने सिद्धि की है ॥ ६७–६८॥

लोपामुद्राख्यविद्याऽप्यान् गुरुञ्शृणु वरानने ।
परमाद्यशिवश्चाऽऽद्या कामेश्वर्यम्बिका तथा ॥ ६९ ॥
दिव्यौघश्च महौघश्च सर्वानन्दस्ततः परम् ।
प्रज्ञादेव्यम्बिका पश्चात्प्रकाशः सप्तमो भवेत् ॥ ७० ॥

दिव्याः पराख्यगुरवो लोपामुद्राप्रभामयाः ।

हे वरानने ! अब लोपामुद्रा विद्या द्वारा प्राप्त किये जाने वाले गुरुओं को, हे प्रिये! सुनिए। प्रथम १. परमाद्यशिव, २. कामेश्वरी अम्बिका, ३. दिव्यौघ, ४. महौघ, ५. सर्वानन्द प्रज्ञादेवी, ६. अम्बिका, इसके बाद ७. सप्तम प्रकाश, ये दिव्य पर नामक गुरु हैं जो लोपामुद्रा विद्या से युक्त हैं ।। ६९–७१ ।।

दिव्यश्चित्रश्च कैवल्यदेव्यम्बा च महोदयाः ।। ७१ ।।
सिद्धाः परापरा ज्ञेया मानवौघे शृणु प्रिये ।
विद्या शक्तिश्च विश्वश्च चतुर्थः कोमलो भवेत् ।। ७२ ।।
पञ्चमस्तु परानन्दो मनोहर इति प्रिये ।
स्वात्मानन्दः सप्तमस्तु प्रतिभोऽष्टम उच्यते ।। ७३ ।।
अपराख्या इमे देवि गुरवः परिकीर्तिताः ।
पूर्ववद्योजयेत् पश्चादष्टानन्तरमेव च ।। ७४ ।।
त्रयं वा स्वगुरुं वाऽपि नवान्तं वाऽब्जलोचने ।
दक्षिणामूर्तिशिष्याणां गुरुक्रम उदाहृतः ।। ७५ ।।

दिव्य, चित्र, कैवल्य, देवी अम्बा, महोदय ये सिद्धौघ परापर गुरु हैं। अब हे प्रिये! मानवौघ गुरुओं को सुनिए । १. विद्या, २. शक्ति, ३. विश्व, ४. कोमल, ५. पञ्चम परानन्द, तदनन्तर हे प्रिये! ६. मनोहर, फिर ७. स्वात्मानन्द, ८. प्रतिभ – ये अपराख्य गुरु कहे गये हैं। इसके बाद अपने तीन गुरुओं को (द्र० १६.५८–५९) अथवा केवल अपने गुरुओं को पूर्वोक्त रीति से अथवा अष्ट मानवौघ गुरु के पश्चाद् योजना कर उनका पूजन करना चाहिए। हे कमललोचने! यहाँ तक हमने दक्षिणामूर्त्ति शिष्यों के गुरुक्रमों का नाम उद्धृत किया है ।। ६९–७५ ।।

संप्रदाया अनेके च ज्ञातव्याः स्वगुरुक्रमात् ।
संप्रदायविहीनस्य न दद्यात्पङ्क्तिमुत्तमाम् ।। ७६ ।।

गुरुओं के विषय में अनेक संप्रदाय हैं। इन्हें अपनी गुरुपरम्परा से जानना चाहिए। जिसका कोई संप्रदाय नहीं है, उसे यह उत्तम गुरु पंक्ति का संप्रदाय प्रकाशित नहीं करना चाहिए ।। ७६ ।।

साधारणास्तु गुरवः सर्वभेदेषु वै समाः ।
गुरुक्रमं प्रपूज्याथ यजेदाम्नायदेवताः ।। ७७ ।।

भेद होने पर भी साधारण सभी गुरु समान ही हैं। इस प्रकार गुरुक्रमों का पूजन कर आम्नाय देवताओं का पूजन करना चाहिए ।। ७७ ।।

आम्नायदेवतायजनम्

त्रैलोक्यमोहने देवि सर्वाशापरिपूरके ।
सर्वसंक्षोभणे चक्रे पूर्वाम्नायं प्रपूजयेत् ॥ ७८ ॥

हे देवि! सभी आशा को पूर्ण करने वाले, सर्वसंक्षोभण त्रैलोक्यमोहन नामक चक्र में **पूर्वाम्नाय** के देवताओं का पूजन करना चाहिए ॥ ७८ ॥

विमर्श – ॐ ह्रीं श्रीं त्रैलोक्यमोहने चक्रे पूर्वाम्नाय देवता पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

सर्वसौभाग्यदे चक्रे तथा सर्वार्थसाधके ।
सर्वरक्षाकरे चक्रे दक्षाम्नायं प्र पूजयेत् ॥ ७९ ॥

सर्वार्थसाधक, सर्वरक्षाकर और सर्वसौभाग्यदायक चक्र में **दक्षाम्नाय** के देवताओं का पूजन करना चाहिए ॥ ७९ ॥

मध्यचक्रत्रये देवि पश्चिमाम्नायमर्चयेत् ।
नवचक्रेषु देवेशि कौबेराम्नायमर्चयेत् ॥ ८० ॥

हे देवि ! इसके बाद मध्य के तीन चक्रों में **पश्चिमाम्नाय** देवताओं का पूजन करना चाहिए। इस प्रकार, हे देवेशि! नवचक्रों में **उत्तराम्नाय** के देवताओं का पूजन करना चाहिए ॥ ८० ॥

बैन्दवे परमेशानि मध्यसिंहासनं यजेत् ।
अनेनैव प्रकारेण पूजयेत्पञ्च पञ्चिकाः ॥ ८१ ॥

हे परमेशानि ! बिन्दु स्थान के मध्य सिंहासन पर भगवती पराम्बा श्री ललिता का पूजन करना चाहिए। इसी प्रकार पञ्च पञ्चिकाओं (५–५ के ५ समूह) का भी पूजन करना चाहिए ॥ ८१ ॥

श्रीविद्या च प्ररं ज्यौतिः परा निष्कलशाम्भवी ।
अजया मातृका चेति पञ्च कोशाः प्रकीर्तिताः ॥ ८२ ॥

१. कोशपञ्चिका – १. श्रीविद्या, २. परंज्योतिः, ३. परा निष्कलशाम्भवी, ४. अजया और ५. मातृका – ये पाँच कोश कही जाती हैं ॥ ८२ ॥

श्रीविद्या च तथा लक्ष्मीर्महालक्ष्मीस्तथैव च ।
त्रिशक्ति सर्वसाम्राज्या पञ्च लक्ष्म्यः प्रकीर्तिताः ॥ ८३ ॥

२. लक्ष्मीपञ्चिका – १. श्रीविद्या, २. लक्ष्मी, ३. महालक्ष्मी, ४. त्रिशक्ति और ५. सर्वसाम्राज्या – ये पाँच लक्ष्मी कही जाती हैं ॥ ८३ ॥

श्रीविद्या त्वरिता चैव पारिजातेश्वरी तथा ।
त्रिपुटा पञ्चबाणेशी पञ्च कल्पलताः स्मृताः ॥ ८४ ॥

३. कल्पलतापञ्चिका – १. श्रीविद्या, २. त्वरिता, ३. पारिजातेश्वरी, ४. त्रिपुटा और ५. पञ्च वाणेशी – ये पाँच कल्पलता कही जाती हैं ॥ ८४ ॥

श्रीविद्या मूलपीठेशी सुधा श्रीरमृतेश्वरी ।
अन्नपूर्णेति विख्याताः पञ्चैताः कामधेनवः ॥ ८५ ॥

४. कामधेनुपञ्चिका – १. श्रीविद्या, २. मूलपीठेशी, ३. सुधाश्री, ४. अमृतेश्वरी और ५. अन्नपूर्णा – ये पाँच कामधेनु कही जाती हैं ॥ ८५ ॥

श्रीविद्यां सिद्धलक्ष्मीश्च मातङ्गी भुवनेश्वरी ।
वाराहीति च संमोक्ताः पञ्च रत्नाः प्रकीर्तिताः ॥ ८६ ॥

५. पञ्चरत्नापञ्चिका – १. श्रीविद्या, २. सिद्धलक्ष्मी, ३. मातङ्गी, ४. भुवनेश्वरी और ५. वाराही – ये पाँच पञ्च रत्ना कही जाती हैं ॥ ८६ ॥

मूलविद्या महेशानि श्रीविद्या परिकीर्तिता ।
वारुणान्तं वह्निसंस्थं बिन्दुनादसमन्वितम् ॥ ८७ ॥
वामनेत्रसमायुक्तं लक्ष्मीबीजमुदाहृतम् ।
श्रीबीजं तु पराबीजं लक्ष्मीबीजमुदाहृतम् ॥ ८८ ॥

हे महेशानि ! किन्तु श्रीविद्या ही मूलविद्या कही जाती हैं वारुणान्त (श) वह्निसंस्थ (र्) बिन्दुनाद समन्वित तथा वामनेत्र (ई) इस प्रकार श्रीं यह लक्ष्मी बीज कहा गया है। श्री बीज ही पराबीज हैं और वही लक्ष्मी बीज हैं जिसका उद्धार अभी मैंने किया है ॥ ८७–८८ ॥

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य ह्रीमात्मकं समुच्चरेत् ।
श्रीपुटां च नु कमले कमलाग्रे प्रसीदतु ॥ ८९ ॥
लये मध्यगतां भूमिं रुद्रस्थाने नियोजयेत् ।
प्रसीद युगलं दद्याच्छ्रीबीजं भुवनेश्वरीम् ॥ ९० ॥
श्रिया बीजं ततो दद्यान्महालक्ष्मी च {श्च} हन्मनुः ।
सप्तविंशतिवर्णात्मा महालक्ष्मीमनुर्मतः ॥ ९१ ॥

महालक्ष्मीमन्त्रोद्धार – प्रथम प्रणव (ॐ) उच्चारण कर, फिर श्री सम्पुटित 'ह्रीँ' का उच्चारण करे, कमले, कमला के बाद लये इसके बाद दो बार 'प्रसीद', फिर 'श्री' बीज, फिर भुवनेश्वरी बीज (ह्रीँ), फिर श्री

बीज 'श्रीं', फिर महालक्ष्म्यै नमः' । इस प्रकार २७ वर्णो का महालक्ष्मी मन्त्र बनता है ॥ ८९–९१ ॥

विमर्श – ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः (२७)॥

श्रीबीजं च पराबीजं कामराजं समालिखेत् ।
इयं त्रिशक्तिर्देवेशि त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ॥ ९२ ॥

परा त्रिशक्ति बीज – पहले श्रीबीज (श्रीं) पराबीज (ह्रीं) तदनन्तर कामराज बीज (क्लीं) लिखे । हे देवेशि ! यह परा त्रिशक्ति तीनों लोकों में दुर्लभ है ॥ ९२ ॥

चन्द्रेण मादनं लक्ष्मीर्देवी दीर्घाक्षिमण्डिता ।
विष्णुक्रूरेश्वरीयुक्ता रित्ययं वैष्णवीयुता (?)॥ ९३ ॥
श्रीबीजसंपुटं कुर्यात्सर्वशास्त्रप्रदायिनी ।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य पराहंसं समुद्धरेत् ॥ ९४ ॥
ततः सोऽहं शिरो देवि वसुवर्णोऽयमीरितः ।
वेदादिकेवला देवी परा निष्कलशाम्भवी ॥ ९५ ॥

(१) स् ह् क् ल् ह्रीं इसे श्री मन्त्र से सम्पुटित करने पर सर्वशास्त्रप्रदायिनी शक्ति मन्त्र बनता है । १. श्री ह्रीं श्रीं, २. प्रणव (ॐ) का उच्चारण कर पुनः 'परा 'हंसं' फिर सोऽहं इसके बाद शिर (ॐ) का उच्चारण करे तो यह आठ अक्षरों का (ॐ पराहंसः सोऽहं ॐ) परं ज्योति मन्त्र है । ३. वेदादि (ॐ) पर निष्कलशाम्भवी यह नव अक्षरों का परा निष्कलशाम्भवी मन्त्र बनता है ॥ ९३–९५ ॥

विमर्श – १. श्रीं ह्रीं श्री ॐ स् ह् क् ल ह रीं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं – नौ अक्षर का **सर्वशास्त्रप्रदायिनी मन्त्र** है। २. ॐ परा हंसः सोऽहं ॐ – आठ अक्षर का **परं ज्योति मन्त्र** है। ३. ॐ परानिष्कलशाम्भवी – नौ अक्षरों का **परानिष्कलशाम्भवी मन्त्र** है।

हंसोऽजपार्णान्तः त(वर्णवस्त)त्र मातृकेति प्रकीर्तिता(तः) ।
प्रणवं भुवनेशानी वियच्चन्द्राग्निवायवम् ॥ ९६ ॥
भुवनेशी ध्रुवं चैव सरस्वत्यै नमो लिखेत् ।
इयं तु पारिजातेशी पारिजातरतोपमा ॥ ९७ ॥

पारिजातेशीमन्त्रोद्धार – हंसः यह अजपा मन्त्र है। अकार से क्षकार पर्यन्त वर्ण मातृका कहे जाते हैं, ये मातृका मन्त्र कहे जाते हैं। प्रणव (ॐ), फिर भुवनेशी (ह्रीं), वियत् (ह), चन्द्र (स), अग्नि (र), वायु (य), फिर भुवनेशी (ह्रीं), वियत् (ह), चन्द्र (स), अग्नि (र), वायु (य), फिर भुवनेशी (ह्रीं), ध्रुव (ॐ), फिर सरस्वत्यै नमः लिखे। यह पारिजातेशी का मन्त्र है जो साक्षात् पारिजात वृक्ष के समान हैं ।

विमर्श – १ ॐ २ ह्रीं हं सं रं ३ य ४ ह्रीं ५ ॐ ९ सरस्वत्यै ११ नमः। इस प्रकार 'ॐ ह्रीं हं सं रं यं ह्रीं ॐ सरस्वत्यै नमः' – यह ११ अक्षरों का पारिजातेशी का मन्त्र है ॥ ९६–९७ ॥

काण्डवानीश्वरीविद्या प्रसङ्गात्कथिता मया ।
त्रिबीजं च पराबीजं सकामा त्रिपुटोदिता ॥ ९८ ॥

प्रसंङ्गवश शाखानुसार हमने ईश्वरी विद्या का निरूपण किया । त्रिबीज (श्रीं) परा बीज (ह्रीं) स कामा (क्लीं) यह त्रिपुटा मन्त्र हम पहले कह आये हैं ॥ ९८ ॥

पञ्चकामेश्वरीविद्या बालान्यासे समीरिता ।
वाग्भवं वामनेत्रं च ध्रुवान्तं बिन्दुसंयुतम् ॥ ९९ ॥
मूलपीठेश्वरीविद्या सुगुप्ता कथिता मया ।

पञ्चकामेश्वरी विद्या बाला न्यास में हम कह आये हैं। वाग्भव (ऐं), बिन्दुसंयुक्त वामनेत्र (ईं), अन्त में ध्रुव (ॐ) – यह **मूल पीठेश्वरी विद्या** है, जो सुगुप्त होने पर भी मैने कह दिया (ऐं ईं ॐ) ॥ ९९–१०० ॥

पराबीजं तु श्रीबीजं बालायामाद्यमक्षरम् ॥ १०० ॥
राज्यदे राजलक्ष्मीति चन्द्रः सर्गविभूषितः ।
बिलोमान्यादिबीजानि सुधा श्रीश्च प्रकीर्तिताः (ता) ॥ १०१ ॥

सुधा श्री मन्त्र–परा बीज (ह्रीम्), श्री बीज (श्रीं), बाला मन्त्र का आद्य अक्षर (ऐं), राज्यदे राज्यलक्ष्मीः, फिर सर्ग विभूषित चन्द्र (सः), तदनन्तर आदि बीज, इन्हें विलोम कर देने पर सुधा श्री मन्त्र बन जाता है ।

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – ॐ सः राज्यलक्ष्मि राज्यदे ऐं श्रीं ह्रीं ॥ १००–१०१ ॥

वाग्भवं भुवनेशानि श्रीबीजं तदनन्तरम् ।
वियत्तदादिखफलेमित्यवर्णं समालिखेत् ॥ १०२ ॥

वियत्तदादिकं तं च फ्रानित्येव मनुर्मतः ।
चवर्गतृतीयं तुर्यं मायारेफेन्दुसंयुत्तम् ॥१०३ ॥
महाचण्डं समुद्धृत्य संकर्षणीति संलिखेत् ।
कालमहान इत्युक्त्वा वियदिन्दुसमन्वितः (?) ॥१०४ ॥
मायाबीजं तु कथितः सिद्धलक्ष्म्या महामनुः ।
अन्नपूर्णा च देवेशि उत्तराम्नायकीर्तिता ॥१०५ ॥

सिद्धलक्ष्मी मन्त्रोद्धार – वाग्भव (ऐं) भुवनेशानी (ह्रीं), उसके बाद श्री बीज (श्रीं), वियत् (ह), उसके आदि में ख फ ल अवर्ण, फिर वियत् ह तदादि, फिर फ्रान्, फिर माया, फिर रेफ् और अनुस्वार सहित चवर्ग का तृतीय एवं चतुर्थ वर्ण (ज्रं झ्रं), फिर महाचण्ड, फिर संकर्षणी, फिर काल महान्, फिर इन्दु समन्वित वियत् (हं), फिर माया बीज (ह्रीं) – यह सिद्धलक्ष्मी का महामन्त्र कहा गया है। इसके अतिरिक्त, हे देवेशि ! अन्नपूर्णा भी उत्तराम्नाय की देवता हैं। जिनका मन्त्र दिया गया है ॥१०२–१०५ ॥

मातङ्गिन्येति चांशं वाङ्मायाश्रीसंपुटं लिखेत् ।
इयं मातङ्गिनी विद्या द्वादशार्णा प्रकीर्तिता ॥१०६ ॥

'मातङ्गिनि' इस अंश को वाङ् (ऐं) माया (ह्रीं) श्री (श्रीं) से सम्पुट कर लिखे तो १२ अक्षरों का मातङ्गिनी मन्त्र बन जाता है ॥१०६ ॥

विमर्श – यथा ऐं श्रीं ह्रीं मातङ्गिनी ऐं श्रीं ह्रीं नमः (१२) ॥

वियदग्निसमायुक्ता वामनेत्रेन्दुविभूषितम्(ता) ।
भुवनेशी महेशानि दुर्लभा भुवनत्रये ॥१०७ ॥

हे महेशानि ! वियत् (ह्) अग्नि (र्) जो वामनेत्र (ई) इन्दु (अनुस्वार) से भूषित हो यह विद्या तीनों लोकों में दुर्लभ है (ह्रीं भुवनेशी)॥१०७ ॥

वाग्भवं पूर्वमुद्धृत्य संबुद्ध्या भगवत्यपि ।
वार्ताली द्वे च वाराही युग्मवाराहमुख्यपि ॥१०८ ॥
अन्धे अन्धिन्यै नत्यन्तं रुन्धिनी तत्परः परम् ।
जम्भे जम्भिन्यै नत्यन्तं मोहे मोहिन्यै युतं नमः ॥१०९ ॥
स्तम्भे स्तम्भिन्यै हृद्युक्तममुकं स्तम्भनद्वये ।
सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्वमुच्चरेत् ॥११० ॥
जिह्वास्तम्भं कुरु द्वन्द्वं शीघ्रवश्यं कुरु द्वयम् ।
वाग्क्कूट त्रयं वाचं मन्त्रपावकवल्लभा ॥१११ ॥

महाविद्येयमाख्याता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।

पहले वाग्भव (ऐं), फिर सम्बोधन में 'भगवति' पद दो बार, वार्त्तालि दो बार, वाराही अन्धे, अन्धिन्यै नमः, रुन्धिनि जम्भे जम्भिन्यै नमः, मोहे मोहिन्यै नमः, स्तम्भे स्तम्भिन्यै नमः, अमुकं, फिर दो बार स्तम्भय, फिर सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां जिह्वास्तम्भं, फिर 'कुरु' इस पद को दो बार, फिर शीघ्रवश्यं, फिर दो बार कुरु वाक् कूटत्रय, फिर वाचं, फिर स्वाहा – यह महाविद्या मन्त्र है, जो सभी तन्त्रों में गुप्त है ॥ १०८–१११ ॥

विमर्श – ऐं भगवति वार्त्तालि वार्त्तालि वाराहि वाराहि अन्धे अन्धिन्यै नमः रुन्धिनि जम्भे जम्भिन्यै नमः मोहे मोहिन्यै नमः स्तम्भे स्तम्भिन्यै नमः अमुकं स्तम्भय स्तम्भय सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां जिह्वा स्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रवश्यं कुरु कुरु क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, सकल ह्रीं वाचं स्वाहा ।

श्री देव्युवाच –

मन्त्रास्तु कथिता देव सर्वतन्त्रेषु गोपिताः ॥ ११२ ॥
तानाराध्य कथं लोका जायन्ते भुवि दुर्लभाः ।
एतत्सर्वं महादेव कथय त्वं सुविस्तरम् ॥ ११३ ॥

श्री देवी ने पुनः कहा – हे देव ! अभी आपने सभी तन्त्रों में गुप्त रहने वाले मन्त्रों को बतलाया । इन मन्त्रों की किस प्रकार की आराधना कर साधक भूमण्डल में दुर्लभ कैसे हो जाते है । हे महादेव ! यह सब विस्तारपूर्वक हमें बतलाइये ॥ ११२–११३ ॥

ईश्वर उवाच –

साधु पृष्टं त्वया भद्रे लोकानां हितकाम्यया ।
अविज्ञातमनस्तत्त्वं भजता दुःसुता यथा (?) ॥ ११४ ॥

ईश्वर ने कहा – हे भद्रे ! आपने लोक के कल्याण के लिए यह उत्तम बात पूँछी हैं । मनस्तत्त्व अविज्ञात है। जैसे दुष्टजन भजन करके भी दुष्ट ही होते हैं । वैसे ही उन देवी की आराधना करके सज्जन दुर्लभ वस्तु को भी प्राप्त कर लेते हैं ॥ ११४ ॥

कथ्यतेऽत्र तथा देवि सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।
मन्त्राविशोधनं कुर्यान्मन्त्राणां च विशुद्धये ॥ ११५ ॥

हे देवि ! अब मैं उस बात को प्रकट रूप से कह रहा हूँ, जो समस्त तन्त्रों में गुप्त हैं। साधक मन्त्रों की शुद्धि के लिए मन्त्र विशोधन करे ॥ ११५ ॥

चतुरस्त्रभुवं भित्त्वा कृत्वा रेखात्रयं त्रयम् ।
वृत्तः षोडशके चैव ततो वर्णान् समालिखेत् ॥ ११६ ॥
इन्द्राग्नि रुद्रनवनेत्रयुगेन दिक्षु
ऋत्वष्टषोडशचतुर्दश भौतिकेषु ।
पाताल पञ्चदशवह्निहिमांशुकोष्ठे
वर्णाल्लिँखेल्लिपिभवान्क्रमशस्तु धीमान् ॥ ११७ ॥

पहले चौकोर रेखा खींचे, उसके बीच में पूर्व—पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तीन—तीन रेखाओं को खींचे। इस प्रकार १६ कोष्ठक बन जाते हैं। तदनन्तर १. ३. ११. ९. २. ४. १०. १२. ६. ८. १६. १४. ५. ७. १५ और १३ कोष्ठकों में क्रमशः समस्त लिपि वर्णों को लिखना चाहिए ॥ ११६—११७ ॥

मन्त्राद्यसाधकानां तु नामार्णः पतति ध्रुवम् ।
सिद्धिस्थानं च विज्ञेयं द्वितीयं साध्यनामकम् ॥ ११८ ॥
सुसिद्धं तु तृतीयं स्याच्चतुर्थमरिसंज्ञकम् ।

फिर उस चक्र में साधक के आद्य अक्षर से मन्त्र के आद्य अक्षर तक गणना करनी चाहिए। प्रथम सिद्धस्थान, द्वितीय साध्य नामक स्थान, तृतीय सुसिद्ध और चतुर्थ अरिसंज्ञक स्थान होता है॥ ११८—११९ ॥

विमर्श — नाम के आद्य अक्षर से मन्त्र के अक्षर पर्यन्त क्रमशः चार—चार कोष्ठकों के नाम क्रमशः सिद्ध चतुष्टय, साध्य चतुष्टय, सुसिद्ध चतुष्टय तथा अरि चतुष्टय समझना चाहिए ।

सिद्धः सिध्यतिकालेन साध्यः सिध्यति वा न वा ॥ ११९ ॥
सुसिद्धस्तत्क्षणादेव साधकं भक्षयेदरिः ।

सिद्ध स्थान में मन्त्राक्षर होने पर कुछ काल में सिद्धि होती है । साध्य स्थान में सिद्धि संभव है और नहीं भी। सुसिद्ध स्थान में तत्क्षण सिद्धि होती है। अरि स्थान में मन्त्र के आद्य अक्षर होने पर वह साधक को खा जाता है।

सिद्धसिद्धो जपात्सिद्धिर्द्विगुणात्सिद्धसाध्यकः ॥ १२० ॥
सिद्धसुसिद्धः संग्राहात्सिद्धारिर्हन्ति वै द्विजान् ।
साध्यः सिध्यति संक्लेशात्साध्यसाध्योऽतिदुःखकृत् ॥ १२१ ॥
साध्यः सुसिद्धो भजनात्साध्यारिः स्वाश्रयं हरेत् ।
सुसिद्धसिद्धोऽध्ययनात्फलं दद्युर्यथेप्सितम् ॥ १२२ ॥
सुसिद्धसाध्यो जपाद्यैः सिद्धिर्यस्मादतोऽन्यथा ।

सुसिद्धे तु सुसिद्धस्तु पूर्वजन्मकृतश्रमात् ॥१२३ ॥
संस्मात्तु सर्वं सिद्धानां साधको यो जपेन्मनुः ।
अभिचारे रिपोरवं यदि स्यान्भुविपन्नयोः (?) ॥१२४ ॥
संसिद्धेऽरिविशेषेण स्वकुलान्नाशयेद्ध्रुवम् ।
अरिसिद्धस्तु संहन्यादरिसाध्यं तु योषितः ॥१२५ ॥
अरिसिद्धस्वमन्त्रश्च कुलाच्छादनकृच्छलैः ।
अर्यरिस्वामहामन्त्रप्राप्तेन सुनिश्चितम् {?} ॥१२६ ॥

पञ्चम सिद्ध सिद्ध स्थान में जप से सिद्धि हो जाती है। छठें सिद्ध साध्यक स्थान में दुगुने जप से सिद्धि होती है। सप्तम सिद्धसुसिद्ध संग्रह से अष्टम सिद्धारि ब्राह्मण का ही वध कर देता है। नवम साध्य स्थान में क्लेश की सिद्धि होती है। दशम साध्य साध्य अत्यन्त दुःखदायी होता है। ग्यारहवाँ साध्यसुसिद्ध भजन करने से, बारहवाँ सुसिद्धसिद्ध अध्ययन द्वारा अभीष्ट फल देता है। तेरहवाँ अरिसिद्ध अपने आश्रय का ही हनन करता है। इसके अतिरिक्त छल से मन्त्र ग्रहण करने से चौदहवाँ अरिसाध्य कुल का आच्छादन करता है। पन्द्रहवाँ अरिसुसिद्ध पत्नी का हनन करता है तथा अरि अरि मन्त्र भी निश्चित रूप से कुल का नाश करता है।। १२०–१२६ ॥

विमर्श – श्लोक सं० १२० से लेकर १२६ तक का अर्थ संदिग्ध है। यहाँ पर मूल पाण्डुलिपियों से देखकर मूलपाठ शुद्ध करना चाहिए। मन्त्रमहोदधि आदि अन्य ग्रन्थों के अनुसार अर्थ इस प्रकार होना चाहिए :

१. साधक एवं मन्त्र का इन दोनों का प्रथमाक्षर यदि एक ही कोष्ठ में हो तो सिद्ध सिद्ध। साधक के नाम के प्रथमाक्षर वाले कोष्ठक से दूसरे कोष्ठक में नाम पड़े तो सिद्ध साध्य। उससे तीसरे कोष्ठक में होने पर सिद्ध सुसिद्ध तथा चौथे कोष्ठक में मन्त्राक्षर होने पर सिद्धारि योग बनता हैं ।

२. पुनः नाम अक्षर वाले ४ कोष्ठकों के आगे ४ कोष्ठ पर्यन्त गणना करने पर प्रथम कोष्ठक में साध्यसिद्ध। द्वितीय कोष्ठक में साध्यसाध्य। तृतीय कोष्ठक में साध्यसुसिद्ध और चतुर्थ कोष्ठक में मन्त्राक्षर होने पर साध्यशत्रु योग होता है।

३. इसी प्रकार तीसरे चारों कोष्ठको में मन्त्राद्याक्षर होने पर सुसिद्धसिद्ध, सुसिद्धसाध्य, सुसिद्धसुसिद्ध तथा सुसिद्धारि योग कहा जाता है।

४. चौथे चारों कोष्ठों में मन्त्राद्याक्षर होने पर क्रमशः अरिसिद्ध, अरिसाध्य, अरिसुसिद्ध तथा अरि–अरि योग बनता है ।

अब चार चार कोष्ठकों में होने वाले चार चार योगों का फल कहते हैं –

१. सिद्धसिद्ध मन्त्र यथोक्तकाल में, २. सिद्धसाध्य मन्त्र दूने काल में, ३. सिद्धसुसिद्ध निर्धारित संख्या से आधे जप करने पर सिद्ध हो जाता है किन्तु ४. सिद्धारियोग साधक के समस्त बन्धु बान्धवों का विनाशक होता है ।

१. साध्यसिद्ध मन्त्र दूने जप से सिद्ध होता है जबकि २. साध्यसाध्य निरर्थक है, ३. साध्यसुसिद्ध भी दूने जप से सिद्ध होता है किन्तु ४. साध्यारि साधक के समस्त गोत्रों का विनाशक होता हैं ।

१. सुसिद्धसिद्ध आधे जप से, २. सुसिद्धसाध्य दूने जप से, ३. सुसिद्ध सुसिद्ध मन्त्र साधक के दीक्षा मात्र के ग्रहण काल में ही, किन्तु ४. सुसिद्धारि मन्त्र साधक के समस्त कुटुम्ब का नाशक होता है ।

१. अरिसिद्ध मन्त्र दीक्षित के पुत्र का, २. अरिसाध्य कन्या का, ३. अरि सुसिद्ध पत्नी का, और ४. अरि अरि मन्त्रदीक्षा ग्रहण करने वाले का विनाश कर देता हैं ।

एतदुक्तं महेशानि त्यक्त्वाऽन्यमतमुत्तमम् ।

हे महेशानि ! अन्य का मत त्याग कर मन्त्र ग्रहण के विषय में हमने यह बात आपसे कही है।। १२७ ।।

स्वप्नलब्धे स्त्रिया दत्ते मालमन्त्रे त्रिबीजके ।। १२७ ।।
सिद्धादिशोधनं देवी न वै तेषां तु विद्यते ।

जो मन्त्र स्वप्न में प्राप्त हो, जो स्त्री के द्वारा दिया गया हो, माला मन्त्रो में और देवी के त्रिबीज में सिद्धादिशोधन की आवश्यकता नहीं है ।। १२७–१२८ ।।

श्रीविद्यापूजनस्थाने चक्रराजे महेश्वरि ।। १२८ ।।
महाकोशेश्वरावृन्दमण्डिता सनसंस्थिता ।। १२९ ।।
सर्वसौभाग्यजननीपादुकां पूजयामि च ।
इत्युच्चार्य परं ज्योतिःकोशाद्यां पूजयेत्सुधीः ।। १३० ।।
अनेनैव प्रकारेण पूजयेत्पञ्चपञ्चिकाः ।

श्री विद्यापूजनस्थाने चक्रराजे महेश्वरि महाकोशेरावृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी पादुकां पूजायामि' इतना उच्चारण कर विद्वान् साधक को ज्योति पञ्चकोश का और आदि विद्या का पूजन करना चाहिए। इसी प्रकार सर्वत्र काशादि पञ्च पञ्चिकाओं का पूजन करना चाहिए।। १२८–१३१ ।।

शैवं तु दर्शनं देवि बैन्दवे पूजयेत्प्रिये ।। १३१ ।।

परितो दर्शनं शाक्तं चक्रस्य परमेश्वरी ।
ब्राह्मं तु दर्शनं पूज्यं भूबिम्बे प्रथमे प्रिये ॥ १३२ ॥

इसके बाद हे देवि ! बिन्दुस्थान में शैव दर्शन का पूजन करना चाहिए। चक्र के चारों ओर शाक्तदर्शन का पूजन करना चाहिए। हे प्रिये! इसके बाद भूपुर के प्रथम रेखा में ब्राह्म दर्शन का पूजन करना चाहिए॥ १३१–१३२ ॥

शिवस्य वामतो देवि वैष्णवं दर्शनं यजेत् ।
सृष्टिचक्रे भवेत्सूर्यदर्शनं कमलेक्षणे ॥ १३३ ॥

हे देवि ! शिव की बायीं ओर वैष्णव दर्शन का पूजन करना चाहिए। हे कमलेक्षणे ! सृष्टि चक्र में सूर्य दर्शन की स्थिति है ॥ १३३ ॥

स्थितिचक्रे तु संपूज्यं बौद्धदर्शनमुत्तमम् ।
एवं संपूज्य सकलं श्रीविद्यां परितोषयेत् ॥ १३४ ॥

स्थिति चक्र में बौद्ध दर्शन का पूजन करना चाहिए, इसी प्रकार सभी दर्शनों का पूजन कर श्री विद्या को संतुष्ट करना चाहिए ॥ १३४ ॥

तर्पणानि पुनर्दद्यात्त्रिवारं तत्त्वमुद्रया ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु तत्त्वमुद्रेयमीरिता ॥ १३५ ॥

इसके बाद तत्त्वमुद्रा प्रदर्शित कर मूल मन्त्र से तीन बार तर्पण करना चाहिए । अंगूठा और अनामिका दोनों को मिला देने से तत्त्वमुद्रा बन जाती है ॥ १३५ ॥

पुष्पं समर्पयेद्देवि मुद्रया ज्ञानसंज्ञया ।
अङ्गुष्ठतर्जनीयोगाज्ज्ञानमुद्रा प्रतिष्ठिता ॥ १३६ ॥

हे देवि ! ज्ञानमुद्रा दिखा कर भगवती त्रिपुरा को पुष्प सर्मपण करना चाहिए अंगूठा और तर्जनी को मिला देने से ज्ञान मुद्रा बनती है ॥ १३६ ॥

सर्वोपचारैराराध्य मुद्राः संदर्शयेत्क्रमात् ।
अथाङ्गावरणं कुर्याच्छ्रीविद्यामनुसंभवम् ॥ १३७ ॥

भगवती का सर्वोपचार से पूजन कर क्रमशः मुद्रायें प्रदर्शित करे॥ १३७॥

अग्नीशासुरवायव्यमध्यदिक्ष्वङ्गपूजनम् ।
मायालक्ष्मीमयं बीजयुग्मं पूर्वक्रमेण तु ॥ १३८ ॥
कथितं योजयेद्देवि त्रयं वा परमेश्वरि ।
संपुटक्रमयोगेन चाथवा वीरवन्दिते ॥ १३९ ॥

संयोज्य पूजयेत्सर्वाः क्रमादेव वरानने ।
त्रैलोक्यमोहने चक्रे प्रकटा योगिनीर्यजेत् ॥ १४० ॥

हे देवि ! तदनन्तर माया (ह्रीं) और लक्ष्मीं बीज (श्रीं) — इन दो बीजों को पूर्वकथित भगवती के मन्त्रों में युक्त कर अथवा हे परमेश्वरि ! तीन बीज लगा कर अथवा हे वीरवन्दिते ! सम्पुट कर आग्नेय, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य, मध्य तथा, हे वरानने ! दिशाओं में अङ्गों की पूजा करे । त्रैलोक्य मोहन नामक चक्र में प्रकट होने वाली योगिनियों की पूजा करनी चाहिए ॥ १३५–१४० ॥

चतुरस्रे चतुर्द्वारि शोभिते सिद्धिदायकाः ।
अणिमां पश्चिमद्वारे दक्षभागे प्रपूजयेत् ॥ १४१ ॥
लघिमामुत्तरद्वारे दक्षभागे प्रपूजयेत् ।
पूर्वद्वारे तु महिमामुत्तरे पूजयेत्प्रिये ॥ १४२ ॥
ईशित्वसिद्धिर्देवेशि दक्षिणद्वारि पूर्ववत् ॥ १४३ ॥
वशित्वसिद्धिं वायव्ये तेनैव क्रमयोगतः ॥ १४४ ॥

चतुरस्रयुक्त चतुर्द्वार में सिद्धि देने वाली देवियों का पूजन करे। पश्चिम द्वार के दक्ष भाग में अणिमा की पूजा करे। उत्तरद्वार के दाहिनी ओर लघिमा की पूजा करे । हे प्रिये ! साधक पूर्वद्वार के उत्तर भाग में महिमा की पूजा करे । हे देवेशि ! दक्षिण द्वार पर साधक पूर्ववत् ईशित्व सिद्धि की और वायव्य में वशित्व सिद्धि की पूजा करे ॥ १४१–१४४ ॥

इच्छासिद्धिं पूर्वभागे नैर्ऋत्ये च प्रपूजयेत् ।
प्राप्तिसिद्धिः सर्वकामा सिद्धिश्च परमेश्वरि ॥ १४५ ॥

हे परमेश्वरि ! इसी प्रकार नैर्ऋत्य के पूर्व भाग में साधक को इच्छा शक्ति की पूजा तथा ऊर्ध्व एवं अधोभाग में क्रमशः प्राप्ति सिद्धि तथा सर्वकामा सिद्धि की पूजा करनी चाहिए ॥ १४५ ॥

अधोर्ध्वक्रमरूपेण ज्ञातव्ये सुरसुन्दरि ।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा ॥ १४६ ॥
वाराही च तथा षष्ठी चामुण्डा सप्त मातरः ।
अष्टमी तु महालक्ष्मीः पश्चिमादिक्रमेण हि ॥ १४७ ॥

हे सुरसुन्दरि ! १. ब्राह्मी, २. माहेश्वरी, ३. ऐन्द्री, ४. कौमारी, ५. वैष्णवी, ६. वाराही, ७. चामुण्डा और ८. महालक्ष्मी — इन शक्तियों की क्रमशः पश्चिम दिशा, वायव्य, उत्तर, ईशान, पूर्व, आग्नेय, दक्षिण तथा नैर्ऋत्य कोण में पूजा करनी चाहिए ॥ १४६–१४७ ॥

वामभागे तु संपूज्या वायव्यादि च पूर्ववत् ।
संक्षोभद्रावणाकर्षवश्योन्मादमहाङ्कुशाः ॥ १४८ ॥
खेचरीबीजयोन्याख्यास्त्रिखण्डां च प्रपूजयेत् ।
एताः संपूज्य चक्रेशीं त्रिपुरां पूजयेत्पराम् ॥ १४९ ॥
अणिमासिद्धिपुरतः सर्वकार्यार्थसाधिकाम् ।
सर्वसंक्षोभिणीं मुद्रां दर्शयेत्कमलानने ॥ १५० ॥

इसके बाद पूर्ववत् भगवती के वाम भाग में संक्षोभण, द्रावण, आकर्षण, वश्य, उन्माद महाङ्कुश, खेचरी बीज योनि और त्रिखण्डा इन मुद्राओं का पूजन करना चाहिए। इस प्रकार इनका पूजन कर परा चक्रेशी भगवती त्रिपुरा का अणिमादि सिद्धियों के आगे पूजन करे। तदनन्तर हे कमलानने ! सर्वकार्यार्थसाधिका सर्वसंक्षोभिणीमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ १४८–१५० ॥

सर्वाशापूरकं चक्रं गुप्तयोगिन्यधिष्ठितम् ।
षोडशारं ततो देवि पूजयेत्कार्यसिद्धये ॥ १५१ ॥

१. **षोडशारचक्र पूजन**–इसके बाद, हे देवि ! सर्वाशापूरक चक्र हैं, जो षोडशार युक्त गुप्त योगिनियों से अधिष्ठित है। उस षोडशार चक्र में अभीष्ट कार्य सिद्धि के लिए उन गुप्त योगिनियों का पूजन करना चाहिए ॥ १५१ ॥

गुप्तयोगिन्याह

कामाकर्षिणिकां देवि बुध्द्याकर्षिणिकां तथा ।
अहंकाराकर्षिणीं च शब्दाकर्षणरूपिणीम् ॥ १५२ ॥
स्पर्शाकर्षिणिरूपां च रूपाकर्षिणिरूपिणीम् ।
रसाकर्षकरीं चैव गन्धाकर्षणकारिणीम् ॥ १५३ ॥
चित्ताकर्षिणिकां तद्वद्धैर्याकर्षिणिकां प्रिये ।
नामाकर्षिणिकां चैव बीणाकर्षिणिकां तथा ॥ १५४ ॥
अमृताकर्षिणीं चैव बीजाकर्षिणिकां प्रिये ।
शरीराकर्षिणीं चैव आत्माकर्षणरूपिणीम् ॥ १५५ ॥

गुप्त योगिनियों के नाम – १. कामाकर्षिणिका, २. बुध्याकर्षिणिका, ३. अहंकारकर्षिणी, ४. शब्दाकर्षणरूपिणी, ५. स्पर्शाकर्षिणी, ६. रूपाकर्षिणी, ७. रसाकर्षकरी, ८. गन्धाकर्षणकरी ९. चित्ताकर्षिणिका, १०. धैर्याकर्षिणिका, ११. नामाकर्षिणिका, १२. बीणाकर्षिणिका, १३. अमृताकर्षिणी, १४. बीजाकर्षिणी, १५. शरीराकर्षिणी, एवं १६. आत्माकर्षिणी – ये गुप्त योगिनियों के नाम कहे गए हैं ॥ १५२–१५५ ॥

पश्चिमादिविलोमेन षोडशारे स्वरान्विताः ।
एता नित्याः कलाः पूज्याः स्रवत्पीयूषमण्डलाः ॥१५६ ॥

इनका पश्चिमादि विलोम क्रम से १६ स्वर से समन्वित कर इन नित्य कलाओं का षोडशार में पूजन करना चाहिए। ये कलायें सर्वदा अमृत मण्डल की वर्षा करती रहती हैं ॥ १५६ ॥

चक्रेश्वरीं यजेद्देवीं त्रिपुरेशीं समृद्धिदाम् ।
कामाकर्षणरूपायाः पुरतः पूजयेत्प्रिये ॥१५७ ॥
सर्वविद्राविणीं मुद्रां दर्शयित्वा निवेदयेत् ।
सर्वसंक्षोभणे चक्रे यजेद्गुप्ततराभिधाः ॥१५८ ॥

२.हे प्रिये ! इसके बाद कामाकर्षण रूपा के आगे समृद्धि प्रदान करने वाली चक्रेश्वरी त्रिपुरेशी का पूजन कर सर्वविद्राविणी मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए। तदनन्तर सर्वसंक्षोभण चक्र में गुप्त से भी गुप्ततर देवियों का यजन करना चाहिए॥ १५७–१५८ ॥

अनङ्गकुसुमां प्राच्यां कवर्गेण प्रपूजयेत् ।
दक्षिणे च चवर्गेण तथा चानङ्गमेखलाम् ॥१५९ ॥
अनङ्गमदनां पश्चाट्टवर्गेण प्रपूजयेत् ।
तवर्गेणोत्तरे पश्चादनङ्गमदनातुराम् ॥१६० ॥
अनङ्गरेखामाग्नेये पवर्गेण प्रपूजयेत् ।
राक्षसेऽनङ्गवेगां तु यवर्गेण प्रपूजयेत् ॥१६१ ॥
वायव्ये तु शवर्गेण तथाऽनङ्गाङ्कुशां यजेत् ।
ईशान्ये लक्षवर्गेण पूज्याऽनङ्गादिमालिनी ॥१६२ ॥

क वर्ग के सहित अनङ्गकुसुमा का पूर्व में, च वर्ग के सहित अनङ्गमेखला का दक्षिण में, ट वर्ग के सहित अनङ्गमदना का पश्चिम में, त वर्ग के सहित अनङ्ग मदनातुरा का उत्तर में, पवर्ग के सहित अनङ्गरेखा का आग्नेय कोण में, य वर्ग के सहित अनङ्गवेगा का नैर्ऋत्य में, श वर्ग के साथ अनङ्कुशा का वायव्य में, तदनन्तर ल क्ष वर्ग के साथ अनङ्गमालिनी का ईशान कोण में पूजन करना चाहिए ॥ १५९–१६२ ॥

चक्रेश्वरीं यजेद्देवीं ततस्त्रिपुरसुन्दरीम् ।
अनङ्गकुसुमाग्रे च सर्वसाम्राज्यदायिनीम् ॥१६३ ॥
सर्वाकर्षणमुद्रां च दर्शयेत्सुरवन्दिते ।
चक्रपूजां निवेद्याथ चतुर्थं चक्रमर्चयेत् ॥१६४ ॥

इसके बाद साधक को अनङ्गकुसुमा के आगे सर्वसाम्राज्यदायिनी चक्रेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी का यजन करना चाहिए तथा हे सुरवन्दिते ! उन्हें सर्व संकर्षणमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए। इस प्रकार चक्रपूजा करने के पश्चात् साधक को चतुर्थ चक्र की पूजा करनी चाहिए ॥ १६३–१६४ ॥

सर्वसंक्षोभिणी शक्तिः सर्वविद्राविणी तथा ।
सर्वाकर्षिणिका शक्तिः सर्वाह्लादनकारिणी ॥ १६५ ॥

सर्वसंमोहिनी शक्तिः सर्वस्तम्भनकारिणी ।
सर्वजृम्भिणिका शक्तिः सर्वावशकरी तथा ॥ १६६ ॥

सर्वार्थरञ्जिनी शक्तिर्नवमी परमेश्वरी ।
सर्वोन्मादनिका शक्तिः शक्तिः सर्वार्थसाधिका ॥ १६७ ॥

सर्वसंपत्तिपूर्णा च सर्वमन्त्रमयी तथा ।
चतुर्दशारशक्तिस्तु सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी ॥ १६८ ॥

सर्वसौभाग्यदे चक्रे पश्चिमादिविलोमतः ।
वाममार्गेण देवेशि संपूज्याः सर्वसिद्धिदाः ॥ १६९ ॥

चतुर्दशारचक्र पूजन–चतुर्थ चक्र में १. सर्वसंक्षोभिणी शक्ति, २. सर्वविद्राविणी, ३. सर्वाकर्षिणिका, ४. सर्वाह्लादनकारिणी, ५. सर्वसंमोहिनी, ६. सर्वस्तम्भनकारिणी, ७. सर्वजृम्भणिकाशक्ति, ८. सर्वावशकरी ९. सर्वार्थ–रञ्जिनीशक्ति, १०. नवमी परमेश्वरी, ११. सर्वोन्मादनिका शक्ति, १२. सर्वार्थ–साधिका शक्ति, १३. सर्वसम्पत्तिपूर्णा, १४. सर्वमन्त्रमयी–ये चतुर्दशार शक्तियाँ है जो सभी द्वन्दों को विनष्ट करने वाली हैं। इन शक्तियों का सर्वसौभाग्यद नामक चक्र में पश्चिमादि विलोमक्रम से वाममार्ग से, हे देवेशि ! पूजन करना चाहिए । ये शक्तियाँ सभी सिद्धियाँ प्रदान करने वाली हैं ॥ १६५–१६९ ॥

सर्वसंक्षोभिणी शक्तिः पुरतः पूजयेत्ततः ।
चक्रेश्वरी सिद्धिदात्रीं परां त्रिपुरवासिनीम् ॥ १७० ॥

वश्यमुद्रां प्रदर्श्याथ निवेद्य तदनन्तरम् ।
सर्वार्थसाधके चक्रे दशारे कुलयोगिनीः ॥ १७१ ॥

पूजयेत्सर्वकार्यार्थसिद्धिदाः पञ्चमे क्रमात् ।
सर्वसिद्धिप्रदा देवी सर्वसंपत्प्रदा तथा ॥ १७२ ॥

सर्वप्रियकरी देवी सर्वमङ्गलकारिणी ।
सर्वकामप्रपूर्णा च सर्वदुःखप्रमोचनी ॥ १७३ ॥

सर्वमृत्युप्रशमनी सर्वविघ्ननिवारिणी ।
सर्वाङ्गसुन्दरी देवी सर्वसौभाग्यदायिनी ॥ १७४ ॥
पश्चिमादिविलोमेन दशारे पूजयेदिमाः ।
सर्वसिद्धिप्रदा देवि पुरतश्चक्रनायिकाम् ॥ १७५ ॥
सर्वसिद्धिप्रदां देवि पूजयेत्त्रितपुराश्रियम् ।
सर्वोन्मादनमुद्रां च दर्शयित्वा निवेद्य च ॥ १७६ ॥

४. इसके बाद सर्वसंक्षोभिणी शक्ति के आगे त्रिपुरवासिनी, सिद्धिदात्री चक्रेश्वरी का पूजन कर वश्यमुद्रा निवेदन करना चाहिए । इसके बाद पाँचवें सवार्थसाधक दशार चक्र में कुलयोगिनियों की पूजा करनी चाहिए । जो सभी कामनाओं एवं अर्थो की सिद्धि प्रदान करने वाली है । १. सर्वसिद्धिप्रदा, २. सर्वसंपत्प्रदा, ३. सर्वप्रियकरी, ४. सर्वमङ्गलकारिणी, ५. सर्वकामप्रपूर्णा, ६. सर्वदुःखप्रमोचनी, ७. सर्वमृत्युप्रशमनी, ८. सर्वविघ्ननिवारिणी, ९. सर्वाङ्गसुन्दरी और १०. सर्वसौभाग्यदायिनी – ये उन १० शक्तियों के नाम हैं । हे देवि ! दशारचक्र में पश्चिमादि विलोम क्रम से इनका पूजन करना चाहिए । तदनन्तर सर्वसिद्धिप्रदा के आगे चक्रनायिका सर्वसिद्धिप्रदा श्रीत्रिपुरा का पूजन कर सर्वोन्मादन मुद्रा दिखा कर निवेदन करना चाहिए ॥ १७०–१७६ ॥

सर्वरक्षाकरे चक्रे निगर्भा योगिनीर्यजेत् ।
सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्यप्रदा ततः ॥ १७७ ॥
सर्वज्ञानमयी देवी सर्वव्याधिविनाशिनी ।
सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपापहरा तथा ॥ १७८ ॥
सर्वानन्दमयी देवी सर्वरक्षास्वरूपिणी ।
सर्वेप्सितार्थफलदा देव्यः सर्वसमृद्धिदाः ॥ १७९ ॥
पश्चिमादिविलोमेन पूजयेत्पङ्क्तियोनिके ।
सर्वज्ञापुरतो देवि चक्रेशीं मालिनीं यजेत् ॥ १८० ॥

५.इसके बाद सर्वरक्षाकर नामक चक्र में निगर्भा योगिनियों का यजन करना चाहिए। १. सर्वज्ञा, २. सर्वशक्ति, ३. सर्वैश्वर्यप्रदा, ४. सर्वज्ञानमयी, ५. सर्वव्याधिविनाशिनी, ६. सर्वाधारस्वरूपा, ७. सर्वपापहरा, ८. सर्वानन्दमयी, ९. सर्वरक्षास्वरूपिणी, १०. सर्वेप्सितार्थफलदा – ये सभी देवियाँ सब प्रकार की समृद्धि प्रदान करने वाली हैं । इनका भी पश्चिमादि विलोमक्रम से पंक्तियोनि में पूजन करना चाहिए । हे देवि! इसके बाद सर्वज्ञा के आगे चक्रेशी मालिनी का पूजन करना चाहिए ॥ १७७–१८० ॥

महाङ्कुशां महामुद्रां दर्शयित्वा निवेद्य च ।
मध्यचक्रे महेशानि योगिनीः पूजयेत्प्रिये ॥ १८१ ॥
सर्वरोगहरे चक्रे वसुकोणे सुरेश्वरि ।
रहस्ययोगिनीर्देवि वशिन्याद्यास्तु सिद्धिदाः ॥ १८२ ॥

उन्हें महाङ्कुश मुद्रा दिखा कर निवेदन करना चाहिए । इसके बाद हे प्रिये ! हे महेशानि ! सर्वरोगहरनामक अष्टकोण चक्र में हे सुरेश्वरि, योगिनियों का पूजन करना चाहिए, सिद्धि प्रदान करने वाली ये वशिन्यादि योगिनियाँ अत्यन्त रहस्यपूर्ण हैं ॥ १८१–१८२ ॥

पश्चिमादिविलोमेन पूर्वोक्ताः पूजयेत्क्रमात् ।
वशिनीपुरतः पूज्या सिद्धाम्बा चक्रनायिका ॥ १८३ ॥
खेचरीं दर्शयेन्मुद्रां निवेद्यानन्तरं ततः ।
सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे त्रिकोणे सर्वकामदे ॥ १८४ ॥
परापररहस्याख्ययोगिनीः परिपूजयेत् ।
पञ्च बाणान्समुच्चार्य कामकामेश्वरीमयान् ॥ १८५ ॥
जम्भनाख्यान्महेशानि पूजयेद्बाणदेवताम् ।
धमात्मकं कामचापं द्वितीयं तु थमात्मकम् ॥ १८६ ॥
कामेश्वर्या मोहनाख्यां पूजयेच्चापदेवताम् ।

इन पूर्वोक्त देवियों को हम पूर्व में बतला आये हैं। हे देवि ! पश्चिमादि विलोम क्रमेण साधक को इनका भी पूजन कर वशिनी के आगे सिद्धाम्बा नाम वाली चक्रनायिका का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर खेचरी मुद्रा का प्रदर्शन कर निवेदन करे, इसके बाद सर्वसिद्धिप्रद, सर्वकामप्रद त्रिकोण चक्र में परापररहस्या नामक योगिनियों का पूजन करे । कामकामेश्वरीमय' जम्भन नाम वाले पञ्चबाण (द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः) मन्त्र का उच्चारण कर (क्षोभणादि) पञ्चबाण देवताओं का पूजन करे । इसके बाद 'धं' नामक कामेश्वरी के प्रथम काम चाप का तथा 'थं' नामक द्वितीय चाप का मोहन नाम से प्रसिद्ध चाप देवता का पूजन करे ॥ १८३–१८७ ॥

द्वितीयं भुवनेशानीपाशयुग्मं वशंकरम् ॥ १८७ ॥
कामेशस्य च कामेश्यास्त्रैलोक्याकर्षणं प्रिये ।
अङ्कुशाख्यं करोमात्मबीजं स्तम्भनसंज्ञकम् ॥ १८८ ॥
कामेशस्य च कामेश्या अङ्कुशं पूजयेत्प्रिये ।
षडङ्गावरणद्वाह्ये समीपे क्रमतो यजेत् ॥ १८९ ॥

पश्चिमादिक्रमेणैव चतुर्दिक्षु प्रपूजयेत् ।
कामेश्वरीं रुद्रशक्तिमाद्यकूटेन चाग्रतः ॥ १९० ॥

कामेश और कामेशी के भुवनेशानी (ह्रीं) और पाश (आं) यह दोनों ही बीज मन्त्र जगत् को, हे प्रिये ! वश में करने वाले हैं तथा त्रिलोकी को आकर्षण करने में क्रमशः समर्थ हैं । हे प्रिये ! इसी प्रकार कामेश और कामेशी का क्रां बीज वाला अङ्कुशाख्य स्तम्भन संज्ञक हैं । अतः इस अङ्कुश का भी अवश्यमेव पूजन करे । इस प्रकार षडङ्गपूजा करने के बाद उसके बाहर क्रमशः पश्चिमादि क्रम से चारो दिशाओं में सर्वप्रथम आद्यकूट से रुद्र की आदिशक्ति कामेश्वरी का पूजन करे ॥ १८७–१९० ॥

द्वितीयेन च कूटेन कामाख्येन च वैष्णवीम् ।
दक्षकोणे समभ्यर्च्य तृतीयेन च पूजयेत् ॥ १९१ ॥
भगमालां ब्रह्मशक्तिमुत्तरे विश्वमातृकाम् ।
चक्रेश्वरीमम्बिकाख्यां कामेशीपुरतो यजेत् ॥ १९२ ॥

कामेश्वरी के द्वितीय कूट मन्त्र से वैष्णवी का दक्षिण कोण में पूजन करे, तदनन्तर तृतीय कूट से उत्तर में क्रमशः भगमाला, ब्रह्मशक्ति तथा विश्व मातृका का पूजन करे । फिर साधक को कामेशी के आगे अम्बिका नाम्नी चक्रेश्वरी का पूजन करना चाहिए ॥ १९१–१९२ ॥

बीजमुद्रामुपास्याथ चक्रपूजां निवेदयेत् ।
सर्वानन्दमये चक्रराजे बैन्दवसंज्ञके ॥ १९३ ॥
ब्रह्मरूपे चित्स्वरूपे संविद्वेद्ये शृणु प्रिये ।
परापररहस्याख्यां योगिनीं त्रिपुरां यजेत् ॥ १९४ ॥
कूटत्रयं समुच्चार्य सर्वविद्यास्वरूपकम् ।
समस्तदेवतारूपं सर्ववस्तुमयं यजेत् ॥ १९५ ॥

तदनन्तर बीजमुद्रा पढ़कर भगवती को चक्रपूजा निवेदन करे । तदनन्तर सर्वानन्दमय ब्रह्मस्वरूप चित्स्वरूप संविद्वेद्य, वैन्दव नामक चक्रराज में परापर रहस्या नाम वाली त्रिपुरा देवी का सर्वविद्यास्वरूप समस्त देवतारूप सर्ववस्तुमय कूटत्रय का उच्चारण कर यजन करे ॥ १९३–१९५ ॥

चक्रेशीमपि तामेव महात्रिपुरसुन्दरीम् ।
श्रीविद्यां षोडशार्णां च भुक्तिमुक्तिफलप्रदाम् ॥ १९६ ॥
समस्तचक्रचक्रेशीं सर्वागमनमस्कृताम् ।
सर्वाम्नायेश्वरीं विद्यालंकृतां ब्रह्मरूपिणीम् ॥ १९७ ॥

उपचारैः समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
तर्पणानि पुनर्दद्यात्त्रिवारं मूलविद्यया ॥ १९८ ॥

तदनन्तर उसी चक्रेशी, महात्रिपुरसुन्दरी, श्रीविद्या, षोडशाक्षरी, भुक्ति–मुक्ति फलप्रदा समस्त चक्रों की चक्रेशी, सर्वागम नमस्कृता, सर्वाम्नायेश्वरी, विद्यालङ्कृता, ब्रह्मस्वरूपिणी की गन्ध पुष्पाक्षतादि उपचारों से पूजन कर मूलविद्या से पुनः तीन बार तर्पण करे ॥ १९६–१९८ ॥

योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ मुद्राः संदर्शयेत्क्रमात् ।
वनस्पतिरसोत्पन्नैः पवित्रै रम्यगन्धिभिः ॥ १९९ ॥

दशाङ्गाद्यैर्धूपवर्यैर्धूपयेत्परमेश्वरीम् ।
(कस्तूरीकुङ्कुमं देवि गुग्गुलं शालसंभवम् ॥ २०० ॥

चन्दनागरुकर्पूरसिताज्यमधुसंयुतम् ।
धूपयेद्देशिको नित्यं सर्वसौभाग्यसिद्धये ॥ २०१ ॥

योनि मुद्रा दिखा कर क्रमशः पूर्वोक्त सभी मुद्रायें (द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, १६–१४८–१४९) प्रदर्शित करें । वनस्पतियों के रसों से उत्पन्न पवित्र रस युक्त गन्धों वाले दशाङ्ग धूपों से परमेश्वरी को धूप प्रदान करे। हे देवि ! कस्तूरी, कुङ्कुम, शाल, संभव, गुग्गुल, चन्दन, अगरु, कपूर, मिश्री, घृत तथा मधु इनको एक में मिला कर आचार्य सर्वसौभाग्यसिद्धि के लिए धूप का मन्त्र पढ़ कर धूप प्रदान करे ॥ १९९–२०१ ॥

धूपमन्त्रेण देवेशि त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ।
अभितो वेदिकाचक्रं दीपमाला घृतप्लुताः ॥ २०२ ॥

हे देवेशि ! ऐसा धूप त्रिलोकी में भी दुर्लभ हैं। इसके अनन्तर वेदिका चक्र के चारों ओर घृत की दीपमाला प्रज्वलित करनी चाहिए ॥ २०२ ॥

कर्पूररचिताश्चापि तैलपूर्णास्तु वा यजेत् ।
धूपदीपौ निवेद्याथ तर्पयेत्पूर्ववत्प्रिये ॥ २०३ ॥

अथवा कर्पूर दीप की माला अथवा तैलपूर्ण दीप की माला प्रज्वलित करनी चाहिए। हे प्रिये! इस प्रकार भगवती अम्बा को धूप, दीप निवेदन कर पूर्ववत् तीन बार मूलमन्त्र से तर्पण करे ॥ २०३ ॥

आरार्तिकविधिं कुर्यात्पूर्ववद्देववन्दिते ।
अन्यदारार्तिकं वक्ष्ये सर्वकाममपूरकम् ॥ २०४ ॥

हे देववन्दिते ! इसके बाद पूर्ववत् आरती की विधि से भगवती की आरती करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली आरती की अन्य विधि कहता हूँ ॥ २०४ ॥

स्वर्णादिनिर्मिते पात्रे मध्ये चक्रं लिखेद्बुधः ।
तण्डुलोल्लासितं कृत्वा नवधा कारयेत्ततः ॥ २०५ ॥

बुद्धिमान् साधक स्वर्णादि निर्मित पात्र के मध्य में श्री चक्र का निर्माण करे। उसे चावल से पूर्ण कर नव विभाग करे ॥ २०५ ॥

नव गोलांश्चन्द्ररूपान्विरच्य तदनन्तरम् ।
शर्करागर्भभरितान्मण्डकान्युग्मरूपकान् ॥ २०६ ॥
विरच्य घटिकाः कार्या योजयित्वा तु सप्तकम् ।
सप्तसप्तप्रकारेण घटिका नव योजयेत् ॥ २०७ ॥

आरार्तिक विधान—नव भागों को पूर्ण चन्द्राकार गोल रूप में बना कर शर्करा से परिपूर्ण दो—दो रूप वाली घटिका बना कर तथा जोड़ कर उन्हें सात रूप में निर्माण करना चाहिए । इस प्रकार नवों घटिकाओं को सात—सात विभाग कर एक जगह स्थापित करना चाहिए ॥ २०६—२०७ ॥

अष्टकोणेषु संस्थाप्य गोलकांञ्चोपरि क्षिपेत् ।
चणमुद्रा विकीर्याथ दीपकान्घृतपाचितान् ॥ २०८ ॥

उन्हें आठों कोनों पर स्थापित कर उसके ऊपर चणमुद्रा विकीर्ण कर उस पर घृत के बने हुए दीपकों को रखे ॥ २०८॥

मुष्टिकाकृतिमुष्टिश्च स्थापयेत्तत्र तत्र तु ।
दीपान्प्रज्वाल्य पश्चात्तु पञ्चरत्नैः प्रपूजयेत् ॥ २०९ ॥

मुष्टिका की आकृति वाली मुष्टि तत्र तत्र स्थापित करे। उस पर दीपों को प्रज्वलित कर, पञ्चरत्नों से उनकी पूजा करे ॥ २०९ ॥

पञ्चसिंहासनगता विद्यास्तत्र प्रपूजयेत् ।
आमस्तकं समुद्धृत्य नववारं पुनः पुनः ॥ २१० ॥
नवावरणवद्देवि परिभ्राम्य पुनः पुनः ।
उत्तीर्य स्थापयेत्पश्चाद्दीपमालामयं महः ॥ २११ ॥
नेत्रयोः सुस्थिरं ध्यायेदारार्तिकविधिः प्रिये ।

पुनः उन दीपों पर पञ्चसिंहासन गता विद्या की पूजा करे। फिर देवता के मस्तक तक उसे ऊपर उठा कर बारम्बार नव बार नवावरण पर्यन्त बारम्बार

घुमावे, इसके बाद दीपमालामय उस महातेज को ऊपर से उतार कर नीचे स्थापित करें । तथा उसे अपने नेत्र को स्थिर कर दर्शन करता रहे । हे प्रिये ! यह आरती का विधान है ।। २०९–२१२ ।।

नैवेद्यं षड्रसोपेतं सितापूपादिसंयुतम् ।। २१२ ।।

शर्करापूरभरितमण्डकैः पायसान्वितम् ।
मुक्ताकर्पूरधवलं शुद्धौदनसुपूरितम् ।। २१३ ।।

घृतकर्पूरशोभाढ्यं सम्पूर्णघृतमण्डितम् ।
नानाव्यञ्जनशोभाढ्यं वटकैः कुङ्कुमप्रभैः ।। २१४ ।।

माषान्नभरितं नानारसपानविराजितम् ।
घृतक्षीरेण भरितं चतुर्मुद्राविराजितम् ।। २१५ ।।

संकल्प्य परमेशान्यै नित्यहोमविधिं चरेत् ।
मूलेन प्राणसहिता आहुतीः पञ्च होमयेत् ।। २१६ ।।

षडाहुतीः षडङ्गानां नित्यहोमः प्रकीर्तितः ।

नैवेद्य विधान–हे प्रिये ! इसके बाद साधक मिश्री के बने हुए षड् रसों से युक्त पूओं से, शर्करा से भरे हुए पायस समन्वित मण्डक (माँड), मोती और कपूर के समान शुद्ध धवल वर्ण वाले ओदन से परिपूर्ण, प्रचुर घृत कर्पूर एवं घृत में डुबोये गये अनेक व्यञ्जनों से शोभित कुङ्कुम के समान लाल लाल वटकौ से युक्त उर्द के दाल से भरे हुए अनेक रसों तथा अनेक पेय पदार्थों से संयुक्त घी दूध आदि से भरे हुए चारों मुद्रा (भक्ष्य भोज्य लेह्य पेय) आदि मुद्रा से परिपूर्ण नैवेद्य भगवती को संकल्प कर नित्य होम का विधान करे । सर्वप्रथम प्राणसहित (प्राणाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा आदि) मूल मन्त्र के द्वारा साधक पञ्चाहुती प्रदान करे । इसके बाद साधक को षडङ्गों से षडाहुती प्रदान करनी चाहिए, यह नित्य होम का विधान है ।। २१२–२१७ ।।

उपविश्याऽऽसने रम्ये वामभागे ततः परम् ।। २१७ ।।

वहत्करोर्ध्वपुटतः साधको भूमिजानुकः ।
मण्डलं चतुरस्रं तु तन्मध्ये विलिखेत्प्रिये ।। २१८ ।।

हे प्रिये ! इसके बाद साधक आसन पर बैठकर अपनी बायीं ओर जानु के बल पृथ्वी पर बैठकर दोनों हाथों को ऊपर उठाकर आकाश मण्डल में चतुरस्र चौकोर मण्डल बनाकर, उसके मध्य में त्रिकोण रच कर उस त्रिकोण में व्योम नामक मण्डल की पूजा करे ।। २१७–२१८ ।।

त्रिकोणमध्ये व्योमाख्यं मण्डलं पूजयेत्ततः ।
व्यापकान्ते मण्डलाय हृदन्तो वाग्भवं परम् ॥ २१९ ॥

मुखे कृत्वा पूजनीयं मण्डलं मनुना प्रिये ।
एतन्मण्डलमभ्यर्च्य मण्डलानां चतुष्टयम् ॥ २२० ॥

ईशानवह्निनैर्ऋत्यवायुकोणेषु पूर्ववत् ।
मण्डलानि निधायाथ पूर्ववत्पूजयेत्प्रिये ॥ २२१ ॥

पूर्ववद्बलिदानं च दद्यात्सर्वसमृद्धये ।
बटुकाय महेशानि योगिनीभ्यश्च वल्लभे ॥ २२२ ॥

क्षेत्रपालगणेशाभ्यां पूर्ववद्बलिमुत्सृजेत् ।
वामभागे कृतस्याथ मण्डलस्योपरि क्षिपेत् ॥ २२३ ॥

पुनः व्यापक मुद्रा प्रदर्शित कर 'ॐ ऐं मण्डलाय नमः' इस मन्त्र का मुख से उच्चारण करते हुए उससे, हे प्रिये ! मण्डल की अर्चना करनी चाहिए । इस मण्डल की पूजाकर ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य एवं वायुकोणों में पूर्ववत् चार मण्डल बना कर उसमें अपनी सर्वसमृद्धि के लिए पूर्ववत् बलि प्रदान करना चाहिए। हे महेशानि ! हे वल्लभे ! में वटुक, योगिनियों, क्षेत्रपाल तथा गणेश के लिए पूर्ववत् बलिभाग का उत्सर्जन करे। पुनः अपनी बाईं ओर बनाये गये मण्डल के ऊपर बलि को स्थापित करें ॥ २१९–२२३ ॥

आधारं पूजयेत्तत्र पात्रं चान्नोदकान्वितम् ।
सकारणं मन्त्रयित्वा सर्वभूतबलिं हरेत् ॥ २२४ ॥

षोडशार्णेन मनुना त्रिवारं वीरवन्दिते ।
तारं च भुवनेशानि सर्वविघ्नपदं ततः ॥ २२५ ॥

कृद्भ्यश्च सर्वभूतेभ्यो हुंकारं वह्निवल्लभाम् ।
समुच्चरन्बलिं दद्यान्मुद्रया तत्त्वसंज्ञया ॥ २२६ ॥

सर्वप्रथम साधक मण्डलभूत आधार की पूजा करे । पुनः अन्नादिक से युक्त पात्र की पूजा करे, फिर कारण का निर्देश करते हुए सर्वभूत बलि देवें । हे वीरवन्दिते ! यह बलिदान १६ वर्ण वाले मन्त्र को तीन बार पढ़कर करना चाहिए । उक्त षोडश वर्ण वाला मन्त्र इस प्रकार हैं – ॐ ह्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यः हुं स्वाहा । इस मन्त्र का उच्चारण कर तत्त्वमुद्रा प्रदर्शित करते हुए बलिदान करे ॥ २२४–२२६ ॥

बलिपञ्चकमाख्यातं सर्वरक्षाकरं सताम् ।
एकत्र वा पञ्च बलीन्दद्याद्व्यापकमण्डले ॥ २२७ ॥

इस प्रकार दी गई यह बलि बलिपञ्चक नाम से प्रसिद्ध है जो समस्त सत् जनों की रक्षा करने वाली है, अथवा व्यापक मण्डल बना कर उक्त पञ्च बलि एक ही स्थान पर करे ॥ २२७ ॥

वामभागे स्थितो देवि सर्वविघ्नहरो भवेत् ।
चक्रमभ्यर्च्य सकलं विधिवत्परमेश्वरि ।
श्रीगुरोः कृपया देवि सर्वज्ञः सर्वतत्त्ववित् ॥ २२८ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे उमामहेश्वरसंवादे श्रीविद्यायजन-विधिर्नाम षोडशः पटलः ॥ १६ ॥

हे परमेश्वरि ! हे देवि ! इस प्रकार विधिवत् समस्त चक्रों की पूजा कर उसके वाम भाग में स्थित होने पर सभी प्रकार के विघ्नों का हरण होता है। हे देवि ! ऐसा करने से श्री गुरु की कृपा प्राप्त कर साधक सर्वज्ञ एवं सर्वतत्त्ववेत्ता बन जाता है ॥ २२८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'श्रीविद्यायजन विधि' नामक षोडश पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशः पटलः

श्रीविद्याप्रयोगविधानम्

श्रीदेव्युवाच –

देवदेव महादेव अश्रुतार्थं महेश्वर ।
षोडशाक्षरविद्यायाः श्रीचक्रविधिमुत्तमम् ॥ १ ॥

जपादिकं च यत्सर्वमेकैकाक्षरसाधनम् ।
कथयस्व महेशान यद्यहं तव वल्लभा ॥ २ ॥

श्री देवी ने कहा – हे देवदेव ! हे महादेव! हे महेश्वर ! षोडशाक्षर विद्या का विधान एवं सर्वश्रेष्ठ श्रीचक्र के पूजा की विधि : उसके जपादिक की तथा मन्त्र के एक–एक अक्षर के साधन भूत विधियों को अभी मैने सुना है । अतः यदि मैं आप की प्रिया हूँ तो कृपया उसे मुझे बताइये ॥ १–२ ॥

ईश्वर उवाच –

शृणु सर्वांगसुभगे श्रीविद्याविधिमुत्तमम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण कर्ता हर्ता स्वयं विभुः ॥ ३ ॥

ईश्वर ने कहा – हे सर्वाङ्गसुन्दरि ! श्री विद्या की उत्तम विधि को सुनिए, जिसके जान लेने पर साधक स्वयं कर्त्ता, हर्त्ता तथा विभु बन जाता हैं ॥ ३ ॥

अनेन विधिना यत्र श्रीचक्रं क्रमसंयुतम् ।
पूज्यते तत्र सकलं वशी कुर्यान्न संशयः ॥ ४ ॥

आगे कही जाने वाली इस विधि से क्रम पूर्वक जो श्री चक्र का पूजन करता है वह सबको वश में कर लेता है, इसमें संशय नहीं ॥ ४ ॥

नगरं वशमायाति देशमण्डलमद्रिजे ।
योषितः सकला वश्या ज्वलत्कामाग्निपीडिताः ॥ ५ ॥

हे अद्रिपुत्रि ! श्री चक्र के पूजन करने वाले साधक के वश में नगर आ जाता है और समस्त देशमण्डल वशीभूत हो जाता है तथा कामबाण की अग्नि से पीड़ित हो सम्पूर्ण स्त्रियाँ उसके वश में हो जाती हैं ॥ ५ ॥

मालाविधानम्

विद्याविमूढहृदयाः साधकन्यस्तमानसाः ।
तद्दर्शनेन देवेशि जायन्ते सर्वयोषितः ॥ ६ ॥
अक्षमालां समाश्रित्य मातृकावर्णरूपिणीम् ।

हे देवेशि ! मातृका वर्ण रूपिणी अक्षमाला से जप करने वाले साधक के दर्शन मात्र से सारी स्त्रियाँ महाविद्या के प्रभाव से विमूढ हृदय हो साधक पर मोहित हो कर उसके वशीभूत हो जाती हैं ॥ ६ ॥

अथ मुक्ताफलमयी वाङ्मोक्षफलदायिनी ॥ ७ ॥
सर्वसिद्धप्रदा नित्यं सर्वराजवशंकरी ।
यथा मुक्ताफलमयी तथा स्फटिकनिर्मिता ॥ ८ ॥

मोती की माला जप करने से वाणी और मोक्ष दोनों फल प्रदान करती हैं। जिस प्रकार मोती की माला सर्व सिद्धिप्रदा एवं सर्वराजवंशकरी हैं उसी प्रकार स्फटिक की माला भी फलदायिनी है ॥ ७–८ ॥

रुद्राक्षमालिका मोक्षे सर्वसंपत्समृद्धिदा ।
प्रवालमाला वश्ये तु सर्वकार्यार्थसाधिका ॥ ९ ॥

रुद्राक्ष की माला मोक्ष में उपयोगी है और उसी प्रकार सर्वसम्पत्ति भी प्रदान करने वाली है । प्रवाल (मूँगे) की माला वश्य कार्य में सारे कार्यों की साधिका है ॥ ९ ॥

माणिक्यमाला फलदा साम्राज्यफलदायिनी ।
पुत्रजीवकमाला तु विद्यालक्ष्मीप्रदा सताम् ॥ १० ॥

माणिक्य माला उत्तम फल तो देती ही हैं, साथ ही सर्वसाम्राज्यदायिनी भी है । पुत्रजीवक की माला सज्जनों को विद्या और लक्ष्मी दोनों ही प्रदान करने वाली है ॥ १० ॥

पद्माक्षमालया लक्ष्मीर्जायते महती परा ।
रक्तचन्दनमाला तु सर्वभोगप्रदायिनी ॥ ११ ॥

पद्माक्षमाला पर जप करने से सर्वश्रेष्ठ लक्ष्मी की प्राप्ति होती हैं और रक्तचन्दन की माला सर्वभोग प्रदायिनी है ।। ११ ।।

पुरश्चरणकथनम्

अक्षमालां प्रपूज्याथ चन्दनेन विलेपिताम् ।
समाश्रित्य जपेद्विद्यां लक्षमात्रं यदा बुधः ।। १२ ।।
योषितो भ्रमयन्त्येव मनस्तस्य सुनिश्चलम् ।
तदा द्वितीयलक्षं तु प्रजपेत्साधकोत्तमः ।। १३ ।।

अक्षमाला (जप माला) रक्त को चन्दन से विलिप्त कर उसका पूजन करे । तदनन्तर बुद्धिमान् साधक उस माला से जब लक्ष संख्या में जप करे तो साधक के स्थिर मन को स्त्रियाँ संभ्रान्त (चञ्चल) करने लगती हैं तब उत्तम साधक दो लक्ष की संख्या में जप करे ।। १२–१३ ।।

पातालतलनागेन्द्रकन्यकाः क्षोभयन्ति तम् ।
तासां कटाक्षजालैस्तु न मोहं याति साधकः ।। १४ ।।

उस समय पाताल तल में रहने वाली नागकन्यायें उसे क्षुब्ध करने लगती हैं, फिर भी जब उनके कटाक्षजालों में साधक नहीं फँसता है ।। १४ ।।

तदा लक्षत्रयं कुर्यात्साधकः स्थिरमानसः ।
तृतीयलक्षे संप्राप्ते द्रावयन्ति सुराङ्गनाः ।। १५ ।।

तब साधक स्थिरचित्त हो कर ३ लाख जप करे, तब तीन लाख जप प्रारम्भ करते समय अप्सरायें उसके मन को द्रवीभूत करने लगती है ।। १५ ।।

अभिमानेन सौन्दर्यात्सौभाग्यमदकारिणः ।
साधकं द्रावयन्त्येव ततश्चासौ मनस्थिरः ।। १६ ।।

क्योंकि अभिमाननी अप्सरायें सौन्दर्य से सौभाग्य के मद में इठलाती रहती हैं, वे साधक को क्षुब्ध करना चाहती हैं फिर भी जब साधक का मन स्थिर ही रहता है ।। १६ ।।

तदा लक्षत्रयं साधु सर्वपापनिकृन्तनम् ।
एवं लक्षत्रयजपेद् व्रतस्थः स्वस्थमानसः ।। १७ ।।

तब वह सर्वपापविनाशक तीन लाख जप, नियमपूर्वक स्वस्थ चित्त से पूरा कर लेता है ।। १७ ।।

संक्षोभयति भूर्लोकस्वर्लोकततलवासिनः ।
पुरुषा योषितो वश्याश्चराचरमपि प्रिये ॥ १८ ॥

तब वह साधक भूलोक, स्वर्गलोक एवं पाताल लोकवासी सभी लोगों को क्षुब्ध कर देता है और सारा चराचर जगत् स्त्री अथवा पुरुष, हे प्रिये! सभी उसके वशीभूत हो जाते हैं ॥ १८ ॥

श्रीविद्याप्रयोगसाधनकथनम्

गोरोचनादिभिर्द्रव्यैश्चक्रराजं समालिखेत् ।
अतीव सुन्दरं रम्यं तन्मध्ये प्रतिमां वराम् ॥ १९ ॥
ज्वलन्तीं नामसहितां महाबीजविदर्भिताम् ।
चिन्तयेत्तु ततो देवि योजनानां सहस्रशः ॥ २० ॥
अदृष्टपूर्वा देवेशि श्रुतमात्राऽपि दुर्लभा ।
राजकन्याऽथ वा चार्वी भयलज्जाविवर्जिता ॥ २१ ॥
आयाति साधकं सम्यग्मन्त्रमूढा सती प्रिये ।

अब **श्रीविद्या प्रयोग साधन** कहते हैं—गोरोचनादि द्रव्यों से चक्रराज यन्त्र का निर्माण करे । फिर उसमें अपनी अभीष्ट सुन्दर एवं सुरम्य, सर्वश्रेष्ठ प्रतिमा का निर्माण करे । वह प्रतिमा स्पष्ट भासित होने वाली, नाम के सहित महाबीज से अनुस्यूत होनी चाहिए । फिर उसमें अपनी अभीष्ट योषित का ध्यान करें । हे देवेशि ! तदनन्तर ऐसा करने से हजारों योजन दूर रहने वाली, अदृष्टपूर्वा, जिसका नाम भी कभी न सुना हो, ऐसे सुन्दरी राजकन्या भी अपनी भयलज्जा त्याग कर मन्त्र के द्वारा मोहित होकर, हे प्रिये ! उसके समीप आ जाती है ॥ १९—२२ ॥

साधनान्तरकथनम्

चक्रमध्यगतो भूत्वा साधकश्चिन्तयेद्यदा ॥ २२ ॥
उद्यत्सूर्यसहस्राभमात्मानमरुणं तथा ।
साध्यमप्यरुणीभूतं कृत्वा मन्त्रं जपेद्बुधः ॥ २३ ॥
अनेन क्रमयोगेण स्वयं कन्दर्परूपवान् ।
सर्वसौन्दर्यसुभगः कामिनीवल्लभो भवेत् ॥ २४ ॥

अब अन्य साधन कहते हैं — साधक चक्र के मध्य में स्थित हो कर यदि उदीयमान सहस्रों सूर्यों के समान अपने आप को अरुणवर्ण में तथा अपने

साध्य (अभिलषित वस्तु) को अरुणीभूत रूप में ध्यान कर जप करे तो ऐसा करने से वह स्वयं साक्षात् काम का विग्रह ही धारण कर लेता है । और सभी प्रकार के सौन्दर्य से परिपूर्ण होकर वह स्त्रियों का अत्यन्त प्रिय वल्लभ बन जाता है ।। २२–२४ ।।

सर्वलोकेषु सुभगः सर्वलोकवशंकरः ।
सर्वरक्तोपचारैस्तु मुद्रासनद्धविग्रहः ।। २५ ।।
चक्रं प्रपूरयेद्यस्तु यस्य नाम विदर्भितम् ।
स भवेद्दासवद्देवि धनाढ्ये वाऽपि भूपतिः ।। २६ ।।

वह सभी लोकों में भाग्यवान् तथा सबको वश में करने वाला हो जाता है जो मुद्रा से संयुक्त विग्रह हो कर साध्य नाम से अनुस्यूत सभी प्रकार के रक्तोपचारों से श्री चक्र को पूर्ण कर देता है। हे देवि! वह साध्य नाम वाला पुरुष, उसका दास हो जाता है चाहे वह बहुत बड़ा धनवान् अथवा भूपति ही क्यों न हों ? ।। २५–२६ ।।

चक्रमध्यगतं कुर्यान्नाम यस्यास्तु योषितः ।
अदृष्टाया महेशानि योनिमुद्राधरो बुधः ।। २७ ।।
हठादानयते शीघ्रं यक्षिणीं राजकन्यकाम् ।
नागकन्यांसाप्सरसं खेचरीं वा सुराङ्गनाम् ।। २८ ।।
विद्याधरीं दिव्यरूपामृषिकन्यां रिपुस्त्रियम् ।
मदनोद्भवसंतापां स्फुरज्जघनमण्डलाम् ।। २९ ।।
कामबाणप्रभिन्नान्तःकरणां लोलचक्षुषाम् ।

हे महेशानि! बुद्धिमान् साधक चक्र के मध्य में जिस स्त्री का नाम योनि मुद्रा धारण कर लिख देता है, उस अदृष्ट स्त्री को भी बलपूर्वक यक्षिणी राजकन्या, नागकन्या चाहे अप्सरा, खेचरी, सुराङ्गना, विद्याधरी, दिव्यस्वरूपा ऋषिकन्या अथवा शत्रु स्त्री ही क्यों न हों कामभाव से संतप्त एवं स्फुरित जघनों वाली और कामबाण से विकल हृदय वाली तथा चञ्चल नेत्रों वाली बना कर वह प्रयोग उसे अवश्य ही उपस्थित कर देता है।। २७–३०।।

महाकामकलाध्यानयोगात्तु सुरवन्दिते ।। ३० ।।
क्षोभयेत्स्वर्गभूर्लोकपातालतलयोषितः ।
रोचनाभागमेकं तु भागमेकं तु कुङ्कुमम् ।। ३१ ।।

अथ भागद्वयं देवि चन्दनं मर्दयेत्समम् ।
एकत्र तिलकं कुर्यात् त्रैलोक्यवशकारिणम् ॥ ३२ ॥

हे सुरवन्दिते ! महाकामकला (ईं) के ध्यान के योग से साधक स्वर्गलोक, भूलोक तथा पाताल लोक में रहने वाली सारी स्त्रियों को क्षुब्ध कर देता है । हे देवि ! गोरोचन एक भाग, एक भाग कुङ्कुम तथा दो भाग चन्दन सबको मिला कर एक में घिस डाले । इस प्रकार सबको एक में मिला कर साधक यदि तिलक करे तो वह तिलक सारे त्रिलोकी को वश में करने वाला हो जाता है ॥ ३०—३२ ॥

अष्टोत्तरशतावृत्त्या मन्त्रयित्वा वशं नयेत् ।
राजानं नगरं ग्रामं तेन यद्यत्प्रदृश्यते ॥ ३३ ॥
मन्त्रिणा परमेशानि तत्सर्वं तस्य वश्यगम् ।
ताम्बूलं धूपमुदकं पत्रं पुष्पं फलं दधि ॥ ३४ ॥
दुग्धं घृतं चूर्णमन्नं वस्त्रं कर्पूरमेव च ।
कस्तूरी घुसृणं चैलां लवङ्गं जातिपत्रकम् ॥ ३५ ॥
फलं वा वस्तु यद्यत्तु सकलं परमेश्वरि ।
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा यस्मै कस्मै प्रयच्छति ॥ ३६ ॥
स वश्यो जायते देवि नात्र कार्या विचारणा।
स्त्रियस्तु सकला वश्या दासीभूता भवन्ति हि ॥ ३७ ॥
जगत्कर्षणमेतत्तु कथितं नान्यथा भवेत् ।

हे परमेशानि ! ऊपर कहे गये वस्तुओं से मिश्रित चन्दन को १०८ बार मन्त्र से अभिमन्त्रित कर तिलक करे तो राजा नगर ग्राम जो जो सामने दिखाई पड़ता है वह सभी उस मन्त्रज्ञ के वशीभूत हो जाता है । ताम्बूल, धूप, जल, (बिल्व) पत्र, पुष्प, फल, दधि, दुग्ध, घृत, चूर्ण, अन्न, वस्त्र, कपूर, कस्तूरी, घुसृण (कोमल वस्तु), इलायची, लवङ्ग, जातीपत्रम्, या (जाय) फल अथवा हे परमेश्वरि ! जो जो भी वस्तु हो १०८ बार उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित कर जिस किसी को प्रदान करे तो हे देवि ! वह वशीभूत हो जाता है इसमें संदेह नहीं। बहुत क्या ? स्त्रियाँ तो उसकी दासी बन ही जाती हैं । हे देवि ! यह प्रयोग जगत् को आकर्षण करने वाला कहा गया हैं यह अन्यथा होने वाला नहीं ॥ ३३—३८ ॥

रहस्यस्थानके मन्त्री लिखेद्रोचनया भुवि ॥ ३८ ॥

चारुशृङ्गारवेषाढ्यां सर्वाभरणभूषिताम् ।
प्रतिमां सुन्दरां गीतां विलिख्य सुमनोहराम् ॥ ३९ ॥
तद्भालकण्ठहृन्नाभिजन्ममण्डलयोजिताम् ।
जन्मनाममहाविद्यामङ्कुशान्तर्विदर्भिताम् ॥ ४० ॥
सर्वसन्धिषु देहस्य मदनाक्षरमालिखेत् ।
लीनं दाडिमपुष्पाभं चिन्तयेद्देहसन्धिषु ॥ ४१ ॥
तदाशाभिमुखो भूत्वा स्वयं देवीस्वरूपकः ।
मुद्रां तु क्षोभिणीं बद्ध्वा मन्त्रमष्टशतं जपेत् ॥ ४२ ॥
नियोज्य मदनागारे चन्द्रसूर्यकलात्मके ।
ततो विकलसर्वाङ्गी कामबाणैः प्रपीडिताम् ॥ ४३ ॥
अनन्यमानसां प्रेमभ्रममाणानां मदालसाम् ।
एवमाकर्षयेन्नारीं योजनानां शतादपि ॥ ४४ ॥

पृथ्वी पर किसी एकान्त स्थान में रोचना से सभी शृङ्गारों से परिपूर्ण वेष वाली, सर्वाभरण भूषित, प्रशंसनीय एवं सुमनोहर सुन्दरी की प्रतिमा निर्माण करे । फिर उसके मस्तक, कण्ठ, हृदय, नाभि तथा जन्म मण्डल पर महाविद्या के एक–एक अक्षर से तथा अंकुश (क्रों) से ग्रथित कर उसके जन्म नाम का एक–एक अक्षर लिखें । शरीर की सभी सन्धियों में मदनाक्षर (क्लीं) लिखें । उसकी देह की सन्धियों में अनार पुष्प के समान लीन हुए अभीष्ट स्त्री का, उस दिशा की ओर स्वयं क्षोभिणी मुद्रा प्रदर्शित करते हुए तथा देवी का स्वरूप बना कर ध्यान करते हुए १०८ मन्त्र का जप करे । चन्द्र–सूर्यकलात्मक स्त्री के मदनागार में स्वयं को नियोजित कर सर्वाङ्ग विकल, कामबाण से प्रपीडित, अनन्य मानसा, प्रेम से संभ्रान्त, मद से आलस्य में भरी हुई नारी को बना कर वह साधक सैकड़ों योजन दूर रहने पर भी अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है ॥ ३८–४४ ॥

मातृकां विलिखेच्चक्रबाह्यतः सकलां प्रिये ।
भूर्जपत्रे स्वर्णपत्रे रौप्यपत्रेऽथ ताम्रजे ॥ ४५ ॥
अवध्यः सर्वजन्तूनां व्याघ्रादीनां विशेषतः ।

हे प्रिये ! यदि भूर्ज पत्र, स्वर्ण पत्र, रौप्य (चाँदी) पत्र अथवा ताम्र पत्र पर लिखे गये चक्र के बाहर संपूर्ण मातृकाओं को लिखें तो वह सभी प्राणियों से विशेष कर व्याघ्रादिकों से अबध्य रहता है ॥ ४५–४६ ॥

तथैव मातृकायुक्तस्वसंज्ञाचक्रमण्डितः ।
कर्पूरकुङ्कुमाद्यैस्तु अजरामरतां लभेत् ॥ ४६ ॥

उसी प्रकार मातृका युक्त अपने नाम से चक्र के चारों ओर कर्पूर कुङ्कुम से लिखकर शोभित करे तो साधक अजर अमर हो जाता है॥ ४६–४७ ॥

अनेन विधिना देवि रोचनागरुकुङ्कुमैः ॥ ४७ ॥
विलिखंश्चक्रयोगेण साध्यनाम वरानने ।
विदर्भितं स्वनाम्ना तु यस्मिन्कस्मिन्नपि स्थितम् ॥ ४८ ॥
स्थावरं जङ्गमं चापि सकलं जनमण्डलम् ।
वशी कुर्यान्महेशानि पादाक्रान्तं न संशयः ॥ ४९ ॥

हे देवि ! इसी प्रकार रोचना, अगुरु एवं कुङ्कम से चक्र के चारों ओर अपने अङ्ग के जिस किसी भाग में स्थित कर दे तो हे वरानने ! स्थावर, जङ्गम तथा समस्त जनमण्डल उसके वशीभूत हो जाता है । हे महेशानि ! इतना ही नहीं, वह सबको पादाक्रान्त कर देता है, इसमें संशय नहीं ॥ ४७–४९ ॥

महात्रिपुरसुन्दर्याः कामकूटेन भास्वता ।
एकमेकमवष्टभ्य साध्यनामाक्षराणि च ॥ ५० ॥
बहिरप्यखिलैर्वर्णैर्मातृकायाः प्रवेष्टयेत् ।
हेममध्यगतं कुर्याच्छिखायां वामके भुजे ॥ ५१ ॥
धारयेद्यत्र कुत्रापि त्रैलोक्यवशकारकम् ।

महात्रिपुरसुन्दरी के अत्यन्त श्रेष्ठ कामकूट मन्त्र से एक–एक अक्षर के अन्तर में साध्य नाम के अक्षरों को लिखे और बाहर भी मातृकाओं के एक–एक अक्षर लिखकर घेर देवें । फिर सुवर्ण के यन्त्र में डालकर बायीं भुजा अथवा शिखा में अथवा जहाँ कहीं भी धारण करें तो वह त्रिलोकी को वश करने वाला हो जाता है ॥ ५०–५२ ॥

राजेन्द्रमपि देवेशि दासभूतं करोति हि ॥ ५२ ॥
राजानो वाजिनः सर्पा गजा दुष्टा मदोत्कटाः ।
व्याघ्राः केसरिणो मत्ता वश्यास्तस्य भवन्ति हि ॥ ५३ ॥

हे देवेशि ! बहुत क्या कहें, वह राजेन्द्रो को भी अपने वश में कर लेता है। राजा, घोड़े, सर्प, हाथी, दुष्ट और मदोत्कट बाघ और मत्त सिंह सभी उसके वश में हो जाते हैं ॥ ५३ ॥

पूर्वक्रमेण नगरनाम संदर्भ्य शैलजे ।
मध्ये चतुष्पथे वाऽपि चतुर्दिक्षु निधापयेत् ॥ ५४ ॥

महाक्षोभो योषितां तु जनानां महतामपि ।
तथैव सर्वदुष्टानां पुरस्थानां च जायते ॥ ५५ ॥

हे शैलजे ! पूर्व में कही गई विधि के अनुसार मन्त्र के साथ नगर के नाम को एक–एक अक्षर के साथ अनुस्यूत कर लिखे, लिखकर नगर के मध्य में चौराहों पर तथा चारों दिशाओं में उसे गाड़ देवें तो उस नगर की योषिताओं को, बड़े–बड़े लोगों को, सभी दुष्टों को किं बहुना नगर के समस्त निवासियों को महान् क्षोभ उत्पन्न हो जाता है ॥ ५४–५५ ॥

एतन्मध्यगतां पृथ्वीं सशैलवनगह्वराम् ।
ज्वलन्तीं सर्वराजेन्द्रमण्डितां सागराम्बराम् ॥ ५६ ॥

मासषट्कं चिन्तयेद्यः साक्षात्कामोपमो भवेत् ।
कटाक्षक्षेपमात्रेण नार्यस्तस्य वशाः प्रिये ॥ ५७ ॥

इस चक्र के मध्य में जिस नगर की शैल वन गुफा सभी राजा गण, किं बहुना, सागराम्बरा पृथ्वी को प्रकाशित हुयी सी जो साधक ६ महीने तक निरन्तर ध्यान करता है वह साक्षात् काम के तुल्य हो जाता है। हे प्रिये ! उसके कटाक्ष के पड़ते ही सारी स्त्रियाँ वशीभूत हो जाती है ॥ ५६–५७ ॥

राजानो ब्राह्मणा वैश्याः शूद्राश्च पशवो जगत् ।
दृष्ट्वा त्वाकर्षयेद्देवि त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ५८ ॥

हे देवि ! 'राजा, ब्राह्मण, वैश्य, शूद, पशु किं बहुना सारा चराचर जगत् उसके देखने मात्र से आकृष्ट हो जाते हैं ॥ ५८ ॥

सपत्नान्नाशयेद्दृष्ट्वा नात्र कार्या विचारणा ।
भूतप्रेतपिशाचांश्च ज्वरांश्चातुर्थिकादिकान् ॥ ५९ ॥

शूलगूल्मादिरोगांश्च दृष्ट्वा नाशयते क्षणात् ।
एतत्सिन्दूरसुभगं रात्रौ संपूजितं प्रिये ॥ ६० ॥

योजनानां शताद्वाऽपि सम्यगाकर्षयेस्त्रियम् ।
यदा दिक्षु विदिक्ष्वेवं दिविष्ठानपि सुन्दरि ॥ ६१ ॥

वशमानयते शीघ्रं सपुत्रपशुबान्धवान् ।

हे देवि ! वह देखते ही देखते अपने समस्त शत्रुओं का नाश कर देता है इसमें संदेह नहीं। भूत प्रेत, पिशाच, चातुर्थिक(?), ज्वर, शूल और वायुगोला

आदि रोग वह क्षण भर में नाश कर देता हैं । हे प्रिये ! बहुत क्या रात्रि के समय इस श्रीचक्र में पूजा किया गया सिन्दूर सैकड़ों योजन दूर रहने वाली स्त्रियों को भी भली प्रकार से आकृष्ट कर लेता है। हे सुन्दरि! इतना ही नही दिशाओं में, विदिशाओ में, स्वर्ग में निवास करने वाले सभी लोगों को पुत्र, पशु एवं बान्धवों सहित वह वश में कर लेता है ॥ ५९–६२ ॥

प्रयोगान्तरकथनम्

भूर्जपत्रे समालिख्य रोचनागरुकुङ्कुमैः ॥ ६२ ॥
तन्मध्ये नगर देशं मण्डलं खण्डमेव च ।
नाम्ना विदर्भितं स्वस्य पूजयित्वा यथाविधि ॥ ६३ ॥
भूमिमध्यगतं कृत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत् ।
अथ वा धारयेत्कण्ठे शिखायां बाहुमूलके ॥ ६४ ॥
यत्र कुत्र स्थितं भद्रे क्षोभयेन्नगरं महत् ।
अर्कक्षीरेण संयुक्तं धत्तूरकरसं तथा ॥ ६५ ॥
रोचनाकुङ्कुमे चैव लाक्षालक्तकसंयुतम् ।
कस्तूरीचन्द्रसंयुक्तमेकीकृत्य ततः परम् ॥ ६६ ॥
चक्रमेतत्समालिख्य यस्य नाम्ना महेश्वरि ।
तस्य व्याघ्रगजव्याधिरिपुसर्पभयादिकम् ॥ ६७ ॥
चोरग्रहजलारिष्टशाकिनीडाकिनीभयम् ।
भयं न विद्यते देवि परमन्त्राभिचारजम् ॥ ६८ ॥
नित्यं संधारयेद्देवि कालमृत्युं विनाशयेत् ॥ ६९ ॥

गोरोचन, अगरु तथा कुङ्कुम को मिला कर भोजपत्र पर इस यन्त्र को लिखकर उसके मध्य में नगर, देश, मण्डल और खण्ड के नाम से मन्त्र को विदर्भित कर यथाविधि उसका पूजन करके उसे पृथ्वी में गाड़ देवें तो सारी त्रिलोकी वशीभूत हो जाती है, अथवा उसे कण्ठ में, शिखा में, बाहुमूल में, अथवा जहाँ कहीं भी शरीरावयव में धारण करे, तो वह सारे नगर को क्षुब्ध कर देता है । मदार के रस को तथा धत्तूर के रस को रोचना, कङ्कुम, लाक्षारस, कस्तूरी एवं कपूर, इन सभी को एक में मिला कर, हे महेश्वरि ! जिसके नाम के साथ इस चक्र को लिखा जाता है । उसे बाघ, गज व्याधि, शत्रु सर्पादि का भय, चोर, ग्रह, जल, अरिष्ट, शाकिनी तथा डाकिनी का भय या दूसरे के मन्त्रों से किये गये अभिचार का भय कदापि नहीं होता । हे देवि ! यदि इसे अपने शरीर में नित्य धारण करे तो यह यन्त्र काल एवं मृत्यु दोनों को विनष्ट कर देता है ॥ ६२–६९ ॥

अन्यप्रयोगमाह

अथवा मध्यगां देवीं त्रिकोणोभयमध्यगाम् ।
अथ स्वनामसंयुक्तां रोचनाकुङ्कुमाङ्किताम् ॥ ७० ॥
निधापयेच्च सप्ताहाद्दासवत्किंकरो भवेत् ।
पीतद्रव्यैः समालिख्य पीतपुष्पैः समर्चयेत् ॥ ७१ ॥
पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा स्तम्भयेत्सर्ववादिनः ।
सहस्रवदनो देवि मूढो भवति तत्क्षणात् ॥ ७२ ॥
नाम्ना यस्य स वाग्मी हि पाषाण इव जायते ।

अब दूसरा प्रयोग कहते हैं – अथवा त्रिकोण के मध्य में रहने वाली अथवा षट्कोण के मध्य में रहने वाली देवी को रोचना और कुङ्कुम को एक में मिला कर साध्य नाम के साथ श्री चक्र में लिखे और उसे गाड़ देवें तो साध्य एक सप्ताह में दास के समान किङ्कर हो जाता है। अथवा पूर्वाभिमुख हो कर पीले द्रव्य से श्री चक्र का निर्माण कर पीत पुष्पों से उसका पूजन करे तो वह समस्त वादिजनों को स्तम्भित कर देता है।। हे देवि ! इस प्रयोग से सहस्रवदन शेष भी तत्क्षण मूढ़ हो जाते हैं। जिसके नाम से लिखे चाहे वह कितना बड़ा भी वाग्मी क्यों न हो पत्थर की तरह मूक हो जाता है ॥ ७०–७३ ॥

चक्रं विलिख्य देवेशि महानीलीरसेन तु ॥ ७३ ॥
नाम संयोज्य विधिवद्दक्षिणाभिमुखो बुधः ।
वह्नौ दग्ध्वा महेशानि मारणं वैरिणां प्रिये ॥ ७४ ॥

हे देवेशि! दक्षिणाभिमुख होकर महानीलों के रस से श्री चक्र को लिखकर उसमें विधिपूर्वक साध्य नाम लिखे फिर उसे अग्नि में जला देवे। हे प्रिये ! हे महेशानि ! यह शत्रुओं के मारण का प्रयोग है ॥ ७३–७४ ॥

महिषाश्वपुरीषाभ्यां सम्यगाधृष्य शैलजे ।
गोमूत्रेण च संलिख्य नामसंदर्भ्य पूर्ववत् ॥ ७५ ॥
क्षिप्त्वाऽऽरनालमध्यस्थं विद्वेषणकरं भवेत् ।

हे शैलजे ! घोड़े और महिष के पुरीष को अच्छी प्रकार एक में मिला देवें। फिर उसे पूर्ववत् साध्य नाम अनुस्यूत कर आरनाल (काँजी) में रख देवे तो यह प्रयोग बहुत बड़ा विद्वेषकारी होता है ॥ ७५–७६ ॥

कृत्वा रोचनया नाम काकपक्षस्य मध्यगम् ॥ ७६ ॥
लम्बमानं तदाकाशे शत्रूच्चाटनकारकम् ।

गोरोचन से साध्य नाम लिख कर उसे काक पक्ष के मध्य में रख देवें, फिर उसे आकाश में लटका देवें तो यह प्रयोग शत्रुओं का उच्चाटन कराने वाला है ॥ ७६–७७ ॥

महानीलीरोचनाभ्यां दुग्धलाक्षारसेन हि ॥ ७७ ॥
विलिख्य धारयेन्मन्त्री सर्ववर्णान्वशं नयेत् ।

महानीली, रोचना, दूध और लाक्षारस को एक में मिलाकर उससे श्री चक्र लिख कर यदि मन्त्रज्ञ साधक धारण करे, तो वह सभी वर्णों को वश में कर लेता है ॥ ७७–७८ ॥

अनेनैव विधानेन स्थापयेद्वारिमध्यगम् ॥ ७८ ॥
तेनोदकेन संस्नातः पीतं तत्सर्ववश्यकृत् ।
सौभाग्यं जायते तेन पानीयेन न संशयः ॥ ७९ ॥

इसी विधान से श्री चक्र लिखकर जल के मध्य में स्थापित कर दे फिर उस जल से स्वयं स्नान करे और पी लेवे तो सबको वश में कर लेता है । उस जल से सौभाग्य की वृद्धि होती है इसमें संशय नहीं ॥ ७८–७९ ॥

एतन्मध्यगतां पृथ्वीं नगरीं वा सुलोचने ।
सप्ताहात्क्षोभयेत्सम्यग्ज्वलमानां विचिन्तयेत् ॥ ८० ॥

हे सुलोचने! यदि इस श्री चक्र के मध्य में किसी भू–भाग अथवा नगरी को जलते हुए ७ दिन पर्यन्त ध्यान करे तो वह साधक उस भू–भाग अथवा नगरी को क्षुब्ध कर देता है ॥ ८० ॥

महापातकनाशकप्रयोगमाह

अथ वक्ष्ये महेशानि महापातकनाशनम् ।
शिवां संपूजयेद्देवि सुगन्धैः कुसुमैः प्रिये ॥ ८१ ॥

हे महेशानि ! अब पापनाशन प्रयोग कहता हूँ । हे प्रिये! जो पापी श्रीचक्र में सुगन्ध एवं पुष्पों द्वारा श्री शिव का पूजन करता है । वह तत्क्षण पापों से निर्मुक्त हो जाता है ॥ ८१ ॥

महापातकयुक्तात्मा तत्क्षणात्पापहा भवेत् ।
शमीदूर्वाङ्कुराश्वत्थपलाशैरथ वाऽर्कजैः ॥ ८२ ॥
मासेन हन्ति कलुषं सप्तजन्मकृतं नरः ।

शमी, दूर्वाङ्कुर, अश्वत्थ, पलाश अथवा मदार की लकड़ी से मास

पर्यन्त इस मन्त्र से होम करे तो मनुष्य अपने सात जन्मों के पापों को नष्ट कर देता है ॥ ८२–८३ ॥

पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा पीतद्रव्यैः समर्चयेत् ॥ ८३ ॥
पीतस्थाने समालिख्य स्तम्भयेत्सर्ववादिनः ।

पूर्वाशाभिमुख होकर किसी पीत स्थान में श्री चक्र की प्रतिमा बनाकर पीत द्रव्यों उसमें से भगवती ललिताम्बा का अर्चन करें तो सारे वादियों को वह स्तम्भित कर देता है ॥ ८३–८४ ॥

उत्तराशामुखो भूत्वा सिन्दूररजसा लिखेत् ॥ ८४ ॥
पूजयेद्विधिवद्विद्वान् सर्वलोकं वशं नयेत् ।

उत्तराभिमुख हो सिन्दूर रज से श्री चक्र लिखकर उसमें विधानपूर्वक ललिताम्बा का अर्चन करे तो वह विद्वान् साधक सारे लोकों को वश में कर लेता है ॥ ८४–८५ ॥

पश्चिमाभिमुखो भूत्वा चन्दनेन समालिखेत् ॥ ८५ ॥
संपूज्य विधिवद्विद्वान् सर्वयोषिन्मनो हरेत् ।
वल्लभो जायते देवि दासीमिव वशं नयेत् ॥ ८६ ॥

विद्वान् साधक पश्चिमाभिमुख होकर चन्दन से श्री चक्र लिखकर विधिवत् श्री ललिताम्बा का उसमें पूजन करे, तो समस्त स्त्रियों का मन हरण कर लेता है उन्हें वह दासी के समान वश में तो करता ही हैं उनका प्रिय वल्लभ भी हो जाता है ॥ ८५–८६ ॥

यमाशाभिमुखो भूत्वा चक्रे कृष्णं यदाऽर्चयेत् ।
यस्य नामाङ्कितं तस्य मन्त्रहानिः प्रजायते ॥ ८७ ॥

दक्षिणाभिमुख हो कर चक्र में श्री कृष्ण का अर्चन करे तो जिसका नाम अङ्कित हो, उसके मन्त्र की हानि होती है ॥ ८७ ॥

अग्निराक्षसवायव्यशम्भुकोणेषु पूजितम् ।
पूर्ववत्परमेशानि क्रमेण परिपूजितम् ॥ ८८ ॥
स्तम्भविद्वेषणव्याधिशत्रूच्चाटकरं भवेत् ।

आग्नेय नैऋत्य, वायव्य तथा ईशानकोणों में, हे परमेशानि ! पूर्ववत् क्रम से पूजा करने से क्रमशः स्तम्भ, विद्वेषण, व्याधि, और शत्रुओं का उच्चाटन होता हैं ॥ ८८–८९ ॥

रोचनालिखितं चक्रं क्षीरमध्ये क्षिपेद्बुधः ॥ ८९ ॥
सर्ववश्यकरं देवि भवत्येव न संशयः ।
गोमूत्रमध्यगं सम्यक्शत्रूच्चाटकरं भवेत् ॥ ९० ॥

'गोरोचन से चक्र लिख कर उसे दूध में डाल देवे' तो यह प्रयोग सर्ववश्यकर हो जाता है इसमें संशय नहीं यदि गोमूत्र में डाल देवे तो शत्रुओं का उच्चाटन हो जाता है ॥ ८९–९० ॥

तैलस्थं चक्रराजं तद्विद्वेषणकरं भवेत् ।
ज्वलज्ज्वलनमध्यस्थं शत्रुनाशकरं भवेत् ॥ ९१ ॥

चक्रराज को तेल में स्थापित करे तो वह विद्वेषणकारी हो जाता है और यदि जलती हुई अग्नि के मध्य में डाल देवें तो शत्रुओं का नाश करने वाला हो जाता है ॥ ९१ ॥

यदेकान्ते चतुर्मार्गे सिन्दूररजसा लिखेत् ।
सर्वबाह्यत आरभ्य यावन्मध्यं महेश्वरि ॥ ९२ ॥
आकारादिक्षकारान्तां मातृकां तत्र विन्यसेत् ।
पूजयेद्रात्रिसमये कुलाचारक्रमेण तु ॥ ९३ ॥
साधकः खेचरो देवि जायते नात्र संशयः ।
गिरावेकतरौ तद्वदर्चयेत्कुलमार्गतः ॥ ९४ ॥
अजरामरतां लब्ध्वा सुखी भवति मान्त्रिकः ।

यदि किसी चौराहे पर एकान्त स्थान में सिन्दूर के पराग से श्री चक्र लिख कर फिर बाहर से आरम्भ कर मध्य पर्यन्त, हे महेश्वरि ! अकार से लेकर क्षकारान्त मातृकाओं को रात्रि के समय कौलिक आचार पद्धति से पूजन करे तो हे देवि ! साधक आकाशचारी बन जाता है इसमें संशय नहीं। इसी प्रकार पहाड़ पर किसी एक वृक्ष के नीचे बैठकर कौलिक विधि से अर्चना करे तो मन्त्र वेत्ता अजर–अमर हो कर सुखी हो जाता है ॥ ९२–९५ ॥

श्मशाने पूजयेच्चक्रं महाभूतदिने बुधः ॥ ९५ ॥
पूर्वक्रमेण विधिवत्साधकः स्थिरमानसः ।
खड्गसिद्धिं च मनःसिद्धिं च गुटिकामपि ॥ ९६ ॥
पादुकां वेतालसिद्धिं च मनःसिद्धिं च धातुदाम् ।
महाविवरसिद्धिं च यक्षिणीचेटकोद्भवाम् ॥ ९७ ॥
सर्वं तल्लभते मन्त्री नात्र कार्या विचारणा ।

बुद्धिमान् साधक यदि चतुर्दशी की रात्रि में श्मशान में श्री चक्र की विधिवत् स्थिर चित्त से पूजा करे तो उसे खड्गसिद्धि, मनःसिद्धि, गुटिकासिद्धि पादुका और वेतालसिद्धि मनःसिद्धि, धातुसिद्धि महाविवर–सिद्धि एवं यक्षिणी और चेटक सिद्धि इत्यादि सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है इसमें संदेह नहीं ॥ ९५–९८ ॥

श्रीविद्यापूजाविधानम्

अथ वक्ष्ये महेशानि श्रीविद्यापूजनं महत् ॥ ९८ ॥
ब्रह्महत्यादिदोषाणां पुरश्चरणमुत्तमम् ।
रक्तपद्मैर्महेशानि पूजयेच्चक्रमुत्तमम् ॥ ९९ ॥
समस्तरश्मिसहितं नित्याम्नायपुरस्कृतम् ।
कुलाचारक्रमाद्देवि कर्पूरक्षोदमण्डितम् ॥ १०० ॥
मासमात्रेण देवेशि महापातककोटयः ।
जन्मान्तरकृता सर्वा नाशयेन्नात्र संशयः ॥ १०१ ॥

हे महेशानि ! अब महान् श्री विद्या का पूजन कहता हूँ जो ब्रह्महत्यादि पापों का सर्वश्रेष्ठ पुरश्चरण कहा गया है। हे महेशानि ! रक्त पुष्पों से श्रेष्ठ समस्त रश्मि सहित श्री चक्र की नित्याम्नाय पुरस्कृत कपूर के चूर्णो द्वारा, हे देवि ! कुलाचार क्रम से पूजा करनी चाहिए। हे देवेशि ! एक महीना निरन्तर इस प्रकार की जाने वाली पूजा जन्म जन्मान्तर के किये गये करोडों महापातकों को नष्ट कर देती है इसमें संशय नहीं। ९८–१०१॥

लक्ष्मीस्तस्य गृहे रम्या सुस्थिरा सुरवन्दिते ।
जपापुष्पैर्महेशानि पूर्ववत्पूजयेच्छिवाम् ॥ १०२ ॥
मासमात्रं क्रमेणैव पूर्ववत्परमेश्वरि ।
ब्रह्महत्यादिपापांश्च पूर्वजन्मकृतान्प्रिये ॥ १०३ ॥
नाशयेन्नात्र संदेहो धनवाञ्जायते बुधः ।

हे सुरवन्दिते ! इस पुरश्चरण करने वाले के घर लक्ष्मी स्थिर रूप से निवास करती हैं । हे महेशानि ! जपापुष्पों (ओड़हुल) से पूर्ववत् एक मास पर्यन्त भगवती ललिताम्बा का पूजन करे तो, हे प्रिये ! वह पूर्वजन्म में किये गये ब्रह्म हत्यादि महापापों को नष्ट कर देता है और बुद्धिमान् साधक निःसन्देह धनवान् बन जाता है ॥ १०२–१०४ ॥

केतकैस्तरुणैः पत्रैः पूर्ववत्पूजयेत्प्रिये ॥ १०४ ॥
उपपातकसंघांश्च मासमात्रेण नाशयेत् ।

सौभाग्यमतुलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥ १०५ ॥

हे प्रिये ! यदि साधक केतक के तरुण पत्रों से ललिताम्बा की पूजा करें तो वह मास मात्र में उपपातक संघों को नष्ट कर देती है। उस कर्त्ता का सौभाग्य महामहत्तर हो जाता है इसमें संशय नहीं ॥ १०४–१०५ ॥

शतपत्रैर्मनोरम्यैः पूजयेन्मासमात्रकम् ।
पूर्ववत्परमेशानि पूर्वपापं विनाशयेत् ॥ १०६ ॥

साधक यदि पूर्ववत् मनोहर शतपत्रों के पुष्पों से मास मात्र पूजा करे तो, हे परमेशानि ! वह पूजा पूर्व में किये गये पापों को नष्ट कर देती है इसमें संशय नहीं ॥ १०६ ॥

चम्पकैः सुमनोरम्यैः पूर्ववत्पूजयेच्छिवाम् ।
मासमात्रेण हन्त्येव पातकाञ्शतजन्मजान् ॥ १०७ ॥
सौभाग्यवान्भवेन्मन्त्री त्रिपुरायाः प्रसादतः ।

समस्त पुष्पों में श्रेष्ठ चम्पक पुष्पों से पूर्ववत् साधक शिवा की पूजा मास मात्र करे तो सैकड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं। ऐसा मन्त्रज्ञ साधक श्री त्रिपुरा की कृपा से सौभाग्यवान् हो जाता है ॥ १०७–१०८ ॥

श्वेतपद्मैर्महेशानि महद्भिः पूजयेत्पराम् ॥ १०८ ॥
पूर्ववन्नाशयेत्पापं विंशज्जन्मभवं प्रिये ।
मासमात्रेण सकलं मोक्षस्तस्य करे स्थितः ॥ १०९ ॥

हे महेशानि ! यदि महान् श्वेत पद्मों से पराम्बिका की पूर्ववत् मास मात्र पूजा करे तो हे प्रिये ! बीसों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं, इतना ही नहीं मोक्ष भी उसके हस्तगत हो जाता है ॥ १०८–१०९ ॥

बन्धूककुसुमैर्देवि मासमात्रं प्रपूजयेत् ।
त्रैलोक्यं वशगं तस्य पूर्वपापं दहेद्बुधः ॥ ११० ॥

हे देवि ! बन्धूक (गुलदुपहरिया) के पुष्पों से यदि मास मात्र भगवती ललिताम्बा की पूजा करें, तो वह उसके सारे पूर्व पापों को नष्ट कर देता है और सारा त्रैलोक्य उस विद्वान् साधक के वशीभूत हो जाता है ॥ ११० ॥

बिल्वपत्रैश्च जलजैः सहैव परिपूजयेत् ।
पूर्ववत्परमेशानि मासमात्रं प्रसन्नधीः ॥ १११ ॥
समृद्धिमान् भवेद्देवि सर्वपापहरः सदा ।
मल्लिकामालतीजातीकुन्दैश्च शतपत्रकैः ॥ ११२ ॥

श्वेतोत्पलैर्मिश्रितैस्तु पूजयेन्मासमात्रकम् ।
कुलाचारक्रमेणैव पातकं शतजन्मजम् ॥ ११३ ॥
ब्रह्महत्यादिजनितं नाशयेन्नात्र संशयः ।
मुक्तिस्तस्य करे देवि वाचा जीवसमो भवेत् ॥ ११४ ॥

हे परमेशानि ! विल्वपत्र तथा कमल पुष्पों से एक साथ ही मास मात्र भगवती की प्रसन्नचित्त से पूजा करे तो हे देवि ! वह समृद्धिमान् हो जाता है, क्योंकि यह पूजा सर्वपाप हारिणी है । मल्लिका मालती जाती, कुन्द तथा शतपत्रक, श्वेत कमल, इनको मिलाकर एक मास पर्यन्त कौलिक रीति से पूजा करे, तो सैकड़ों जन्म के ब्रह्महत्यादि पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं । हे देवि ! मुक्ति तो उस साधक के हाथ में आ जाती है कहने मात्र के लिए वह जीव रहता है ॥ १११–११४ ॥

अगस्त्यबाणबन्धूकजपारक्तोत्पलैः प्रिये ।
पूर्वक्रमेण संपूज्य मासमात्रं प्रसन्नधीः ॥ ११५ ॥
पातकं नाशयेन्मन्त्री साक्षात्कामसमो भवेत् ।
चम्पकैः पाटलैर्देवि बकुलैर्नागकेसरैः ॥ ११६ ॥
कह्लारैः सिन्दुरै रम्यैः पूर्ववत्पूजयेत्क्रमात् ।
सौभाग्यमतुलं तस्य मासमात्रेण जायते ॥ ११७ ॥
पापं विनाशयेद्देवि यदि जन्मसहस्रजम् ।

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे श्रीविद्याप्रयोगविधिर्नाम सप्तदशः पटलः ॥ १७ ॥

हे प्रिये ! अगस्त्य, बाण, बन्धूक, जपा (ओड़हुल) तथा लाल कमलों से पूर्वक्रम से मास मात्र प्रसन्न चित्त से पूजन करने वाला मन्त्रज्ञ अपने सारे पापों को नष्ट कर, साक्षात् काम के समान हो जाता है। हे देवि ! मनोहर चम्पक, पाटल, बकुल, नागकेशर, कह्लार एवं सिन्दूर (सिन्धुवार) के पुष्पों से यदि क्रमशः क्रमशः पूर्ववत् पूजन करे, तो मास मात्र में साधक को अतुलनीय सौभाग्य प्राप्त हो जाता है, किं बहुना, हे देवि ! वह साधक इस पूजा के प्रभाव से ही अपने सहस्रों जन्मों के पापों को नष्ट कर देता है ॥ ११५–११८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'श्रीविद्याप्रयोग विधि' नामक सप्तदश पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १७ ॥

अथाष्टादशः पटलः

ईश्वर उवाच –

रत्नपूजाविधानं तु कथयामि तवानघे ।
पुष्पाणि रचयेद्देवि माणिक्यरचितानि हि ॥ १ ॥

ईश्वर ने कहा – हे अनघे ! अब आपसे रत्नपूजा की विधि कहता हूँ, हे देवि इस पूजा में माणिक्य युक्त पुष्पों की रचना करनी चाहिए ॥ १ ॥

श्रीविद्यास्वर्णरत्नपूजाविधानम्

तैस्तु पूजा प्रकर्तव्या चक्रराजस्य पूर्ववत् ।
नानापुष्पैः सुगन्धैश्च कर्पूरक्षोदचन्दनैः ॥ २ ॥
एकविंशतिरात्रेण विंशतिं धरणीभुजाम् ।
दासीभूतां करोत्येव महारोगांश्च नाशयेत् ॥ ३ ॥

उसी से पूर्ववत् चक्रराज की पूजा करनी चाहिए, सुगन्ध युक्त पुष्पों एवं सुगन्ध कर्पूरचूर्ण एवं चन्दनों से श्री चक्र में भगवती की २१ रात तक पूजा करें तो यह पूजा बीसों राजाओं को दासभूत बना देती है तथा महारोगों का नाश कर देती है ॥ २–३ ॥

सूर्यवत्कान्तिमान्मन्त्री जायते नात्र संशयः ।
मुक्तारत्नैश्च रचयेत्स्वर्णपुष्पाणि सुन्दरि ॥ ४ ॥

मन्त्रज्ञ साधक सूर्य के समान तेजस्वी हो जाता है, इसमें संशय नहीं । हे सुन्दरि ! मोती और रत्नों के साथ स्वर्ण पुष्पों की रचना करनी चाहिए ॥ ४ ॥

तैस्तु पूजा प्रकर्तव्या नानापुष्पैश्च पूर्ववत् ।
एकविंशतिरात्रेण राजपत्न्यो वशाः प्रिये ॥ ५ ॥

उनसे तथा अनेक वर्ण के पुष्पों से पूर्ववत् भगवती की पूजा करनी चाहिए । हे प्रिये ! केवल २१ बार पूजा करने से राजपत्नियाँ साधक के वश में हो जाती है ॥ ५ ॥

कलाकान्तियुतो देवि जायते सुभगः क्षितौ ।
प्रवालघटितैः स्वर्णपुष्पैस्तु बहुभिर्यजेत् ॥ ६ ॥

पूर्ववत्परमेशानि कुलाचारक्रमेण तु ।
पुष्पैश्च विविधैर्देवि त्रिःसप्ताहात्सुरेश्वरि ॥ ७ ॥

क्रूरास्तस्य वशाः सर्वे वैरिवर्गान्विनाशयेत् ।
तथा मरकतक्षिप्तस्वर्णपुष्पैस्तु पूजयेत् ॥ ८ ॥

एकविंशतिरात्रेण नानापुष्पैः क्रमं यजेत् ।
विबुधास्तस्य वरदा वैरी नश्यति नान्यथा ॥ ९ ॥

मन्त्रज्ञ साधक कला कान्ति से युक्त होकर पृथ्वीतल में भाग्यवान् हो जाता है। प्रवाल से घटित अनेक स्वर्णपुष्पों से, हे परमेशानि ! कुलाचार के क्रम से पूर्ववत् यजन करे, अथवा हे सुरेश्वरि ! विविध प्रकार के पुष्पों से तीन सप्ताह पर्यन्त यजन करे तो, हे देवि ! यह प्रयोग क्रूरों को वश में करने वाला है और वैरी वर्गों का विनाश करता है। इसी प्रकार मरकत मणियों से युक्त स्वर्ण पुष्पों से तथा नाना पुष्पों से २१ रात तक यजन करे तो देवगण उसे वरदान देते हैं तथा वैरी का विनाश हो जाता है इसमें संदेह नहीं ॥ ६–९ ॥

पुष्परागमहारत्नघटितैः स्वर्णनिर्मितैः ।
कुसुमैः पूजयेच्चक्रं त्रिःसप्ताहात्सुरेश्वरि ॥ १० ॥

सुरास्तस्य वशा देवि बृहस्पतिसमो भवेत् ।
सुवर्णरचितैः पुष्पैर्वज्रकेयूरराजितैः ॥ ११ ॥

एकविंशतिरात्रेण मोहयेज्जगतीमिमाम् ।
दैवदैत्या वशास्तस्य जायन्ते नात्र संशयः ॥ १२ ॥

पुष्पराग (पुखराज) महारत्न से घटित स्वर्ण निर्मित कुसुमों से श्री चक्र की पूजा करे तो, हे सुरेश्वरि ! तीन सप्ताह के अनन्तर देवता उसके वश में हो जाते हैं। हे देवि ! वह साक्षात् बृहस्पति के समान हो जाता है । वज्र एवं केयूर से सुशोभित सुवर्ण रचित पुष्पों से २१ दिन पर्यन्त पूजा करने वाला इस

जगती मात्र को मोहित कर लेता है। देवता तथा दैत्य सभी उसके वशवर्त्ती हो जाते हैं इसमें संशय नहीं ॥ १०–१२ ॥

इन्द्रनीलमयैः स्वर्णपुष्पैश्चक्रं समर्चयेत् ।
एकविंशतिरात्रेण तथा नीलैश्च नीरजैः ॥ १३ ॥
वैरिणो नाशमायान्ति शेषा वश्या भवन्ति हि ।

इन्द्रनीलमणि से युक्त सुवर्ण पुष्पों द्वारा श्री चक्र की २१ दिनों तक पूजा करे तथा नीले कमलों से भी उतने ही दिन पूजा करें तो समस्त वैरी नष्ट हो जाते हैं और शेष साधक के वशीभूत हो जाते हैं ॥ १३–१४ ॥

गोमेदघटितैः पुष्पैः सुवर्णस्य यजेद्बुधः ॥ १४ ॥
किंशुकैश्च कुसुमैश्च पूर्ववत्परमेश्वरि ।
सप्ताहाद्वैरिणो वश्या घातस्तेषु प्रजायते ॥ १५ ॥

बुद्धिमान् साधक गोमेद घटित सुवर्ण पुष्पों से श्री चक्र में ललिताम्बा की पूजा करे, अथवा हे परमेश्वरि ! पूर्ववत् किंशुक (पलाश) के पुष्पों से पूजा करे तो सभी वैरी ७ दिन के भीतर उसके वशीभूत हो जाते हैं और वे उपद्रुत हो जाते हैं ॥ १४–१५ ॥

त्रिःसप्ताहान्महापापसंचयं नाशयेत्प्रिये ।
क्रव्यादजीवा वश्या हि भवन्त्येव न संशयः ॥ १६ ॥

हे प्रिये ! ऐसी पूजा करने वाला साधक तीन सप्ताह के भीतर अपनी समस्त संचित पाप राशि नष्ट कर देता है। मांसाहारी पशु उसके वश में हो जाते है इसमें संशय नहीं ॥ १६ ॥

वैदूर्यघटितैः स्वर्णपुष्पैरभ्यर्चयेत्क्रमम् ।
चम्पकादिभिरभ्यर्च्य त्रैलोक्यं स्तम्भयेत्क्षणात् ॥ १७ ॥

वैदूर्यघटित सुवर्ण पुष्पों से पूर्वक्रमानुसार पूजन करे, अथवा चम्पकादि से भगवती की पूजा करे, तो बुद्धिमान् साधक क्षण मात्र में त्रिलोकी को स्तम्भित कर देता है ॥ १७ ॥

एकविंशतिभिर्वारैः सर्वपापहरो भवेत् ।
पुष्पैः पर्युषितैर्देवि नार्चयेत्स्वर्णजैरपि ॥ १८ ॥

२१ दिन यदि इस प्रकार पूजा करे तो वह सर्वपाप हर हो जाता है । हे देवि ! चाहे सुवर्ण पुष्प ही क्यों न हो यदि वह वासी हो गया हो तो उससे कदापि भगवती की पूजा न करे ॥ १८ ॥

निर्माल्यभूतैः कुसुमैरुच्छिष्टैः परमेश्वरि ।
नवरत्नमयैः स्वर्णपुष्पैर्यदि शिवां यजेत् ॥ १९ ॥

तदा देवा मनुष्याश्च पन्नगा राक्षसादयः ।
सर्वे वश्या भवन्त्येव त्रिःसप्ताहान्न संशयः॥ २० ॥

हे परमेश्वरि ! इतना ही नहीं निर्माल्य हो जाने वाले तथा उच्छिष्ट कुसुमों से देवी की पूजा न करे । नवरत्नों से युक्त स्वर्णपुष्पों से यदि शिवा की अर्चना करे तो देवता मनुष्य पन्नग, राक्षसादि सभी तीन सप्ताह के भीतर उसके वश में हो जाते हैं इसमें संशय नहीं ॥ १९–२०॥

जन्मकोटिभवं पापं नाशयेन्नात्र संशयः ।
स्वर्णरत्नमयैः पुष्पैर्नवरत्नैः प्रपूजयेत् ॥ २१ ॥

ऐसा साधक अपने करोड़ों जन्मों के पापों को नष्ट कर देता है इसमें संशय नहीं स्वर्णरत्नमय पुष्पों से केवल नव रत्नों के साथ ही पूजा करे ॥ २१ ॥

तदाऽश्वमेधदशकं कृतं भवति शैलजे ।
स्वर्णरत्नादिपूर्णत्वं यदा नास्ति तदा शृणु ॥ २२ ॥

तैरेव पुष्पैः पूजा तु कर्तव्या साधकोत्तमैः ।
यद्यत्पुष्पं यत्र यत्र दत्तं तत्तत्सुरेश्वरि ॥ २३ ॥

तत्र तत्र प्रदातव्यं न दातव्यं यथेच्छया ।
अलंकारस्वरूपेण पूजयेच्चक्रनायकम् ॥ २४ ॥

केवलं स्वर्णपुष्पैस्तु त्रैलोक्यं स्तम्भयेच्छिवे ।
मासमात्रेण पापानि सप्तजन्मभवान्यपि ॥ २५ ॥

नाशयेन्मोहयेत्सर्वां समुद्रवलयां धराम् ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे श्रीविद्यास्वर्णरत्नपूजाविधि–
विवरणं नामाष्टदशकः पटलः ॥ १८ ॥

है शैलजे ! ऐसा करने में दश अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। यदि स्वर्ण रत्नादि की पूर्ण संख्या न हो तो, हे प्रिये सुनिए ! तो उतनें ही पुष्पों से उत्तम साधकों को पूजा करनी चाहिए। हे सुरेश्वरि ! जो जो पुष्प जहाँ–जहाँ दिये गये हों, उन उन पुष्पों को वहीं वहीं प्रदान करना चाहिए । अपनी इच्छा से कोई भी फूल कहीं अन्यत्र नहीं चढ़ाना चाहिए । हे शिवे ! केवल अलङ्कारस्वरूप स्वर्णपुष्पों से ही चक्र नायक की पूजा करनी चाहिए। हे शिवे !

केवल स्वर्णपुष्पों से ही पूजा करने से साधक त्रिलोकी का स्तम्भन करने में समर्थ हो जाता है। हे देवि ! एक मास पर्यन्त पूजा करने से ७ जन्मों के समस्त पापों को साधक नष्ट कर देता है तथा समुद्रपर्यन्त पृथ्वी को भी मोहित करने में समर्थ हो जाता है ॥ २२–२६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'श्रीविद्यास्वर्णरत्नपूजाविधि विवरण' नामक अष्टादश पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशः पटलः

त्रिपुराबीजत्रयसाधनविधानम्

श्रीदेव्युवाच –

त्रिपुरा परमा शक्तिस्त्रैलोक्यवशकारिणी ।
एतस्याः परमानन्दसाधनं कथय प्रभो ।। १ ।।
बीजत्रयस्य देवेश यद्यहं तव वल्लभा ।

श्री देवी ने कहा – हे प्रभो ! त्रिलोकी को वश में करने वाली त्रिपुरा ही सर्वश्रेष्ठ शक्ति हैं तो हे देवेश ! आप इनके तीनों बीजों के द्वारा प्राप्त होने वाले परमानन्द के साधनों को कहिए, यदि मैं आप की प्रिया हूँ ।। १ ।।

ईश्वर उवाच –

एषा विद्या वरारोहे पारम्पर्यक्रमागता ।। २ ।।

ईश्वर ने कहा – हे वरारोहे ! यह त्रिबीजा त्रिपुरा विद्या (ऋषि) परम्परा के क्रम से प्राप्त होती है ।। २ ।।

भवबन्धं घातयन्ती संस्मृता पापहारिणी ।
जपान्मृत्युञ्जयेशानि ध्याता सर्वार्थसाधिका ।। ३ ।।

यह विद्या संसार बन्धन को काटने वाली हैं और स्मरण करने से समस्त पापों को नष्ट कर देती हैं। हे ईशानि ! इनके मन्त्र के ज़प से मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है और ध्यान करने पर तो सर्वार्थ साधिका हैं ही ।। ३ ।।

दुःखदौर्भाग्यदारिद्र्यभयघ्नी पूजिता भवेत् ।
विघ्नौघशमनी चैव हवनान्नात्र संशयः ।। ४ ।।

पूजा करने से यह दुःख दौर्भाग्य तथा दारिद्र्य का विनाश करने वाली हैं बहुत क्या कहें ? हवन करने से समस्त विघ्न समूहों को नष्ट कर देती हैं इसमें संशय नहीं ॥ ४ ॥

पृथग्बीजत्रयस्याहं साधनं कथयामि ते ।
शुभ्राम्बरपरीधानो गन्धकर्पूरमण्डनः ॥ ५ ॥
मुक्ताफलस्फुरद्रूपभूषणः शुभ्रमाल्यधृत् ।
शुभ्रमन्दिरसंविष्टो ब्रह्मचर्यसमन्वितः ॥ ६ ॥

हे प्रिये ! भगवती त्रिपुराम्बा के तीनों बीजों की आपसे अलग–अलग साधन विधि कहता हूँ। साधक शुभ्र वर्ण का अम्बर धारण कर, इत्रादि सुगन्ध द्रव्यों से तथा कर्पूर चूर्ण के लेप से सुशोभित होकर मोती की माला से देदीप्यमान अङ्गों में शुभ्र माला धारण किये हुए ब्रह्मचर्य समन्वित हो शुभ्र वर्ण वाले भगवती के मन्दिर में प्रवेश करे ॥ ५–६ ॥

पूजयेच्छुभ्रकुसुमैर्नैवेद्यमपि सूज्ज्वलम् ।
पायसं घृतसंपन्नं तथाऽमृतफलौदनम् ॥ ७ ॥
घृतमोदकसंपन्नं नानाशुभ्रान्नपूरितम् ।
नैवेद्यं दर्शयेद्देव्यै वागीश्वर्यै सुरेश्वरि ॥ ८ ॥

हे सुरेश्वरि ! शुभ्र पुष्पों से भगवती की पूजा कर, उज्ज्वल वर्ण वाले घृत संपन्न पायस अमृत के समान मीठे फल, ओदन एवं घी के बने लड्डू और इसी प्रकार अनेक शुभ्रवर्ण वाले अन्नों से पूर्ण पदार्थ भगवती वागीश्वरी को निवेदित करे ॥ ७–८ ॥

उपचारैः सुशुभ्रैश्च साधयेन्मोक्षवाङ्मयम् ।
वाग्भवाख्यां जपेद्विद्यां वागीशीं संस्मरन्बुधः ॥ ९ ॥
कर्पूरधवलां शुभ्रपुष्पाभरणभूषिताम् ।
अत्यन्तशुभ्रवसनां वज्रमौक्तिकभूषणाम् ॥ १० ॥

साधक इस प्रकार शुभ्र उपचारों से वाङ्मय मोक्ष देने वाली भगवती को प्रसन्न करे। फिर वागीश्वरी का स्मरण करते हुए वाग्भवा विद्या का जप करे । जिनका वर्ण कपूर के समान श्वेत है, जो शुभ्र पुष्प तथा शुभ्र आभूषणों से विभूषित है जो वज्र तथा मोती के आभूषण से भूषित तथा अत्यन्त शुभ्र वस्त्रों से अलंकृत हैं, उन वागीशी का ध्यान करना चाहिए ॥ ९–१० ॥

मुक्ताफलामलमणिजपमालालसत्कराम् ।
पुस्तकं वरदानं च दधतीमभयप्रदाम् ॥ ११ ॥

एवं ध्यायेन्महेशानि सर्वविद्याधिपो भवेत् ।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं स्रवत्पीयूषवर्षिणीम् ॥ १२ ॥

जिनके हाथ मोतियों एवं स्फटिक मणि की जप माला से शोभित हैं, जो पुस्तक, वर और अभयमुद्रा धारण की हुई हैं, हे महेशानि! जो मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त चूते हुए अमृत की वर्षा करनी वाली हैं, उन भगवती वाङ्मयीदेवता का जो साधक ध्यान करता है वह विद्याओं का अधिपति बन जाता है ॥ ११–१२ ॥

तस्माज्ज्योतिर्मयीं ध्यायेज्जिह्वां दीपस्वरूपिणीम् ।
पाषाणेन समो वाऽपि मूर्खो जीवसमो भवेत् ॥ १३ ॥

इसलिए ज्योतिर्मयी एवं दीप स्वरूपिणी वागीश्वरी का ध्यान अवश्य करे। ऐसा करने वाला साधक पत्थर के समान कितना भी वज्रमूर्ख हो बृहस्पति के समान वाग्मी हो जाता है ॥ १३ ॥

अथ कामकलाशक्तिसाधकः परमेश्वरि ।
रक्तालंकारसुभगो रक्तगन्धानुलेपनः ॥ १४ ॥

रक्तवस्त्रावृतः सम्यङ्मध्ये कामकलात्मना ।
रक्तपुष्पैश्च विविधैः कुङ्कुमादिभिरर्चयेत् ॥ १५ ॥

हे परमेश्वरि ! काम कला शक्ति का उपासक रक्तालंकार से सुशोभित, रक्त गन्ध से अनुलिप्त एवं रक्त वस्त्र धारण किये हुए, भले लोगों के बीच काम कला प्रदर्शित करते हुए, अनेक प्रकार के रक्त पुष्पों सें तथा रक्त कुङ्कुमों से भगवती कामेश्वरी का अर्चन करे ॥ १४–१५ ॥

मूलादिब्रह्मपर्यन्तं स्फुरद्दीपस्वरूपिणीम् ।
बन्धूककुसुमाकारकान्तिभूषणभूषिताम् ॥ १६ ॥

जो मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त जाज्वल्यमान दीप के समान स्वरूप वाली बन्धूक पुष्प के समान कान्तिमान् तथा भूषणों से भूषित हैं ॥ १६ ॥

इक्षुकोदण्डपुष्पेषुवरदाभयसत्कराम् ।
तदीयकायसिन्दूरभरितं भुवनत्रयम् ॥ १७ ॥

चिन्तयेत्परमेशानि त्रैलोक्यं मोहयेत्क्षणात् ।
राजानो वशमायान्ति पन्नगा राक्षसाः सुराः ॥ १८ ॥

जिनके हाथ ऊख के धनुष, पुष्प के बाण, वर तथा अभय मुद्रा से शोभा संपन्न है, हे परमेशानि ! जो इस प्रकार कामेश्वरी भगवती का ध्यान करता है, वह क्षण मात्र में सारी त्रिलोकी को मोहित कर लेता है और राजा, पन्नग, राक्षस तथा देवगण उसके वशीभूत हो जाते हैं ॥ १७–१८ ॥

कन्दर्प इव देवेशि योषितां मानहारकः ।
मनश्चिन्तितयोषित्तु दासीव वशगा भवेत् ॥ १९ ॥

हे देवेशि ! कामेश्वरी का इस प्रकार ध्यान करने वाला कामदेव के समान स्त्रियों के मान को भङ्ग करने वाला हो जाता है तथा मनोभिलषित स्त्री दासी के समान वशीभूत हो जाती है ॥ १९ ॥

चलच्चलेन्दुसंकाशां तरुणारुणविग्रहाम् ।
चिन्तयेद्योषितां योनौ क्षोभयेत्सुरसुन्दरीः ॥ २० ॥
किं पुनर्मानुषीर्देवि त्रैलोक्यमपि मोहयेत् ।

यदि स्त्री की योनि में अरुण विग्रह वाली, चञ्चल चन्द्रमा के समान युवती भगवती का ध्यान करे तो वह अप्सराओं को भी क्षुब्ध कर देता है, हे देवि ! फिर मानुषी स्त्रियों की तो बात ही क्या है ? वह समस्त त्रिलोकी को भी मोहित करने में समर्थ हो जाता है ॥ २०–२१ ॥

एषैव चिन्तिता देवी सिन्दूराभा हृदि क्षणात् ॥ २१ ॥
आकर्षयेत्तदा शीघ्रं रम्भां वाऽपि तिलोत्तमाम् ।
रक्तवर्णां स्त्रियं ध्यात्वा तदीयसहसत्तमः (?) ॥ २२ ॥
तस्या मूर्ध्नि स्मरेद्बीजान्स्रवत्पीयूषवर्षिणीम् ।
ध्यायन्संमोहयेद्देवि मदनोत्तप्तमानसाम् ॥ २३ ॥

सिन्दूर के समान आभा वाली इन्ही देवी का क्षण मात्र में हृदय में ध्यान करने से साधक रम्भा और तिलोत्तमा को भी आकर्षित करने में समर्थ हो जाता है। हे देवि ! रक्त वर्ण की स्त्री का ध्यान कर उसके मस्तक पर बीज का तथा अमृत की वर्षा करने वाली भगवती का ध्यान करे तो वह बहुत सौन्दर्य–शालिनी स्त्रियों को भी मोहित करनें में समर्थ हो सकता है ॥ २१–२३ ॥

क्षणमात्रेण देवेशि त्रैलोक्यं वशमानयेत् ।
एतत्कामकलाध्यानात्पञ्च कामा वरानने ॥ २४ ॥
मोहयन्ति जगत्सर्वं प्रयोगं शृणु पार्वति ।
पूर्वोक्तकामा देवेशि ज्ञातव्याः पञ्चसंज्ञकाः ॥ २५ ॥

हे देवेशि ! ऐसा साधक क्षण मात्र में सारी त्रिलोकी को वशीभूत कर लेता है। हे वरानने ! इन कामकला के ध्यान से पूर्वोक्त पाँच काम सारे जगत् को मोहित कर लेते हैं। हे पार्वति ! अब उनके प्रयोग की विधि सुनिए। हे देवेशि ! पूर्व में कहे गए पञ्च कामों के नाम जान लेना चाहिए ।। २४–२५।।

विदर्भ्याद्येन कामेन मन्मथान्तर्गतं कुरु ।
कन्दर्पसंपुटं कृत्वा कोणगर्भगतं ततः ।। २६ ।।

मकरध्वजसंज्ञं तु सर्वमेतद्वरानने ।
मीनकेतुगतं कुर्यान्मोहयेज्जगतीमिमाम् ।। २७ ।।

आद्य काम से मन्त्र को अनुस्यूत कर उसे मन्मथ के अन्तर्गत करे, फिर उसे कन्दर्प के नाम से संपुटित करें। तदनन्तर मकरध्वज नाम का कोणों के गर्भ में करे, फिर हे वरानने ! इसको भी मीनकेतु के अन्तर्गत करें तो सारी जगती को मोहित कर लेता है ।। २६–२७ ।

त्रैलोक्यमोहनं नाम योगोऽयं परिकीर्तितः ।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि शक्तिबीजस्य साधनम् ।। २८ ।।

यह त्रैलोक्यमोहन नामक योग कहा गया है। हे देवि अब शक्ति बीज के साधन का प्रकार कहता हूँ; सुनिए ।। २८ ।।

शक्तिबीजस्य साधनम्

सृष्टिसंहारपर्यन्तं शरीरे चिन्तयेत्पराम् ।
स्रवत्पीयूषधाराभिर्वर्षन्तीं विषहारिणीम् ।। २९ ।।

हेमप्रभाभासमानां विद्युन्निकरसुप्रभाम् ।
स्फुरच्चन्द्रकलापूर्णकलशं वरदाभयौ ।। ३० ।।

ज्ञानमुद्रां च दधतीं साक्षादमृतरूपिणीम् ।
ध्यायन्विषं हरेन्मन्त्री नानाकारव्यवस्थितम् ।। ३१ ।।

साधक को शरीर में सृष्टि न्यास से लेकर संहार न्यास पर्यन्त पराशक्ति का ध्यान करना चाहिए। अमृत धारा की वर्षा करती हुई विषहारिणी, सुवर्ण के समान भासमाना, बिजली समूहों के समान चमकीली, चन्द्र कलापूर्ण, कलश, वरद, अभय एवं ज्ञानमुद्रा धारण की हुई साक्षात् अमृत स्वरूपा परा भगवती का ध्यान करने से मन्त्रज्ञ साधक नाना प्रकार के रूप में व्यवस्थित विष को दूर कर देता हैं ।। २९–३१।।

एतस्याः स्मरणाद्देवि नीलकण्ठत्वमागतः ।
अहं मृत्युञ्जयो भूत्वा विचरामि जले स्थले ।। ३२ ।।

हे देवि! इनके स्मरण करने से मैं हालाहल विष पी कर भी नील कण्ठ के रूप में विख्यात हो गया, किं बहुना मृत्यु पर विजय प्राप्त कर जल एवं स्थल में सर्वत्र निर्भय होकर घूमता हूँ ।। ३२ ।।

वैनतेयसमो मन्त्री विषभारसहस्रनुत् ।
भूतप्रेतपिशाचांश्च नाशयेद्रोगसंचयम् ।। ३३ ।।

इस तरह ध्यान करने वाला मन्त्री गरुड़ के समान सहस्रों भार के विष का अपनोदन करने में समर्थ हो जाता है वह भूत प्रेत पिशाचों का तथा रोग समूहों का नाश कर देता है ।। ३३ ।।

चातुर्थिकज्वरान्सर्वानपस्मारांश्च नाशयेत् ।
अथ त्रिकूटा सम्पूर्णा महात्रिपुरसुन्दरी ।। ३४ ।।
चिन्तिता साधकस्याऽऽशु त्रैलोक्यवशकारिणी ।

वह चातुर्थिक ज्वरों तथा अपस्मार समूहों को भी नष्ट कर देता है। इसके बाद संपूर्ण त्रिकूटा महात्रिपुर सुन्दरी का ध्यान करने वाले साधक के वश में समस्त त्रिलोकी को वह वश में करा देती है ।। ३४–३५ ।।

क्रमेण नाभिहृद्वक्त्रमण्डलस्थाऽरुणप्रभा ।। ३५ ।।
पद्मरागमणिस्वच्छा चिन्तनात्सुरवन्दिते ।
तस्याष्टगुणमैश्वर्यं सौभाग्यं च प्रजायते ।। ३६ ।।

क्रमशः नाभि, हृदय तथा मुख मण्डल में अरुणा, पद्मरागमणि निभा स्फटिक मणि के समान स्वच्छा का ध्यान करने वाले साधक को, हे सुरवन्दिते ! यह भगवती, अष्टगुण युक्त ऐश्वर्य तथा सौभाग्य प्रदान करती है ।। ३५–३६ ।।

तन्नाम संस्मरन्मन्त्री योगिनीनां भवेत्प्रियः ।
मातृचक्रं तस्य काये तेन सार्धं सुखी भवेत् ।। ३७ ।।

जिसके नाम मात्र का स्मरण करने से साधक योगिनियों का प्रिय बन जाता है, जिसके शरीर में यह समस्त मातृचक्र हैं उसके स्मरण के साथ ही साधक सुखी हो जाता है ।। ३७ ।।

पुत्रवान् देवदेवेशि मन्त्री ध्यानान्न संशयः ।
यदा चक्रस्थिता पूर्णा खेचरी सिद्धिदायिनी ॥ ३८ ॥

चतुःषष्टिर्यतः कोट्यो योगिनीनां महौजसाम् ।
चक्रमेतत्समाराध्य संस्थिता वीरवन्दिते ॥ ३९ ॥

हे देवदेवेशि ! भगवती के ध्यान मात्र से मन्त्रज्ञ पुत्रवान् हो जाता है इसमें संशय नहीं। हे वीरवन्दिते ! इस चक्र के समाराधन से खेचरी सिद्धिदायिनी होकर उसमें स्थित हो जाती हैं तथा जिससे उत्पन्न हुई महान् ओजसम्पन्न ६४ करोड़ योगिनियाँ जिसका आराधन कर उसमें स्थित हो गई है ॥ ३८–३९ ॥

आदौ संबन्धिनि पदे बीजाष्टकं बहिः ।
कलां ध्यात्वाऽङ्गनासङ्गे कामराज इवापरः ॥ ४० ॥

सर्वप्रथम उसके सम्बन्धी अङ्गना सङ्ग में (काम) कला का ध्यान करे और बाहर बीजाष्टक का ध्यान कर मन्त्रज्ञ साधक अपर कामदेव के समान शोभा संपन्न हो जाता है ॥ ४० ॥

पाशाङ्कुशधनुर्बाणैर्मादनैर्मोहयेत्प्रिये ।
त्रैलोक्यसुन्दरीं देवीं किं पुनर्मर्त्ययोषितः ॥ ४१ ॥

हे प्रिये ! जब मादकता उत्पन्न करने वाले पाश, अङ्कुश, धनुष एवं बाण का ध्यान करने से त्रैलोक्यसुन्दरी देवी को भी साधक मोहित कर लेता है तब मानुषी स्त्रियों की गणना ही क्या है ॥ ४१ ॥

तथैव शक्तिसंबन्धशस्त्रैस्तन्मयविग्रहः ।
सिद्धगन्धर्वदेवांश्च वशी कुर्यान्न संशयः ॥ ४२ ॥

इसी प्रकार शक्ति से सम्बन्ध रखने वाले शस्त्रों का ध्यान कर तन्मयशरीर वाला साधक सिद्ध, गन्धर्व और देवताओं को भी मोहित कर लेता है इसमें संशय नहीं ॥ ४२ ॥

एतामाराध्य देवेशि कामः सौभाग्यसुन्दरः ।
हरिश्च परमेशानि त्रिपुरासाधनात्प्रिये ॥ ४३ ॥

त्रैलोक्यमोहनो भूत्वा स्थितिकर्ताऽभवत्सदा ।

हे देवेशि ! इनकी आराधना कर कामदेव सौभाग्य सुन्दर बन गए और हे प्रिये ! भगवान् विष्णु त्रिपुरा की आराधना से त्रिलोकी को मोहित कर जगत् के स्थिति कर्त्ता हो गए ॥ ४३ ॥

एतत्समाराधनेन ब्रह्मा सृष्टिकरोऽभवत् ।
चन्द्रसूर्यौ वरारोहे सृष्टिसंहारकारकौ ॥ ४४ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे त्रिपुराबीजत्रयसाधनविधि–
नामैकोनविंशः पटलः ॥ १९ ॥

इनकी आराधना से ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता बन गए और हे वरारोहे ! इनकी आराधना से चन्द्रमा और सूर्य सृष्टि के संहार कारक बन गये॥ ४४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'श्रीबीजत्रयसाधन विधि' नामक एकोनविंश पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १९ ॥

अथ विंशः पटलः

श्रीदेव्युवाच –

जपहोमविधिं ब्रूहि येन विघ्नं विनाशयेत् ।
साधकानां हिताय त्वं वद शंकर सुव्रत ॥ १ ॥

श्री देवी ने कहा – हे शंकर ! ह सुव्रत ! अब साधकों के हित के लिए त्रिपुरा देवी की जप एवं होम विधि कहिए, जिससे वह समस्त विघ्नों को विनष्ट कर देवे ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच –

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि जपहोमविधिं प्रिये ।
चक्रं समर्चयेद्देवि सकलं नियतव्रतः ॥ २ ॥

ईश्वर ने कहा – हे देवि ! हे प्रिये ! अब मैं जप होम का विधान कहता हूँ आप उसे सुनिए । हे देवि ! साधक व्रत में नियत रूप से स्थित हो कर चक्र की समाराधना करे ॥ २ ॥

बाह्यं मध्यगतं वाऽपि मध्यं वा चक्रमर्चयेत् ।
उपचारैः समाराध्य सहस्रं प्रजपेच्छुचिः ॥ ३ ॥

साधक बाह्य, मध्य में रहने वाले अथवा मध्य चक्र की अर्चना करे और (अन्य) उपचारों द्वारा पूजनादि करके पवित्रतापूर्वक सहस्र संख्या में जप करे ॥ ३ ॥

तदग्रे संस्थितो मन्त्री तदनन्तफलं भवेत् ।
ध्यात्वाऽथ वा चक्रराजमत्र पूजासमन्वितम् ॥ ४ ॥

जपारम्भं सुधीः कुर्यान्महापातकहा भवेत् ।
निगदेनोपांशुना वा मानसेनाथ वा जपेत् ॥ ५ ॥

यह जप साधक यदि भगवती के आगे स्थित होकर करता है, तो उसे अनन्त फल की प्राप्ति होती है। चक्रराज की पूजा के सहित उनका ध्यान कर सुधी साधक जपारम्भ करे। ऐसा करने से वह महापातकों को विनष्ट कर देता है। निगद (शब्दोच्चारण) उपांशु अथवा मानस विधि के अनुसार जप करना चाहिए ॥ ४–५ ॥

निगदः परमेशानि स्पष्टवाचा निगद्यते ।
अव्यक्तस्तु स्फुरद्वक्त्र उपांशुः परिकीर्तितः ॥ ६ ॥

हे परमेशानि ! जो जप स्पष्ट वाणी में किया जाता है वह जप 'निगद' कहा जाता है और जिसमें मुख हिलता रहें किन्तु वाणी अव्यक्त (अस्पष्ट) हो, वह 'उपांशु' जप कहा जाता है ॥ ६ ॥

मानसस्तु वरारोहे चिन्तनाक्षररूपवान् ।
निगदेन तु यज्जप्तं लक्षमात्रं वरानने ॥ ७ ॥

उपांशुस्मरणेनैव तुल्यं भवति शैलजे ।
उपांशु लक्षमात्रं तु यज्जप्तं कमलेक्षणे ॥ ८ ॥

मानसोच्चारणात्तुल्यमेकेन परमेश्वरि ।
मुद्रासंनद्धदेहः सन्पूर्वोक्तध्यानयोगतः ॥ ९ ॥

लक्षमात्रं जपेद्यस्तु महापापैः प्रमुच्यते ।
लक्षद्वयेन पापानि सप्तजन्मभवान्यपि ॥ १० ॥

हे वरारोहे ! जिसमें अक्षरों का चिन्तन हो, मुंह न हिले और न वाणी व्यक्ताव्यक्त हो, वह जप 'मानस' कहा जाता है। हे वरानने ! हे शैलजे ! निगद स्वरूप से एक लाख की संख्या में किया गया जप एक बार स्मरण के बराबर होता है। हे कमलेक्षणे ! उपांशु विधि से लाख संख्या में किया गया जप, हे परमेश्वरि! मानस जप द्वारा किये गये केवल एक संख्या के जप के बराबर होता है। अपने देह को मुद्रा के अनुरूप सन्नद्ध कर पूर्वोक्त रूप से ध्यान कर लक्ष मन्त्र जप करने से महापापों से भी छुटकारा प्राप्त हो जाता है और दो लाख जप करने से ७ जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ७–१० ॥

महापातकमुख्यानि नाशयेन्नात्र संशयः ।
ततो लक्षत्रयं जप्त्वा यस्तु मन्त्रं कुलेश्वरि ॥ ११ ॥

महापातककोटीस्तु नाशयेन्नात्र संशयः ।
चतुर्लक्षं जपेद्देवि स हि वागीश्वरो भवेत् ॥ १२ ॥

इतना ही नहीं, ऐसा साधक पातकों में सर्वश्रेष्ठ महापातकों को भी नष्ट कर देता है इसमें संशय नहीं । हे कुलेश्वरि ! इसके बाद जो तीन लाख जप करता है वह करोडों की संख्या में महापातकों को नष्ट कर देता है इसमें संशय नहीं। हे देवि ! जो ८ लाख की संख्या में जप कर लेता है वह साक्षात् वागीश्वर हो जाता है ॥ ११–१२ ॥

कुबेर एव देवेशि पञ्चलक्षान्न संशयः ।
षड्लक्षजपमात्रेण महाविद्याधरो भवेत् ॥ १३ ॥

हे देवेशि ! पाँच लाख जप करने वाला साधक कुबेर के समान हो जाता है, इसमें संशय नहीं । मात्र केवल ६ लाख जप करने से वह महाविद्याधर हो जाता है ॥ १३ ॥

सप्तलक्षजपान्मन्त्री खेचरीमेलको भवेत् ।
अष्टलक्षजपान्मन्त्री देवपूज्यो भवेन्नरः ॥ १४ ॥

७ लाख की संख्या में जप करने वाला खेचरी से मिलने वाला हो जाता है। आठ लाख जप करने वाला मन्त्रज्ञ मनुष्य देवपूज्य हो जाता है ॥ १४ ॥

अणिमाद्यष्टसिद्धीनां नायको भवति प्रिये ।
वशगास्तस्य राजानो योषितस्तु विशेषतः ॥ १५ ॥

हे प्रिये ! उपर्युक्त संख्या में जप करने वाला अणिमादि अष्ट सिद्धियों का नायक बन जाता है। राजा उसके वशवर्त्ती हो जाते हैं। स्त्रियाँ तो विशेष रूप से वशवर्ती हो जाती है ॥ १५ ॥

नवलक्षप्रमाणं तु जपेत् त्रिपुरसुन्दरीम् ।
रुद्रमूर्तिः स्वयं कर्ता हर्ता साक्षान्न संशयः ॥ १६ ॥

जो नवलक्ष की संख्या में त्रिपुरसुन्दरी का जप करता है वह साक्षात् रुद्रमूर्त्ति हो कर स्वयं कर्त्ता धर्त्ता हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ १६ ॥

सर्ववन्द्यः सदा सर्वस्वस्थः सौभाग्यभाग्भवेत् ।
यत्र वा कुवचिद्भागे लिङ्गं यत्पश्चिमामुखम् ॥ १७ ॥

स्वयंभूबाणलिङ्गं वा वृषशून्यं जलस्थितम् ।
पश्चिमायतनं चापि इतरद्वाऽपि सुव्रते ॥ १८ ॥

ऐसा मन्त्रज्ञ साधक सर्ववन्द्य, सदा सर्वस्वस्थ और सौभाग्यशाली होता है। जहाँ कहीं भी पश्चिमाभिमुख लिङ्ग हो, अथवा स्वयम्भूलिङ्ग अथवा बाणलिङ्ग हो, शूद्र का निवास न हो, सजल स्थान हों, अथवा पश्चिमायतन हों, अथवा

हे सुव्रते ! इतर दिशा वाला भी आयतन हों (साधक को ऐसे ही स्थान पर जप करना चाहिए) ॥ १७–१८ ॥

शक्तिक्षेत्रेषु गङ्गायां नद्यां पर्वतमस्तके ।
पवित्रे सुस्थले देवि जपेद्विद्यां प्रसन्नधीः ॥ १९ ॥

हे देवि! शक्ति क्षेत्रों में, गङ्गादि नदियों में, पर्वत के ऊपरी भाग में अथवा अत्यन्त पवित्र सुन्दर स्थान में प्रसन्न चित्त होकर इन महाविद्या के जप का विधान कहा गया है ॥ १९ ॥

तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं साक्षाद्देवीस्वरूपकः ।
ततो भवति विद्येयं त्रैलोक्यवशकारिणी ॥ २० ॥

ऐसे स्थानों में साक्षाद् देवी का स्वरूप बना कर लक्ष संख्या में जप करें तब यह विद्या त्रैलोक्यवशकारिणी होती है ॥ २० ॥

एवं जपेद्यथाशक्ति होमकर्म समारभेत् ।
किंशुकैर्हवनं कुर्याद्दशांशेन वरानने ॥ २१ ॥

इसी प्रकार यथाशक्ति जप करने के पश्चात् होम कार्य का आरम्भ करना चाहिए । तदनन्तर, हे वरानने ! पलाश के पुष्पों से जप का दशांश होम करना चाहिए ॥ २१ ॥

कुसुम्भकुसुमैर्देवि मधुत्रयविमिश्रितैः ।
विधिनोक्तप्रकारेण विघ्नौघं नाशयेत्क्षणात् ॥ २२ ॥

हे देवि ! अथवा त्रिमधु (घृत शर्करा मधु, अथवा दूध शर्करा मधु) से मिश्रित कुसुम्भ के पुष्पों से विधान पूर्वक होम करने से तत्क्षण विघ्नों के समूह नष्ट हो जाते हैं ॥ २२ ॥

सर्वकामप्रदा राज्यभुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
कुण्डं विरच्य विधिवत्सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ २३ ॥

भगवती सर्व कामफलप्रदा, राज्य–भुक्ति–मुक्ति फलप्रदा है । होम के लिए सर्वलक्षणलक्षित कुण्ड का निर्माण विधानपूर्वक करना चाहिए ॥ २३ ॥

कुण्डनिर्माणविधानम्

योनिकुण्डं वाक्त्रदं स्यादाकृष्टिकरणं भगम् ।
लक्ष्मीप्रदं वर्तुलं स्याच्चन्द्रार्धे हि त्रयं भवेत् ॥ २४ ॥

योनिकुण्ड वाक्प्रद होता है । भगकुण्ड आकृष्टि कारक होता है एवं वर्त्तुलकुण्ड लक्ष्मीप्रद होता है तथा अर्धचन्द्राकार कुण्ड तीनों प्रकार का फल प्रदान करता है ।। २४ ।।

नवत्रिकोणकुण्डं तु खेचरीसिद्धिदायकम् ।
चतुरस्त्रं शान्तिलक्ष्मीपुष्टिवृद्ध्यम्बुकारणम् ।। २५ ।।

षडस्त्रं सर्वसंपत्तिधनसौभाग्यवर्धनम् ।
पद्माङ्कं सर्वसंपत्तिकारणं सुरवन्दिते ।। २६ ।।

नवत्रिकोण कुण्ड खेचरी सिद्धिदायक होता है, चतुरस्त्र कुण्ड शान्ति, लक्ष्मी, पुष्टि, बुद्धि तथा अम्बु वृष्टि(?) का कारण है। षडस्त्र कुण्ड सर्वसंपत्ति धन तथा सौभाग्य का अभिवर्धन करता है । जबकि पद्माङ्क कुण्ड. हे सुरवन्दिते ! सर्वसंपत्ति का कारण है ।। २५–२६ ।।

अष्टपत्रं वरारोहे समीहितफलप्रदम् ।
एतानि सर्वकार्याणि चतुरस्त्रे भवन्ति हि ।। २७ ।।

हे वरारोहे ! अष्टपत्र कुण्ड अभिलषित फल प्रदान करने वाला होता है। ये सभी कार्य चौकोर कुण्ड के निर्माण से भी सिद्ध हो जाते हैं ।। २७ ।।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि चतुरस्त्रस्य लक्षणम् ।
चतुरस्त्रं समं हस्तमात्रं विरचयेत्सुधीः ।। २८ ।।

हे देवि ! अब चौकोर कुण्ड का लक्षण बतलाता हूँ, इसको सुनिए। बुद्धिमान् साधक चतुरस्त्र कुण्ड एक हाथ लम्बा और एक हाथ चौडा, मेखला सहित निर्माण करे ।। २८ ।।

मेखलासहितं देवि शृणु लक्षणमुत्तमम् ।
पञ्चदशाङ्गुलं खातं रमणीयं यथा भवेत् ।। २९ ।।

अब उसके उत्तम लक्षण को सुनिए। उसका खात १५ अङ्गुल का होना चाहिए जो देखने में रमणीय हो ।। २९ ।।

कण्ठदेशेऽङ्गुलं त्यक्त्वा नवाङ्गुलसमुन्नता ।
षडङ्गुलप्रविस्तारा मेखला प्रथमा भवेत् ।। ३० ।।

द्वितीया मेखला देवि चतुरङ्गुलविस्तरा ।
सप्ताङ्गुलोच्चा कर्तव्या तृतीया मेखला ततः ।। ३१ ।।

पञ्चाङ्गुलोच्चा देवेशि विस्तारे द्व्यङ्गुला भवेत् ।

वेदाग्निपक्षविस्तारा कर्तव्या मेखला प्रिये ॥ ३२ ॥

कण्ठ देश में एक अङ्गुल स्थान छोड़कर ९ अङ्गुल ऊँची, ६ अङ्गुल चौड़ी प्रथम मेखला होती है । फिर हे देवि ! चार अङ्गुल चौड़ी, ७ अङ्गुल ऊँची दूसरी मेखला होती है । तदनन्तर हे देवेशि ! पाँच अङ्गुल ऊँची, दो अङ्गुल चौड़ी तृतीया मेखला बनानी चाहिए अथवा हे प्रिये ! प्रथम, द्वितीय और तृतीय मेखला चौड़ाई में ४ अङ्गुल तीन अङ्गुल और दो अङ्गुल में बनानी चाहिए ॥ ३०—३२ ॥

कर्तव्यमथ वा खातं द्वादशाङ्गुलसंमितम् ।
द्वादशाष्टतदर्धैस्तु मेखला देवि कारयेत् ॥ ३३ ॥
चतुरङ्गुलमायामो तथा चैवोच्चता भवेत् ।
कुण्डस्य पश्चिमे भागे योनिं कुर्यात्सुलक्षणाम् ॥ ३४ ॥

अब इस विषय में अन्य पक्ष कहते हैं — हे देवि ! अथवा १२ अङ्गुल का खात करे १२, ८ और उसका आधा ४ अङ्गुल लम्बाई में मेखला बनानी चाहिए अथवा चार अङ्गुल चौड़ाई तथा चार अङ्गुल ऊँचाई की मेखला बनानी चाहिए। इसके बाद कुण्ड की पश्चिम दिशा में सुलक्षण योनि का निर्माण करना चाहिए ॥ ३३—३४ ॥

द्वादशाङ्गुलदीर्घां तु तथाऽष्टाङ्गुलविस्तराम् ।
अश्वत्थपर्णरूपां तु त्रिकोणां वा विचक्षणः ॥ ३५ ॥

योनि १२ अङ्गुल लम्बी तथा आठ अङ्गुल चौड़ी बनानी चाहिए। विचक्षण पुरुष पीपल के पत्ते के समान अथवा त्रिकोण योनि का निर्माण करे ॥ ३५ ॥

अथ चैकतमे पक्षे शृणु वक्ष्ये हि लक्षणम् ।
अष्टादशाङ्गुलं खातं कुण्डं कुर्याद्विचक्षणः ॥ ३६ ॥

अब किसी एक मत के अनुसार मैं कुण्ड का लक्षण कहता हूँ, उसे सुनिए। विचक्षण पुरुष आठ अङ्गुल खात वाला कुण्ड बनावें ॥ ३६ ॥

चतुरङ्गुलविस्तारा षडङ्गुलसमुन्नता ।
मेखला पूर्ववत्कार्या योनिश्चापि तथा भवेत् ॥ ३७ ॥

४ अङ्गुल लम्बी तथा ६ अङ्गुल ऊँची मेखला पूर्ववत् बनावे और योनि भी उसी प्रकार की बनावें ॥ ३७ ॥

चतुर्विंशाङ्गुलं कुण्डं त्रिकोणं परितः पृथक् ।
खातं तु पूर्ववत्कुर्यात्कण्ठे हित्वाऽङ्गुलं तथा ॥ ३८ ॥

पूर्ववन्मेखलाः कार्या एकाऽपि च तथा भवेत् ।
योनिस्तद्वन्महेशानि त्रिकोणं परिकीर्तितम् ॥ ३९ ॥

इसके अतिरिक्त अलग से त्रिकोण कुण्ड चारों ओर २४ अङ्गुल का बनावे और खात पूर्ववत् ६ अङ्गुल बनावें । कण्ठ से १ अङ्गुल छोड़कर पूर्ववत् मेखला बनानी चाहिए । यह मेखला त्रिकोण कुण्ड में एक ही होती है। हे महेशानि ! उस कुण्ड की योनि भी त्रिकोण ही होनी चाहिए ॥ ३८–३९ ॥

चतुरस्रेण कुण्डेन समं कुण्डं यथा भवेत् ।
तथा परिमितं कुर्यात्त्रिकोणादिकमद्रिजे ॥ ४० ॥

चौकोर चतुरस्र कुण्ड चारों ओर बराबर होना चाहिए । हे अद्रिजे ! त्रिकोण कुण्ड चतुरस्र कुण्ड की अपेक्षा छोटा होना चाहिए ॥ ४० ॥

योनिकुण्डं योनिरूपं भगाङ्कं भगरूपकम् ।
कुर्यात्त्रिकोणवद्देवि चतुरस्रस्य संख्यया ॥ ४१ ॥
चतुर्हस्तमितं सूत्रं वर्तुलाकृति योजयेत् ।
वर्तुलं रचयेत्तेन खननं पूर्ववद्भवेत् ॥ ४२ ॥

हे देवि ! योनि कुण्ड योनि के रूप में, भगकुण्ड भग के रूप में, त्रिकोण कुण्ड त्रिकोणवत् होना चाहिए । चतुरस्र कुण्ड संख्या में चारो ओर बराबर एक–एक हाथ के क्रम से कुल चार हाथ का होना चाहिए । वर्त्तुल कुण्ड साधक को सूत्र के द्वारा नाप कर वर्त्तुलाकार बनाना चाहिए और उसे पूर्ववत् खनना चाहिए ॥ ४१–४२ ॥

मेखला पूर्ववद्योनिस्तथैव परिकीर्तिता ।
अर्धचन्द्रं तु कुण्डं हि परिवेषक्रमेण च ॥ ४३ ॥
चतुर्हस्तमितं कुर्यादर्धचन्द्रं यथा भवेत् ।
मेखला योनिसहिता पूर्ववत्परमेश्वरि ॥ ४४ ॥

मेखला और योनि जैसा पूर्व में कह आये हैं वैसे ही बनानी चाहिए। अर्द्धचन्द्र कुण्ड गोले की आकृति में चार हाथ का ऐसा बनाना चाहिए जिससे उसकी आकृति अर्द्धचन्द्राकार बन जावें । हे परमेश्वरि ! योनि सहित मेखला पूर्ववत् बनानी चाहिए ॥ ४३–४४ ॥

नवत्रिकोणकुण्डं तु कथयामि वरानने ।
मध्यचक्रेण सदृशं कुण्डं कुर्याद्विचक्षणः ॥ ४५ ॥

हे वरानने ! अब नव त्रिकोण कुण्ड कहता हूँ, विचक्षण साधक मध्य चक्र के सदृश कुण्ड का निर्माण करे ॥ ४५ ॥

मध्यत्रिकोणं देवेशि त्रिकोणमिव पूर्ववत् ।
मेखलारहितं तेन नवकोणं यथा भवेत् ॥ ४६ ॥

हे देवेशि ! मध्य त्रिकोण पूर्ववत् त्रिकोण के समान इस प्रकार मेखला रहित बनावें जिस प्रकार वह नव कोण बन जावें ॥ ४६ ॥

सन्धिभेदक्रमेणैव ततः कोणाष्टकं भवेत् ।
खनेत्तत्तत्प्रकारेण गणितेन यथाक्रमम् ॥ ४७ ॥

ऐसा करने से सन्धिभेद के क्रम से ८ कोण निष्पन्न हो जावेंगे, फिर उसी प्रकार क्रमशः गणित की रीति से (नाप कर) कुण्ड खनना चाहिए ॥ ४७ ॥

मेखलाः पूर्ववत्कार्यास्त्यक्त्वा कण्ठेऽङ्गुलं क्रमात् ।
योनिस्तथैव रचयेत्सर्वसौभाग्यवर्धनी ॥ ४८ ॥

कण्ठ स्थान से १ अङ्गुल स्थान छोड़कर पूर्ववत् मेखला निर्माण करे। सर्व सौभाग्यवर्द्धिनी योनि भी उसी प्रकार की निर्माण करे ॥ ४८ ॥

अष्टपत्रं महेशानि कमलाकृति संभवेत् ।
चतुरस्रस्य मानेन यथा चाष्टदलं भवेत् ॥ ४९ ॥

हे महेशानि ! अष्टपत्र कुण्ड कमल की आकृति का बनाना चाहिए। चतुरस्र के समान मान से जिस प्रकार वह आठ पत्रों वाला बन जावें ॥ ४९ ॥

एकत्र खननं चास्य कुर्यान्नेत्रसुखप्रदम् ।
मेखला पूर्ववत्कार्या पद्माकृतिसुखावहा ॥ ५० ॥

नेत्र को सुख देने वाला एक ही जगह खनन करे। मेखला पूर्ववत् बनावें किन्तु उसकी आकृति पद्म के सदृश सुखदायिनी होनी चाहिए ॥ ५० ॥

योनिस्तथैव देवेशि कुर्यात्सर्वसमृद्धये ।
एवं विरच्य कुण्डं हि होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥ ५१ ॥

हे देवेशि ! सर्वसमृद्धि के लिए साधक को उसी प्रकार योनि का भी निर्माण करना चाहिए। इस प्रकार से कुण्डों का निर्माण करके विचक्षण पुरुष उसमें होम करे ॥ ५१ ॥

दीपस्थानं समाश्रित्य कुण्डस्य रचना भवेत् ।
वर्तुलं रचयेद्देवि कूर्माकृति सुलोचने ॥ ५२ ॥

इन कुण्डों की रचना साधक को दीपस्थान का विचार करते हुए करनी चाहिए । हे देवि ! हे सुलोचने ! दीपक का स्थान गोला, किन्तु कूर्माकार बनाना चाहिए ॥ ५२ ॥

तन्मध्ये नव कोष्ठानि कृत्वा वर्णान्समालिखेत् ।
मध्यकोष्ठे क्षेत्रनाम ततोऽन्यत्र समालिखेत् ॥ ५३ ॥

उसके मध्य में नव कोष्ठक बना कर वर्णों को लिखे । मध्य कोष्ठ में क्षेत्र नाम लिखें उससे अन्यत्र इस प्रकार लिखें ॥ ५३ ॥

स्वरयुग्मं क्रमेणैव दिक्षु चाष्टसु योजयेत् ।
अवर्गः कथितो देवि कवर्गादिकसप्तमम् ॥ ५४ ॥
पूर्वादिक्रमतो देवि कुबेरान्तं ततो लिखेत् ।
लक्षवर्णौ शम्भुकोणे विलिखेत्कूर्मसंज्ञके ॥ ५५ ॥

आठो दिशाओं को क्रमानुसार दो दो के क्रम से १६ स्वरों से युक्त करना चाहिए । अ वर्ग कह दिया गया । हे देवि ! इसी प्रकार क वर्गादि ७ वर्ग पूर्वादि क्रम से उत्तर दिशा पर्यन्त लिखना चाहिए और लक्ष वर्ण कूर्म चक्र के ईशान कोण में लिखना चाहिए ॥ ५४–५५ ॥

यस्मिन्कोष्ठे क्षेत्रनाम तन्मुखं विद्धि पार्वति ।
मुखस्य पार्श्वयोः पाणियुग्मं जानीहि पार्वति ॥ ५६ ॥

हे पार्वति ! जिस कोष्ठ में क्षेत्र का नाम है उसे मुख समझना चाहिए, मुख के दोनों ओर, हे पार्वति ! क्रमशः दोनों हाथ समझना चाहिए ॥ ५६ ॥

ततः पार्श्वद्वयं कुक्षिस्थानं हि सुरवन्दिते ।
ततः पादद्वयं विद्धि चान्ते पुच्छं प्रकीर्तितम् ॥ ५७ ॥

हे सुरवन्दिते ! उसके बाद का दोनों पार्श्व भाग कुक्षि स्थान समझना चाहिए । इसके बाद का भाग दोनों पैर और अन्त में कुक्षि स्थान समझना चाहिए ॥ ५७ ॥

मुखे कार्याणि सिध्यन्ति मनोरथशतानि हि ।
करस्थाने महाक्लेशः सर्वकार्यविनाशकृत ॥ ५८ ॥

मुख भाग पर सैकड़ों मनोरथ वाले कार्य सिद्ध हो जाते हैं और करस्थान पर महाक्लेश होता है जो सारे कार्यों का विनाशक है ॥ ५८ ॥

उदरे दुःखमधिकं पादयोर्हानिरुच्यते ।
पुच्छे तु धनहानिश्च जायते नान्यथा भवेत् ॥ ५९ ॥

उदर पर अधिकाधिक दुःख होता है । पाद स्थान पर हानि उठानी पड़ती है। पुच्छ स्थान पर धनहानि होती है। यह बात झूठी होने वाली नहीं है ।। ५९।।

दीपस्थानं मया प्रोक्तं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
दीपस्थानं पुरे पश्येद्ग्रामे वा विषयेऽपि वा ।। ६० ।।

यत्र कुत्रापि वा पश्येत्कार्यसिद्धिर्भवेत्प्रिये ।
क्षेत्राधिपस्य नाम्ना हि दीपस्थानं विचारयेत् ।। ६१ ।।

हे देवि ! इस प्रकार मैंने दीप स्थान आपसे कहा जो तीनों लोकों में दुर्लभ है। दीप स्थान को पुर में, ग्राम में, अथवा उसके विषय में अथवा जहाँ कहीं भी हो वहाँ देखें तो हे प्रिये ! कार्यसिद्धि होती हैं । क्षेत्राधिप के नाम पर ही दीपस्थान का विचार करना चाहिए ।। ६०—६१ ।।

दीपस्थाने जपं कुर्याद्धोमं च फलदं सदा ।
कुण्डं सुलक्षणं कुर्यादीशाने मण्डपस्य च ।। ६२ ।।

दीप स्थान पर बैठ कर जप करे और होम करे तो वह सर्वदा फल प्रदान करता है, इतना ही नहीं मण्डप के ईशान कोण में सुलक्षण कुण्ड का निर्माण करना चाहिए ।। ६२ ।।

अङ्गुष्ठपर्वमात्रोच्चं वालुकामण्डलं कुरु ।
गोमयेन च संलिप्तभूम्यां सुस्थलरूपकम् ।। ६३ ।।

अंगूठे के पर्व के प्रमाण वाला बालू का मण्डल बनावें और गोमय से लीप कर भूमि को सुन्दर बनाना चाहिए ।। ६३ ।।

तत्र चोल्लेखनं कुर्यात्त्रिरेखाः पश्चिमाः क्रमात् ।
पूर्वाग्रे विलिखेत्पश्चात्तिस्रो रेखाः प्रदक्षिणाः ।। ६४ ।।

उत्तरान्तास्ततो देवि लेखनीं तत्र संक्षिपेत् ।
प्रोक्षणं च ततः कृत्वा सिन्दूरेण ततः परम् ।। ६५ ।।

उस वेदी पर क्रमानुसार पूर्व से पश्चिम तीन रेखा बनावें । यह रेखा पूर्वाग्र लिखे । इसके बाद तीन रेखा दक्षिण से उत्तर की ओर लिखें । हे देवि ! वहीं लेखनी स्थापित करे। उसके बाद जल से, तदनन्तर सिन्दूर से लेखनी का प्रोक्षण करे ।। ६४—६५ ।।

कुङ्कुमेनाथ वा देवि कर्पूररजसाऽथ वा ।
चूर्णेन वा हरिद्राया धान्यपिष्टेन वा प्रिये ।। ६६ ।।

हे देवि! अथवा कुङ्कुम से अथवा कपूर के चूर्ण से अथवा हल्दी के चूर्ण से अथवा हे प्रिये! चावल के पिष्ट से उसे अनुलिप्त करे ॥ ६६ ॥

त्रिकोणं चैव षट्कोणं वसुपत्रं समालिखेत् ।
चतुरस्त्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् ॥ ६७ ॥

इसके बाद त्रिकोण, फिर षट्कोण, फिर अष्टपत्र लिख कर चार द्वारों वाले चतुरस्त्र मण्डल को लिखे ॥ ६७ ॥

मध्ये पुष्पं विनिक्षिप्य त्रिपुरेश्या वरानने ।
ततः स्रुवादिपात्राणां पवित्रीकरणं यजेत् ॥ ६८ ॥

हे वरानने ! फिर त्रिपुरेशी को मध्य में पुष्प समर्पित कर तदनन्तर स्त्रुवादि पात्रों का पवित्रीकरण करे ॥ ६८ ॥

इध्मदूर्वाश्च दर्भाश्च द्विधा कृत्वा वरानने ।
आज्यस्थालीं चरुस्थालीं स्थापयेद्युग्मभेदतः ॥ ६९ ॥

हे वरानने ! समिधा, दूर्वा एवं दर्भ इनको अलग–अलग दो भागों में प्रविभक्त कर आज्य स्थाली एवं चरु स्थाली दोनों को ही अलग–अलग स्थापित करे ॥ ६९ ॥

स्रुवं स्रुचं ततः पश्चात्प्रणीतां प्रोक्षणीं क्रमात् ।
द्वन्द्वशः परमेशानि स्थापयाधोमुखानि च ॥ ७० ॥

इसके बाद स्रुव, स्रचा इसके बाद प्रणीता प्रोक्षणी इन दोनों को, हे परमेशानि ! अधोमुख अलग–अलग स्थापित करें ॥ ७० ॥

अर्घ्यपात्रस्थमुदकं गृहीत्वा प्रोक्षणीं यजेत् ।
त्रिधा चोत्पवनं कृत्वा प्रोक्षयेत्तेन वारिणा ॥ ७१ ॥

तानि सर्वाणि पात्राणि पवित्रीकरणं भवेत् ।
उन्मुखानि ततः कृत्वा बालया चाभिमन्त्रयेत् ॥ ७२ ॥

अर्घ्यपात्र में स्थित जल ले कर प्रोक्षणी को पवित्र करे । फिर उसे तीन बार उत्पवन (ऊपर उठाते हुए) करते हुए उस जल से पूर्व स्थापित सभी यज्ञपात्रों का पवित्रीकरण करें । फिर प्रोक्षणी को अपने सामने रख कर बाला मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करना चाहिए ॥ ७१–७२ ॥

परिस्तीर्य च दूर्वाभिः कुण्डस्य परितः प्रिये ।
पूर्वाग्रमुत्तराग्रं च परिस्तरणमुच्यते ॥ ७३ ॥

स्रुवं गृहीत्वा वामेन करेण सुमुखं ततः ।
दुर्भाङ्कुरेण तद्वक्त्रं पश्चिमात्पूर्वदेशतः ॥ ७४ ॥
त्रिवारं परिमृज्याथाधस्तत्करणमानयेत् ।
उपरिष्टात्ततो देवि यावद्वक्त्रं तु मन्त्रयेत् ॥ ७५ ॥
बालयाऽथ वरारोहे पवित्राणि भवन्ति हि ।
मूलविद्यां समुच्चार्य कुण्डाय नम आलिखेत् ॥ ७६ ॥
अनेन मनुना देवि कुण्डं सम्पूजयेत्सुधीः ।

हे प्रिये ! इसके बाद कुण्ड के चारो ओर पूर्वाग्र उत्तराग्र दूर्वा का परिस्तरण करें इसे ही परिस्तरण कहते हैं। इसके बाद सुन्दर स्रुवा को बायें हाथ में लेकर दर्भाङ्कुर से पश्चिम से पूर्व दिशा पर्यन्त (पीछे से आगे तक) उसके मुख को तीन बार परिमार्जन करे। हे देवि! उसको नीचे की ओर लटका कर ऊपर से नीचे मुख पर्यन्त, हे वरारोहे ! बाला मन्त्र से अभिमन्त्रित करे। इसके बाद पवित्री के द्वारा कुण्ड में 'कुण्डाय नमः' यह मन्त्र लिखे। पुनः इसी मन्त्र से हे देवि ! सुधी साधक कुण्ड का पूजन करे ॥ ७३–७७ ॥

कामेश्वरीं कुण्डमध्ये सकामामृतुसंयुताम् ॥ ७७ ॥
समावाह्य च संपूज्य तद्गर्भे वह्निमानयेत् ।
मूलविद्यानेत्रमन्त्रार्णद्वयेन विलोकयेत् ॥ ७८ ॥
अस्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य संपुटस्थं ततः परम् ।
भ्रामयेत्कुण्डपरितस्त्रिधा दक्षिणतः क्रमात् ॥ ७९ ॥
संपुटादग्निखण्डं तु हुंफडन्तेन संत्यजेत् ।
क्रव्यादंशं कोणभागे राक्षसे वीरवन्दिते ॥ ८० ॥

हे देवि ! इसके बाद ऋतुमती सकामा कामेश्वरी का कुण्ड के मध्य में आवाहन कर उनके गर्भ में अग्नि को उत्पन्न समझे । मूलविद्या तथा नेत्र मन्त्र (नेत्रत्रयाय वौषट्) से उसका अवलोकन करे । अस्त्र मन्त्र (अस्त्राय फट्) इस मन्त्र से संरक्षण करे, फिर संपुट में स्थापित अग्नि को कुण्ड के चारों ओर प्रदक्षिण क्रम से ३ बार घुमावें, फिर हे वीरवन्दिते ! संपुटस्थ अग्नि से 'हुं फट्' इस मन्त्र से अग्नि का कुछ अंश मांसाहारी जन्तुओं के लिए नैर्ऋत्यकोण में निकाल देवें ॥ ७७–८० ॥

कवचेन च संपूज्य जानुभ्यामवनिं गतः ।
कुण्डमध्ये प्रतिष्ठाप्य कामबीजं च वह्नि च ॥ ८१ ॥

मूर्तये नम आलिख्य मनुना पूजयेच्छिवाम् ।
नाभिमण्डलदेशस्थवहन्नाडीपुटक्रमात् ॥ ८२ ॥

कवच मन्त्र (कवचाय हुं) से अग्नि की पूजा कर दोनों घुटनों के बल पृथ्वी पर बैठ कर कुण्ड के मध्य में अग्नि प्रतिष्ठापित करे। फिर काम बीज (क्लीं) और वह्नि बीज (रं) मूर्तये नमः' लिख कर उसी मन्त्र से नाभि मण्डल में रहने वाले नाडी समूहों में (शिवा रूपा) अग्नि का ध्यान करते हुए पूजन करे ॥ ८१–८२ ॥

ज्ञानाग्निं बाह्यवह्निं च एकीकृत्य प्रपूजयेत् ।
मूलविद्यां समुच्चार्य आंसोहमिति चोच्चरेत् ॥ ८३ ॥
वह्निचैतन्यमुच्चार्य ङेन्तं हृन्मन्त्रसंयुतम् ।
अनेन मनुना गर्भे कामेश्वर्या विचिन्तयेत् ॥ ८४ ॥

ज्ञानाग्नि (वैश्वानराग्नि) तथा बाह्याग्नि दोनों रूप में (सम्मुख स्थापित अग्नि) एकीकरण कर पूजा करनी चाहिए । मूलविद्या का उच्चारण कर 'आं सोऽहम्' का उच्चारण कर ङेन्त वह्निचैतन्य (वह्निचैतन्याय) उच्चारण कर हृन्मन्त्र (नमः) उच्चारण करे । इस मन्त्र से साधक को गर्भ में कामेश्वरी का ध्यान करना चाहिए ॥ ८३–८४ ॥

वह्नेर्देहे षडङ्गानि योजयेत्सुरवन्दिते ।
सहस्रार्चिः स्वस्तिपूर्ण उत्तिष्ठ पुरुषस्तथा ॥ ८५ ॥
धूमव्यापी सप्तजिह्वो धनुर्धर उदाहृतः ।
चतुर्थ्यन्तान्षडङ्गेषु योजयेत्कमलेक्षणे ॥ ८६ ॥

हे सुरवन्दिते ! हे कमल के समान नेत्रों वाली! इसके बाद अग्नि के देह में षडङ्गों को इस प्रकार योजित करे – सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, उत्तिष्ठपुरुषाय नमः कवचाय हुँ, धूमव्यापिने नमः कवचाय हुँ, सप्तजिह्वाय नमः नेत्रत्रयाय वौषट्, धनुर्धराय नमः अस्त्राय फट्' ॥ ८५–८६ ॥

तारं वैश्वानरप्रान्ते जातवेद इहाऽऽवह ।
लोहिताक्ष ततः सर्वकर्माणीति च साधय ॥ ८७ ॥
वह्निजायान्वितो मन्त्रो वह्निं सम्यक्समर्चयेत् ।
ध्यायेद्वह्निं हेमवर्णं शक्तिस्वस्तिकधारिणम् ॥ ८८ ॥
वरदायकशोभाढ्यं सुवर्णवरभूषणम् ।
एवमग्निं समभ्यर्च्य तन्मुखे कमलेक्षणे ॥ ८९ ॥

षट्कोणं चिन्तयेत्तत्र सप्त जिह्वाः समर्चयेत् ।

तारः (ॐ) इसके अन्त में वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' इस मन्त्र से अग्नि की भलीभाँति पूजा करे, सुवर्ण वर्ण वाले शक्ति तथा स्वस्तिक धारण करने वाले, वरद एवं अभय मुद्रा से सुशोभित तथा तप्त सुवर्ण धारण करने वाले अग्नि का ध्यान कर, हे कमलेक्षणे ! उनका पूजन करे, फिर उनके मुख में रहने वाले षट्कोण में सप्त जिह्वाओं का अर्चन करे ।। ८७–९० ।।

वह्निवायुं वामकर्णं भूषितं नादबिन्दुना ।। ९० ।।
अनेन योजयेद्देवि क्रमेण रसनाः प्रिये ।
यकारादिसकारान्ता जिह्वाः सप्त भवन्ति हि ।। ९१ ।।

हे देवि! वह्नि (र) वायु (य्) वामकर्ण (ऊ) नाद बिन्दु (ँ) से भूषित इस प्रकार र् य्रूं इन वर्णों में क्रमशः यकारादि सकारान्त वर्ण (य र् ल व् श ष् स्) इन सात वर्णों को रसना से युक्त करे तो, हे प्रिये ! सप्तजिह्वा के बीज मन्त्र क्रमशः बन जाते हैं यथा य्यूँ, रयूँ, ल्यूँ, व्यूं, श्यूँ, ष्यूँ, स्यूँ – ये ७ अग्निजिह्वा के बीज मन्त्र हैं ।। ९०–९१ ।।

पद्मरागतप्तहेमवर्णा हि सुरवन्दिते ।
हिरण्याख्याः शम्भुकोणे पूजयेत्सुरवन्दिते ।। ९२ ।।
वैदूर्याभा सुवर्णा तु कनकाख्या ततः परम् ।
पूर्वकोणे समभ्यर्च्य पूजयेद्रुद्रलोहिताम् ।। ९३ ।।
उद्यदादित्यसंकाशां रक्ताख्यां वह्निकोणके ।
नीलां नीलप्रभां देवि कृष्णाख्यां राक्षसे यजेत् ।। ९४ ।।
श्वेतां मुक्ताप्रभां देवि शुभ्राख्यां पश्चिमे यजेत् ।
धूमिनीं पद्मरागाभां वायौ रक्ततरां यजेत् ।। ९५ ।।
करालीं चन्द्रकोट्याभां बहुरूपां तु मध्यगाम् ।
दक्षिणोत्तरभागस्थां पूजयेत्सर्वसिद्धिदाम् ।। ९६ ।।

हे सुरवन्दिते ! ये जिह्वायें पद्मराग तथा तप्त सुवर्ण के समान कान्ति वाली हैं। हे सुरवन्दिते ! हिरण्याख्या की बीजमन्त्र के साथ ईशान कोण में, इसके बाद वैदूर्य की कान्ति के समान कनका की पूर्वकोण में, फिर रुद्र के समान लोहित वर्ण वाली, उदीयमान सूर्य के समान रक्ता की आग्नेय कोण में, हे देवि ! नीला, नीलप्रभा कृष्णा की नैर्ऋत्य कोण में, हे देवि! मोती के समान

कान्तिमती श्वेत वर्णा वाली शुभ्रा की पश्चिम में, पद्मराग की आभा वाली धूमिनी का वायुकोण में फिर रक्तता करालीं तथा करोड़ों चन्द्रमा की आभा वाली मध्यगा तथा बहुरूपा की क्रमशः दक्षिण और उत्तर में पूजा करे । ये देवियाँ सारी सिद्धियाँ प्रदान करने वाली है ॥ ९२–९६ ॥

क्रमेण जिह्वाबीजान्ते नामानि परिपूजयेत् ।
अग्निर्हुतवाहनेऽथ हुताशनेऽथ वर्त्मने ॥ ९७ ॥
देवमुखः सप्तजिह्वो वैश्वानरो जातवेदाः ।
क्रमेण पूजयेतत्र अष्टौ नामान्यनुक्रमात् ॥ ९८ ॥

जिह्वा बीज के अन्त में सप्त जिह्वाओं के चतुर्थ्यन्त नाम से इनका पूजन करे । इसके बाद १. अग्नि, २. हुतवाहन, ३. हुताशन, ४. (कृष्ण) वर्त्मा, ५. देवमुख, ६. सप्तजिह्वा, ७. वैश्वानर और ८. जातवेद – इन आठ नामों से अग्निदेव की पूजा करे ॥ ९७–९८ ॥

एवमग्निं तु संपूज्य कामेशीगर्भसंभवम् ।
दर्भकङ्कणमादाय करबन्धं सुलोचने ॥ ९९ ॥
मूलमन्त्रेण बाणेन चतुर्थेन च होमयेत् ।
गर्भाधानं विधायेत्थं सीमन्तोन्नयनादिकम् ॥ १०० ॥
कामेशीगर्भजातस्य वह्नेश्चौलादिसत्क्रियाः ।
मूलमन्त्रेण संचिन्त्य बाह्यचक्रं समर्चयेत् ॥ १०१ ॥

इस प्रकार साधक को कामेश्वरी के गर्भ से उत्पन्न अग्नि की पूजा कर, हे सुलोचने ! कुश का कंकण बना कर करबन्ध (रक्षा) कर मूलमन्त्र तथा चतुर्थ बाण के साथ चतुर्थ्यन्त विभक्ति लगा कर होम कर देना चाहिए । इस प्रकार कामेशी के गर्भ से उत्पन्न हुए अग्नि का गर्भाधान संस्कार कर सीमन्तोन्नयनादि तथा चूड़ादि संस्कार सम्पन्न कर मूलमन्त्र से ध्यान करते हुए साधक को वाह्यचक्र की पूजा करनी चाहिए ॥ ९९–१०१ ॥

षट्कोणेषु षडङ्गानि वसुकोणेषु मातरः ।
लोकपालांश्च भूबिम्बे वह्निं प्रौढं विचिन्तयेत् ॥ १०२ ॥
ब्रह्माणं दक्षिणेऽभ्यर्च्य घृतस्थालीं प्रपूजयेत् ।
वह्निं सम्पूज्य विधिवत्तन्मुखे शैलसंभवे ॥ १०३ ॥
चक्रराजं समावाह्य सर्वरश्मिसमन्वितम् ।
सर्वसिंहासनैः सेव्यमुपचारैः समर्चयेत् ॥ १०४ ॥

षट्कोण में षडङ्गों की, अष्टकोण में मातृकाओं की और भूविम्ब में लोकपालों की पूजा कर साधक अग्नि की प्रौढावस्था का ध्यान करे । तदनन्तर, दक्षिण दिशा में ब्रह्मदेव की पूजा कर घृत स्थाली का पूजन करे । हे शैलसंभवे ! इस प्रकार अग्नि का विधिवत् पूजन कर उनके मुख भाग में सर्वरश्मिसमन्वित, सर्वसिंहासनों से सेव्य चक्रराज का आवाहन कर उपचारों से उनका पूजन करे ॥ १०२–१०४ ॥

धूपं विस्तारयेत्सम्यक्कुण्डमण्डपपूरितम् ।
दीपं च दर्शयेन्मन्त्री ततो दीपान्बहु प्रिये ॥ १०५ ॥

मालाकारेण संवेष्ट्य मेखलात्रयमाद्रिजे ।
विस्तार्य चरुकं पश्चात्सर्वदिक्षु सुखाप्तये ॥ १०६ ॥

हे देवि ! कुण्ड और मण्डप को पूर्ण कर देने वाला धूप प्रदान करे। तदनन्तर मन्त्रज्ञ दीप दिखावे, फिर हे प्रिये ! अनेक दीपों से माला के आकार में कुण्ड की तीनों मेखलाओं को वेष्टित कर, हे अद्रिजे ! सारे दिशाओं में सुखाप्ति के लिए चरु को विस्तृत रूप से स्थापित कर देवे ॥ १०५–१०६ ॥

कामनाहोमविधानम्

नित्यहोमं ततः प्रोक्तं कामनाहोममाचरेत् ।
मालतीजातिकामल्लीकुसुमैर्मधुमिश्रितैः ॥ १०७ ॥

घृतपूर्णैर्हुनेद्देवि वागीशत्वं प्रजायते ।
मूकस्यापि च मूढस्य शिलारूपस्य नान्यथा ॥ १०८ ॥

तदनन्तर विधि प्रोक्त नित्य होम कर साधक कामना होम करे । मालती, जातिका एवं मल्ली के फूलों को मधु से मिश्रित कर घी में डुबो कर होम करे तो पत्थर के समान मूक मूढ भी वागीशत्व को प्राप्त हो जाता है, यह बात अन्यथा नहीं ॥ १०७–१०८ ॥

जपापुष्पैराज्ययुक्तैः करवीरैस्तथाविधैः ।
हवनान्मोहयेन्मन्त्री लोकत्रयनिवासिनः ॥ १०९ ॥

घृत में डुबोये गये जपा (ओड़हुल) पुष्प तथा उसी प्रकार करवीर के पुष्पों से हवन करने वाला मन्त्रज्ञ तीनों लोकों में रहने वाले सभी जीवों को मोहित कर लेता है ॥ १०९ ॥

कर्पूरकुङ्कुमे देवि मिश्रं मृगमदेन हि ।
हवनान्मदनो देवि मन्त्रिणा विजितो भवेत् ॥ ११० ॥

सौभाग्येन विलासेन सामर्थ्येनापि सुव्रते ।
चम्पकैः पाटलैर्हुत्वा श्रियं प्रोल्लसिताम्बराम् ॥ १११ ॥
मन्त्री प्राप्नोति महतीं स्तम्भयेज्जगतीभिमाम् ।

हे देवि ! कस्तूरी से मिश्रित कपूर और कुङ्कुम के होम से, हे देवि ! मन्त्रज्ञ साधक सामर्थ्य से, विलास से एवं सौभाग्य से कामदेव को भी जीत लेता है। हे सुव्रते ! घृत में डुबोये गये चम्पक तथा गुलाब के पुष्पों से साधक उत्तम वस्त्राभूषणों से भूषित महती श्री को प्राप्त कर लेता है तथा सारे जगत् को स्तम्भित कर देता है ॥ ११०–१११ ॥

श्रीखण्डं गुग्गुलं चन्द्रमगरुं होमयेत्ततः ।
राजनागेन्द्रदेवानां पुरन्ध्रीर्वशमानयेत् ॥ ११२ ॥
सर्वलोका वशास्तस्य भवन्त्येव न संशयः ।

श्रीखण्ड, गुग्गुल, चन्दन और अगरु से होम करे तो राजा की स्त्री नागेन्द्र की स्त्री तथा देवताओं की स्त्रियों को वश में कर लेता है। बहुत क्या सारे लोग उसके वश में हो जाते है इसमें संशय नहीं ॥ ११२–११३ ॥

लाक्षाहोमाद्भवेद्राज्यं दारिद्र्यभयपीडितः ।
दुर्गोपसर्गशमनं पलत्रिमधुहोमतः ॥ ११४ ॥

दरिद्रता के भय से पीड़ित साधक यदि लाक्षा से होम करे तो राज्य प्राप्त कर लेता है। मांस और त्रिमधु (घी, दूध एवं शहद) के होम से दुर्ग के सारे उपद्रव शान्त हो जाते हैं ॥ ११४ ॥

दूरस्थितानां देवेशि गुरुणा प्रोक्तमार्गतः ।
होमं कुर्याद्वश्यकामैरन्यथा निष्फलं भवेत् ॥ ११५ ॥

हे देवेशि ! दूर में रहने वालों को अपने वश में करने के लिए गुरुओं द्वारा प्रदर्शित मार्ग से होम करे। अन्यथा कोई फल नहीं होता ॥ ११५ ॥

रुधिराक्तेन च्छागस्य मांसेन निशि होमतः ।
मधुरत्रययुक्तेन गुरुणोक्तविधानतः ॥ ११६ ॥
परराष्ट्रं महादुर्गं समस्तं स्ववशं नयेत् ।
महापलेन देवेशि रिपोः सैन्यं विनाशयेत् ॥ ११७ ॥

मधुरत्रययुक्त बकरे के रुधिरानुलिप्त मांस से गुरुपदिष्ट विधि से रात्रि में होम करे तो महादुर्ग युक्त समस्त परराष्ट्र अपने वश में कर लेता है । हे देवेशि! महामांस के होम से शत्रु की सेना को विनष्ट कर देता है ॥ ११६–११७ ॥

खेचरो जायते रात्रौ कृत्वा होमं चतुष्पथे ।
क्षीरं मधु दधि त्वाज्यं पृथग्घुत्वा वरानने ॥ ११८ ॥

आयुर्धनमथाऽऽरोग्यं समृद्धिर्जायते नृणाम् ।
क्रमेण शैलजे क्षीरमधुभ्यां मृत्युनाशनम् ॥ ११९ ॥

रात्रि में चतुष्पथ पर होम करने से साधक खेचर हो जाता है। हे वरानने ! दूध, दही और घृत का पृथक् पृथक् होम करने से क्रमशः आयु, धन, आरोग्य एवं समृद्धि प्राप्त होती है। है शैलजे ! क्षीर एवं मधु द्वारा क्रमशः एक–एक के होम से मृत्यु नष्ट हो जाती है ॥ ११८–११९ ॥

दधिमाक्षिकहोमेन सौभाग्यं धनमाप्नुयात् ।
सितया केवलं होमो वैरिस्तम्भनकारकः ॥ १२० ॥

होमो दधिमधुक्षीरलाजभिर्वीरवन्दिते ।
रोगहन्ता कालहन्ता मृत्युहन्ता न संशयः ॥ १२१ ॥

दधि और शहद के होम से सौभाग्य एवं धन प्राप्त होता है। केवल मिश्री से किया गया होम शत्रु स्तम्भनकारक है । हे वीरवन्दिते ! दधि, मधु, क्षीर एवं लावा से किया गया होम, रोग, काल, तथा मृत्यु का विनाशक होता है इसमें संशय नहीं ॥ १२०–१२१ ॥

कमलैररुणैर्होमः सम्यक्संपत्तिदायकः ।
रक्तोत्पलैर्जगद्वश्यं राजानो वशगाः क्षणात् ॥ १२२ ॥

लाल कमलों से किया गया होम उत्तम सम्पत्ति प्रदान करता है। रक्तोत्पल के होम करने से जगत् वशीभूत हो जाता है और राजा लोग तो क्षणभर में ही वशीभूत हो जाते हैं ॥ १२२ ॥

नीलोत्पलैर्महादुष्टा वशमायान्ति नान्यथा ।
श्वेतोत्पलैः श्रियं वाचं लभते हवनात्प्रिये ॥ १२३ ॥

नील कमल के होम से महान् दुष्ट वश में हो जाते हैं, यह बात झूठी नहीं है। हे प्रिये ! श्वेत कमल के होम से श्री और वाणी प्राप्त होती है ॥ १२३ ॥

श्वेतैश्च ब्रह्मकमलैर्लक्ष्मीं सौभाग्यमाप्नुयात् ।
कह्लारहवनान्मन्त्री सौभाग्यं च धनं लभेत् ॥ १२४ ॥

श्वेत ब्रह्मकमल के होम से लक्ष्मी और सौभाग्य दोनों प्राप्त होते हैं। कह्लार के होम से मन्त्रज्ञ सौभाग्य एवं धन दोनों प्राप्त करता है ॥ १२४ ॥

पूर्णं दाडिमहोमेन वशी कुर्यान्महासुरान् ।
मातुलुङ्गफलोद्भूतहोमेन क्षत्रिया वशाः ॥ १२५ ॥

पूरे अनार के होम से विद्वान् ब्राह्मण भी वशीभूत हो जाते हैं। मातुलुङ्ग के फल से उत्पन्न किये गये होम से क्षत्रियवशीभूत हो जाते हैं ॥ १२५ ॥

नारङ्गफलहोमेन वैश्या वश्या भवन्ति हि ।
कूष्माण्डफलहोमेन शूद्रा वश्यास्तथाऽपरे ॥ १२६ ॥

नारङ्ग फल के होम से वैश्य वशीभूत हो जाते हैं। कूष्माण्डफल के होम से शूद्र तथा अन्य जन वशीभूत हो जाते हैं ॥ १२६ ॥

द्राक्षाफलैः सिद्धयोऽष्टौ लक्षहोमान्न संशयः ।
कदलीफलहोमेन लक्षमात्रेण भूभृतः ॥ १२७ ॥
वश्यास्तु दशसंख्याका भवन्त्येव न संशयः।

द्राक्षा फलों के द्वारा एक लाख होम से अष्ट सिद्धियाँ वश में हो जाती हैं एक लाख कदली फल के होम से दश संख्याक राजा भी वशीभूत हो जाते हैं इसमें संशय नहीं ॥ १२७–१२८ ॥

खर्जूरीफलहोमेन लक्षमात्रेण भूभुजः ॥ १२८ ॥
वश्या विंशतिसंख्याका इत्याज्ञा पारमेश्वरी।
नारिकेलफलैर्होमात्समृद्धिर्जायते प्रिये ॥ १२९ ॥
लक्षमात्रेण मन्त्रज्ञो राजाऽपर इव प्रिये ।
पक्वाम्रफलहोमेन लक्षमात्रेण सुन्दरि ॥ १३० ॥
चतुःसमुद्रपर्यन्तां मेदिनी वशमानयेत् ।
पनसस्य फलैर्होमाल्लक्षेण शतभूभुजः ॥ १३१ ॥
वशा भवन्ति देवेशि नात्र कार्या विचारणा ।
तिलाज्यहोमाद्देवेशि कार्यसिद्धिर्भवोत्प्रिये ॥ १३२ ॥

एक लाख खजूर के फल के होम से २० संख्यक राजा वश में हो जाते हैं। यह पारमेश्वरी आज्ञा है। हे प्रिये ! नारिकेल के फलों से एक लाख हवन करने पर समृद्धि प्राप्त हो जाती है और मन्त्रज्ञ अपर राजा के समान बन जाता है। हे सुन्दरि ! पके हुए आम के द्वारा एक लाख की संख्या में होम करने से साधक चतुःसमुद्र पर्यन्त पृथ्वी को अपने वश में कर लेता है। हे देवेशि ! पनस (कटहल) के फलों से एक लाख की संख्या में होम करने से सैकड़ों

राजा वशीभूत हो जाते हैं इसमें संशय नहीं। हे देवेशि !, हे प्रिये ! तिल और घृत के होम से कार्य सिद्धि होती है ॥ १२८–१३२॥

राजिकालवणाभ्यां तु दुष्टलोकान्वशं नयेत् ।
गुग्गुलस्य च होमेन सर्वदुःखानि नाशयेत् ॥ १३३ ॥

राजिका (राई) और नमक के होम से दुष्टप्राणी वश में हो जाता है और गुग्गुल के होम से सारे दुःख नष्ट हो जाते हैं ॥ १३३ ॥

कुङ्कुमेन हुनेद्देवि त्रैलोक्यं वशमानयेत् ।
वैरिणो वशगाः शीघ्रं चन्दनस्यापि होमतः ॥ १३४ ॥

हे देवि ! कुङ्कुम के होम से त्रिलोकी वश में हो जाती है तथा चन्दन के होम से वैरी वशीभूत हो जाते हैं ॥ १३४ ॥

रक्तचन्दनहोमेन वश्या हि पुरुषाः स्त्रियः ।
कर्पूरस्य च होमेन वाग्वश्यं जायते नृणाम् ॥ १३५ ॥

रक्तचन्दन के होम से स्त्रियाँ एवं पुरुष वश में हो जाते हैं। कपूर के होम से मनुष्यों को वाग्वशित्व प्राप्त हो जाता है ॥ १३५ ॥

कस्तूरीहोमतो देवि राजानो राजमन्त्रिणः ।
वश्या भवन्ति सकलाः परिवारयुताः प्रिये ॥ १३६ ॥

हे प्रिये ! हे देवि ! कस्तूरी के होम से परिवार सहित राजा राजमन्त्री सभी वश में हो जाते हैं ॥ १३६ ॥

तिलतण्डुलहोमेन शान्तिर्भवति मन्दिरे ।
शर्करागुडहोमेन सर्वकामार्थसाधकः ॥ १३७ ॥

तिल और चावल के होम से घर में शान्ति होती है। शर्करा और गुड़ के होम से सर्वकार्य की सिद्धि हो जाती है ॥ १३७ ॥

घृतपायसहोमेन सिता युक्तेन मान्त्रिकः ।
त्रैलोक्यं वशमायाति धान्यसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ १३८ ॥
सोपस्करैश्च वटकैरुपसर्गान् विनाशयेत् ॥ १३९ ॥

मिश्री युक्त घृत पायस के होम से मन्त्रवेत्ता साधक त्रिलोकी को अपने वश में कर लेता हैं तथा निश्चित रूप से धान्य सिद्धि हो जाती है। व्यञ्जन युक्त वटक (बाटी) के होम से उपद्रव शान्त हो जाता है ॥ १३८–१३९ ॥

बन्धूककुसुमैर्होमः सर्वशत्रून् विनाशयेत् ।
जपापुष्पैर्जगद्वश्यं वनपुष्पैश्च मोहनम् ॥ १४० ॥

बन्धूक पुष्प का होम सभी शत्रुओं का विनाशक है। जपा के पुष्पों के होम करने से जगद् वशीभूत हो जाता है, तथा वन पुष्प के होम करने से मोहन सम्पन्न होता है ॥ १४० ॥

बकुलस्य हुनेत्पुष्पैः सौभाग्यं जायते महत् ।
दशाङ्गधूपहोमेन सौभाग्यमतुलं भवेत् ॥ १४१ ॥

बकुल के पुष्प का होम करे तो महान् सौभाग्य प्राप्त होता है। दशाङ्ग और धूप के होम से अतुल सौभाग्यशाली होता है ॥ १४१ ॥

जम्बूफलैः स्त्रियो वश्याः कूष्माण्डैर्दैत्यकन्यकाः ।
श्रीफलैरतुलां लक्ष्मीं पत्रैर्वा सुरवन्दिते ॥ १४२ ॥

जामुन के फल से स्त्रियाँ वशीभूत हो जाती हैं और कूष्माण्ड के होम से दैत्य कन्यायें वशीभूत हो जाती है । श्री फल से अथवा बिल्वपत्रों से हवन करने पर अतुलनीय लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ॥ १४२ ॥

इक्षुखण्डैः सुखावाप्तिस्तद्रसाद्राजकन्यकाः ।
वश्या भवन्ति देवेशि नारिकेलजलेन वा ॥ १४३ ॥

हे देवेशि ! ऊख के टुकड़ों के हवन से सुख की प्राप्ति होती है । उसके रस के होम से तथा नारिकेल के जल के होम से राजकन्यायें वशीभूत हो जाती हैं ॥ १४३ ॥

केवलं घृतहोमेन वरदाः सर्वशक्तयः ।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मानं हवनसिद्धिदम् ॥ १४४ ॥

केवल घृत के होम से सारी शक्तियाँ वर देने वाली हो जाती हैं । हे देवि ! अब हवनीय पदार्थों का प्रमाण सुनिए। जिसका हवन सर्वसिद्धिदायी होता है, उसे मैं कह रहा हूँ ॥ १४४ ॥

पुष्पं समग्रं जुहुयात्कमलं वाऽपि पुष्कलम् ।
कुसुम्भवनपुष्पाणि यथेष्टानि हुनेत्प्रिये ॥ १४५ ॥

शतसंख्यास्तिला देवि राजिकाः शतसंख्यया ।
लाजा मुष्टिप्रमाणास्तु घृतं गद्याणमात्रकम् ॥ १४६ ॥

चुलुकार्धं पयः क्षीरमन्नं ग्रासमितं भवेत् ।
स्थूलं फलं महेशानि कूष्माण्डं मातुलुङ्गकम् ॥ १४७ ॥
मनःप्रियैश्च खण्डैश्च फलं भवति निश्चयात् ।
रम्भाफलं चतुःखण्डैर्लघु चेत्खण्ड्यते न हि ॥ १४८ ॥

फूल समूचा होम करे (टुकड़ा टुकड़ा करके नहीं) अथवा पर्याप्त कमल का होम करे। यथेष्ट कुसुम्भ पुष्प का हवन करना चाहिए । सौ तिलों का तथा सौ संख्या में राई का, मुट्ठी भर लावा का तथा घृत गद्याण (४१ घुँघुचियों के समान भार) मात्र का प्रयोग होम में करना चाहिए । होम में आधा चुल्लू पानी का तथा आधा चुल्लू दूध का प्रमाण कहा गया है । ग्रास मात्रा में अन्न का होम करे। हे महेशानि ! कूष्माण्ड और मातुलुङ्ग जैसा मोटा फल भी एक ग्रास प्रमाण में होम करें अथवा जो अच्छा लगे उतनी मात्रा में टुकड़े टकड़े कर होम करने से निश्चय ही फल होता है। केला को चार टुकड़ों से यदि छोटा हो तो उसे बिना टुकड़ों के ही होम करना चाहिए ॥ १४५–१४८ ॥

नारिकेलस्य खण्डं हि रम्भायाः फलवत्प्रिये ।
पर्वस्थाने चेक्षुखण्डं मनःसंतोषकारि वा ॥ १४९ ॥

हे प्रिये ! नारिकेल के फल को रम्भाफल के ही समान ४ टुकड़ो में, ऊख को पर्वस्थान (गाँठ) से काटकर अथवा जिससे मन संतुष्ट हो उतनी मात्रा में काटकर होम करना चाहिए ॥ १४९ ॥

द्राक्षाफलं समग्रं स्यान्नारङ्गं खार्जुरं तथा ।
गुग्गुलं क्रमुकार्धं तु कुङ्कुमं च तथा भवेत् ॥ १५० ॥

द्राक्षाफल नारङ्ग एवं खजूर का फल समग्र होम करे, गुग्गुल तथा कुङ्कुम की होम मात्रा सोपारी के आधे भाग के प्रमाण में होनी चाहिए ॥ १५० ॥

गुञ्जासमं च कर्पूरं कस्तूरी घुसृणं तथा ।
चन्दनं चागरुं देवि क्रमुकेन समं भवेत् ॥ १५१ ॥

कपूर, कस्तूरी तथा घुसृण की मात्रा गुञ्जाफल के समान कही गई है। चन्दन और अगरु की मात्रा सोपारी के प्रमाण में होनी चाहिए ॥ १५१ ॥

मनःप्रियाणि सर्वाणि फलानि हवने प्रिये ।
लाक्षा गुग्गुलसंख्या स्याद्यद्यद्वस्तु मनोहरम् ॥ १५२ ॥

हे प्रिये ! होम में इस प्रकार अपने मन को रुचिकर लगने वाले फलों का विधान है । लाक्षा एवं गुग्गुल के प्रमाण की संख्या कही गई हैं । इसी प्रकार जो जो भी मनोहर वस्तु हो उसका होम करना चाहिए ।। १५२ ।।

मनःप्रियाहुतीः कृत्वा होमं कुर्यात्सुलोचने ।
एतदाहुतिमानं ते कथितं सर्वविघ्नहृत् ।। १५३ ।।

हे सुलोचने ! मन को संतुष्ट करने वाली आहुती बना कर होम करना चाहिए । इन आहुतियों का प्रमाण भी कह दिया गया है जो सारे विघ्नों को नाश करता है ।। १५३ ।।

यथेच्छया वरारोहे श्रीविद्यां परितोषयेत् ।
यथाशक्ति जपं कृत्वा तद्दशांशेन होमयेत् ।। १५४ ।।

हे वरारोहे ! इच्छानुसार श्रीविद्या को संतुष्ट करे और यथाशक्ति जप कर उसके दशांश से होम करे ।। १५४ ।।

किंशुकैः पापसंघातनाशकैरथ वा प्रिये ।
नानाद्रव्यैः पृथग्भूतैर्मिश्रितैर्वा वरानने ।। १५५ ।।
यथाशक्त्या तु मिलितैर्होमं कुर्याद्विचक्षणः ।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि विशेषविधिमुत्तमम् ।। १५६ ।।

हे प्रिये ! अथवा किंशुक का होम करें जो पापसमूहों का नाशक है । हे वरानने ! विचक्षण पुरुष अनेक प्रकार के द्रव्यों को अलग–अलग अथवा एक में मिलाकर अथवा यथाशक्ति मिले हुए द्रव्यों से होम करे । हे देवि ! अब होम की विशेष उत्तम विधि कहता हूँ, उसे सुनिए ।। १५५–१५६ ।।

होमस्य विशेषविधिकथनम्

आदौ कुण्डं समुत्पाद्य सर्वलक्षणसंयुतम् ।
चतुरस्रं तु शोभाढ्यं शतहोमेऽर्धहस्तकम् ।। १५७ ।।

कुण्डविधान – सर्वप्रथम सर्वलक्षण संयुक्त कुण्ड का निर्माण करे। शतहोम में आधे हाथ का चौकोर कुण्ड बनाना चाहिए ।। १५७ ।।

सहस्रे हस्तमात्रं च चतुरस्रं द्विहस्तकम् ।
द्विहस्तमयुते प्रोक्तं लक्षे हस्तचतुष्टयम् ।। १५८ ।।

साधक को सहस्रहोम में एक हाथ का चौकोर कुण्ड बनाना चाहिए। १० हजार आहुति में दो हाथ का और लाख की आहुति में चार हाथ का कुण्ड निर्माण करना चाहिए ॥ १५८ ॥

कोटिहोमेऽष्टहहस्तं च कृत्वा कुण्डस्य लक्षणम् ।
शान्तिके चतुरस्रं तु वश्ये चैवार्धचन्द्रकम् ॥ १५९ ॥
षट्कोणं स्तम्भने चैव मारणे तद्वदेव हि ।
आकर्षणे त्रिकोणं च वृत्तमुच्चाटने तथा ॥ १६० ॥
नानासिद्धिहितार्थाय पद्मकोणं च सिद्धिदम् ।

कोटि होम में ८ हाथ का कुण्ड बनावें । इस प्रकार कुण्ड का लक्षण कह दिया गया । शान्ति कार्य में चौकोर, वश्य कार्य में अर्ध चन्द्र, स्तम्भन में षट्कोण, मारण में भी उसी प्रकार (षट्कोण), आकर्षण में त्रिकोण, उच्चाटन में वृत्ताकार कोण का निर्माण करना चाहिए । अनेक सिद्धियों के लिए पद्मकोण हितकारी है ॥ १५९–१६१ ॥

दिक्विधानम्

उत्तरे शान्तिकं चैव स्तम्भने वारुणीं दिशम् ॥ १६१ ॥
मारणं दक्षिणे चैव पश्चिमे वश्यकर्मणि ।
दाहकर्म च आग्नेये विद्वेषो नैर्ऋते तथा ॥ १६२ ॥
उच्चाटने तु वायव्य ईशान्ये (ऐशाने) सर्वसिद्धिदम् ।

शान्ति के लिए उत्तर दिशा स्तम्भन में पश्चिम दिशा मारण में दक्षिण दिशा । वश्य कार्य में पश्चिम दिशा विहित है । दाह कर्म के लिए अग्निकोण, विद्वेष के लिए नैर्ऋत्य कोण और उच्चाटन के लिए वायव्य तथा ईशान कोण सब प्रकार की सिद्धि प्रदान करता है ॥ १६१–१६३ ॥

नक्षत्रविधानम्

कृत्तिका कर्षणे प्रोक्ता भरणी मारणे तथा ॥ १६३ ॥
स्वाती वश्ये तथोच्चाटे ज्येष्ठा स्तभनमेव च ।
विद्वेषणे शततारं चाभिजित्वं तु शान्तिके ॥ १६४ ॥

आकर्षण के लिए कृत्तिका, मारण में भरणी, वश्य में स्वाती नक्षत्र विहित है। उच्चाटन में ज्येष्ठा तथा स्तम्भन में भी वही ज्येष्ठा नक्षत्र विहित है।

विद्वेषण में (सौ तारों का) शतभिषा नक्षत्र विहित है तथा शान्ति में अभिजित् नक्षत्र का विधान है ॥ १६३–१६४ ॥

वारविधानम्

सोमे सर्वाकर्षणं च मारणं मङ्गले तथा ।
बुधेन स्तम्भ कार्यं गुरुवारे तु पौष्टिकम् ॥ १६५ ॥
शुक्रे च सर्वकामास्तु भानोरथ(नावथ)शुभानि च ।

सर्वाकर्षण में सोम दिन, मारण में मङ्गल दिन, स्तम्भन बुध के दिन, पौष्टिक गुरुवार को, सर्वकार्यों की सिद्धि के लिए शुक्रवार और शुभ कार्य के लिए रविवार विहित है ॥ १६५–१६६ ॥

समयविधानम्

पूर्वाह्णे वश्यकर्माणि मध्यान्हे प्रीतिनाशनम् ॥ १६६ ॥
उच्चाटनं चापराह्णे संध्यायां मारणे तथा ।
शान्तिके अर्धरात्रं च पौष्टिकं प्रातरेव हि ॥ १६७ ॥

वश्यकर्म पूर्वाह्न में, मध्याह्न वैर के लिए, उच्चाटन अपराह्न में और मारण सन्ध्या के समय तथा शान्ति के लिए अर्धरात्रि एवं पौष्टिक कार्य के लिए प्रातःकाल का समय निहित है ॥ १६६–१६७ ॥

स्तम्भने गजचर्माणि मारणे माहिषं तथा ।
मृगचर्म तथोच्चाटे छागलं वश्यकर्मणि ॥ १६८ ॥
विद्वेषे जम्बुकं प्रोक्तं गोचर्मं शान्तिके तथा ।
नानासिद्धिहितार्थाय व्याघ्रचर्ममुदाहृतम् ॥ १६९ ॥

चर्म विधान – स्तम्भन में गजचर्म तथा मारण में महिष चर्म का विधान है। उच्चाटन में मृगचर्म, वश्य में बकरे का चर्म, विद्वेष में शृगाल का चर्म तथा शान्ति कार्य में गो चर्म का विधान है । अनेक कार्यों की सिद्धि के लिए बाघ का चर्म विहित है ॥ १६८–१६९ ॥

श्वेतं व्याघ्रे भवेच्छान्त्यै पीतं स्तम्भनकारकम् ।
वश्याकर्षणयो रक्तं क्षोभणार्थं प्रियावहम् ॥ १७० ॥
कृष्णं च मारणे प्रोक्तं धूम्रमुच्चाटनादिके ।

शान्ति के लिए श्वेत बाघ का चर्म तथा स्तम्भन के लिए पीत बाघ के चर्म का विधान है। वश्य और आकर्षण में रक्तबाघ का चर्म एवं क्षोभण में जो

अच्छा लगे, मारण में कृष्ण बाघ का चर्म तथा उच्चाटनादि कार्यों में धूम्रवर्ण का चर्म बतलाया गया है ॥ १७०–१७१ ॥

राजवृक्षस्य समिधो होतव्याः स्तम्भकर्मणि ॥ १७१ ॥
महिषीघृतसंयुक्तं सदा वै सिद्धिदायकम् ।
मारणेऽत्यचिराहोमं समिधै {द्भि} र्दाडिमोद्भवैः ॥ १७२ ॥
अजाघृतेन देवेशि वशयेत्सचराचरम् ।
विद्वेषस्यैव होतव्य {व्या} उन्मत्तसमिधस्तथा ॥ १७३ ॥

स्तम्भन कार्य में महिषी के घी में डुबोई गई राजवृक्ष की लकड़ी का होम करना चाहिए । जो सारी सिद्धि देने वाली हैं, मारण में अनार की लकड़ी का तथा चीड़ की लकड़ी का होम करना चाहिए । हे देवेशि ! बकरी के घृत के होम से साधक चराचर जगत् को वश में कर लेता है । विद्वेष के लिए उन्मत्त (धतूरे) की लकड़ी से होम करना चाहिए ॥ १७१–१७३ ॥

अतसीतैलसंयुक्ता विद्वेषणमतः परम् ।
सर्वविघ्नसमूहं तु नाशयेन्नात्र संशयः ॥ १७४ ॥

अलसी के तेल में संयुक्त धत्तूर की लकड़ी के होम से विद्वेषण तो होता ही है, निःसन्देह वह होम सभी विघ्न समूहों को भी नष्ट कर देता है ॥ १७४ ॥

पूर्णाहुतिं ततो देवि पूजयित्वा तु कन्यकाः ।
पूजितं तेन त्रैलोक्यं कन्यका येन पूजिताः ॥ १७५ ॥

हे देवि ! इसके बाद साधक को कन्याओं का पूजन अर्चन कर पूर्णाहुति कार्य को सम्पन्न करना चाहिए । जिसने कन्या पूजन किया, उसने सारी त्रिलोकी का पूजन कर लिया ॥ १७५ ॥

बालया पूजयेद्देवी श्रीविद्यां पूजयेत्ततः ।
पञ्चसिंहासनैर्देवि श्रीविद्यां तत्र पूजयेत् ॥ १७६ ॥

हे देवि ! बाला सहित श्रीविद्या का पूजन करे । इसके बाद पञ्चसिंहासनों के साथ वहाँ श्रीविद्या का पूजन करे ॥ १७६ ॥

सुवासिनीस्ततः पूज्याः श्रीविद्यां तत्र पूजयेत् ।
विप्रान्संतोषयेत्पश्चाच्छ्रीविद्यां तत्र पूजयेत् ॥ १७७ ॥

इसके बाद साधक सुवासिनियों का पूजन करे, तदनन्तर उन सुवासिनियों के साथ श्रीविद्या की पूजा करे । पश्चात् ब्राह्मणों को संतुष्ट करे और उनमें भी श्रीविद्या का पूजन करे ॥ १७७ ॥

योगिन्यश्च तथा पूज्याः श्रीविद्यां परितोषयेत् ।
दर्शनानि समग्राणि पूजयेद्विविधानि च ॥ १७८ ॥
श्रीविद्यां तोषयेत्तत्र पूर्णाहुतिमथाऽऽचरेत् ॥ १७९ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे त्रिपुराजपहोमविधान–
विवरणं नाम विंशः पटलः ॥ २० ॥

फिर योगिनियों का पूजन करे और उनमें भी श्रीविद्या का पूजन करे । इसके बाद विविध समग्र दर्शनों का पूजन करे । उसके बाद श्री विद्या को संतुष्ट करे और कर्म की पूर्णाहुति करे ॥ १७८–१७९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'श्रीत्रिपुराजपहोम विधान'
नामक विंश पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत
हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २० ॥

अथैकविंशः पटलः

ईश्वर उवाच –

होमान्तरं प्रवक्ष्यामि येन ब्रह्म सनातनम् ।
ज्ञानेन चतुरस्राख्यं कुण्डं संचिन्त्य पूर्ववत् ॥ १ ॥

ईश्वर ने कहा – अब होम करने के बाद मैं उस ज्ञान को कहता हूँ जिससे साधक को सनातन ब्रह्म प्राप्त हो जाता है। साधक ज्ञान से पूर्ववत् चतुरस्र नामक कुण्ड का ध्यान करे ॥ १ ॥

ज्ञानहोमविधि

आत्मभिश्चतुरस्रं तद्विज्ञेयं वीरवन्दिते ।
आत्मानो वेदसंख्या हि ज्ञातव्या देशिकोत्तमैः ॥ २ ॥

हे वीरवन्दिते ! वह ज्ञान कुण्ड आत्मज्ञान की दृष्टि से चार प्रकार का समझना चाहिए । उत्तम आचार्यो से आत्मा भी चार प्रकार का होता है ऐसा ज्ञान जानना चाहिए ॥ २ ॥

येषां विज्ञानमात्रेण पुनर्जन्म न विद्यते ।
साधारणेन पक्षेण वर्तते सर्वजन्तुषु ॥ ३ ॥

आत्मज्ञान के जन्म लेने पर पुनः जन्म नहीं होता । यह आत्मा अपने साधारण पक्ष से सारे जन्तुओं में निवास करता है ॥ ३ ॥

स आत्मा परमेशानि प्राणरूपी वरानने ।
प्राणस्तु पवनो देवि हृदयस्थानमन्दिरः ॥ ४ ॥

हे वरानने ! हे परमेशानि ! वह आत्मा प्राणरूपी है । हे देवि ! वह प्राण भी पवनस्वरूप है जो हृदयस्थान रूपी मन्दिर में रहता है ॥ ४ ॥

शरीरं व्याप्य सकलं चरस्याप्यचरस्य च ।
हंसस्वरूपी विज्ञेयः श्वासोच्छ्वासविलासवान् ॥ ५ ॥

जीव इत्येव नामास्य भ्रान्त्या भासान्न वस्तुतः ।
श्वासोच्छ्वासो देहभावाद्भ्रान्तिरेव न संशयः ॥ ६ ॥

वह चर अचर सबके शरीर को व्याप्त होकर निवास करते है श्वास और उच्छ्वास रूप से विलास करता हुआ वह प्राण हंस स्वरूपी जानना चाहिए। उसका 'जीव' नाम भ्रान्ति के आभास से है वस्तुतः वह नहीं है। श्वास और उच्छ्वास भी देहभाव की भ्रान्ति से है इसमें संशय नहीं ॥ ५–६ ॥

कुलालचक्रभेदेन घटाकाशं यथा घटे ।
दृश्यते परमेशानि आकाशं व्याप्य तिष्ठति ॥ ७ ॥

घटे भवति भिन्नत्वं नाऽऽकाशे भिन्नता भवेत् ।
तथा देहगतो जीवो देहनाशे वरानने ॥ ८ ॥

हे परमेशानि ! जिस प्रकार कुलाल चक्र के भेद से घटाकाश घट में दिखलाई पड़ता है, जो वस्तुतः आकाश को व्याप्त कर स्थित है । घड़े में भिन्नता संभव है, किन्तु आकाश में भिन्नता नहीं है । इसी प्रकार हे वरानने ! देहगत जीव आत्मा से भिन्न है, किन्तु देह के नष्ट हो जाने पर भी उसमें कोई भेद नहीं रहता ॥ ७–८ ॥

व्याप्य तिष्ठति सर्वत्र तस्मादात्मा परं महत् ।
आत्मज्ञानं मया प्रोक्तं द्वितीयस्य शृणु प्रिये ॥ ९ ॥

वह सर्वत्र व्याप्त होकर स्थित रहता है, इसलिए आत्मा महान् है, पर है यह प्रथम आत्मज्ञान जो कि मैंने आपसे अभी कहा । अब हे प्रिये ! द्वितीय आत्मज्ञान को सुनिए ॥ ९ ॥

अन्तरात्मेति किं नाम तच्छृण्वष्व पदं महत् ।
अन्तःशब्देन देवेशि रहस्यं सूक्ष्मरूपकम् ॥ १० ॥

वह अन्तरात्मा है । वह अन्तरात्मा क्या है ? अब आप उस महान् पद को सुनिए । हे देवेशि ! अन्तः शब्द का अर्थ है अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप वाला रहस्य ?॥ १० ॥

परमाणुस्वरूपेण सर्वं व्याप्य विजृम्भते ।
अन्तरङ्गतया तेन चरं वाऽप्यथ वाऽचरम् ॥ ११ ॥

व्याप्यते सकलं तस्मादन्तरात्मेति गीयते ।
स एव हंस आत्मा हि योगिगम्यो यदा भवेत् ॥ १२ ॥

वह सूक्ष्म स्वरूपी रहस्य परमाणु स्वरूप से सर्वत्र व्याप्त हो कर फैला हुआ हैं । वह चाहे चर हो अथवा अचर हो, सबके अन्तरङ्ग में निवास करता हुआ सर्वत्र व्याप्त है । इसलिए उसे अन्तरात्मा भी कहते हैं, इसलिए वही आत्मा हंस है जो योगिगम्य है ॥ ११–१२ ॥

तारचञ्चुर्वरारोहे निगमागमपक्षवान् ।
शिवशक्तिपदद्वन्द्वो बिन्दुत्रयविलोचनः ॥ १३ ॥
अयं परमहंसस्तु सृष्टिं व्याप्यावतिष्ठति ।
तदा भूतानि जायन्ते क्रमेण कमलेक्षणे ॥ १४ ॥

हे वरारोहे ! उस हंस रूपी आत्मा का तार (ॐ) चोंच है, निगम और आगम उसके दो पंखे हैं, शिव शक्ति उसके दो पैर है और तीन बिन्दु उसके नेत्र हैं। यह परमहंस यावत् सृष्टि में व्याप्त हो कर स्थित है। हे कमलेक्षणे ! उसके रहने से ही प्राणियों की सृष्टि होती है ॥ १३–१४ ॥

आकाशं पवनोऽग्निश्च जलं पृथ्वी वरानने ।
पञ्चकस्यास्य देवेशि प्रथमं चित्तमुच्यते ॥ १५ ॥
अविद्याख्यसरोमध्ये मोहपङ्कप्रपूरिते ।
प्रपञ्चकमले भूतपञ्चकपरिजृम्भिते ॥ १६ ॥
विहारोऽस्यैव हंसस्य सृष्ट्वा मायामयो भवेत् ।
अयमेव महादेवि निष्प्रपञ्चो यदा भवेत् ॥ १७ ॥
संहाररूपी हंसस्तु तदाऽऽत्मानं प्रदर्शयेत् ।
पक्षित्वमस्य नास्त्येव सोऽहमात्मा प्रतिष्ठितः ॥ १८ ॥
परमात्मेति जानीहि त्रयमेतदुदाहृतम् ।

हे वरानने ! आकाश, पवन, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पञ्चभूत हैं। हे देवेशि ! इन पाँचों का प्रथम विकार चित्त कहा जाता है। अविद्यारूपी सरोवर के मध्य में, जिसमें मोहरूपी पङ्क (किचड़) भरा हुआ है, भूतपञ्चक से खिले हुए, उस प्रपञ्च रूपी कमल में सृष्टि से मायामय यह रस विहार करता रहता है। हे महादेवि ! जब यही प्रपञ्चरहित हो जाता है तब सभी को एक में संहृत कर अपने आप को प्रदर्शित करता है। तब उसका पक्षित्व नहीं रह जाता और जब यह सोहमात्मा रूप में प्रतिष्ठित हो जाता हैं तब उसे परमात्मा समझना

चाहिए। इस प्रकार आत्मा एवं अन्तरात्मा तथा परमात्मा ये तीन अलग–अलग भेद बतलाये गए हैं ॥ १५–१९ ॥

पक्षपुच्छशिरो देवि आकारप्रतिभासकः ॥ १९ ॥

हे देवि ! उस आत्मा का पक्ष, पुच्छ और शिर रूप आकार केवल प्रतिभासक मात्र है ॥ १९ ॥

ज्ञानात्मा कथ्यते भद्रे यः साक्षात्साक्षिरूपकः ।
येनेदं ज्ञायते सर्वं समत्वेन वरानने ॥ २० ॥
चन्द्रबिम्बं यथा देवि जलक्षीरेषु दृश्यते ।
न लिप्तस्त {सं त} स्य देवशि नीरक्षीरविभेदतः ॥ २१ ॥

हे भद्रे ! जो साक्षात् साक्षीरूप है वह ज्ञानात्मा कहा जाता है। हे देवि ! जिस प्रकार एक चन्द्रमा का बिम्ब, जल या क्षीर में प्रतिबिम्ब रूप से दिखाई पड़ता है। हे देवेशि ! किन्तु वह चन्द्र बिम्ब स्वयं नीर एवं क्षीर के भेद से लिप्त नहीं होता। उसी प्रकार वह निर्लिप्त ज्ञानात्मा कहा गया है ॥ २०–२१ ॥

कर्दमे चन्दने बिम्बं न भवेल्लिप्तमद्रिजे ।
सर्वसाक्षी तथा भद्रे ज्ञानात्मा परिकीर्तितः ॥ २२ ॥

हे अद्रिजे ! कर्द्दम और चन्दन में प्रतिबिम्बित होने पर भी वह स्वयं कर्द्दम और चन्दन से लिप्त नहीं होता । हे भद्रे ! इसी प्रकार निर्विकार सर्वसाक्षी ही ज्ञानात्मा कहा गया है ॥ २२ ॥

आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्मानः प्रकीर्तिताः ।
एतद्रूपं हि चित्कुण्ड चतुरस्त्रं वरानने ॥ २३ ॥

इस प्रकार आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और ज्ञानात्मा जो कहा गया है उस चतुरस्त्र चित्कुण्ड का, हे वरानने ! यही स्वरूप है ॥ २३ ॥

आनन्दमेखलारम्यं बिन्दुत्रिवलयाङ्कितम् ।
अर्धमात्रा योनिरूपं ब्रह्मानन्दमयं सदा ॥ २४ ॥

जो आनन्द रूप मेखला से सुरम्य है, बिन्दुरूपी त्रिवली से विभूषित है, जिसकी अर्धमात्रा योनि है, जो सर्वदा ब्रह्मानन्दमय हैं ॥ २४ ॥

पराहन्तामये सर्वज्ञानदीपविजृम्भिते ।
संविदग्नौ हुनेद्देवि प्रपञ्चहविरुत्कटम् ॥ २५ ॥

हे देवि ! ऐसे सर्वज्ञानदीप से सर्वत्र फैले हुए पराहन्तामय संविदग्नि में अत्यन्त उत्कट प्रपञ्च रूप हवि का होम करना चाहिए ।। २५ ।।

शब्दाख्यं मातृकारूपमक्षवर्णविराजितम् ।
अक्षराणि हुतान्यत्र निःशब्दं ब्रह्म जायते ।। २६ ।।

अ वर्ण से ले कर क्ष वर्ण पर्यन्त अक्ष रूप मातृका वर्णों से शब्द नाम वाले अक्षरों के होम से निःशब्द ब्रह्म उत्पन्न होता है ।। २६ ।।

पुण्यपापे हविर्देवि कृत्याकृत्ये हविः प्रिये ।
संकल्पश्च विकल्पश्च धर्माधर्मौ हविस्तथा ।। २७ ।।

हे देवि ! पुण्य पाप हवि हैं, कृत्याकृत्य भी हवि हैं, संकल्प और विकल्प भी हवि हैं । हे प्रिये ! इतना ही नहीं धर्म और अधर्म भी हवि हैं ।। २७ ।।

जुहुयात्परमेशानि मन्त्राभ्यां विमलानने ।
मूलविद्यां ब्रह्मरूपां ध्यात्वा तु तदनन्तरम् ।। २८ ।।

हे विमलानने ! हे परमेशानि ! ब्रह्मस्वरूपा मूलविद्या का ध्यान करते हुए दो मन्त्रों (मातृका और मूलविद्या) से हवन करे ।। २८ ।।

तदन्ते चोच्चरेत्पश्चाद्ब्रह्मप्राप्त्यै तु देशिकः ।
धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा ।। २९ ।।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिं जुहोम्यहम् ।
स्वाहान्तेन हुनेद्देवि सकलं निष्कलं जगत् ।। ३० ।।

हे देवि ! इसके बाद साधक आचार्य ब्रह्म प्राप्ति के लिए धर्माधर्म हवि को मन रूप स्रुचा में लेकर आत्माग्नि में स्वाहान्त शब्द से इस प्रकार होम करे — अहं धर्माधर्मं सकलं निष्कलं जगत् हवि नित्यमक्षवृत्तिम् आत्माग्नौ मनसा स्रुचा सुषुम्नावर्त्मना जुहोमि स्वाहा ।। २९—३० ।।

अन्तर्होममनुर्देवि सर्वमायानिकृन्तनः ।
प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचा ।। ३१ ।।
धर्माधर्मौ कलास्नेहपूर्णवह्नौ जुहोम्यहम् ।
अग्निजायान्वितो मन्त्रो विद्यान्ते कथतस्तव ।। ३२ ।।

हे देवि ! अन्तर्होम का वक्ष्यमाण मन्त्र सभी माया को काट देता है। मन्त्र इस प्रकार है — प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचा धर्माधर्मौ कलास्नेह—पूर्णवह्नौ जुहोमि स्वाहा, विद्यायै नमः। यह मन्त्र तुमसे कह दिया ।। ३१—३२।।

निप्रपञ्चे यदा देवि जायते मन्त्रवित्तमः ।
तदा सच्चिन्मयः साक्षात्केवलं ब्रह्म साधकः ॥ ३३ ॥
दश सोऽहं जुहंसोऽपि पीत्वा मृत्युं सुखी भवेत् ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे ज्ञानहोमविधि–
र्नामैकविंशः पटलः ॥ २१ ॥

हे देवि ! जब साधक प्रपञ्च रहित होकर ब्रह्मवेत्ता बन जाता है तब वह साक्षात् सच्चिन्मय केवल ब्रह्म हो जाता है, वह केवल दश वार 'सोहं' का होम कर मृत्यु से पार हो सुखी हो जाता हैं ॥ ३३–३४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'श्रीज्ञानहोम विधि'
नामक एकोनविंश पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत
हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंशः पटलः

ईश्वर उवाच –

होमादिकं तु सकलं कुमारीपूजनं विना ।
परिपूर्णफलं नैव पूजनात्सफलं भवेत् ॥ १ ॥

ईश्वर ने कहा – हे देवि ! कुमारी पूजन के बिना होमादि कार्य परिपूर्ण फल नहीं देते । कुमारी पूजन करने पर ही उसका पूर्णफल होता है ॥ १ ॥

कुमारीपूजनाद्देवि पूजाकोटिफलं भवेत् ।
पुष्पं कुमार्यै यद्दत्तं तन्मेरुसदृशं भवेत् ॥ २ ॥

हे देवि ! कुमारी पूजन से करोड़ों पूजा का फल होता है। कुमारी के लिए अर्पित पुष्प मात्र भी मेरु के समान हो जाता है ॥ २ ॥

कुमारी भोजिता येन त्रैलोक्यं तेनं भोजितम् ।
कुमार्यै यज्जलं दत्तं तज्जलं सागरोपमम् ॥ ३ ॥

जिस साधक ने कुमारी को भोजन कराया, उसने सारे त्रिलोकी को ही भोजन करा दिया । कुमारी के लिए दिया गया स्वल्प जल भी सागर जल के तुल्य हो जाता है ॥ ३ ॥

अन्नं तु मीननयने कुलाचलसमं भवेत् ।
एकाब्दात्षोडशाब्दान्ताः कन्यकाः पूजयेच्छुभाः ॥ ४ ॥

हे मीननयने ! कुमारी के लिए अर्पित स्वल्प अन्न भी कुलाचल के समान हो जाता है । एक वर्ष से लेकर १६ वर्ष पर्यन्त वाली शुभ लक्षणा कन्या का पूजन करना चाहिए ॥ ४ ॥

विवाहरहिताः स्युश्चेदुत्तरोत्तरसिद्धिदाः ।
विवाहितास्तु देवेशि बाला एव कुमारिकाः ॥ ५ ॥

सुवासिन्यो मदप्रौढ़ाः संशये त्यज सुव्रते ।
कुमारीपूजने देवि कुमारीमनुना भवेत् ॥ ६ ॥

यदि वे विवाह रहित हों तो उत्तरोत्तर सिद्धि प्रदान करती हैं । हे देवेशि ! यदि विवाहित हों तो वे कुमारिकायें सुवासित और मद प्रौढ़ा बाला स्वरूप हैं। हे सुव्रते ! इसमें संशय मत करो। हे देवि ! कुमारी पूजन कुमारी मन्त्र से ही किया जाना चाहिए ॥ ५–६ ॥

मन्त्रभेदेन तेनैव श्रीविद्यां च प्रपूजयेत् ।
नैमित्तिकं प्रवक्ष्यामि येन ब्रह्ममयो बुधः ॥ ७ ॥

(एक वर्षा द्विवर्षा आदि के पूजन के लिए) जो विभिन्न मन्त्र हैं, उन्हीं से श्रीविद्या की भी पूजा करनी चाहिए । अब नैमित्तिक पूजा विधि कहता हूँ जिससे साधक ब्रह्ममय हो जाता है ॥ ७ ॥

निर्विकल्पस्य देवेशि नान्यस्य सुरवन्दिते ।
सर्वशङ्काविनिर्मुक्तः सर्वज्ञः साधकोत्तमः ॥ ८ ॥

दूतीयागविधिं कुर्यात्खेचरो जायते प्रिये ।
अर्घ्यपात्रे वह्निसूर्यसोमामृतमये शिवे ॥ ९ ॥

सोमामृतं तु जानीहि नानाद्रव्यमयं सदा ।
सविकल्पस्य देवेशि वर्णानुक्रमभेदतः ॥ १० ॥

कथ्यन्ते द्रव्यभेदास्तु क्रमेण वरवर्णिनि ।
क्षीराज्यमधुमैरेयद्रव्यभेदा भवन्ति हि ॥ ११ ॥

हे सुरवन्दिते ! यह नैमित्तिक पूजा विधि, निर्विकल्प के लिए है अन्य के लिए नहीं । सर्वशङ्काविनिर्मुक्त सर्वज्ञ साधकोत्तम दूतीयाग का विधान करे । हे प्रिये ! ऐसा करने से वह खेचर (आकाशचारी) हो जाता है । हे शिवे ! अग्निसूर्यसोम रूप अमृतमय अर्घ्यपात्र में अनेक द्रव्यों के साथ सोमामृत का निर्माण करना चाहिए। हे देवेशि ! सविकल्प के लिए वर्णों के अनुक्रम के भेद से, हे वरवर्णिनि ! अर्घ्यपात्र में द्रव्य भेद कहे गये हैं, ब्राह्मणों का अर्घ्यपात्र दूध द्रव्य का, क्षत्रियों का घृतमय, वैश्यों का मधुमय तथा शूद्रों का मैरेय युक्त अर्घ्य पात्र होना चाहिए ॥ ८–११ ॥

सर्वज्ञत्वे वरारोहे यज्ञे दोषो न विद्यते ।
अश्वमेधादियज्ञेषु वाजिहत्या कथं भवेत् ॥ १२ ॥

हे वरारोहे ! सर्वज्ञत्व निर्विकल्प के लिए यज्ञ मे मैरेयादि पदार्थ दोषावह नही होते है । ऐसा न हो तो अश्वमेधादि यज्ञो में घोड़े की हत्या क्यों की जाती है ? ॥ १२ ॥

द्रव्यभेदा वरारोहे बहवः सन्ति भेदतः ।
जलं क्षीरं घृतं भद्रे मधु मैरेयमैक्षवम् ॥ १३ ॥

पौष्पं तरुमयं धान्यसंभवं बहुनिर्मितम् ।
सहकारभवं देवि विविधं बहुभेदतः ॥ १४ ॥

मादकं धर्मसंछेदाद्वर्ज्यमासीत्सुलोचने ।
ज्ञानेन संस्कृतं तत्तु महापातकनाशनम् ॥ १५ ॥

हे वरारोहे ! भेद होने के कारण ही द्रव्यों में भेद की बहुलता है । हे भद्रे ! जल, क्षीर, घृत, मधु मैरेय (मद्य) ऐक्षव मद्य, पौष्प मद्य, तरुमय धान्यसंभव अनेक पदार्थ निर्मित सहकारमय आदि हे देवि ! बहुत प्रकार के भेद होने के कारण वे अनेक हैं । हे सुलोचने ! मादक होने के कारण वे धर्म में विहित नहीं कहे गये हैं । किन्तु वही ज्ञान से संस्कृत होने पर महापातक का नाश करने वाले हो जाते हैं ॥ १३–१५ ॥

ब्रह्महत्त्यासुरापानस्वर्णस्तेयादिपातकान् ।
नाशयेत्पूजनाद्देवि निर्विकल्पः स मन्त्रवित् ॥ १६ ॥

जो ब्रह्महत्या सुरापान स्वर्णस्तेयादि पातकों का पूजा से नाश कर देता है, हे देवि ! वही निर्विकल्प है, वही मन्त्रवेत्ता है ॥ १६ ॥

विचारयेत्सदा सर्वं सर्वविद्वीरवन्दिते ।
जलं जलचरं विद्धि घटं पूर्णं समानयेत् ॥ १७ ॥

स्थापितं देवि सप्ताहाज्जलं जीवसमन्वितम् ।
क्षीरं वै यस्य जीवस्य तस्य मांसं न संशयः ॥ १८ ॥

हे वीरवन्दिते ! सर्वज्ञ निर्विकल्प साधक को सदा इस बात का विचार करना चाहिए कि जल और जलचर से युक्त पूर्णघट ले आवे । हे देवि ! पुनः उसे एक जगह रख देवे। सात दिन के बाद वह जल जलजीव समन्वित हो जाता है (सभी जल जलचर हो जाते हैं)। हे देवि ! जिस जीव का क्षीर होता है वह उसका मांस ही है इसमें संशय नहीं ॥ १७–१८ ॥

कृशा पुत्रवती नारी वन्ध्या पुष्टा यतः प्रिये ।
माकन्दफलजं रम्यं द्रावं सेव्यं द्विजातिभिः ॥ १९ ॥

हे प्रिये ! इसका विचार इस प्रकार करना चाहिए, पुत्रवती नारी दुर्बल हो जाती है, और बन्ध्या पुष्टा (पुष्टि मांस युक्त) रहती है । माकन्द (आम) का फल सुरम्य और रसदार होता है ॥ १९ ॥

अमादकत्वाद्देवेशि चैक्षुत्वं सेव्यते बुधैः ।
अनामिषं नास्ति किंचित्सर्वं क्षीरादिकं प्रिये ॥ २० ॥

हे देवेशि ! उसके तथा इक्षु के विकार से बने सभी ऐक्षत्व अमादक (मादकता रहित) होने से बुद्धिमान् उसका सेवन करते हैं । हे प्रिये ! दूध आदि कोई पदार्थ आमिष रहित नहीं है ॥ २० ॥

वेदशास्त्रपुराणेषु गूढो ज्ञानसमुच्चयः ।
शमीवृक्षे यथा वह्निस्तथा तिष्ठति सुन्दरि ॥ २१ ॥

वेद, शास्त्र तथा पुराणों में ज्ञानराशि छिपी हुई है । हे सुन्दरि ! जिस प्रकार शमी वृक्ष में गुप्त रूप से वह्नि छिपी रहती है ॥ २१ ॥

सर्वभूतेषु विज्ञानं ज्ञातव्यं देशिकोत्तमैः ।
काष्ठनिर्मथनाद्देवि प्रकटो वह्निरुच्यते ॥ २२ ॥

इसी प्रकार सभी प्राणियों में ज्ञानराशि छिपी है, इसे आचार्यों के द्वारा जानना चाहिए। हे देवि ! जैसे काष्ठ के मन्थन से उत्पन्न अग्नि प्रत्यक्ष प्रकट रूप में दिखाई पड़ती है ॥ २२ ॥

तत्काष्ठं दह्यते तेन तथा ब्रह्ममयं जगत् ।
पापपुण्यविनिर्मुक्तं ज्ञानमेतद्वरानने ॥ २३ ॥

किन्तु वही काष्ठ उस अग्नि से जला दिया जाता है, उसी प्रकार यह ब्रह्ममय जगत् भी पाप पुण्य से रहित है। हे वरानने ! यही ज्ञान है ॥ २३ ॥

किंचिदुल्लासपर्यन्तं ग्राह्यमेतत्सुरेश्वरि ।
यज्ञाङ्गं तु यतो लौल्यात्पातकी ब्रह्महा भवेत् ॥ २४ ॥

हे सुरेश्वरि ! यतः यज्ञाङ्ग में लौल्य प्रदर्शित करने से यज्ञ कर्त्ता ब्रह्महत्यारा और पापी हो सकता है । अतः यज्ञाङ्ग को लौल्य से ग्रहण न कर कुछ उत्साह से ग्रहण करे ॥ २४ ॥

मादकं वस्तु सकलं वर्जयेत्कनकादिकम् ।
कलञ्जं पातकी तस्माद्ब्रह्म ब्रह्मविदां वरः ॥ २५ ॥

समस्त मादक वस्तुओं का अथवा कनकादि (धतूर) वस्तुओं का अवश्य ही त्याग कर देना चाहिए । कलञ्ज खाने वाला पातकी होता है। किन्तु ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म ही रहता है ॥ २५ ॥

धर्माधर्मपरिज्ञानात्सकलेऽपि पवित्रता ।
विण्मूत्रं स्त्रीरजो वाऽपि नखास्थि सकलं प्रिये ॥ २६ ॥

धर्माधर्म के परिज्ञान हो जाने पर विष्ठा, मूत्र, स्त्रीरज, नख तथा हड्डी आदि सभी वस्तुएँ, हे प्रिये! पवित्र हो जाती हैं ॥ २६ ॥

विचारयेन्मन्त्रवित्तु पवित्राण्येव सुव्रते ।
अन्नं ब्रह्म विजानीयात्तेन यस्य समुद्भवः ॥ २७ ॥

नानाजीवाश्रयं तत्तु पुरीषं केन निन्द्यते ।
नानाविधा हि देवेशि देवताः सलिलस्थिताः ॥ २८ ॥

तेनोदकेन यज्जातं मूत्रं कस्मात्तु दूषयेत् ।
गोमूत्रप्राशनं देवि गोमयस्यापि भक्षणम् ॥ २९ ॥

हे सुव्रते ! मन्त्रवेत्ता विचार द्वारा इन्हें पवित्र ही समझे। अन्न तो ब्रह्म ही है, फिर उस अन्न से जिसकी उत्पत्ति हो ऐसा सभी जीवों को आश्रयभूत पुरीष (विष्ठा) भला निन्दनीय किस प्रकार माना जा सकता है। हे देवेशि ! जब अनेकानेक देवताओं की स्थिति जल में ही बताई गई है। फिर उस जल से उत्पन्न हुए मूत्र को किस कारण दूषित कहा जा सकता है । हे देवि ! ऐसा देखा भी जाता है कि लोग गोमूत्र का प्राशन करते हैं, और गोबर का भक्षण करते ही हैं ॥ २७–२९ ॥

प्रायश्चित्ते तु कथितं ब्रह्महत्यादिके प्रिये ।
मले मूत्रे कथं दोषो भ्रान्तिरेव न संशयः ॥ ३० ॥

(गोमूत्र का प्राशन और गोमय का भक्षण यह बात स्पष्ट रूप से) ब्रह्महत्यादि के प्रायश्चित्त के प्रसङ्ग में कही गई है, फिर मूत्र और मल में दोष कैसे कहा जा सकता है, निश्चय ही यह प्राप्ति है ॥ ३० ॥

स्त्रीरजः परमेशानि देहस्तेनैव जायते ।
कथं तु दूषणं येन प्राप्यते परमं पदम् ॥ ३१ ॥

हे परमेशानि ! स्त्री के रज से ही देह की उत्पत्ति होती है। जिस स्त्रीरज से उत्पन्न मनुष्य परमपद प्राप्त करता है। फिर उस स्त्रीरज को दूषित किस प्रकार कहा जा सकता है ॥ ३१ ॥

पुरुषस्य तु यद्वीर्यं बिन्दुरित्यभिधीयते ।
बिन्दुस्तु परमेशानि कायोऽयं शिवरूपकः ॥ ३२ ॥

हे परमेशानि ! पुरुष का वीर्य जिसे बिन्दु कहते हैं। वही बिन्दु यह शरीर स्वरूप है जो साक्षात् शिव रूप है ॥ ३२ ॥

शिवतत्त्वेन चास्थ्यादिदूषणं नास्ति बैन्दवे ।
रेतः पवित्रं देहस्य कारणं केन निन्द्यते ॥ ३३ ॥

बिन्दु में रहने वाले शिवतत्त्व में अस्थि आदि दूषित कैसे हो सकते हैं। इस प्रकार जो वीर्य इस शरीर का कारण है, उस बिन्दु की निन्दा भला किस कारण से की जा सकती है ॥ ३३ ॥

ज्ञानमार्गोऽयं सकलो निर्विकल्पस्य सुन्दरि ।
सविकल्पो महेशानि पापभाग्जायते नरः ॥ ३४ ॥

हे सुन्दरि ! किन्तु यह सारा ही ज्ञान निर्विकल्प योगी के लिए ही है । हे महेशानि ! सविकल्प पुरुष तो इसे न जान सकने के कारण पापी बन जाता है ॥ ३४ ॥

मातृगर्भाद्विनिर्गत्य शिशुरेव न संशयः ।
इन्द्रियाण्यखिलान्यस्य देहस्थान्यपि वल्लभे ॥ ३५ ॥
निर्विकारतया तत्र नान्यथा भवति प्रिये ।
भगलिङ्गसमायोगो जन्मकाले भवेत्सदा ॥ ३६ ॥
काम्यते सा यदा देवि जायते गुरुतल्पगः ।
अत एव यदा तस्य वासना कुत्सिता भवेत् ॥ ३७ ॥

हे वल्लभे ! मातृगर्भ से ही शिशु की उत्पत्ति होती है और उसके शरीर में सारी ही इन्द्रियाँ निर्विकार रूप से रहती भी हैं। हे प्रिये ! यह अन्यथा नही है। तब वह दूषित नहीं कहा जाता । उत्पत्ति के समय भग लिङ्ग का समायोग होता है। तब वह दूषित नहीं होता । किन्तु जब वह कामना के वशीभूत योनि का संयोग करता है तब गुरुतल्पग हो जाता है। इसलिए यह कहना चाहिए कि जब उसकी वासना कुत्सित है तब वह पाप का भागी बन जाता है ॥ ३५–३७ ॥

तत्तद्भूषणसंयुक्तमन्यत्सर्वं शुभं भवेत् ।
पवित्रं सकलं भद्रे वासना कलुषा स्मृता ॥ ३८ ॥

हे भद्रे ! इस वासना के न रहने पर तत्तत्सभी वस्तुयें भूषण स्वरूप हैं और शुभदायी एवं पवित्र है, केवल वासना ही दूषित है ॥ ३८ ॥

अत एवार्घ्यपात्रस्य प्रतिष्ठानन्तरं ततः ।
मञ्चकं गजदन्तस्य हेमरूप्यादिनिर्मितम् ॥ ३९ ॥

अब इसके बाद भगवती के अर्घ्यपात्र के स्थापित करने के पश्चात् गज दन्त निर्मित अथवा हेमादि निर्मित मञ्च की पूजा करनी चाहिए ॥ ३९ ॥

विशुद्धक्षौमरचितां तूलिकां तत्र योजयेत् ।
पुष्पान्विकीर्य तन्मध्ये कर्पूरस्य रजस्तथा ॥ ४० ॥

उस पर विशुद्ध क्षौम (कपास) की रुई से परिपूर्ण रजाई बिछावे, फूल माला से सुशोभित करे कपूर के चूर्ण से सुसज्जित करे ॥ ४० ॥

मण्डूकादींस्ततो देवि उपर्युपरि शैलजे ।
मण्डूकं पूजयेदादौ रुद्रं कालाग्निसंयुतम् ॥ ४१ ॥
आधारशक्तिं कूर्मं च तथाऽनन्तं वराहकम् ।
पृथिवीं च तथा कन्दं नालं पद्मं तथा दलान् ॥ ४२ ॥
केसराणि च सम्पूज्य कर्णिकां पूजयेत्ततः ।
मञ्चकं च समभ्यर्च्य तत्र पादचतुष्टये ॥ ४३ ॥

उसके बाद हे शैलजे ! मण्डूकादि की पूजा ऊपर–ऊपर के क्रम से इस प्रकार करे। सर्वप्रथम मण्डूक की उसके ऊपर कालाग्नि संयुक्त रुद्र की, फिर आधार शक्ति की, कूर्म की, अनन्त की, वराह की, पृथ्वी की, कन्द नाल और पद्म की पूजा करनी चाहिए। उसके ऊपर कमलदलों की तथा केसरों की पूजा कर कर्णिका की पूजा करे । फिर मञ्चक की पूजा करे ॥ ४१–४३ ॥

धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च क्रमाद्यजेत् ।
अपूर्वान्पूजयेदेतांस्तत्पादानां समीपके ॥ ४४ ॥

तदनन्तर मञ्चक (पूजा पीठ) के चारों पादों में धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य को फिर उसके चारों कोनों में अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य की पूजा करे ॥ ४४ ॥

आत्मन्तरात्मपरम–ज्ञानात्मनः क्रमाद्यजेत् ।
मञ्चकाग्रेषु सम्पूज्य गुणत्रयमथार्चयेत् ॥ ४५ ॥

फिर मञ्चक के अग्रभाग में आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और ज्ञानात्मा की क्रमशः पूजा करे, तदनन्तर तीनों गुणों की पूजा करे ॥ ४५ ॥

दूतीं सुलक्षणां रम्यां सर्वलक्षणलक्षिताम् ।
नानालंकारसुभगां सर्वज्ञां शारदामिव ॥ ४६ ॥

पूजयेत्परमेशानि पञ्चकामैः शरैस्तथा ।
बटुकादिंश्चतुर्दिक्षु पूजयेत्सिद्धिहेतवे ॥ ४७ ॥

इसके बाद सर्वलक्षण लक्षिता, नानालङ्कार सुभगा, सर्वज्ञा, शारदा के समान ज्ञानवती और सुलक्षणा दूती की पूजा करनी चाहिए । फिर पञ्चकाम वाले पञ्चबाण के सहित वटुकादि की चारों दिशाओं में सिद्धि के लिए पूजा करनी चाहिए ॥ ४६–४७ ॥

मातृकां विन्यसेत्तस्या देहे कामशरान्विताम् ।
त्रिकोणं चिन्तयेन्मूर्ध्नि तत्र सम्पूजयेत्क्रमात् ॥ ४८ ॥

फिर साधक उसके शरीर में कामशरान्वित मातृकाओं द्वारा न्यास करे । उसके शिरःस्थान पर त्रिकोण का ध्यान करते हुए साधक क्रमशः इस प्रकार पूजा करें ॥ ४८ ॥

त्रिकोणमध्ये बालाख्यां कामेशीं परिपूजयेत् ।
गणेशं च कुलाध्यक्षं तथा लक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥ ४९ ॥

त्रिकोणेषु च सम्पूज्य वसन्तं मदनं प्रिये ।
स्तनयोः पूजयेत्पश्चान्मुखे तस्याः कलाधरम् ॥ ५० ॥

त्रिकोण के मध्य भाग में साधक बाला कामेश्वरी की पूजा करे । फिर क्रमशः कुलाध्यक्ष गणेश की, लक्ष्मी की और सरस्वती की पूजा त्रिकोणों में करे । हे प्रिये ! बसन्त और मदन की स्तन में इसके पश्चात् मुख में चन्द्रमा की पूजा करे ॥ ४९–५० ॥

दक्षपादादिमूर्धान्तं वामे मूर्धादि सुन्दरि ।
पादान्तं पूजयेत्सर्वाः कला वै कामसोमयोः ॥ ५१ ॥

हे सुन्दरि ! दाहिनी ओर दक्षिण पाद से मूर्धा पर्यन्त तथा वाम भाग में मूर्धा से लेकर वामपाद पर्यन्त साधक काम एवं सोम की १६ कलाओं की पूजा करें ॥ ५१ ॥

श्रद्धा प्रीती रतिश्चैव धृतिः कान्तिर्मनोरमा ।
मनोहरा मनोरामा मदनोन्मादिनी प्रिये ॥ ५२ ॥
मोहिनी दीपनी चैव शोषणी च वशंकरी ।
रञ्जनी सुभगा देवि षोडशी प्रियदर्शना ॥ ५३ ॥
षोडशस्वरसंयुक्ता एताः कामकला यजेत् ।
पूषा वशा च सुमना रतिः प्रीतिस्तथा धृतिः ॥ ५४ ॥

ऋद्धिः सौम्या मरीचिश्च शैलजे चांशुमालिनी।
अङ्गिराः शशिनी चैव छाया सम्पूर्णमण्डला ॥ ५५ ॥

तथा तुष्ट्यमृते चैव कलाः सोमस्य षोडश ।
स्वरैरेव प्रपूज्या हि सर्वकार्यार्थसिद्धिदाः ॥ ५६ ॥

हे प्रिये ! १. श्रद्धा, २. प्रीति, ३. रति, ४. धृति, ५. कान्ति, ६. मनोरमा, ७. मनोहरा, ८. मनोरामा, ९. मदनोन्मदिनी, १०. मोहिनी, ११. दीपनी, १२. शोषणी, १३. वशङ्करी, १४. रञ्जनी, १५. सुभगा और १६. प्रियदर्शना – ये १६ अत्यन्त सुन्दर कलायें षोडश स्वर से युक्त काम की कलायें कही गई हैं, इनका पूजन करे । पूषा, वशा, सुमना, रति, प्रीति, धृति, ऋद्धि, सौम्या, मरीचि, अंशुमालिनी, अङ्गिरा, शशिनी, छाया, संपूर्णमण्डला, तुष्टि और अमृता – ये १६ सोम की कलायें हैं । इनका भी स्वरों के साथ पूजन करना चाहिए, क्योंकि ये सर्वार्थ सिद्धिदा हैं ॥ ५२–५६ ॥

बालाक्रमं मस्तकेऽस्याः संपूज्य तदनन्तरम् ।
तस्या मदनगेहं तु पूजयेद्भगमालया ॥ ५७ ॥

इसके मस्तक पर बाला का क्रम पूर्वक पूजन कर तदनन्तर उसके मदनगेह की भगमाला से पूजन करे ॥ ५७ ॥

त्रिकोणं तद्भगं ज्ञात्वा सर्वसिद्धिप्रदाभिधम् ।
सर्वानन्दमयं मध्ये चक्रयुग्मं प्रपूजयेत् ॥ ५८ ॥

संपूर्ण सिद्धियों को प्रदान करने वाले उसके भग को त्रिकोण के रूप में समझ कर उसके मध्य में सर्वानन्दमय दो चक्रों की पूजा करे ॥ ५८ ॥

पूर्ववत्क्रमयोगेन (ण) श्रीविद्यां तत्र पूजयेत् ।
धूपादिकं समर्प्याथ स्वलिङ्गे तदनन्तरम् ॥ ५९ ॥

तारं च भुवनेशानि महात्रिपुरसुन्दरि ।
नमः शिवाय विद्येयं दशार्णा परिकीर्तिता ॥ ६० ॥

अनया विद्यया देवि स्वलिङ्गे पूजयेच्छिवम् ।

फिर पूर्वक्रमानुसार मन्त्रवेत्ता साधक उसमें श्रीविद्या की पूजा करे । हे भुवनेशानि ! इसके बाद अपने लिङ्ग में धूपादि प्रदान कर 'ॐ ह्रीं महात्रिपुरसुन्दरि' इस दश वर्ण वाले मन्त्र के साथ हे देवि ! नमः शिवाय इस मन्त्र से अपने लिङ्ग में शिव की पूजा करे ॥ ५९–६१ ॥

यजेत्तत्पुरुषाघोरसद्योवामेशसंज्ञया ॥ ६१ ॥

निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिस्तथैव च ।
शान्त्यतीता च सम्पूज्या षडङ्गावरणं यजेत् ॥ ६२ ॥

समग्रविद्यामुच्चार्य नन्दिकेशं प्रपूजयेत् ।
मध्ये वृषणयोर्देवि गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ ६३ ॥

इन नामों से तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव, ईशान, निवृत्ति, प्रतिष्ठा, शान्ति तथा शान्त्यतीता इन कलाओं की पूजा कर षडङ्गावरणों की पूजा करे। हे देवि! तदनन्तर समग्र विद्या का उच्चारण कर अण्डकोश के मध्य में गन्ध, पुष्प एवं अक्षतादि के द्वारा नन्दिकेश्वर की पूजा करे ॥ ६१–६३ ॥

निवेद्य धूपदीपादि विजितेन्द्रियमानसः ।
सर्वक्षोभिणीं मुद्रां बद्ध्वा योनिं प्रचालयेत् ॥ ६४ ॥

इन्द्रियों को अपने वश में कर धूप दीपादि निवेदित कर सर्वक्षोभिणी मुद्रा प्रदर्शित करते हुए योनि को हिलावे ॥ ६४ ॥

क्षोभिण्यां वाऽथ वा देवि गजतुण्डाख्ययाऽथ वा ।
उच्चरन्भगमालां तु द्राविणीबीजमुच्चरेत् ॥ ६५ ॥
अक्षुब्धः सन् वरारोहे यावद्रेतः प्रवर्तते ।
रजोमयं रजः साक्षात्संविदेव न संशयः ॥ ६६ ॥

हे देवि ! क्षोभिणी मुद्रा अथवा गज तुण्डाख्य मुद्रा से भगमाला मन्त्र का उच्चारण कर (द्रष्टव्य : मन्त्रमहोदधि, १२.१०–१६) द्राविणी बीज (द्राँ) का उच्चारण करे । हे वरारोहे ! यह उच्चारण अक्षुब्ध हो कर जब रेत का संचालन हो तब करें, रजोमय रज तो साक्षात् ज्ञानस्वरूप है ही ॥ ६५–६६ ॥

प्रकृतिः परमेशानि वीर्यं पुरुष उच्यते ।
सर्वं साक्षात्सामरस्यं शिवशक्तिमयं ततः ॥ ६७ ॥

हे परमेशानि ! वही रज प्रकृति है, वीर्य पुरुष कहा गया है । उन दोनों का रज और वीर्य का साक्षात् सामरस्य शिवशक्तिमय होता है ॥ ६७ ॥

तयोर्योगो महेशानि योग एव न संशयः ।
सीत्कारो मन्त्ररूपस्तु वचनं स्तवनं भवेत् ॥ ६८ ॥
नखदन्तक्षतान्यत्र पुष्पाणि विविधानि च ।
कूजनं गायनं स्तुत्या ताडनं हवनं भवेत् ॥ ६९ ॥
आलिङ्गनं तु कस्तूरीघुसृणादिकमद्रिजे ।
मर्दनं तर्पणं विद्धि वीर्यपातो विसर्जनम् ॥ ७० ॥

उन दोनों का योग ही, हे महेशानि ! योग है, इसमें संशय नहीं। सीत्कार मन्त्रस्वरूप है, वचन स्तुति है, नखक्षत दन्तक्षत विविध पुष्प हैं, कूजन स्तुति गान है, ताडन होम है, आलिङ्गन कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थ हैं, कुचादि मर्दन तर्पण हैं, और हे अद्रिजे ! वीर्यपात विसर्जन है ॥ ६८–७० ॥

कुलद्रव्येण संशोध्य शिवशक्तिमयं प्रिये ।
बीजामृतं परब्रह्मरूपं निक्षिप्य सुन्दरि ॥ ७१ ॥
अर्घ्यपात्रामृते त्यक्त्वा निर्विकल्पः सदाऽनघः ।
श्रीविद्याक्रममभ्यर्च्य परब्रह्ममयो भवेत् ॥ ७२ ॥

हे सुन्दरि ! हे प्रिये ! अमृत स्वरूप उस परब्रह्ममय वीर्य को निकाल कर शिवशक्तिमय जान कर कुल द्रव्य से सम्प्रदाय के अनुसार उनका संशोधन करे । उसे अर्घपात्रामृत में त्याग कर साधक सर्वदा निष्पाप हो कर निर्विकल्प बन जाता है और इस प्रकार श्रीविद्या क्रम की अर्चना कर वह परब्रह्ममय हो जाता है ॥ ७१–७२॥

एतत्ते कथितं ज्ञानं सामरस्यं वरानने ।
सविकल्पस्तु देवेशि पापभाग्जायते नरः ॥ ७३ ॥
विचिकित्साकारो मन्त्री जायते गुरुतल्पगः ।
अत एव वरारोहे निर्विकल्पः सदा भवेत् ॥ ७४ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे श्रीविद्यादूतीयजन–
विधिर्नाम द्वाविंशः पटलः ॥ २२ ॥

हे वरानने ! इस प्रकार हमने प्रकृति एवं पुरुष का सामरस्य आपसे कहा। हे देवेशि ! सविकल्प मनुष्य ऐसा करने से पापी हो जाता है और जो मन्त्रज्ञ इसमें संदेह करता है, वह गुरुतल्पग पापी होता है। इसलिए हे वरारोहे ! श्रीपूजा में सर्वदा निर्विकल्प रहना चाहिए ॥ ७३–७४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'श्रीविद्या दूतीयजनविधि'
नामक द्वाविंश पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत
हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशः पटलः

ईश्वर उवाच –

दूत्यन्तरं प्रवक्ष्यामि येन ब्रह्म सनातनम् ।
प्रणवाख्यं यागगेहं प्रविश्य सुरवन्दिते ॥ १ ॥

हे देवि ! अब अन्य दूती के विषय में कहता हूँ, जिससे प्रणव स्वरूप सनातन ब्रह्म प्राप्त हो जाता है ॥ १ ॥

श्रीज्ञानदूतीयजनविधानम्

इच्छाज्ञानक्रियाद्रव्यरचितं सुधया युतम् ।
अम्बया परमेशानि तत्त्वज्ञानमये शिवे ॥ २ ॥
पर्यङ्के पुरुषार्थैस्तु पादैश्च परिमण्डिते ।
आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्माङ्गविभूषिते ॥ ३ ॥
तत्पदार्थस्त्वंपदार्थोऽसिपदार्थश्च सुन्दरि ।
पदार्थत्रयमेतत्तु ज्ञानसूत्रप्रकाशकम् ॥ ४ ॥
एतत्सूत्रमयैः पट्टैर्गुम्फितेऽम्बरमण्डिते ।
सुमनोवाससुभगे परां तत्र प्रपूजयेत् ॥ ५ ॥

ज्ञानदूतीयजन विधान – हे सुरवन्दिते ! साधक प्रथम इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया रूप द्रव्यों से निर्मित अम्बारूप सुधा से अनुलिप्त यागमण्डप में प्रवेश करें। हे परमेशानि ! वहाँ तत्त्वज्ञानमय शिव नामक पर्यङ्क पर परा भगवती की पूजा करे। उस पर्यङ्क के पुरुषार्थरूप चार पाद हैं और वह आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा रूप अङ्गों से विभूषित है। हे सुन्दरि ! तत् पदार्थ, त्वं पदार्थ, असि पदार्थ – इन तीन पदार्थ रूपी ज्ञान के प्रकाशक सूत्र से निर्मित वस्त्र के

अम्बर का जिसमें वितान (चँदोवा) लगा हुआ है, जो विकीर्ण किये गये पुष्पों से अत्यन्त सुगन्धित हैं उस पर्यङ्क पर भगवती परा की पूजा करें ॥ २–५ ॥

जातिभेदस्तु दूतीनां चतुर्धा वीरवन्दिते ।
हस्तिनी शङ्खिनी चैव चित्रिणी पद्मिनी प्रिये ॥ ६ ॥

हे वीरवन्दिते ! पूर्वोक्त दूती के चार भेद हैं । जिनके नाम १. हस्तिनी, २. शङ्खिनी, ३. चित्रिणी तथा ४. पद्मिनी हैं ॥ ६ ॥

चतुर्विधा हि दूत्यस्तु सुन्दर्यश्चारुलोचनाः ।
वैखरी हस्तिनी ज्ञेया स्थूला यस्माद्वरानने ॥ ७ ॥

ययेदं धार्यते सर्वं ब्रह्माण्डपरिमण्डलम् ।
वर्गाष्टकेन देवेशि सूते दिग्गजसंचयम् ।
तेनेयं करिणी प्रोक्ता मध्यमा शङ्खिनी भवेत् ॥ ८ ॥

हे वरानने ! ये चारों दूतियाँ अत्यन्त सुन्दरी हैं। उनके नेत्र बड़े मनोहर है। उनमें वैखरी हस्तिनी है क्योंकि वह स्थूल है जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मण्डल को धारण की हुई है । हे देवेशि ! जो वर्गाष्टक (अ, क, च, ट, त, प, य, श) से दिग्गजों के समूहों को उत्पन्न करती है, इसीलिए इसे हस्तिनी कहा जाता है और शङ्खिनी दूती मध्यमा वाक् है ॥ ७–८ ॥

शङ्खिनी तु यथा भद्रे विशुद्धा पापवर्जिता ।
सर्वदेवप्रिया सा हि शान्तिसौभाग्यशोभिता ॥ ९ ॥

तथा वनस्पतिगता मध्यमा वाग्वरानने ।
चित्रिणी वल्लरी देवि महादोषविनाशिनी ॥ १० ॥

यस्याः फलं वरारोहे शिवशक्तिमयं सदा ।
शिवशक्तिमयं देवि प्राणिमात्रजगत्त्रयम् ॥ ११ ॥

हे भद्रे ! यह मध्यमावाक् शङ्खिनी, विशुद्धा एवं पापवर्जिता है । यह सर्वदेवप्रिया, शान्ति तथा सौभाग्य से शोभित है और हे वरानने ! यह मध्यमा वाक् वनस्पति पर रहती है। हे देवि ! चित्रिणी बल्लरी स्वरूपा है, जो महान् दोषों को विनष्ट करने वाली हैं। हे वरारोहे ! जिसका फल सदा शिवशक्तिमय है और शिवशक्तिमय प्राणीमात्र तीनों जगत् है ॥ ९–११ ॥

तेषु सर्वेषु पश्यन्ती जीवेषु परमाश्रया ।
परब्रह्मणि सा लीना परा वाक्परमेश्वरि ॥ १२ ॥

तां दूतीं तत्र संपूज्य समाधिकुसुमैः शुचिः।
तदङ्गेषु कलाः पूज्याः क्रमेण सुरवन्दिते ॥१३॥

पश्यन्ती वाक् सभी जीवों को आश्रय देती हुई सबके भीतर रह कर सबका देखभाल करती है। हे परमेश्वरि ! इसके बाद परावाक् परब्रह्म में सदा लीन रहती है । पवित्र साधक उस पर्यङ्क पर उन–उन दूतियों की समाधि–रूपी कुसुमों से पूजा कर, हे सुरवन्दिते ! उनके अङ्गों में रहने वाली कलाओं का क्रमशः पूजन करे ॥१२–१३॥

पद्मिनी तु परा ज्ञेया हंसस्वच्छविकासिनी ।
हंसोदयेन पद्मं हि त्यक्त्वा संकोचमद्रिजे ॥१४॥

स्वच्छ हंस (सूर्य) से विकसित होने वाली पद्मिनी परा वाणी है । हे अद्रिजे ! क्योंकि हंस (सूर्य) के उदय होने से (हृत्) कमल अपना संकोच छोड़कर विकसित होता है ॥१४॥

विकासयति सौभाग्यं तथा वस्तुविलासतः ।
परा प्रकाशमायाति पद्मिनीत्वमतो भवेत् ॥१५॥

वह वस्तु के विलास से सौभाग्य विकसित करती है, क्योंकि वह परा प्रकाशस्वरूपा है। इसलिए उसका पद्मिनीत्व उचित ही हैं ॥१५॥

तस्या देहे वरारोहे कलाः पूज्यास्तु षोडश ।
चित्कला सत्कला ज्ञानकला संवित्कला तथा ॥१६॥
आत्मनस्तु कला ज्ञेयाश्चतस्रः परमेश्वरि ।
विरागता मोक्षकला परमाणुकला तथा ॥१७॥
विद्याकलाचतुष्कं तु विज्ञेयं चान्तरात्मनि ।
विद्या संतोषता तृप्तिः परब्रह्मप्रकाशता ॥१८॥
परमात्मकला ज्ञेयाः संलीनाः परवस्तुनि ।
लुप्तिः शान्तिकला बोधकला व्याप्तिकला परा ॥१९॥
ज्ञानात्मनः कला ज्ञेयाश्चतस्रः परमेश्वरि ।
कलाः षोडश देवेशि श्रीविद्यार्णेषु संस्थिताः ॥२०॥

हे वरोरोहे ! उसके शरीर में इन कलाओं का पूजन करना चाहिए । १. चित्कला, २. सत्कला, ३. ज्ञानकला, एवं ४. संवित्कला । हे परमेश्वरि ! ये आत्मा की ४ कलायें हैं । १. विरागता, २. मोक्षकला, ३. परमाणुकला, एवं ४. विद्याकला–ये अन्तरात्मा की ४ कलायें हैं । १. विद्या, २. संतोषता, ३.

तृप्ति, एवं ४. परब्रह्मप्रकाशता—ये परमात्मा की ४ कलायें है, जो परतत्त्व में लीन रहती हैं । १. लुप्ति, २. शान्तिकला, ३. बोधकला, ४. परव्याप्तिकला । हे परमेश्वरि ! ये ज्ञानात्मा की ४ कलायें हैं । इस प्रकार हे देवेशि ! श्रीविद्या के मन्त्राक्षरो में भी ये १६ कलायें निवास करती हैं ॥ १६—२० ॥

षोडशार्णा ब्रह्मरूपा कला षोडशरूपिणी ।
आत्मा जाग्रत्स्वरूपेण त्रैलोक्यं रचयत्यसौ ॥ २१ ॥

१६ अक्षरों वाली षोडशरूपिणी ये कलायें ब्रह्म स्वरूपा हैं। आत्मा जाग्रत्स्वरूप से त्रिलोकी की रचना करती है ॥ २१ ॥

अन्तरात्मा सत्त्वरूपस्तमोरूपश्च मिश्रितः ।
अत एव रजोरूपस्तमोरूपः परः शिवः ॥ २२ ॥

परमात्मा हि विज्ञेयो ज्ञानात्मा तुर्यया युतः ।
एताः कला वरारोहे तस्या देहे प्रकाशयेत् ॥ २३ ॥

अन्तरात्मा सत्त्वस्वरूप और तमोरूप का मिश्रित स्वरूप हैं। इसके बाद रजोरूप और तमोरूप दोनों का मिश्रित स्वरूप शिव परमात्मा है। ज्ञानात्मा तुरीयावस्था से युक्त है ऐसा समझना चाहिए। हे वरारोहे ! इन कलाओं को उसके देह में प्रकाशित करे ॥ २२—२३ ॥

तत्पदार्थं तु जानीहि मुखमस्या वरानने ।
त्वंपदार्थोऽसिवाक्यार्थः कुचयुग्मं क्रमेण हि ॥ २४ ॥

भोगस्तु परमेशानि नादो ब्रह्ममयो भवेत् ।
नादोदितं वरारोहे विश्वं योनिर्न संशयः ॥ २५ ॥

हे वरानने ! तत्पदार्थ उसका मुख समझना चाहिए। त्वं पदार्थ और असि पदार्थ दोनों का वाक्यार्थ क्रमशः कुचयुग्म जानना चाहिए। हे परमेशानि ! उसका सम्भोग ब्रह्ममय नाद है जिस नाद को पहले बता दिया गया है। हे वरारोहे ! यह विश्व उसकी योनि है इसमें संशय नहीं ॥ २४—२५ ॥

तत्रैव शक्तिं संपूज्य स्वात्मलिङ्गं शिवं यजेत् ।
परस्परप्रभावेण ब्रह्मानन्दरसो भवेत् ॥ २६ ॥

उसी में शक्ति की पूजा कर आत्मलिङ्गस्वरूप शिव का यजन करे। दोनों का एकीकरण करने से ब्रह्मानन्दरस उत्पन्न होता है ॥ २६ ॥

तं रसं मनसा देवि वहन्नाड्यगतं प्रिये ।
अर्घ्यामृतेन संयोज्य ततः श्रीचक्रमर्चयेत् ॥ २७ ॥

हे प्रिये ! हे देवि ! उस रस को मन से अपनी नाड़ियों में धारण करते हुए अर्घ्यामृत से संयुक्त करें। तदनन्तर श्रीचक्र की पूजा करे ॥ २७ ॥

ब्रह्मानन्दमयं ज्ञानं कथयामि वरानने ।
न ब्राह्मणो ब्राह्मणस्तु क्षत्रियः क्षत्रियस्तथा ॥ २८ ॥

वैश्यो न वैश्यः शूद्रो न शूद्रस्तु परमेश्वरि ।
चाण्डालो नैव चाण्डालः पौल्कसो न च पौल्कसः ॥ २९ ॥

हे वरानने ! अब ब्रह्मानन्दमय ज्ञान कहता हूँ। ब्रह्मानन्द प्राप्त कर लेने पर ब्राह्मण नहीं रहता, क्षत्रिय क्षत्रिय नहीं रहता, वैश्य वैश्य नहीं रह जाता और न तो शूद्र शूद्र ही रह जाता है। चाण्डाल भी चाण्डाल नहीं रहता और पौल्कस पौल्कस नहीं रह जाता ॥ २८–२९ ॥

सर्वं समं विजानीयात्परमात्मविनिश्चयात् ।
आकाशात्पतितं तोयं निम्नमार्गेण गच्छति ॥ ३० ॥

ग्राममध्यगतं सर्वं विष्ठामूत्रादिपूरितम् ।
मृतगोश्वानमार्जारखरादिरुधिरान्वितम् ॥ ३१ ॥

समस्तमपि देवेशि गङ्गायां मिलितं यथा ।
गङ्गामृते तु देवेशि कालुष्यं नैव तिष्ठति ॥ ३२ ॥

परमात्मा सर्वत्र हैं, सब में है, ऐसा निश्चय कर सबको समान समझे, आकाश से गिरा हुआ जल जब नीचे भूमि के मार्ग में चलता हैं तब ग्राम के मध्य में रहने वाले विष्ठा और मूत्र से प्रपूरित हो जाता है और मरे हुए गाय, कुत्ता, मार्जार या खर (गदहा) के रुधिर से तथा अन्य समस्त अशुचि पदार्थों से संयुक्त रहता है। किन्तु हे देवेशि ! जब वही गंङ्गा में मिल जाता है तो गङ्गामृत में मिल जाने के कारण हे देवेशि ! समस्त भी उस जल में मलीनता अशुचित्वादि कालुष्य नहीं रहता ॥ ३०–३२ ॥

तथा सच्चिन्मये ज्ञाने समता सर्वजन्तुषु ।
सर्वद्रव्येषु गिरिजे समता नात्र संशयः ॥ ३३ ॥

इसी प्रकार सच्चिन्मय ज्ञान हो जाने पर, सभी जन्तुओं में, सभी द्रव्यों में, हे गिरिजे ! समता दिखाई पड़ने लगती है, इसमें कोई संशय नहीं ॥ ३३ ॥

यथा सूर्यप्रकाशोऽयं समत्वेन प्रवर्तते ।
उत्तमस्यापि चान्यस्य तमः संहरते क्षणात् ॥ ३४ ॥

शोषयन्दुग्धमूत्राणि चन्दनं चैव कर्दमम् ।
अत एव महेशानि मन्त्री सर्वसमो यदा ।। ३५ ।।
सिद्धिस्तदैव विज्ञेया श्रीगुरोः कृपया प्रिये ।। ३६ ।।

।। इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे ज्ञानदूतीयजनविधिर्नाम त्रयोविंशः पटलः ।। २३ ।।

जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश सर्वत्र समत्व रूपेण पड़ता है वह चाहे उत्तम हो चाहे महानीच हो सब के घर का अन्धेरा क्षण भर में नष्ट करता है। दूध और मूत्र दोनों का समान रूप से शोषण करता है और चन्दन एवं कीचड़ का भी समान रूप से शोषण करता है, वह भेद नहीं करता। इसी प्रकार हे महेशानि ! सर्वज्ञ मन्त्रवेत्ता सब में समान बुद्धि रखे। हे प्रिये ! फिर क्या कहना श्री गुरु की कृपा से उसी समय उसे सिद्धि प्राप्त हो जाती है ।। ३४–३६।।

।। इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'श्रीज्ञानदूतीयजन विधि' नामक त्रयोविंश पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।। २३ ।।

अथ चतुर्विंशः पटलः

श्रीदीक्षाविधानम्

ईश्वर उवाच –

दीक्षाविधिं प्रवक्ष्यामि येन शिष्यः सुखी भवेत् ।
दीयते सकलं देवि गुरवे प्राणसंयुतम् ॥ १ ॥

धन–रत्न–सुवर्णादि–पट्टवस्त्र–समुच्चयम् ।
क्षयं प्राप्नोति तद्भावान्नानापापसमुच्चयः ॥ २ ॥
तस्माद्दीक्षेति नामास्याः सर्वशास्त्रेषु सुव्रते ।

ईश्वर ने कहा – हे देवि ! अब दीक्षाविधि कहता हूँ, जिससे शिष्य को सुख प्राप्त होता है । हे देवि ! 'दी' का अर्थ गुरु को प्राणसंयुक्त धन रत्न सुवर्णादि पट्ट वस्त्र समूह प्रदान करना है, और 'क्षा' का अर्थ है, उस दान के प्रभाव से शिष्य के नाना प्रकारों के पापों का क्षय। इसलिए, हे सुव्रते ! अनेक शास्त्रों में इसका नाम दीक्षा कहा गया है ॥ १–३ ॥

पापिने कृपणायापि शठाय कपटाय च ॥ ३ ॥
अदीनायाऽऽचारशून्याय मन्त्रद्वेषपराय च ।
निन्दकाय च मूर्खाय तीर्थद्वेषपराय च ॥ ४ ॥
भक्तिहीनाय देवेशि न देया मलिनाय च ।

पापी, कृपण, शठ, कपटी, अदीन (अत्यन्त उद्धत) आचार शून्य, मन्त्र से द्वेष करने वाले, निन्दक, मूर्ख, तीर्थ से द्वेष करने वाले, भक्तिहीन तथा मलिन को कभी दीक्षा नहीं देना चाहिए ॥ ३–५ ॥

दानशीलाय भक्ताय साधवे तीर्थचेतसे ॥ ५ ॥
सन्मार्गवर्तिने चाग्निदेवद्विजरताय च ।
सर्वशास्त्रार्थवेदार्थज्ञानिने सुव्रताय च ॥ ६ ॥

दीक्षा देया वरारोहे अन्यथाऽऽपत्तिभाग्भवेत् ।
अथ वक्ष्ये वरारोहे दीक्षाकरणमुत्तमम् ॥ ७ ॥

दानशील भक्त, साधु, तीर्थ में श्रद्धा रखने वाले, सच्चरित्र, अग्नि देवता और ब्राह्मण की सेवा में तत्पर, सभी शास्त्रों के तथा वेदों के अर्थ को जानने वाले एवं उत्तम व्रत धारण करने वाले सत्पुरुष को ही इसकी दीक्षा देनी चाहिए, अन्यथा दीक्षा देने वाला पाप का भागी होता है । हे वरारोहे ! अब उत्तम दीक्षा कार्य का विधान कहता हूँ ॥ ७ ॥

मण्डपं वेदिकां कृत्वा पुष्पवैतानमण्डितम् ।
दीपमालावलीरम्यं नानाधूपसुधूपितम् ॥ ८ ॥
सिन्दूररङ्गमालाभिर्मण्डितं चित्रचित्रितम् ।
वेदिकायां वरारोहे कुङ्कुमेनाथ वा प्रिये ॥ ९ ॥
सिन्दूररजसा वाऽपि विलिखेच्चक्रमुत्तमम् ।
मध्यचक्रं वरारोहे नवकोणविराजितम् ॥ १० ॥
चतुरस्रं च संलिख्य सुवर्णकलशान्नव ।
रौप्यताम्रादिरचितान्मृत्तिकारचितांश्च वा ॥ ११ ॥

फूलों के वितान से सुसज्जित मण्डप बनाकर उसमें उत्तम वेदी निर्माण करे । उस मण्डप को दीपावली माला से एवं अनेक प्रकार के धूपों से, सिन्दूर के रङ्ग समूहों से चित्र विचित्र रूप में मण्डित करे। हे प्रिये ! वेदी पर कुङ्कुम से अथवा सिन्दूर के पराग से उत्तम चक्र का निर्माण करे। चक्र के मध्य में नव कोणों से सुशोभित चौकोर आकार बनावे । हे वरारोहे ! उन नव कोणों पर सुवर्ण निर्मित नव कलश स्थापित करे जो चाँदी अथवा ताँबे के अथवा मृत्तिका से निर्मित हों ॥ ८–११ ॥

जलपूर्णान्विशेषाढ्यान् स्वर्णरत्नप्रपूरितान् ।
फलैः पुष्पैश्च सुभगान् सुगन्धेन च चर्चितान् ॥ १२ ॥

उन कलशों को जल से विशेष द्रव्यों से सुवर्ण रत्नों से पूर्ण करे, फल पुष्पों से सुरम्य बनावे तथा सुगन्ध से चर्चित करे ॥ १२ ॥

वशिन्याद्यष्टकं तत्र वसुकुम्भेषु पूजयेत् ।
मध्यकुम्भे वरारोहे श्रीविद्यां परितोषयेत् ॥ १३ ॥
क्रमं समस्तमभ्यर्च्य कुमार्याद्यर्चनं यजेत् ।
सुवासिनीर्ब्रह्मवृन्दं योगिनो विविधानपि ॥ १४ ॥

तदङ्गहवनं कुर्यात्सर्वेषां तृप्तिहेतवे ।
गुरुः शिष्यमुपानीय भक्तिनम्रमकल्मषम् ॥१५ ॥
प्राणानायम्य विधिवच्छुद्धपीठे निवेश्य च ।
सुरास्त्वामेत्यादिमन्त्रैश्चिरण्टीभिर्युतः स्वयम् ॥१६ ॥
अभिषिञ्चेच्च तन्मूर्ध्नि तदेतत्कलशोदकैः ।
परिधाप्य सुवासोभिश्चन्दनादवलेप्य च ॥१७ ॥
वामतः परमेशानि स्वासने पूजिते शुचिम् ।
सर्वशृङ्गारवेषाढ्यं शिष्यं तत्र निवेशयेत् ॥१८ ॥

उसमें ८ कुम्भों पर वशिन्यादि आठ देवीशक्तियों की पूजा कर तदनन्तर, हे वरारोहे ! मध्यकुम्भ में श्री विद्या को पूजा द्वारा संतुष्ट करे । क्रमशः इस प्रकार उनकी अर्चना कर कुमारियों का, सुवासिनियों का, विविध ब्राह्मण वृन्दों का तथा योगिनियों का पूजन कर सबकी तृप्ति के लिए तदङ्ग हवन करे। तदनन्तर, भक्ति से विनम्र निष्पाप शिष्य को गुरु स्वयं लावे । तदनन्तर, प्राणायाम कर उसे शुद्ध पीठ पर बिठावे। फिर अनेक चिरण्टियों (?) के साथ 'सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु' इस मन्त्र से कलश के जल से उस शिष्य को अभिषिक्त करे । सुन्दर वस्त्र पहनावे और चन्दन का लेप करे । फिर हे परमेशानि ! अपने बायें पूजित शुद्ध आसन पर सब प्रकार के शृङ्गारों से सुसज्जित उस शिष्य को बिठावे ॥ १३–१८ ॥

षडध्वरूपं श्रीचक्रं तस्य मूर्ध्नि विचिन्तयेत् ।
अभावे तु बृहच्छङ्खं जलेनाऽऽपूर्य सुन्दरि ॥१९ ॥

तदनन्तर षडध्व युक्त श्री चक्र उसके शिर पर रखे । हे सुन्दरि ! इसके अभाव में जल से पूर्ण एक बहुत बड़ा शङ्ख रखें ॥ १९ ॥

कलास्तत्र समाराध्य देवीं सम्पूज्य सेवयेत् ।
स्वदृष्ट्याऽऽलोकयेत्तं तु दृष्ट्या दृष्टिं तु मेलयेत् ॥ २० ॥

उस पर कलाओं की आराधना कर देवी का पूजन करे। फिर उसे अपनी दृष्टि से देखें और उसकी दृष्टि तथा स्वयं अपनी दृष्टि एक में आमने सामने मिला लेवें ॥ २० ॥

आज्ञासंक्रमणं कुर्याद्यावन्निश्चलता भवेत् ।
नैश्चलं शाम्भवो वेद्यः शून्याशून्यविवर्जितः॥ २१ ॥

उसमें आज्ञा का संक्रमण करे जिससे उसमें निश्चलता उत्पन्न हो जावे। शून्याशून्य विवर्जित निश्चल पुरुष शैव बन जाता है ॥ २१ ॥

शून्यं शिवमयं वस्तु पुरुषः परमेश्वरि ।
अशून्यं शक्तिराद्या हि प्रकृतिः परमेश्वरि ॥ २२ ॥

हे परमेश्वरी ! पुरुष शून्य और शिवमय तत्त्व है तथा हे परमेश्वरि! आद्या प्रकृति शक्ति अशून्य है ॥ २२ ॥

शक्त्याधिक्ये रजःस्थौल्यं संयोगाच्छिवयोर्यदा ।
स्वप्नावस्था तदा ज्ञेया योगः शक्त्यधिकस्ततः ॥ २३ ॥
शक्तिर्जाग्रदिति ख्याता शिवो निश्चलता प्रिये ।
सुषुप्तिरिति मन्त्रज्ञैः कथिता निश्चला यतः ॥ २४ ॥

शक्ति की अधिकता में स्थूल रजोगुण होता है, जब शिवा शिव का संयोग होता है तब स्वप्नावस्था होती है। जब उस योग में शक्ति की अधिकता होती है, तब वह शक्ति जाग्रत नाम वाली हो जाती है। जब शिव की निश्चलता का आधिक्य होता है, तब हे प्रिये! मन्त्रवेत्ताओं ने उसे सुषुप्ति कहा है। क्योंकि उसमें निश्चलता रहती है ॥ २३–२४ ॥

गुणत्रयं तु कथितं जाग्रत्सत्त्वगुणा प्रिये ।
तमोगुणा सुषुप्तिस्तु शिवे निश्चलरूपिणी ॥ २५ ॥

हे प्रिये ! पहले हम तीनों गुणों को कह आए हैं । जाग्रत सत्त्व गुण है । निश्चलरूपिणी सुषुप्ति तमोगुण है ॥ २५ ॥

शिवाधिक्याद्गुणातीतं वस्तु जानीहि सुन्दरि ।
शिवशक्तिसमायोगाच्छिवाधिक्यं यदा भवेत् ॥ २६ ॥
तदा तुर्यां विजानीयात्सर्वबन्धनिकृन्तनीम् ।
कलाः षोडश देवेशि आत्मज्ञाने व्यवस्थिताः ॥ २७ ॥

हे सुन्दरि ! शिवतत्त्व को अधिकता में वस्तु गुणातीत हो जाता है ऐसा समझना चाहिए । शिव शक्ति के संयोग होने पर जब शिवतत्त्व की अधिकता हो तब तुरीया अवस्था होती है, जो सारे सम्बन्धों को अलग कर देती है । हे देवेशि ! इसी आत्मज्ञान में षोडश कलाओं का व्यवस्थित रूप से निवास रहता है ॥ २६–२७ ॥

श्रीविद्याबीजसंलीनाः शिष्यदेहे प्रकाशयेत् ।
चतुर्विधा षोडशार्णा महात्रिपुरसुन्दरी ॥ २८ ॥

श्रीविद्या के बीज में छिपी हुई इसी कला को आचार्य शिष्य देह में उपदेश कर प्रकाशित करें । षोडश अक्षरों वाली महात्रिपुरसुन्दरी चार प्रकार की बतलाई गई हैं ॥ २८ ॥

तद्ध्यानात्तु मनःस्थैर्यमुन्मनीति निगद्यते ।
ब्रह्मज्ञाने मनः पक्षी तृष्णाचञ्चुविलक्षितः ॥ २९ ॥

उनका ध्यान करने से मन जब स्थिर हो जाता है जब उन्मनी अवस्था कही जाती है । ब्रह्मज्ञान में मन पक्षी के समान है जो तृष्णारूप चञ्चु से अभिलक्षित होती है ॥ २९ ॥

संकल्पेन विकल्पेन पक्षाभ्यां चञ्चलः सदा ।
मोहमत्सरकामैश्च क्रोधाहंकारदुर्मदैः ॥ ३० ॥
संनद्धपिच्छैःसबलः कृत्याकृत्यपदद्वयः ।
संसारवृक्षे देवेशि धनपुत्रादिमूलके ॥ ३१ ॥
अविद्याविस्तृते निन्दास्तुतिशाखासुशोभिते ।
अभिलाषस्फुरत्पुष्पभरिते पातकादिभिः ॥ ३२ ॥
पर्णपूर्णे वरारोहे पापपुण्यफलान्विते ।
तत्र शाखाद्वये स्थूले श्रुतदृष्टाभिधः स्थितः ॥ ३३ ॥

वह मनरूपी पक्षी संकल्प विकल्प रूप से दो पंखों से सर्वदा चञ्चल रहता है । मोह, मत्सर, काम, क्रोध, अहङ्कार एवं दुष्ट चेष्टा रूप पिच्छों से अत्यन्त बलवान् है। कार्य और अकार्य इसके दो पैर हैं। हे देवेशि! संसार रूप वृक्ष पर वह बैठा हुआ है। जिस वृक्ष के धन पुत्रादि मूल है। अविद्या के कारण वह बढ़ता रहता है। वह निन्दास्तुति दो शाखाओं से सुशोभित है। अभिलाषा रूप पुष्पों से सर्वदा परिपूर्ण रहता है। पातक रूप पत्तों से परिपूर्ण उस मन रूपी वृक्ष में पाप और पुण्य दो फल लगे हैं। इस प्रकार संसाररूपी वृक्ष के मोटी—मोटी दो शाखाओं पर जिसे मात्र श्रुति से जाना जाता है, वह मन रूपी पक्षी स्थित है ॥ ३०—३३ ॥

पक्षिणं तं समाक्रम्य ज्ञानपाशेन पाशयेत् ।
पक्षिखेलारतो नित्यं कटाक्षः श्रीगुरोः प्रिये ॥ ३४ ॥

ज्ञानी साधक को चाहिए कि उस पक्षी पर हठात् आक्रमण कर ज्ञान पाश से बाँध लेवे। हे प्रिये! इस पक्षि से खेल में वही सफल हो सकता है, जिस पर श्री गुरु की कृपा कटाक्ष पड़ती है ॥ ३४ ॥

तेन पक्षद्वयं छिन्नं यदा भवति निश्चयात् ।
तदा समुन्मनीभूत उन्मुखो निश्चयात्प्रिये ॥ ३५ ॥

उस खेल में जब उस पक्षी के दोनों संकल्प विकल्प रूप पँखे निश्चयरूप शस्त्र से काट दिए जाते हैं, तब वह निश्चय के कारण समुन्मनी होकर परमात्मा की ओर उन्मुख होता है ॥ ३५ ॥

सर्वसंकल्परहिता कला सप्तदशी भवेत् ।
उन्मनी नाम तस्या हि भवपाशनिकृन्तनम् ॥ ३६ ॥

सभी प्रकार के संकल्पों से रहित एक १७ वीं भी कला है, उसका नाम उन्मनी हैं, जिसके द्वारा संसार रूप पाश कट जाता है ॥ ३६ ॥

उन्मन्या सहितो योगी न योगी नोन्मनी परा ।
यथा कर्पूरगो दीपो न दीपो न पुनः शशी ॥ ३७ ॥

उन्मनी के सहित योगी न योगी है न उन्मनी है। जैसे कपूर का दीपक, कपूर कहा जा सकता है न दीप कहा जा सकता है ॥ ३७ ॥

अत एव महेशानि दृष्ट्या संक्रमणं यजेत् ।
तत्त्वमस्यादिवाक्येन पश्चाद्वाच्यं हि योजयेत् ॥ ३८ ॥

इसलिए, हे महेशानि ! दृष्टि के द्वारा आचार्य अपने शिष्य में ब्रह्म का संक्रमण करें । इसके बाद 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्य से वाच्यार्थ का उपदेश करे ॥ ३८ ॥

आदावकथ्यसंयोज्यं स्पर्शेनैव सुलोचने ।
स्पर्शः स्पर्श इवाऽऽभाति श्रीगुरोः करसंभवः ॥ ३९ ॥

हे सुलोचने ! सर्वप्रथम आचार्य स्पर्श के ही द्वारा अकथ्य का संयोजन करे । श्री गुरु के हाथ से होने वाला स्पर्श समझिए की ब्रह्मस्पर्श जैसा प्रतीत होता है ॥ ३९ ॥

स्पर्शेन धातवः सद्यो लोहाद्याः सुरवन्दिते ।
सुवर्णतां प्राप्य सर्वे विशिष्टाभरणान्विताः ॥ ४० ॥

हे सुरवन्दिते ! यह स्पर्श का ही प्रभाव है कि लौहादि धातु सद्यः सुवर्णता प्राप्त कर विशिष्ट आभरण युक्त हो जाते हैं ॥ ४० ॥

करस्पर्शस्तु देवेशि प्रपञ्चमलिनादिकम् ।
लोहत्वं नाशयित्वा हि सुवर्णत्वं करोति हि ॥ ४१ ॥

हे देवेशि ! गुरु का कर स्पर्श प्रपञ्चमालिन्य रूप लोह को विनष्ट कर सुवर्णत्व रूप प्रदान कर देता है ॥ ४१ ॥

करे पुष्पफलान्कृत्वा ब्रह्मरन्ध्रे करं क्षिपेत् ।
तस्माद्ब्रह्मत्वमेवासीति वाक्यार्थः कराद्भवेत् ॥ ४२ ॥

हाथ में पुष्प एवं फल लेकर ब्रह्मरन्ध्र पर गुरु अपना हाथ रखें। ऐसा करने से 'ब्रह्मत्वमेवासि' इस वाक्यार्थ का ज्ञान उस करस्पर्श से हो जाता है ॥ ४२॥

अनिर्वाच्योपदेशोऽयं स्पर्शनाद्ब्रह्मरन्ध्रके ।
ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रारे कर्पूरधवलो गुरुः ॥ ४३ ॥

ब्रह्मरन्ध्र के स्पर्श से यह अनिर्वाच्य उपदेश है, (क्योंकि) ब्रह्मरन्ध्र के सहस्रार में कर्पूर के समान स्वच्छ गुरु का निवास है ॥ ४३ ॥

वराभयकरो नित्यो ब्रह्मरूपी सदाऽनघः ।
जागर्ति परमेशानि निजस्थानप्रकाशकः ॥ ४४ ॥

हे परमेशानि ! वर और अभय मुद्रा वाला हाथ सर्वदा निष्पाप ब्रह्म का स्वरूप है, जो अपने स्थान में प्रकाश विकीर्ण करता हुआ सर्वदा जागरूक रहता है ॥ ४४ ॥

पश्चात्षट्चक्रविज्ञानं शिष्याय प्रतिबोधयेत् ।
आधारं स्वर्णवर्णं च चतुर्दलसुशोभितम् ॥ ४५ ॥
वादिसान्तैश्चतुर्वर्णैस्तप्तहेमसमप्रभैः ।
गणेशसहितं विद्धि स्वाधिष्ठानं ततः प्रिये ॥ ४६ ॥

इसके बाद गुरु को चाहिए कि वे शिष्य को षट्चक्रों का इस प्रकार ज्ञान करावें । मूलाधार चक्र सुवर्ण वर्ण का हैं जो चतुर्दल कमलों से सुशोभित है। तपाये गये सुवर्ण के समान 'व श ष स' ये चार वर्ण गणेश के सहित उस पर आधारित है । हे प्रिये ! इसके बाद स्वाधिष्ठान (षड्दल) हैं ॥ ४६ ॥

इन्द्रगोपप्रतीकाशं स्फुरद्विद्रुमसंनिभैः ।
बादिलान्तैः स्फुरद्वर्णैर्ब्रह्मणा मण्डितं प्रिये ॥ ४७ ॥

हे प्रिये ! वह इन्द्रगोप के समान लाल है, जिस पर ब्रह्मदेव के साथ देदीप्यमान चञ्चल विद्रुम मणि के समान ब, भ, म, य, र एवं ल वर्णों का निवास है ॥ ४७ ॥

नीलवर्णं तृतीयं हि मणिपूरं दशारकम् ।
विद्युत्पुञ्जप्रभावर्णैर्डादिफान्तैश्च मण्डितम् ॥ ४८ ॥

तृतीय नीलवर्ण वाला मणिपूर है, जिसमें दश अरे हैं, जिस पर गदा धारण किये हुए श्री हरि रहते हैं, तथा जिस पर विद्युत के समान चमकीले 'ड ढ ण

त थ द ध न प फ' इन दश वर्णों का निवास हैं ॥ ४८ ॥

गदाधरहरिं प्रौढं चतुर्थं शृणु सुव्रते ।
पिङ्गाभं द्वादशारं तु कादिठान्तैः सुलोचने ॥ ४९ ॥
विस्फुलिङ्गप्रभैर्वर्णैः शिवेन च युतं प्रिये ।

हे सुव्रते ! अब चतुर्थ चक्र के विषय में सुनिए। हे सुलोचने! वह पीले आभा वाला द्वादशार है। हे प्रिये ! अग्नि के विस्फुलिङ्ग के समान प्रभा वाले 'क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ' ये वर्ण शिव से संयुक्त ही रहते हैं, इसका नाम अनाहत चक्र है ॥ ४९–५० ॥

विशुद्धचक्रं देवेशि धूम्रवर्णं कलात्मकम् ॥ ५० ॥

हे देवेशि ! इसके बाद धूएँ के समान वर्ण वाला विशुद्ध चक्र है, जो षोडश कलात्मक है ॥ ५० ॥

स्वरैर्माणिक्यसंकाशैर्मण्डितं परमेश्वरि ।
जीवात्मानऽधिष्ठितं हि तज्जानीहि तदन्ततः ॥ ५१ ॥

हे परमेश्वरि ! यह माणिक्य के समान चमकदार १६ स्वरों से विभूषित है। उस पर जीवात्मा अधिष्ठित है ऐसा समझो ॥ ५१ ॥

आज्ञाचक्रं महेशानि विद्युत्कोटिसमप्रभम् ।
द्विदलं हक्षवर्णाभ्यां शुभ्राभ्यां परिमण्डितम् ॥ ५२ ॥

इसके बाद, हे महेशानि ! करोड़ों विद्युत् के समान देदीप्यमान आज्ञाचक्र है, जो शुभ्रवर्ण वाले ह क्ष दो वर्णों से मण्डित है ॥ ५२ ॥

परमात्मस्वरूपाढ्यं नादरूपं हि सप्तमम् ।
नादो विलीनो यस्मात्तु तस्माद्ब्रह्म तदुच्यते ॥ ५३ ॥

इसके बाद परमात्मस्वरूप वाला नाद चक्र सप्तम हैं, यतः वहीं नाद विलीन हो जाता है इसलिए उसे ब्रह्म भी कहते हैं ॥ ५३ ॥

देहेऽक्षराणि देवेशि नाद एवात्र कारणम् ।
नादः पवनसंयोगत्कुण्डलिन्या युतो यदा ॥ ५४ ॥

हे देवेशि ! देह में अक्षर का कारण नाद ही है । नाद ही पवन के संयोग से जब कुण्डलिनी से युक्त हो जाता है ॥ ५४ ॥

प्रसन्नः परमेशानि षट्चक्राणां दलेषु सः ।
पञ्चाशद्वर्णरूपत्वं माप्तवान्सुरवन्दिते ॥ ५५ ॥

अव्यक्तरूपता प्राप्ता उदात्तादिस्वरैः क्रमात् ।
एवं सर्वज्ञतां तस्मै दद्याच्छिष्यायं सद्गुरुः ॥ ५६ ॥

तब, हे परमेशानि ! प्रसन्न हुआ वह नाद षट्चक्र के दलों में क्रमपूर्वक उदात्तादि स्वरों के द्वारा ५० वर्णों का रूप धारण कर अव्यक्तरूपता प्राप्त करता है। इस प्रकार सद्गुरु उस शिष्य को सर्वज्ञता का उपदेश करें ॥ ५५–५६ ॥

शिष्यस्तदा श्रीगुरोस्तु पूजां कुर्यात्सुलक्षणाम् ।
रत्नाभरणशोभाढ्यां पट्टवस्त्रधनान्विताम् ॥ ५७ ॥
गजाश्वसहितां भद्रे महिषीगोसमन्विताम् ।
क्षेत्रग्राममहारामरम्यां चेटीशतान्विताम् ॥ ५८ ॥
सुवर्णरश्मिभरितां कस्तूरीचन्द्रचन्दनाम् ।

हे भद्रे ! उपदेश प्राप्त करने के पश्चात् शिष्य अपने गुरु की उत्तम लक्षण युक्त पूजा करे। वह पूजा रत्नाभरण की शोभा से परिपूर्ण, पट्टवस्त्र तथा धन से संयुक्त, हाथी व घोड़े से समन्वित, भैंस, गाय, क्षेत्र, ग्राम, बहुत बड़े बगीचे से सुरम्य, सुवर्ण से जगमगाती हुई, सैकड़ों दासियों से तथा कस्तूरी चन्दनादि से समन्वित होनी चाहिए ॥ ५७–५९ ॥

गुरुं संतोष्य विधिवत्प्रसादं तत्त्वसंयुतम् ॥ ५९ ॥
गृह्णीयाच्छिष्यवर्यस्तु गुरुस्तस्मा अनन्तरम् ।
बालां प्रकाशयेत्कर्णे दक्षिणे च ततः परम् ॥ ६० ॥

इस प्रकार गुरु को विधिवत् संतुष्ट कर श्रेष्ठ शिष्य उसका तत्त्व संयुक्त प्रसाद (उपदेश) ग्रहण करे। इसके अनन्तर श्रेष्ठ गुरु उसके दाहिने कान में बाला मन्त्र (ऐं ह्रीं सौः) प्रकाशित करे ॥ ५९–६० ॥

पञ्चसिंहासनगता विद्याः पश्चात्प्रकाशयेत् ।
ततो रहस्यं परमं महात्रिपुरसुन्दरीम् ॥ ६१ ॥
प्रकाशयेद्दक्षकर्णे परब्रह्ममयीं प्रिये ।
सर्वसौभाग्यजननीं भोगमोक्षफलप्रदाम् ॥ ६२ ॥

इसके बाद आचार्य पञ्चसिंहासनस्था विद्या को प्रकाशित करे । इसके बाद दाहिने कान में परब्रह्ममयी महात्रिपुरसुन्दरी, जो सारे सौभाग्यों की जननी तथा सम्पूर्ण भोगों एवं मोक्षों का फलप्रदान करने वाली है। उस उत्कृष्ट रहस्य को प्रकाशित करे ॥ ६१–६२ ॥

श्रीविद्यां षोडशार्णां तु ब्रह्मानन्दस्फुरत्कलाम् ।
न प्रकाशये देवेशि सर्वस्वमिव सुव्रते ॥ ६३ ॥

किन्तु हे सुव्रते ! हे देवेशि ! ब्रह्मानन्द से स्फुरित कला वाली उन षोडश अक्षरों की श्रीविद्या को अपने सर्वस्व की भाँति प्रकाशित न करे ।। ६३ ।।

वेदशास्त्रपुराणेषु यामलेष्वपि सुव्रते।
मुप्ता श्रीषोडशार्णेयं निधानमिव संस्मरेत् ।। ६४ ।।

हे सुव्रते ! वेद, शास्त्र और पुराणों में तथा यामलो में भी यह षोडशार्ण विद्या खजाने के समान गुप्त रखी गई है ऐसा विचार करे ।। ६४ ।।

सहोदराय सर्वस्वप्राणदायापि बन्धवे ।
राज्ञे राज्यप्रदायापि पुत्राय प्राणदाय च ।। ६५ ।।
न देया षोडशार्णेयं देयं सर्वस्वमद्रिजे ।
सुपुत्रदारसहितं शिरो देयं कथंचन ।। ६६ ।।
न देया षोडशार्णा हि प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
गोपितव्या महाविद्या स्वयोनिरिव पार्वति ।। ६७ ।।

सहोदर, सर्वस्व, किं बहुना, प्राण देने वाले बन्धु, राज्य देने वाले राजा, प्राण देने वाले पुत्र को भी यह षोडशाक्षरी विद्या प्रदान न करें। हे पार्वति ! भले ही इन्हें सर्वस्व प्रदान करे। किसी प्रकार पुत्र एवं स्त्री सहित शिर दिया जा सकता है। किन्तु प्राण के कण्ठगत होने पर भी यह षोडशी विद्या न प्रदान करे। हे पार्वति ! अपनी योनि के समान यह महाविद्या गुप्त रखे ।। ६५–६७ ।।

उदके लवणं लीनं यथा भवति शैलजे ।
मनो भवति वै लीनं पादयोः श्रीगुरौः प्रिये ।। ६८ ।।
तदा देया महाविद्या कृपया षोडशाक्षरी ।
अक्षरैः सहिता वाऽपि निरक्षरतया स्थिता ।। ६९ ।।

हे शैलराज पुत्रि ! जिस प्रकार नमक पानी में गल जाता है उसी प्रकार, हे प्रिये ! श्री गुरु के चरण कमलों में जो शिष्य अपने मन को लीन कर ले, उसी पर कृपा कर यह षोडशाक्षरी महाविद्या देनी चाहिए। यह विद्या यद्यपि अक्षर सहित है तथापि यह अक्षर रहित भी स्थित है ।। ६८–६९ ।।

आकाशे नीलिमा देवि भ्रान्त्या दृष्टोदरे यथा ।
अक्षराणि तथा सन्ति श्रीविद्यायां सुरेश्वरि ।। ७० ।।

हे देवि ! जैसे आकाश में नीलिमा रहती है और भ्रान्ति से उदर में भी जान पड़ती है, उसी प्रकार, हे सुरेश्वरि ! श्रीविद्या में भी भ्रान्ति से अक्षर की अनुभूति होती है वस्तुतः वह अक्षर रहित ही है ।। ७० ।।

षोडशार्णां ब्रह्मरूपां जानीहि परमेश्वरि ।
यथा रत्नमये दीपे कज्जलं नैव विद्यते ॥ ७१ ॥

हे परमेश्वरि ! इस षोडशी विद्या को निष्कलङ्क ब्रह्मरूपा समझना चाहिए, जैसे रत्नमय दीप में कज्जल नहीं होता ॥ ७१ ॥

श्रीविद्यायां यथाऽव्यक्तव्यक्तता वीरवन्दिते ।
न दद्याद्यस्य कस्यापि दद्यात्प्राणप्रियाय च ॥ ७२ ॥

हे वीरवन्दिते ! उसी प्रकार श्री विद्या में अव्यक्त एवं निष्कलङ्क ब्रह्म व्यक्त होता है। जिस किसी को यह श्री विद्या नहीं देनी चाहिए। केवल प्राणप्रिय शिष्य को ही देनी चाहिए ॥ ७२ ॥

कृतार्थोऽसि शिशोर्वाक्यं प्रवदेद्देशिकोत्तमः ।
षोडशार्णां महाविद्यां न दद्याद् ब्रह्मरूपिणीम् ॥ ७३ ॥

मन्त्र देने के पश्चात् आचार्य शिष्य से कहे कि शिष्य तुम कृतार्थ हों। ब्रह्मस्वरूपिणी यह १६ वर्ण वाली षोडशी महाविद्या किसी को भी नहीं देनी चाहिए ॥ ७३ ॥

एकोच्चारेण देवेशि वाजपेयस्य कोटयः ।
अश्वमेधसहस्रं तु तुलां नाऽऽयाति सर्वदा ॥ ७४ ॥

हे देवेशि ! इस षोडशी महाविद्या के एक मात्र उच्चारण से करोड़ों वाजपेय का फल प्राप्त होता है। किं बहुना, सर्वदा सहस्रों अश्वमेध यज्ञ भी इसकी तुलना नहीं कर सकते ॥ ७४ ॥

एकोच्चारेण देवेशि प्रादक्षिण्यं भुवो भवेत् ।
धेनूनां कपिलानां हि दत्ता यैः कोटिकोटयः ॥ ७५ ॥

हे देवेशि ! श्री विद्या महामन्त्र के सिर्फ एक बार उच्चारण करने से पृथ्वी प्रदक्षिणा का फल होता है और कोटि–कोटि कपिला गौ के दान का फल होता है ॥ ७५ ॥

एकोच्चारेण देवेशि तुलां नाऽऽयाति सर्वदा ।
अर्धोदये पुण्यतिथौ हेमभारसहस्रकम् ॥ ७६ ॥

हे देवेशि ! षोडशी विद्या के सिर्फ एक ही बार के उच्चारण से जितना फल होता है, उतना अर्धोदित सूर्य काल में सहस्र भार सोने के दान से भी नहीं होता ॥ ७६ ॥

तुलापुरुषकोट्यस्तु तुलां नाऽऽयान्ति षोडशीम् ।
यदा यद्वर्ण्यते वस्तु तदा सर्वं निरामयम् ॥ ७७ ॥

तथा ज्ञेया महाविद्या षोडशार्णा वरानने ।
परमात्मस्वरूपेयं विश्वस्पन्दनरूपिणी ॥ ७८ ॥

करोड़ों तुला पुरुष का दान भी षोडशी विद्या की तुलना नहीं कर सकता । जिस काल में जिस वस्तु का वर्णन किया जाता है, उस काल में वह वस्तु निर्दोष रहती है । हे वरानने ! षोडशार्णा महाविद्या को भी ठीक उसी प्रकार समझना चाहिए । यह महाविद्या साक्षात् परमात्मस्वरूपा एवं विश्वस्पन्दनकारिणी है ॥ ७७–७८ ॥

श्वासोच्छ्वासतया देवि षट्शतान्येकविंशतिः ।
सहस्राणि दिवा रात्रौ हंसः शब्दजपो भवेत् ॥ ७९ ॥

हे देवि ! दिन रात में २१ हजार छ सौ संख्याओं के श्वास एवं उच्छ्वासों से 'हंस' शब्द द्वारा जप होता रहता है ॥ ७९ ॥

स्यन्दनत्वेन सकलं व्याप्य तिष्ठति सर्वतः ।
आत्मत्वेनाजपा ज्ञेया सूर्यसोमस्वरूपिणी ॥ ८० ॥

इस प्रकार के श्वासोच्छ्वास रूप स्पन्दन से यह विद्या सारे जगत् को व्याप्त कर स्थित है। आत्मस्वरूप होने के कारण इसे अजपा कहते हैं और यह सूर्य, सोम स्वरूपिणी है ॥ ८० ॥

निरञ्जनस्वरूपा च निराभासस्वरूपिणी ।
अतनुत्वतनुत्वाभ्यां सूक्ष्मत्वेन वरानने ॥ ८१ ॥

प्रबोधापादनेनापि मण्डिता वह्निजायया ।
षडङ्गैः शोभितां देवीं हंसेनैव प्रपूजिताम् ॥ ८२ ॥

अव्यक्तरूपगायत्रीछन्दोवक्त्रां वरानने ।
साक्षात्परमहंसाभां देवतां परमेश्वरीम् ॥ ८३ ॥

श्रीविद्यां व्यापिकां विद्धि परज्योतिः स्वरूपिणीम् ।
आत्मस्वरूपलिङ्गं हि मायागेहगतं प्रिये ॥ ८४ ॥

यह विद्या निरञ्जन (माया रहित) स्वरूपा एवं निराभास स्वरूपिणी है, हे वरानने ! अतनुत्व से, तनुत्व से, सूक्ष्मत्व से, प्रबोधापादन से, वह्निजाया स्वाहा से मण्डित, षडङ्ग से शोभित, हंस मन्त्र से प्रपूजित, अव्यक्तरूप, गायत्री छन्द रूप मुख वाली और साक्षात्परमहंस की आभा से युक्त परमेश्वरी इस श्रीविद्या को,

हे वरानने ! सर्वत्र व्यापक समझें। यह परज्योति:स्वरूपिणी है तथा आत्मस्वरूप का लिङ्ग है। हे प्रिये ! जो मायारूपी गेह में प्राप्त हो गया है ॥ ८१–८४ ॥

श्रद्धातरङ्गिणीनीरक्षालितं भववन्दनम् ।
सुमनोमण्डितं वाऽपि समाधिकुसुमैर्वरम् ॥ ८५ ॥

यह श्रद्धा रूपी गङ्गाजल से क्षालित हैं भववन्दन रूप सुमनों से मण्डित है समाधि रूपी कुसुम के कारण सर्वश्रेष्ठ है ॥ ८५ ॥

ज्ञानाङ्गारे प्रपञ्चाख्यं धूपं दीपं च चिन्मयम् ।
अधितिष्ठति सर्वत्र सर्वनैवेद्यमण्डितम् ॥ ८६ ॥
निष्प्रपञ्चं निराभासं केवलं ब्रह्मसत्कलम् ।
षोडशार्णा परा विद्या श्रीविद्येत्यभीधीयते ॥ ८७ ॥

ज्ञान रूपी (अग्नि के) अङ्गार में प्रपञ्च नामक धूप दीप से धूपित है, चिन्मय नैवेद्य से मण्डित हुई सर्वत्र निवास करती है, निष्प्रपञ्च है, निराभास है, केवल ब्रह्मसत्कला से युक्त है, यह षोडश अक्षरों वाली पराविद्या श्रीविद्या के नाम से अभिहित की गई हैं ॥ ८६–८७ ॥

शुक्लपक्षे शुभदिने शुभवारे वरानने ।
मन्त्राद्यारम्भणं कुर्याद्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ८८ ॥

हे वरानने ! शुक्लपक्ष में, शुभतिथि में, शुभदिन में अथवा सूर्य चन्द्र ग्रहण में श्रीविद्या के मन्त्र का आरम्भ करना चाहिए ॥ ८८ ॥

न वारमासदोषा हि ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
पवित्रं सर्व देवेशि दानमेव शुभे दिने ॥ ८९ ॥

चन्द्रसूर्य ग्रहण में वार मास आदि का दोष नहीं लगता है। हे देवेशि ! वह काल सर्वथा पवित्र है। इस षोडशी महाविद्या का दान (दीक्षा) शुभ दिन में करना चाहिए ॥ ८९ ॥

चैत्रे वै निष्फलं ज्ञेयं नीरजायतलोचने ।
वैशाखे क्षेत्रलाभं च ज्येष्ठे च मरणं ध्रुवम् ॥ ९० ॥

हे नीरजायतलोचने ! चैत्र में प्रदान की गई दीक्षा निष्फल समझनी चाहिए। वैशाख की प्रदत्त दीक्षा क्षेत्र लाभ कराती है और ज्येष्ठ मास की प्रदत्त दीक्षा से मरण निश्चित है ॥ ९० ॥

आषाढे बन्धुनाशं च श्रावणे च शतायुषम् ।
क्षयो भाद्रपदे मासि आश्विने रत्नसंपदः ॥ ९१ ॥

कार्तिके तु भवेल्लक्ष्मीर्मार्गशीर्षे धनं महत् ।
पौषे तु सम्भवेत्क्लेशो माघे सम्पत्तिरुत्तमा ॥ ९२ ॥
फाल्गुने सर्वकार्याणि मासानां फलमीदृशम् ।

आषाढ़ में प्रदान की गई दीक्षा से बन्धुनाश होता है। श्रावण में प्रदान की गई दीक्षा से सैकड़ों वर्ष की आयु बढ़ती है। भाद्रपद मास में विनाश होता है, आश्विन में रत्न एवं सम्पत्ति प्राप्त होती है। कार्त्तिक में लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। मार्गशीर्ष में बहुत धन प्राप्त होता है। पौष में क्लेश प्राप्त होता है। माघ में उत्तम सम्पत्ति होती हैं। फाल्गुन में समस्त कार्यों की सिद्धि होती है। इस प्रकार दीक्षा में मासों का फल कहा गया ॥ ९०–९३॥

शिष्यस्य प्रथमार्णं हि गृहीत्वा सुन्दरि प्रिये ॥ ९३ ॥
नाम संकल्पयेद्देवि मनोज्ञं स्थिरबुद्धये ॥
श्रीविद्यां हृदये तस्य न्यसेदव्यक्तरूपिणीम् ॥ ९४ ॥

हे प्रिये ! हे सुन्दरि ! शिष्य के नाम का प्रथम मनोज्ञ अक्षर उच्चारण कर उसकी बुद्धि की स्थिरता के लिए संकल्प करना चाहिए । इसके बाद अव्यक्त स्वरूपा श्रीविद्या उसके हृदय में न्यस्त करनी चाहिए ॥ ९३–९४ ॥

श्रीविद्याक्षरपङ्क्तिस्तु परब्रह्मणि चिन्मयी ।
उदके लवणं लीनं यथा तिष्ठति पार्वति ॥ ९५ ॥
तस्माद्ब्रह्ममयीं विद्धि सर्वशास्त्रेषु योजिताम् ॥ ९६ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे दीक्षाविधिर्नाम
चतुर्विंशः पटलः ॥ २४ ॥

श्री विद्या की अक्षर पंक्ति परब्रह्म में चित्स्वरूपा है। हे पार्वति ! जिस प्रकार जल मे लीन होकर भी लवण की स्थिति रहती है उसी प्रकार सर्वशास्त्रों में अव्यक्त रहने वाली इस परब्रह्ममयी श्रीविद्या को भी गुप्त रूप से रहने वाली समझना चाहिए ॥ ९४–९६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'दीक्षाविधि' नामक
चर्तुविंश पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत
हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २४ ॥

❋

अथ पञ्चविंशः पटलः

श्रीविद्यापवित्रारोपणविधानम्

ईश्वर उवाच –

पवित्रारोपणं वक्ष्ये साधकानां हिताय च ।
वर्षमात्रकृता पूजा सफला भवति ध्रुवम् ॥ १ ॥

ईश्वर ने कहा – हे देवि ! अब साधकों के हित के लिए पवित्रारोपण कहता हूँ । (पवित्र की पूजा) जिसके करने से निश्चित रूप से वर्ष भर की गई पूजा सफल होती है ॥ १ ॥

तस्मात्पवित्रपूजा हि कर्तव्या सिद्धिहेतवे ।
आरभ्य मिथुनार्कं हि तुलासंक्रान्तिमासकम् ॥ २ ॥

इस कारण वर्ष पूजा की सफलता सिद्धि के लिए मिथुन की सङ्क्रान्ति (आषाढ़, १४–१८ जून) से आरम्भ कर तुला संक्रान्ति (कार्तिक १४–१८ अक्टूबर) पर्यन्त पवित्र पूजा करनी चाहिए ॥ २ ॥

अतिरम्या महापूजा पवित्राणां सुरेश्वरि ।
पक्षद्वयेऽपि पूजा स्याच्चतुर्थ्यामष्टमीदिने ॥ ३ ॥

हे सुरेश्वरि ! पवित्रों की पूजा अत्यन्त रम्य कहीं गई हैं। यह पूजा मास के दोनों पक्षों में चतुर्थी अथवा अष्टमी तिथि में करनी चाहिए ॥ ३ ॥

नवम्यां वा चतुर्दश्यां पवित्रारोपणं यजेत् ।
सौवर्णरौप्यताम्राणां सूक्ष्मसूत्राणि कारयेत् ॥ ४ ॥

किं वा नवमी अथवा चतुर्दशी तिथि में पवित्रारोपण यज्ञ करें । सुवर्ण चाँदी अथवा ताँबे का अत्यन्त पतला सूत्र निर्माण कराना चाहिए ॥ ४ ॥

कार्पाससंभवान्येव पट्टसूत्रसमुद्भवम् ।
त्रसरीसूत्रसंभूतं पद्मवल्कलसंभवम् ॥ ५ ॥

दर्भमुञ्जशणोद्भूतं पवित्राय प्रकल्पयेत् ।
प्रणवश्चन्द्रमा वह्निर्ब्रह्मा नागो गुहो रविः ॥ ६ ॥
साम्बाख्यः सर्वदेवश्च नवतन्तुषु पूजयेत् ।
शिरोमन्त्रेणाभिमन्त्र्य हृन्मन्त्रेण ततः परम् ॥ ७ ॥
प्रक्षालयेत्ततोऽभ्युक्ष्यास्त्रमन्त्रेण च देशिकः ।
अवरुध्य च नेत्रेण ग्रथितं कवचेन हि ॥ ८ ॥

अथवा कपास का, अथवा पट्ट (पटसन) निर्मित सूत्र, अथवा त्रसरी का, अथवा कमल के वल्कल का सूत्र, कुशा अथवा मूँज या सन का सूत पवित्री के लिए बनाने में प्रयोग करे । उस सूत्र के नवतन्तुओं में प्रणव, चन्द्रमा, वह्नि, ब्रह्मा, नाग, गुह, रवि, साम्ब तथा सर्वदेव का पूजन करे । शिर मन्त्र (शिरसे स्वाहा) से उसे अभिमन्त्रित करे । तदनन्तर, हृन्मत्र (हृदयाय नमः) से प्रक्षालन करे । फिर अस्त्र मन्त्र (अस्त्राय फट्) से जल छिड़क कर आचार्य नेत्र मन्त्र (नेत्राय वौषट्) इस मन्त्र से अवरुद्ध कर कवच मन्त्र (कवचाय हुँ) से ग्रथित करें ॥ ५–८ ॥

रोचनाकुङ्कुमाभ्यां च रक्तचन्दनचन्दनैः ।
कस्तूरीघुसृणाद्यैश्च कर्पूरैर्न { र्ना } गरैरपि ॥ ९ ॥
गैरिकाद्यैर्विचित्रं तत्कारयेत्सुमनोहरम् ।
मूलमन्त्रेण चाभ्युक्ष्य स्थापयेदीशकोणके ॥ १० ॥

रोचना (गोरोचन) कुङ्कुम, रक्तचन्दन से, मलयागिरि चन्दन, कस्तूरी, कपूर, नागर और गैरिक आदि से रंग कर उसे अत्यन्त सुन्दर बनावें। तदनन्तर मूलमन्त्र से जल छिड़क कर ईशान कोण में उसे स्थापित करें ॥ ९–१० ॥

पवित्रवृन्दं सकलं षडङ्गैस्तु पवित्रितम् ।
कृत्वा देवेशि पूर्वस्मिन्दिवसे सद्य एव वा ॥ ११ ॥
अष्टोत्तरशतैः सूत्रैर्नवसूत्रेण कल्पितैः ।
उत्तमं तत्पवित्रं हि तदर्धं मध्यमं स्मृतम् ॥ १२ ॥

सभी पवित्रों को षडङ्ग से पवित्र करे । हे देवेशि ! इतना कार्य एक दिन पहले अथवा उसी समय संपन्न कर १०८ अङ्गुल सूत्र को नवसूत्र में ग्रथित करें। ऐसा पवित्र उत्तम होता है। उसके आधे को नव भाग में विभक्त करने से मध्यम पवित्र बनता है ॥ ११–१२ ॥

तस्याप्यर्धं कनिष्ठं स्यात्त्रिविधं कथितं प्रिये ।
अधिवासनवेलायां यवान्विस्तार्य सुव्रते ॥ १३ ॥

उसका भी आधा भाग कनिष्ठ पवित्र होता है। हे प्रिये ! इस प्रकार हमने तीन प्रकार का पवित्रक कहा । हे सुव्रते ! पवित्रक के अधिवासन के समय जौ बिछाकर उस पर उन्हें रखें ॥ १३ ॥

चतुर्भिरासनैस्तत्र पुष्पं निक्षिप्य देशिकः ।
पवित्राणि पवित्राणि पञ्चामृतसमुच्चयैः ॥ १४ ॥

तदनन्तर आचार्य चार आसनों पर पुष्प बिछा कर उस पर पवित्र स्थापित कर पञ्चामृत के जल से पवित्रों को पवित्र करें ॥ १४ ॥

रचितान्यमलैः पञ्चरत्नैः सर्वौषधीगणैः ।
नववस्त्रयुगेनाथ सम्यगाच्छाद्य सुव्रते ॥ १५ ॥

फिर हे सुव्रते ! पञ्चरत्नों एवं सर्वौषधी गणों से युक्त श्वेत तथा नवीन दो वस्त्रों से ऊपर नीचे उन पवित्रों को भली प्रकार ढक देवें ॥ १५ ॥

देवि कुम्भं प्रतिष्ठाप्य पूर्णं चामीकरादिभिः ।
देवीमावाह्य तत्कुम्भे मूलमन्त्रेण पूजयेत् ॥ १६ ॥

फिर, हे देवि ! चामीकरादि से परिपूर्ण कलश को प्रतिष्ठित कर उस कलश में देवी का आवाहन कर मूलमन्त्र से देवी की पूजा करे ॥ १६ ॥

ततः क्रमं समभ्यर्च्य पवित्रार्पणमारभेत् ।
श्रीविद्यया पवित्राणि गुरोर्नाम्ना च देशिकः ॥ १७ ॥
पवित्रं गुरवे दद्यात्सर्वेभ्यस्तदनन्तरम् ।
गुरुभ्यस्त्रिविधेभ्यश्च पवित्राण्यर्पयेत्ततः ॥ १८ ॥

इस प्रकार उक्त क्रम से देवी का पूजन कर उन्हें पवित्र का अर्पण करे। श्रीविद्या से पवित्री भगवती त्रिपुरा को तथा गुरु के नाम से आचार्य पवित्री गुरु को समर्पित करनी चाहिए। उसके बाद अन्य सभी तीन गुरुओं को पवित्र अर्पित करनी चाहिए ॥ १७–१८ ॥

तिथिनित्यागणायाथ पवित्रारोपणं यजेत् ।
नवचक्रस्थितायाथ चक्रेशीनवकाय च ॥ १९ ॥
रश्मिवृन्दाय देवेशि प्रत्येकं भावपूर्वकम् ।
पवित्रकं समर्प्याथ गुरून् संतोषयेत्प्रिये ॥ २० ॥

इसके बाद तिथि नित्यागणों को नवचक्र स्थित नव चक्रेशियों को और रश्मि देवियों को हे देवेशि ! भावपूर्वक श्रद्धा समेत पवित्रक समर्पण कर हे प्रिये ! गुरुओं को संतुष्ट करना चाहिए ॥ १९–२० ॥

स्वर्णालंकारवस्त्रैश्च नानाधनसमुच्चयैः ।
तत्प्रसादं पवित्रं च धारयेत्तदनन्तरम् ॥ २१ ॥

सुवर्ण के अलङ्कार एवं वस्त्र तथा अनेक प्रकार के धन समूह से गुरु को संतुष्ट कर, तदनन्तर साधक उनका प्रसाद और उनके द्वारा दी गई पवित्री स्वयं धारण करे ॥ २१ ॥

तदङ्गहोमं निर्वर्त्य पवित्रेण समर्चयेत् ।
कुमारीपूजनं कुर्यात्ततः सुवासिनीगणम् ॥ २२ ॥

पवित्राङ्गभूत होम कार्य समाप्त कर पवित्र से अर्चना करे । इसके बाद कुमारी पूजन करे, फिर सुवासिनी गणों की अर्चना करें ॥ २२ ॥

योगिन्यो योगिनश्चैव ब्राह्मणा विविधा गणाः ।
पूज्या हि परमेशानि यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे श्रीविद्यापवित्रारोपणविधिर्नाम पञ्चविंशः पटलः ॥ २५ ॥

योगिनियों एवं योगीगणों तथा नाना प्रकार के ब्राह्मण गणों का, हे परमेशानि ! यदि अपने लिए सिद्धि चाहे तो उनका पूजन करे ॥ २३ ॥

(द्रष्टव्य : सुधाकर मालवीय सं० मन्त्रमहोदधि, पृ० ७३२–७४०)

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'श्रीविद्यापवित्रारोपण विधि' नामक पञ्चविंश पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २५ ॥

अथ षड्विंशः पटलः

श्रीविद्यादमनारोपणविधानम्

ईश्वर उवाच –

दमनारोपणं वक्ष्ये साधकानां हिताय च ।
संवत्सरकृता पूजा येन पूर्णा भवेत् प्रिये ॥ १ ॥

ईश्वर ने कहा – हे देवि ! अब साधकों के हित के लिए दमनारोपण कहता हूँ, जिसके करने से सांवत्सरिक पूजा फल की पूर्णता होती है ॥ १ ॥

तपोभङ्गाय मदनो मम शैलभवे यदा ।
भस्मीभवत्तदा पत्नी रतिः प्रीतिश्च दुःखिते ॥ २ ॥

हे शैलभवे ! जब काम ने मेरी तपस्या में विघ्न डालने का प्रयत्न किया। उसी समय वह मेरे द्वारा भस्म कर दिया गया । जिससे रति और प्रीति उसकी पत्नियाँ बहुत दुःखी हो कर विलाप करने लगी ॥ २ ॥

तन्नेत्रवारिसंभूता दमनस्य लता भवेत् ।
तत्सौरभ्यं च सौभाग्यं महदासीत्सुलोचने ॥ ३ ॥

उनके नेत्रों से जो आँसू गिरे, उसी से दमनक (द्रोण) लता की उत्पत्ति हुई । हे सुलोचने ! उस लता से बहुत बड़ी मात्रा में सुगन्धि तथा सौभाग्य उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥

तेन संतुष्टसुहृदा वरो दत्तो मया प्रिये ।
रत्यै प्रीत्यै च तस्मात्तु मदनः प्रकटीकृतः ॥ ४ ॥

हे प्रिये ! उस सुगन्धि से मेरा हृदय बहुत संतुष्ट हुआ । तब मैंने रति एवं प्रीति को वरदान दिया, जिससे काम पुनः प्रगट हो गया ॥ ४ ॥

दमनेन च यो मन्त्री वर्षमध्ये न पूजयेत् ।
तस्य सांवत्सरी पूजा मदनाय भविष्यति ॥ ५ ॥

मैनें कहा – वर्ष के मध्य में जो मन्त्रसाधक दमनक से पूजा नहीं करेगा उसके वर्ष भर की पूजा का फल कामदेव को प्राप्त हो जायगा ॥ ५ ॥

इति तस्मै वरो दत्तो मयैव सुरवन्दिते ।
तस्माद्दमनपूजा हि कर्तव्या वीरवन्दिते ॥ ६ ॥

हे सुरवन्दिते ! यतः हमने ही कामदेव को इस प्रकार वर दिया है। अतः हे वीरवन्दिते ! दमनक की पूजा अवश्य करनी चाहिए ॥ ६ ॥

अन्यथा तत्फलं वर्षकृतं कामाय जायते ।
समूलं दमनं देवि स्थापयेत्पात्रके वरे ॥ ७ ॥

यदि ऐसा न किया जावे तो वर्ष भर की पूजा का फल कामदेव को प्राप्त हो जाता है। हे देवि ! पूजा के लिए दमनक को मूल सहित उखाड़ कर किसी श्रेष्ठ पात्र में स्थापित कर देना चाहिए ॥ ७ ॥

दमनं नवधा कूर्यात्पूजयेत्तदनन्तरम् ।
आनन्देश्वरबीजेन ततो भिन्नेन सुन्दरि ॥ ८ ॥
आनन्देश्वरबीजेन नवधा बिन्दुना सह ।
नवप्रकारभिन्नाङ्गं दमनं पूजयेत्क्रमात् ॥ ९ ॥

हे सुन्दरि ! नौ भागों में विभक्त कर दमनक की पूजा करनी चाहिए। बिन्दु के साथ आनन्देश्वर बीज का उच्चारण कर उस दमनक को नव भागों में विभक्त करें। तद्नन्तर उन नौ प्रकार से भिन्न अङ्गों वाले दमनक की एक–एक के क्रम से पूजा करें ॥ ८–९ ॥

अघोरविद्यया पश्चादभिषिच्य तमेव हि ।
पूर्वोक्तया दक्षिणस्यां दिशि सिंहासनोक्तया ॥ १० ॥
अस्त्रेण रक्षणं कुर्यात्कवचेन ततः परम् ।
बद्ध्वा त्रिशूलमुद्रां तु भ्रामयेद्दमनोपरि ॥ ११ ॥

इसके बाद दक्षिण दिशा में सिंहासन के कहे गये (द्र० ९.६०–६१) अघोर विद्या मन्त्र से उसका सेचन करे। अस्त्र मन्त्र (अस्त्राय फट्) से रक्षा करे, कवच मन्त्र (कवचाय हुं) से कवच करे । फिर उस दमनक के ऊपर त्रिशूल मुद्रा बाँधकर घुमावे ॥ १०–११ ॥

चैत्रे सितचतुर्दश्यां दमनारोपणं भवेत् ।
उद्धरेदस्त्रमन्त्रेण हृदयेन च लेपयेत् ॥ १२ ॥
श्रीखण्डघुसृणेन्द्राद्यैरधिवासं च कारयेत् ।
प्रथमे दिवसे कुर्यादधिवासनमुत्तमम् ॥ १३ ॥
सद्योऽधिवासनं वाऽपि वर्षपूर्जासुसिद्धये ।
प्रातःकाले चतुर्दश्यां नित्यार्चानन्तरं ततः ॥ १४ ॥

नवकोणं विरच्याथ सिन्दुरेण महाप्रभम् ।
कलशान्नव संस्थाप्य हेमरत्नादिपूरितान् ॥ १५ ॥
एकं वा कलशं रम्यं स्थापयेद्देशिकोत्तमः ।
दक्षतो मण्डलं कृत्वा कुङ्कुमाद्यैर्विचित्रितम् ॥ १६ ॥
अशोकतरुमालिख्य त्रिकोणं मण्डलं लिखेत् ।

चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को दमनक का आरोपण होता है। अस्त्र मन्त्र (अस्त्राय फट्) से उसे उखाड़े । हृदय (नमः) मन्त्र से श्री खण्ड, कर्पूर आदि का लेपन करे। तदनन्तर प्रथम दिन ही उत्तम अधिवासन करे, अथवा वर्ष पूजा की सम्यक् सुसिद्धि के लिए सद्यः (उखाड़ते समय ही) अधिवासन करे। फिर प्रातःकाल चतुर्दशी में भगवती नित्या के अर्चना के बाद सिन्दूर द्वारा महान् प्रभावशाली नवकोण निर्माण कर पञ्चरत्नादि से युक्त उस पर नव कलश स्थापित करें, अथवा श्रेष्ठ आचार्य अत्यन्त सुन्दर एक ही कलश स्थापित करें। उसके दक्षिण भाग में कुङ्कुमादि से बहुत सुन्दर मण्डल निर्माण करे। अशोकवृक्ष निर्माण कर त्रिकोणाकार मण्डल बनावें। उस त्रिकोण के मध्य में काम की पूजा करे ॥ १२–१७ ॥

तन्मध्ये पूजयेत्कामं तरुणं चारुणप्रभम् ॥ १७ ॥
रक्तवस्त्रं रक्तभूषं वामदक्षिणयोः प्रिये ।
रतिप्रीतिविशोभाढ्यं पञ्चबाणं धनुर्धरम् ॥ १८ ॥
बसन्तसहितं कामं कदम्बवनमध्यगम् ।
मन्त्रेणानेन तं कामं पूजयेत्सिद्धिहेतवे ॥ १९ ॥

अरुण वर्ण वाले युवावस्था सम्पन्न, रक्त वस्त्र एवं रक्त भूषण से भूषित, बायें और दाहिने रति प्रीति से अत्यन्त शोभित पञ्चबाण एवं धनुष धारण किये हुए कदम्ब वन में स्थित बसन्त के साथ पूजा की सिद्धि के लिए काम की इस मन्त्र से पूजा करें ॥ १७–१९ ॥

वाग्भवं भुवनेशानीं श्रियं कामात्मकेन च ।
कामाय नम आलिख्य विद्येयं नववर्णिनी ॥ २० ॥

वाग्भव (ऐं), भुवनेशानी (ह्रीं), श्रीं (श्रीं) इसके साथ कामात्मक (क्लीं) कामाय नमः लिखकर इस नववर्णिनी (काम) विद्या से काम का पूजन करे ॥ २० ॥

कामबीजत्रयं चोक्त्वा रत्यात्मकमुच्चरेत् ।
रत्यै नमश्चाष्टवर्णा रतिविद्या वरानने ॥ २१ ॥

फिर तीन बार काम बीज (क्लीं क्लीं क्लीं) का उच्चारण कर उसके बाद 'रत्यै नमः' यह आठ अक्षरों की रतिविद्या है । हे वरानने ! इससे रति का पूजन करना चाहिए ॥ २१ ॥

प्रीतिं वदेद्रतिस्थाने प्रीतिमन्त्रोऽष्टवर्णकः ।
गौरश्यामे रतिप्रीती क्रमेण मणिभूषणे ॥ २२ ॥
पद्मताम्बूलहस्ते च रक्तवस्त्रविराजिते ।
दिव्याभरणभूषे च पुष्पदामविराजिते ॥ २३ ॥

'रत्यै नमः' के स्थान पर प्रीत्यै नमः' का सन्निवेश कर ८ वर्ण वाले मन्त्र से प्रीति की पूजा करे । रति गौरवर्ण की और प्रीति श्याम वर्ण की है। दोनों ही मणि के भूषण से भूषित हैं । दोनों के हाथ में कमल और ताम्बूल है। दोनों ने रक्त वस्त्र धारण किया है। दिव्याभरण से भूषित दोनों ने पुष्प की मेखला धारण की है ॥ २२–२३ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – ऐं ह्रीं श्रीँ क्लीं कामाय नमः ९, क्लीं क्लीं क्लीं रत्यै नमः ८, क्लीं क्लीं क्लीं प्रीत्यै नमः ८।

वामदक्षिणयोर्ध्यात्वा कामस्य तदनन्तरम् ।
वसन्तं पूजयेत्पश्चात्कदम्बवनमध्यगम् ॥ २४ ॥

इस प्रकार के वाम दक्षिण में रति प्रीति का ध्यान कर उनका पूजन करना चाहिए, तदनन्तर कदम्ब के मध्य में निवास करने वाले बसन्त का पूजन करना चाहिए ॥ २४ ॥

गौरवर्णं वामहस्ते सुधापूर्णघटान्वितम् ।
दक्षहस्तेन दधतं नानापुष्पसमुच्चयम् ॥ २५ ॥

काम के शरीर का वर्ण गोरा हैं उनके बायें हाथ में अमृत परिपूर्ण कलश हैं। दाहिने हाथ में वह अनेक पुष्पों के गुच्छे धारण किया है ॥ २५ ॥

साङ्गं कामं प्रपूज्याथ धूपदीपादि दर्शयेत् ।
दमने पूजितः कामः सर्वकार्याणि साधयेत् ॥ २६ ॥

इस प्रकार परिवार समेत काम का पूजन कर पुनः धूप दीपादि प्रदर्शित करनी चाहिए। दमनक के साथ पूजित काम साधक के सारे मनोरथों को पूर्ण करता है ॥ २६ ॥

तेन सम्यक्प्रपूज्याथ महात्रिपुरसुन्दरीम् ।
क्रमं समर्चयेत्सम्यक्कुमारीर्भोजयेद्बुधः ॥ २७ ॥

फिर उस दमनक से महात्रिपुरसुन्दरी की क्रमपूर्वक फिर पूजा करें और बुद्धिमान् साधक कुमारी की पूजा तथा उन्हें भोजन करावें ॥ २७ ॥

सुवासिनीश्च सम्पूज्य योगिनीगणमर्चयेत् ।
ब्राह्मणान् परिपूज्याथ नानादर्शनपारगान् ॥ २८ ॥
तदङ्गहवनात्पश्चाद्गुरुं रत्नादिभूषणैः ।
स्वर्णभारसहस्रैश्च दिव्यवस्त्रमनोरमैः ॥ २९ ॥
पूजयित्वा ततो देवि पूर्णाहुतिमथोच्चरेत् ।
अनेन विधिना देवि दमनारोपणं यजेत् ॥ ३० ॥
तस्य सांवत्सरी पूजा सफला शैलसंभवे ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीमज्ज्ञानार्णवे नित्यातन्त्रे देवीश्वरसंवादे श्रीविद्यादमनारोपण—विधिर्नाम षड्विंशः पटलः ॥ २६ ॥

फिर सुवासिनियों का पूजन कर योगिनी गणों की अर्चा करे। फिर अनेक दर्शनों में पारगामी ब्राह्मणों की पूजा करे। उसके बाद दमनकारोपण का अङ्गभूत हवन करें। पश्चात् रत्नादि भूषणों से युक्त एक हजार स्वर्ण भारों और मनोहर दिव्य वस्त्रों से गुरु की पूजा कर, हे देवि ! पूर्णाहुति कार्य सम्पन्न करें । हे देवि ! इस प्रकार दमनारोपण अनुष्ठान जो करता है हे शैलसंभवे ! उसकी सांवत्सरी पूजा सफल होती है ॥ २८—३१ ॥

भूतभूता खयुग्माब्दे वैक्रमीये खरे शुभे ।
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां गुरुवासरे ॥ १ ॥

ज्ञानार्णवाख्य तन्त्रस्य मालवीयसुजन्मना ।
श्रीरञ्जनेन विहिता टीका सम्पूर्णतां गता ॥ २ ॥

प्रीयतां ललिता देवी सर्वज्ञानमयी शिवा ।
सर्वसिद्धिप्रदा नित्या सर्वसम्पत्प्रदा तथा ॥ ३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीज्ञानार्णवतन्त्र के नित्यातन्त्र में 'देवीश्वर संवाद में श्रीविद्यादमनारोपण विधि' नामक षडविंश पटल की रामरञ्जन मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २६ ॥

❋

श्लोकानुक्रमणिका

अ

अकारादिक्षकारान्ता २
अक्षमालां च वरदं २३
अक्षमालां प्रपूज्याथ १७०
अक्षमालां समाश्रित्य १६९
अक्षमालेति किं नाम २
अक्षमालेति मुद्रेयं ३१
अक्षमालेति विख्याता ३
अक्षुब्धः सन् वरारोहे २४०
अगस्त्यबाणबन्धूक १८४
अग्निजिह्वं च कालान्तं ३५
अग्निराक्षसवायव्य १८०
अग्नीशासुरवायव्य १५५
अग्रकोणक्रमेणैव ५०
अग्रकोणे रतिं यष्ट्वा ३४
अघोरविद्यया पश्चाद् २६७
अघोरविद्यारूपं तु ५३
अघोरे चैव घोरे च ६८
अङ्कुशाख्या महामुद्रा ३१
अङ्गमन्त्रैर्न्यसेद्देवि ३०
अङ्गुलीषु च विन्यस्य १३०
अङ्गुलीषु द्विरावृत्त्या १०७
अङ्गुष्ठपर्वमात्रोच्चं २०७
अङ्गुष्ठाभ्यां योजिताभ्यां ३३, १३४
अङ्गुष्ठावग्रदेशे तु १३३
अङ्गुष्ठावपि संयोज्य १३२
अङ्गुष्ठौ खेचरी मुद्रा १३३
अजरामरतां लब्ध्वा १८१
अजाघृतेन देवेशि २२३
अज्ञातगुरुशिष्याणां १४४
अट्टहासं च विरजं ११९
अणिमाद्यष्टसिद्धीनां २००
अणिमासिद्धिपुरतः १५७
अत एव महाविद्या ७१
अत एव महेशानि २५३, २७
अत एवार्घ्यपात्रस्य २३७
अतसीतैलसंयुक्ता २२३
अतिरम्या महापूजा २६२
अथ कामकलाशक्ति १९२
अथ कामान्यसेद्देवी १२०
अथ चैकतमे पक्षे २०३
अथ नक्षत्रवृन्दस्य ११४
अथ भागद्वयं देवि १७३
अथ वक्ष्ये महेशानि ६४, १०५, १७९
अथवा मध्यगां देवीं १७८
अथवा वामभागे तु ४४
अदीनायाऽऽचारशून्याय २४८
अदृष्टपूर्वा देवेशि १७१
अधोर्ध्वक्रमरूपेण १५६
अनङ्गकुसुमाद्याश्च ६०
अनङ्गकुसुमां प्राच्यां १५८
अनङ्गमदनां पश्चा १५८
अनङ्गमदनां पश्चात् ३४
अनङ्गरेखामाग्नेये १५८
अनन्तफलदं भद्रे ८१
अनन्यमानसां प्रेम १७४
अनया विद्यया देवि ६५, ७४,२३९

अनामिकाभ्यां सुदृढं १३४
अनामिके तु सरले १३३
अनाहते न्यसेत्पश्चाद् ११७
अनिर्वाच्योपदेशोऽयं २५४
अनुस्वारान्तमन्त्रस्तु १४०
अनुस्वारेण देवेशि २
अनेकधूपबहलं ७२
अनेन क्रमयोगेण १७१
अनेन मनुना देवि ४३, ५४, २०९
अनेन योजयेद्देवि २११
अनेन विधिना देवि ४४
अनेन विधिना यत्र १६८
अनेन सकला विद्याः ८६
अनेनैव प्रकारेण ५०, १५४
अन्तरात्मा सत्त्वरूपः २४५
अन्तरात्मेति किं नाम २२६
अन्तर्मुखा वरारोहे ९८
अन्तर्यागविधिं देव १३५
अन्तर्होममनुर्देवि २२९
अन्धे अन्धिन्यै नत्यन्तं १५०
अन्नपूर्णा महादेवि ६१
अन्नपूर्णेऽग्निजाया च ६१
अन्नपूर्णेश्वरी नाम ६१
अन्यथा तत्फलं वर्ष २६७
अन्यथा नैव निष्पत्ति ७६
अपराख्या इमे देवि १४५
अभिमन्त्र्य महेशानि ३९
अभिमानेन सौन्दर्यात् १७०
अभिलाषो भ्रमश्चिन्ता ९७
अभिषिञ्चेच्च तन्मूर्ध्नि २५०
अभूवन्परमेशानि १००
अमादकत्वाद्देवेशि २३४
अयं परमहंसस्तु २२७
अयं प्रकारः कथितः १४३
अरुणादित्यसंकाशान् ११२
अर्घ्यपात्रस्थमुदकं २०८
अर्घ्यपात्रामृते त्यक्त्वा २४१
अर्धचन्द्रश्च बिन्दुश्च ७४
अलक्ष्यमध्यमां निम्न १३८
अवध्यः सर्वजन्तूनां १७५
अवर्गान्ते लिखेद्बीजं ११०
अवस्थात्रयमेतत्तु ५
अवस्थाशेषतां प्राप्ता ९७
अविद्याख्यसरोमध्ये २२७
अविद्याविस्तृते निन्दाः २५२
अव्यक्तरूपगायत्री २५९
अव्यक्तरूपता प्राप्ता २५६
अशेषजगदुत्पत्ति १३५
अशेषव्यवहाराणां १३७
अशोकतरुमालिख्य २६८
अष्टकोणेषु संस्थाप्य १६४
अष्टपत्रं कादिवर्णैः ८२
अष्टपत्रं महेशानि २०५
अष्टपत्रं वरारोहे २०२
अष्टोत्तरशतावृत्त्या १७३
अष्टोत्तरशतैः सूत्रैः २६३
अश्वमेधसहस्राणि ९९
अस्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य २०९
अस्त्रेण रक्षणं कुर्यात् २६७
अस्थिरूपां च पूर्वोक्त ११७
अस्मिन्नेव परे तत्त्वे ३
अस्मिंश्चक्रे षड्ध्वानो ८२
अस्याः स्मरणमात्रेण ९७
अंआंमध्ये कवर्गं च १५
अंसद्वये च हृदये १२२

अःस्वरे परमेशानि १२९
आ
आकर्षयेत्तदा शीघ्रं १९३
आकाशे नीलिमा देवि २५७
आकाशं पवनोऽग्निश्च २२७
आकारादिक्षकारान्तां १८१
आग्नेयः सर्वदेवानां ३८
आचार्यपादुकास्तद्वत् १४४
आज्ञाचक्रं महेशानि २५५
आज्ञासंक्रमणं कुर्याद् २५०
आताम्रार्कसहस्राभां ४६
आत्मनस्तु कला ज्ञेयाः २४४
आत्मन्तरात्मपरम–ज्ञान २३७
आत्मभिश्चतुरस्रं २२५
आत्मविद्यां शिवैस्तत्त्वै ४४
आत्मान्तरात्मपरम २२८
आदावकथ्यसंयोज्यं २५३
आदावङ्गावृत्तिर्देवि ५४
आदौ कुण्डं समुत्पाद्य २२०
आदौ संबन्धिनि पदे १९६
आद्यन्ताक्षरभावेन ७०
आद्यबीजद्वयं भद्रे ९८
आद्यमैकारसंयुक्त ५५
आद्यं तु रुद्रभैरव्या १३१
आद्यं वाग्भवमुच्चार्य ७२
आधारशक्तिं कूर्मं च २३७
आधारे चतुरो वर्णान् १६
आधारे व्यूहकं यावन् ११२
आधारं पूजयेत्तत्र १६६
आनन्दमेखलारम्यं २२८
आनन्देश्वरबीजेन २६७
आभिः कलाभिः सहितं १०४
आम्रातकेश्वरं पीठ ११९
आयाति साधकं सम्यग् १७१
आयुर्धनमथाऽऽरोग्यं २१५
आरात्रिकमिदं देवि ४०
आरात्रिकविधिं कृत्वा ४०
आरात्रिके महेशानि ४०
आरार्तिकविधिं कुर्यात् १६३
आलिङ्गनं तु कस्तूरी २४०
आवाह्य चक्रमध्ये तु २९
आषाढे बन्धुनाशं च २६०
इ
इक्षुकोदण्डपुष्पेषु १९२
इक्षुखण्डैः सुखावाप्तिः २१८
इच्छाज्ञानक्रियाद्रव्य २४२
इच्छाज्ञानक्रियारूपं ४
इच्छारूपेण कामस्तु ८६
इच्छासिद्धिं पूर्वभागे १५६
इति तस्मै वरो दत्तो २६७
इत्यन्तर्मातृकां न्यस्य १६
इत्यन्तर्यजनं कृत्वा १९
इत्युत्तरपतेः सम्यक् ६६
इन्द्रगोपप्रतीकाशं २५४
इन्द्रनीलमयैः स्वर्ण १८७
इन्द्रमग्निं यमं देवि ३५
इन्द्राग्निरुद्रनवनेत्रयुगेन दिक्षु १५२
इन्द्राद्या लोकपालास्तु ४९
इन्द्राराधितविद्येयं ९१
इयमेव हृदि क्षिप्ता ३३
इयं नित्या महादेवि १२९
ई
ईकारस्तु महामाया ७६
ईशादग्नेस्तदग्राभ्यां २०,७८
ईशानकोणं देवेशि ८३
ईशानवह्निगे रेखे ७९

ईशानवह्निनैर्ऋत्य १६६
ईशाने च तथाऽऽग्नेये ४१
ईशित्वसिद्धिर्देवेशि १५६
ईश्वरत्वं शिवायां तु २९
उ
उकारस्वरसंयुक्तं १११
उच्चाटने तु वायव्य २२१
उच्चाटनं चापराह्णे २२२
उच्चार्यमाणा ये मन्त्रास्ते ९५
उत्तरफाल्गुनीं वामे ११५
उत्तरस्यां द्वयं देवि ३४
उत्तरस्यां वरारोहे ६७
उत्तरान्तास्ततो देवि २०७
उत्तराम्नायविद्येयं ६९
उत्तराशा तदा देवि ३६
उत्तराशामुखो देवि ८३
उत्पत्तेः कारणं यस्माच् ७१
उदके लवणं लीनं २५७, २६१
उदरे दुःखमधिकं २०६
उद्यत्सूर्यप्रभाजाल १३५
उद्यत्सूर्यसहस्राभम् १७१
उद्यत्सूर्यसहस्राभां ५२
उद्यदादित्यरुचिरां २२
उद्यदादित्यसंकाश १३८
उद्यदादित्यसंकाशां २११
उद्यद्भास्वत्सहस्राभां ४८
उन्मत्तः कलकण्ठे च १२१
उन्मनी नाम विद्येयं ६७
उन्मनी नाम सद्रूपा ५
उन्मन्या सहितो योगी २५३
उपचारैः षोडशभिः १३९
उपचारैः समभ्यर्च्य १६३
उपचारैः सुशुभ्रैश्च १९१
उपपातकसंघांश्च १८२
उपांशुस्मरणेनैव १९९
ऊ
ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि वा ४२
ऊर्ध्वाञ्जलिमधः कुर्याद् ३०
ऋ
ऋजुरेखं नेत्ररम्यं ७७
ऋज्वाकृति यथा देवि ७९
ऋद्धिः सौम्या मरीचिश्च २३९
ऋषिर्ब्रह्माऽस्य मन्त्रस्य ६२
ए
एकत्र खननं चास्य २०५
एकत्र पूर्वकोणाग्र ७९
एकमेकं तथा द्वन्द्व ११५
एकमेकं पुनश्चैकं ६२
एकविंशतिभिर्वारैः १८७
एकविंशतिरात्रेण १८५, १८६
एकाराद्वैष्णवी शक्ति ७५
एकेन मनुना देवि ६५
एकोच्चारेण देवेशि २५८
एकं वा कलशं रम्यं २६८
एतच्चक्रं मेरुरूपं ८३
एतच्चक्रं तु संहार ८१
एतत्ते कथितं ज्ञानं २४१
एतत्त्रयं तु नियतं १४३
एतत्समाराधनेन १९७
एतत्सूत्रमयैः पट्टै २४२
एतदन्ते महेशानि ४२
एतदुक्तं महेशानि १५४
एतन्मध्यगतां पृथ्वीं १७६, १७९
एतस्मिन्समये देवि १४०, १४१
एतस्या एव मुद्राया ३०, १३३
एतस्या एव विद्याया ६७

एतस्या देवदेवेश ८८
एतस्याः स्मरणाद्देवि १९५
एतामाराध्य देवेशि ५१, १९६
एतास्तु सकला विद्या ९४
एनां विद्यां समाराध्य ६
एभिर्वर्णैस्तु देवेशि ८५
एभिः समभ्यर्च्य १०५
एवमग्निं तु सम्पूज्य २१२
एवं जपेद्यथाशक्ति २०१
एवं त्रिधा महाविद्या ९३
एवं ध्यात्वा परामम्बां १३९
एवं ध्यात्वा भजेद्देवीं ४८
एवं ध्यात्वा महेशानि ५३
एवं ध्यात्वा यजेद्देवि ६४
एवं ध्यायेन्महेशानि १९२
एवं परब्रह्मरूपा ७५
एवं पूजाविधिं कुर्याद् ५७
एवं बिन्दुत्रयं विद्धि ४
एवं विन्यस्तदेहः सन् १९, १३४
एवं विन्यस्तदेहः १३७
एषा कमलमुद्रा च ३२
एषा विद्या कामराज ८८
एषा विद्या महेशानि ५२, ५९
एह्येहि देवि पुत्रान्ते ४१

ओं

ओं औ मध्ये पवर्गं च १५
ओंकारबीजमुच्चार्य १२७

क

ककारात्कामदा काम ७५
कज्जलस्य शलाकां च २६
कण्ठदेशेऽङ्गुलं त्यक्त्वा २०२
कण्ठवर्णे राकिनीं तु ११७
कण्ठे च नवयोन्याख्यं १८, १२२
कथयाऽऽनन्दनिष्पन्द २
कथितं योजयेद्देवि १५५
कथ्यतेऽत्र तथा देवि १५१
कथ्यन्ते द्रव्यभेदास्तु २३२
कनिष्ठागर्भगे वामे ४०
कनिष्ठानामिकायुग्मे १३३
कन्दर्प इव देवेशि १९३
कपर्दिनं स्फुरत्सर्प ६४
कपालमुद्रा देवेशि ३२
कपिलाघृतसंयुक्तं ४०
कमलैररुणैर्होमः २१५
करशुद्धिकरी विद्या ७२
करस्पर्शस्तु देवेशि २५३
करालीं चन्द्रकोट्याभां २११
करावेकत्र संयोज्याः ३०
करे पुष्पफलान्कृत्वा २५४
कर्णयोश्चुबुके भूयः १७
कर्तव्यमथ वा खातं २०३
कर्दमे चन्दने बिम्बं २२८
कर्पूरकुङ्कुमे देवि २१३
कर्पूरधवलां शुभ्रं १९१
कर्पूरमृगनाभ्याढ्यं २६
कर्पूररचिताश्चापि १६३
कलशं तु समापूर्य १०४
कलाकान्तियुतो देवि १८६
कलाचतुष्टयं जाग्रद ९६
कलाढ्यां च बलाढ्यां च ५३
कलादशान्वितो वह्नि ७६
कलापत्रं च भूबिम्बं ६२
कलामण्डलमाख्यातं २
कलास्तत्र समाराध्य २५०
कलाः षोडश संपूज्याः ६६
कलिनी शोषणी चैव १०४

कवचेन च संपूज्य २०९
कवचं चाङ्कुशं यच्च १२८
कवचं चास्त्रमालिख्य ४२
कस्तूरीहोमतो देवि २१७
कह्लारैः सिन्दुरै रम्यैः १८४
काण्डबानीश्वरीविद्या १४९
कामबाणप्रभिन्नान्तः १७२
कामबीजत्रयं चोक्त्वा २६८
कामबीजं मध्यमं य २१
कामराजमिदं भद्रे ८६
कामराजाख्यविद्यायाः ८९, ९०, ९२, १४२
कामराजेन बीजेन ९
कामराजे भृगुं हित्वा ९१
कामराजो भवेद्देवि ८७
कामरूपिणिका पश्चाद् ११२
कामरूपं महापीठं ११९
कामवर्धनसंयुक्ता १२०
कामाकर्षिणिकां देवि १५७
कामाङ्गः कमले तद्वत् १२०
कामेशस्य च कामेश्या १६१
कामेशीगर्भजातस्य २१२
कामेश्वरी च रुद्राणां ४९
कामेश्वरं महापीठं ११९
कामेश्वर्या मोहनाख्यां १६१
काम्यते सा यदा देवि २३६
कार्तिके तु भवेल्लक्ष्मी २६१
कार्पाससंभवान्येव २६२
किंचिदुल्लासपर्यन्तं २३४
किं पुनर्मानुषीर्देवि १९३
किंशुकैश्च कुसुमैश्च १८७
किंशुकैः पापसंघात २२०
कुङ्कुमेन हुनेद्देवि २१७
कुङ्कुमेनाथ वा देवि २०७
कुबेर एव देवेशि २००
कुमारीक्रम आख्यातो ३८
कुमारीपूजनाद्देवि २३१
कुमारी भोजिता येन २३१
कुमार्यास्त्रिपुरेशान्याः १०८
कुम्भकेन त्रिरावृत्त्या ११
कुर्वीत देहसंत्राहं १७
कुलद्रव्येण संशोध्य २४१
कुलागमक्रमेणैव २२
कुलान्तकं च चौहारं ३५
कुलालचक्रभेदेन २२६
कुसुम्भकुसुमैर्देवि २०१
कूटत्रयं समुच्चार्य १६२
कृतार्थोऽसि शिशोर्वाक्यं २५८
कृद्ध्यश्च सर्वभूतेभ्यो १६६
कृपया परमेशानि १४४
कृशा पुत्रवती नारी २३३
कृष्णपक्षे महेशानि १४०
कृष्णवर्णं महेशानि ११
कृष्णं च मारणे प्रोक्तं २२३
केवलत्वेन जाग्रत्स्यात् ९६
केवलं घृतहोमेन २१८
केवलं स्वर्णपुष्पैस्तु १८८
केसराणि च सम्पूज्य २३७
कैलासभृगुकेदारं ११९
कोटिहोमेऽष्टहस्तं च २२१
कोणाग्राभ्यां योजयित्वा ७९
क्रमेण जिह्वाबीजान्ते २१२
क्रमं समस्तमभ्यर्च्य २४९
क्रूरास्तस्य वशाः सर्वे १८६
क्लेदय द्रावयाथो च १२५
क्षकारेण ततो बिन्दु ११६

क्षणमात्रेण देवेशि १९३
क्षमोवह्निगतं तुर्यं १११
क्षिप्त्वाऽऽरनालमध्यस्थं १७८
क्षीरकुन्देन्दुधवलां २३
क्षेत्रपालगणेशाभ्यां १६६
क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च ४२
क्षोभयेत्स्वर्गभूर्लोक १७२
क्षोभिण्यां वाऽथ वा देवि २४०

ख

खड्गचर्मधरं क्रुद्धं ११
खेचरीं दर्शयेन्मुद्रां १६१
खेचरीबीजयोन्याख्या १५७
खेचरो जायते रात्रौ २१५
खेमात्मकमुच्चार्य ६८

ग

गङ्गातरङ्गकल्लोल ८
गङ्गातरङ्गधवलं २५
गजवक्त्रो मोहिनी च ११२
गजाश्वमहितां भद्रे २५६
गजःनन्दिकया युक्तो १२१
गणेशनन्दिचण्डेश १
गणेशः कालकुब्जा च ११३
गदाधरहरिं प्रौढं २५५
गन्धपुष्पाक्षतादीनि ३२
गलादिनाभिपर्यन्त १३०
गसौ च मपनाः पश्चाद् ३९
गांकारं बीजमुच्चार्य ३६
गुञ्जासमं च कर्पूरं २१९
गुणत्रयं तु कथितं २५१
गुणत्रयं शिवे नास्ति २८
गुदादिब्रह्मरन्ध्रान्तं ६२
गुरवो नवसंख्याका १४३
गुरुपङ्क्तिं प्रपूज्याथ १४४
गुरुपूजानन्तरं तु ३२
गुर्वन्ते परमान्ते च १४४
गृह्णीयाच्छिष्यवर्यस्तु २५६
गैरिकाद्यैर्विचित्रं तत् २६३
गोक्षीरधामधवलं ६४
गोरोचनादिभिर्द्रव्यै १७१
गौरवर्णं वामहस्ते २६९
ग्लौमात्मकेन रमया ६५
ग्रन्थयः कुलिशा ज्ञेयाः २१
ग्रन्थिस्थानेषु संपूज्यं ३५
ग्रसन्ती रुद्रशक्तिस्तु २८
ग्राममध्यगतं सर्वं २४६
ग्रैवेयाङ्गदमुक्ताभिः २३

घ

घटे भवति भिन्नत्वं २२६
घृतकर्पूरशोभाढ्यं १६५
घृतमोदकसंपन्नं १९१
घृतपायसहोमेन २१७
घृतपूर्णैर्हुद्देवि २१३
घोरघोरतरेभ्यश्च ५४

ङ

ङेन्तं च भूपतिं च ६५
ङेन्तं नमःपदं कृत्वा १०
ङेन्तं शिखामन्त्रयुक्तं १०५

च

चक्रत्रिसंधिभागेषु ८२
चक्रमण्डलमाख्यातं २५, १०३
चक्रमध्यगतं कुर्यान् १७२
चक्रमध्ये स्थितं बीजं २९
चक्रमेतत्समालिख्य १७७
चक्रराजं समावाह्य २१२
चक्रेशीमपि तामेव १६२
चक्रेश्वरीं यजेद्देवीं १५८

चक्रं प्रपूरयेद्यस्तु १७२
चण्डं कौमारिकां चैव ३४
चतुरक्षररूपं तु ८६
चतुरङ्गुलमायामो २०३
चतुरङ्गुलविस्तारा २०३
चतुरस्रं च कोदण्डं ८५
चतुरस्रं चतुर्द्वार ४८
चतुरस्रं च संलिख्य २४९
चतुरस्रं मातृकार्णै ८०
चतुरस्रभुवं भित्त्वा १५२
चतुरस्रे चतुर्द्वरि १५६
चतुरस्रेण कुण्डेन २०४
चतुरस्रे तु संपूज्या ३६
चतुरस्रे महेशानि २१
चतुराम्नायविद्याभि ६७
चतुर्थं प्रणवं चैव ६८
चतुर्दशस्वरोपेतं १२६
चतुर्द्वारविशोभाढ्यं २१
चतुर्बीजानि विन्यस्य ६२
चतुर्भिरासनैस्तत्र २६४
चतुर्मुद्रासु बीजानि १३१
चतुर्विधप्रकारेण शृणु ९५
चतुर्विधा हि दूत्यस्तु २४३
चतुर्विंशाङ्गुलं कुण्डं २०३
चतुर्हस्तमितं कुर्याद २०४
चतुर्हस्तमितं सूत्रं २०४
चतुष्कूटा महाविद्या ९१
चतुःषष्टियुताः कोट्यो ८०
चतुःषष्टिर्यतः कोट्यो १९६
चतुःसमुद्रपर्यन्तां २१६
चन्दनागरुकर्पूर १६३
चन्द्रबिम्बं यथा देवि २२८
चन्द्रमण्डलमभ्यर्च्य १०४
चन्द्ररूपं चरुं कृत्वा ३९
चन्द्ररेखाजटाजूटां ६०
चन्द्रवारुणसंयुक्तं १२९
चन्द्रान्तं वारुणान्तं च ९५
चन्द्राराधितविद्येयं ८९
चन्द्रेण मादनं लक्ष्मी १४८
चन्द्रं तत्रैव संयोज्य ९०
चम्पकैः सुमनोरम्यैः १८३
चवर्गेण तथा स्कन्धे ११८
चवर्गेण बुधो हृत् ११४
चलच्चलेन्दुसंकाशां १९३
चातुर्थिकज्वरान्सर्वान १९५
चापमुद्रेयमाख्याता ३२
चापं दक्षिणकोणे च ४९
चारान्ते सहितं चोक्त्वा ४३
चारुशृङ्गारवेषाढ्यां १७४
चित्ताकर्षिणिकां तद्व १५७
चित्रवस्त्रपरीधानां ६४
चित्रां टठस्थां वामे च ११५
चिन्तयेत्परमेशानि १९२
चिन्तिता साधकस्याऽऽशु १९५
चुलुकार्धं पयः क्षीर २१९
चैतन्यभैरवी देवी ६०
चैत्रे वै निष्फलं ज्ञेयं २६०
चैत्रे सितचतुर्दश्यां २६७
चोरग्रहजलारिष्ट १७७
चिन्तयेत्परमेशानि १९२
चिन्तिता साधकस्याऽऽशु १९५

ज

जठराननयोर्देवि १७
जन्मकोटिभवं पापं १८८
जपहोमविधिं ब्रूहि १९८
जपाकुसुमसंकाशां १३७

जपादिकं च यत्सर्वम १६८
जपापुष्पैराज्ययुक्तैः २१३
जपारम्भं सुधीः कुर्यान् १९८
जम्बूफलैः स्त्रियो वश्याः २१८
जम्भनाख्यान्महेशानि १६१
जया च विजया चैव ६३
जलपूर्णान्विशेषाढ्यन् २४९
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च ४
जातिभेदस्तु दूतीनां २४३
जिह्वास्तम्भं कुरु द्वन्द्वं १५०
जीव इत्येव नामास्य २२६
जीवं प्राणं वह्निसंस्थं ४७
जुहुयात्परमेशानि २२९
ज्वलन्तीं नामसहितां १७१
ज्वलेतिप्रज्वलद्वंद्वं १२९
ज्वालामुख च सर्वान्ते ४१
ज्वाला हैमवती कव्य १०४
ज्वालिनीसहितः पश्चान् ११२
ज्येष्ठा तु वैष्णवी शक्तिः ४
ज्येष्ठाभिधा महेशानि २७
ज्ञानमार्गोऽयं सकलो २३६
ज्ञानमुद्रां च दधतीं १९४
ज्ञानाग्निं बाह्यवह्निं च २१०
ज्ञानाङ्गारे प्रपञ्चाख्यं २६०
ज्ञानात्मनः कला ज्ञेयाः २४४
ज्ञानात्मा कथ्यते भद्रे २२८
ज्ञानार्णवाख्य तन्त्रस्य २७०
ड
डाकिनीराकिनीबीजे ५५
डाकिन्याद्यास्तु षट्कोणे ५७
डांडींबीजद्वयं चोक्त्वा ११६
ढ
ढणयुक्तां विशाखां तु ११५
ण
णकारादिभकारान्ता ८२
त
ततश्च पूर्वरेखायाम १४०
ततो न्यासादिकं कुर्यात् १०७
ततः कण्ठप्रदेशे तु १०९
ततः क्रमं समभ्यर्च्य २६४
ततः पार्श्वद्वयं कुक्षि २०६
ततः षडङ्गावरणं ३३
ततः सत्त्ववशं ब्रूयात् १२४
ततः सोऽहं शिरो देवि १४८
तत्काष्ठं दह्यते तेन २३४
तत्तद्भूषणसंयुक्त २३६
तत्त्वाध्वा कथितो देवि ८२
तत्पदार्थं तु जानीहि २४५
तत्पदार्थस्त्वंपदार्थोऽसि २४२
तत्र चोल्लेखनं कुर्यात् २०७
तत्र तत्र प्रदातव्यं १८८
तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं २०१
तत्रैव शक्तिं संपूज्य २४५
तत्संसर्गिपदद्वन्द्व ११
तथा कूर्परयोर्नाभौ १८
तथा ज्ञेया महाविद्या २५९
तथा तुष्ट्यमृते चैव २३९
तथा निरक्षरं वस्तु ९५
तथा मुग्धश्च लोलाक्षी १२१
तथा मुष्टेस्तु मध्यस्था ४३
तथा वनस्पतिगता २४३
तथा सच्चिन्मये ज्ञाने २४६
तथेयमात्रं संलिख्य ६५
तथैव दीपमन्त्रोऽयं ३८
तथैव मातृकायुक्त १७५
तथैव शक्तिसंबन्ध १९६

तदङ्गहवनात्पश्चाद् २७०
तदङ्गहवनं कुर्यात् २५०
तदङ्गहोमं निर्वर्त्य २६५
तदग्रे संस्थितो मन्त्री १९८
तदन्ते चोच्चरेत्पश्चाद् २२९
तदन्ते परमेशानि ४९
तदा तुर्यां विजानीयात् २५१
तदा देया महाविद्या २५७
तदा देवा मनुष्याश्च १८८
तदा प्रसन्ना त्रिपुरा ४७
तदा लक्षत्रयं कुर्यात् १७०
तदा लक्षत्रयं साधु १७०
तदाशाभिमुखो भूत्वा १७४
तदाऽश्वमेधदशकं १८८
तदा सिंहासने प्रौढा ५१
तद्ध्यानात्तु मनःस्थैर्य २५२
तद्बाह्ये देवदेवेशि ७९
तद्भालकण्ठहृन्नाभि १७४
तद्युक्तं कुरु मीनाक्षि ७९
तद्विधानं शृणु प्राज्ञे १०३
तन्नाम संस्मरन्मन्त्री १९५
तन्नेत्रवारिसंभूता २६६
तन्मध्ये नगर देशं १७७
तन्मध्ये नव कोष्ठानि २०६
तन्मध्ये विलिखेद्देवि १२६
तपोभङ्गाय मदनो २६६
तप्तकाञ्चनवर्णाभां ६३
तयोर्योगो महेशानि २४०
तर्जन्यौ दण्डवत्कुर्यान् १३२
तर्पणानि पुनर्दद्यात् १५५
तर्पणं तु तथा कुर्यात् ४४
तल्लग्नमष्टपत्रं च २१
तस्माज्ज्योतिर्मयीं ध्याये १९२
तस्मात्षोडशपत्रं तु ७६
तस्मात्पवित्रपूजा हि २६२
तस्माद्दीक्षेति नामास्याः २४८
तस्य सांवत्सरी पूजा २७०
तस्या देहे वरारोहे २४४
तस्याप्यर्धं कनिष्ठं स्यात् २६३
तस्या मूर्ध्नि स्मरेद्बीजान् १९३
तं रसं मनसा देवि २४५
तानाराध्य कथं लोका १५१
तानि सर्वाणि पात्राणि २०८
तामाराध्य महाविष्णु ५१
ताम्बूलरागवदनो ७२
ताम्रे वा दर्पणे ताले २२
तारचञ्चुर्वरारोहे २२७
तारेणं परविद्यां च ६५
तारं च भुवनेशानि ६१,२३९
तारं वैश्वानरप्रान्ते २१०
तां दूतीं तत्र सम्पूज्य २४४
तिथिनित्यागणायाथ २६४
तिथिनित्यां त्रिधा देवि १४१
तिलतण्डुलहोमेन २१७
तुलापुरुषकोट्यस्तु २५९
तुलां नार्हन्ति देवेशि ९९
तेन पक्षद्वयं छिन्नं २५२
तेन सम्यक्प्रपूज्याथ २६९
तेन संतुष्टसुहृदा २६६
तेनोदकेन यज्जातं २३५
तेनोदकेन संस्नातः ७९
तेषु सर्वेषु पश्यन्ती २४३
तैरेव पुष्पैः पूजा तु १८८
तैलस्थं चक्रराजं १८१
तैस्तु पूजा प्रकर्तव्या १८५,१८६
त्रयं वा स्वगुरुं वाऽपि १४५

त्रिकूटा सकला भेदाः ९६
त्रिकूटाः कथिताः सर्वा ९४
त्रिकोणरूपा योनिस्तु ७७
त्रिकोणरूपी वह्निः स्यात् ८५
त्रिकोणमध्ये बालाख्यां २३८
त्रिकोणमध्ये व्योमाख्यं १६६
त्रिकोणवृत्तषट्कोणं १०६
त्रिकोणाकाररूपेयं २०,७८
त्रिकोणेषु च सम्पूज्य २३८
त्रिकोणं चिन्तयेत्तत्तु १०६
त्रिकोणं चैव षट्कोणं २०८
त्रिकोणं तद्भगं ज्ञात्वा २३९
त्रिद्व्येकदशकत्रिद्वि १८
त्रिपुरा त्रिविधा देवि ७
त्रिपुरा द्विविधा देव ७०
त्रिपुरा भैरवी देवी ४६,४७
त्रिपुरा परमा शक्ति १९०
त्रिपुरा परमेशान ७
त्रिपुरायाः प्रकारस्तु ७
त्रिपुराद्या त्र्यम्बिकेय ७४
त्रिपुरेशी महेशानि ७३
त्रिपुरेशी महेशानि ७३
त्रिपुरेश्यादिमं त्यक्त्वा ७२
त्रिवारं परिमृज्याथा २०९
त्रिःसप्ताहान्महापाप १८७
त्रिशूलाग्रेषु संलिख्य २१
त्रैलोक्यमरुणं ध्याये १०९
त्रैलोक्यमोहनं नाम १९४
त्रैलोक्यमोहनं नाम ८०
त्रैलोक्यमोहनी देवी ४७
त्रैलोक्यमोहनो भूत्वा १९६
त्रैलोक्यमोहने देवि १४६
त्रैलोक्यस्य त्वहं कर्ता १०८
त्वगसृग्मांसमेदोस्थि १६
थान्तद्वयं समालिख्य १३
द
दक्षकोणस्य देवेशि ७९
दक्षपादादिमूर्धान्तं २३८
दक्षस्कन्धे घडाभ्यां तु ११५
दक्षिणाभिमुखो मन्त्री ८३
दक्षिणाम्नायपूज्यं तु ८१
दक्षिणाम्नायविद्येयं ६८
दक्षिणाशा ततो देवि ३६
दक्षिणे तु शिरोभागे ११८
दक्षे वामे च विन्यस्य १७
दधिमाक्षिकहोमेन २१५
दमनं नवधा कूर्यात् २६७
दमनीं च तथाऽर्चित्वा ५३
दमनारोपणं वक्ष्ये २६६
दमनेन च यो मन्त्री २६६
दर्भमुञ्जशणोद्भूतं २६३
दलाष्टकेषु संलिख्य २१
दश सोऽहं जुहंसोऽपि २३०
दशपत्राम्बुजे नाभौ १६
दशाङ्गाद्यैर्धूपवर्यै १६३
दशाभ्यर्च्य महादेवि ३५
दिव्याः पराख्यगुरवो १४५
दिव्यौघश्च महौघश्च १४४
दिव्यौघे तु परान्विद्धि १४२
दीक्षा देया वरारोहे २४९
दीक्षाविधिं प्रवक्ष्यामि २४८
दीपस्थानं मया प्रोक्तं २०७
दीपस्थानं समाश्रित्य २०५
दीपस्थाने जपं कुर्याद् २०७
दुःखदौर्भाग्यदारिद्र्य १९०
दुग्धं घृतं चूर्णमन्त्रं १७३

दूतरी चैव आनन्दा २५
दूतीयागविधिं कुर्यात् २३२
दूतीं सुलक्षणां रम्यां २३७
दूत्यन्तरं प्रवक्ष्यामि २४२
दूरस्थितानां देवेशि २१४
देयं तु सकलं भद्रे ९५
देवता मातृका देवि १५
देवदेव महादेव १६८
देवमुखः सप्तजिह्वो २१२
देवि कुम्भं प्रतिष्ठाप्य २६४
देहधर्मपरित्यक्ता ५
देहेऽक्षराणि देवेशि २५५
द्व्यष्टपत्राम्बुजे कण्ठे १५
द्वादशाङ्गुलदीर्घी तु २०३
द्वादशान्ता स्थिता देवि ९२
द्वाभ्यां कर्काटकं कुक्षौ ११८
द्वारश्रियं देहलीं च १०
द्वितीयसिंहासनगां ५४
द्वितीया मेखला देवि २०२
द्वितीयेन च कूटेन १६२
द्वितीयोऽयं प्रकारः स्याद् ९६
द्वितीयं बीजमुच्चार्य १०
द्विरावृत्त्या षडङ्गानि ५६,१०६
द्विरुच्चार्य च सर्वान्ते १२९
द्वे दक्षिणे विभागे तु ७९
द्रव्यभेदा वरारोहे २३३
द्राक्षाफलं समग्रं स्यान् २१९
द्राक्षाफलैः सिद्धयोऽष्टौ २१६

ध

धकारेण युतां ज्येष्ठां ११५
धन—रत्न—सुवर्णादि २४८
धर्मं ज्ञानं च वैराग्य २३७
धर्माधर्मपरिज्ञानात् २३५
धर्माधर्मौ कलास्नेह २२९
धारयेद्यत्र कुत्रापि १७५
धूपमन्त्रेण देवेशि १६३
धूपं विस्तारयेत्सम्यक् २१३
धूपं विस्तारयेत्सम्यङ् ३८
धूमव्यापी सप्तजिह्वो २१०
धेनुमुद्रेवमाख्याता ३१
ध्यात्वा प्रविन्यसेद्देवि ११२
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि ५६

न

नखदन्तक्षतान्यत्र २४०
नगरं वशमायाति १६८
नतिपाण्योऽश्विनीमुख्या ११५
न देया यस्य कस्यापि १०२
न देया षोडशार्णा हि २५७
न देया षोडशार्णेयं २५७
नन्दकः कामदायुक्तो १२१
नन्दिकेश्वरविद्यां च ९१
नमस्तेऽस्तुपदं कुर्याद् ५४
नमः पदमाभाष्य ६५
नवकोणं विरच्याथ २६८
नव गोलांश्चन्द्ररूपा १६४
नवत्रिकोणकुण्डं तु २०२,२०४
नवमी परमेशानी ६३
नवम्यां वा चतुर्दश्यां २६२
नवयोनिविशोभाढ्यं २०
नवरत्नप्रभाराजद् १३८
नवलक्षप्रमाणं तु २००
नववारं महेशानि ४०
न वारमासदोषा हि २६०
नवावरणवद्देवि १६४
नष्टसंततिविज्ञेया १४१
नानाजीवाश्रयं ततु २३५

नानाविधानि पेयानि ४०
नानासिद्धिहितार्थाय २२१
नाभौ पार्श्वद्वये चैव १०९
नाभ्यादिपादपर्यन्तं १३
नाम संयोज्य विधिवद् १७८
नाम्ना यस्य स वाग्मी १७८
नारङ्गफलहोमेन २१६
नारायणं दक्षकोणे ६५
नारिकेलस्य खण्डं हि २१९
नाशयेन्नात्र संदेहो १८२
नाशयेन्मोहयेत्सर्वां १८८
नासागण्डोष्ठदन्तेषु १६
नासाद्वये च देवेशि ११५
निक्षिपेत् परमेशानि ९
निगदः परमेशानि १९९
नितम्बबिम्बविलसद १३७
नित्यं संधारयेद्देवि १७७
नित्यहोमं ततः प्रोक्तं २१३
निद्रादौ जागरस्यान्ते ५
निधापयेच्च सप्ताहाद्द १७८
निमेषवर्जिते नेत्रे १३६
नियोज्य मदनागारे १७४
निरञ्जनस्वरूपा च २५९
निर्जीवे नाश एवास्ति २७
निर्माल्यभूतैः कुसुमै १८८
निर्विकल्पस्य देवेशि २३२
निर्विकारतया तत्र २३६
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च २४०
निवेद्य धूपदीपादि २४०
निशाचरश्च मर्दिन्या १२१
निश्चला सर्वभूतेषु ९६
निश्चेतनोऽपि देवेशि ४७
निष्पपञ्चे यदा देवि २३०
निष्पपञ्चं निराभासं २६०
नीलवर्णं तृतीयं हि २५४
नीलोत्पलैर्महादुष्टा २१५
नेत्रयोः सुस्थिरं ध्याये १६५
न्यासपूजादिकं सर्व ५७
न्यसेच्छिरसि पूज्यत्वात् १३
न्यसेत्कामरतिं पश्चात् १२०
प
पक्षिणं तं समाक्रम्य २५२
पञ्च कामा इमे देवि १४
पञ्च कामांस्तथा देवि ३४
पञ्चकामेश्वरीविद्या १४९
पञ्चधा षड्सोपेतं ४१
पञ्च प्रेतान् महेशान २६
पञ्च बाणान्क्रमेणैव १३
पञ्च बाणान्समालिख्य १२४
पञ्च बाणा महेशानि १४
पञ्च बाणाश्च देवेशी १२७
पञ्चमस्तु परानन्दो १४५
पञ्चवक्त्रेण जिह्वाभिः ८
पञ्चसिंहासनगता ४५,१६४
पञ्चसिंहासनगता विद्याः २५६
पञ्चसिंहासनोन्नद्धां ४४
पञ्चाक्षरी बाणबीजै १२८
पञ्चाङ्गुलीषु करयो १३०
पञ्चाङ्गुलोच्चा देवेशि २०३
पञ्चाशत्पीठविन्यासं ११९
पञ्चाशद्वर्णरूपेण २
पट्टं विरच्य श्रीखण्ड ७७
पदानि नव देवेशि ६२
पद्मताम्बूलहस्ते च २६९
पद्मरागतप्तहेम २११
पद्मरागमणिस्वच्छा १९५

पद्मरागसमप्रख्यं ८१
पद्मरागं सितं रक्तं ११४
पद्माक्षमालया लक्ष्मी १६९
पद्मिनी तु परा ज्ञेया २४४
परब्रह्मतया साक्षाच्छ्री ९४
परभृत्सारसौ चैव ४९
परमाणुस्वरूपेण २२६
परमात्मकला ज्ञेया: २४४
परमात्मस्वरूपाढ्यं २५५
परमात्मा हि विज्ञेयो २४५
परमात्मेति जानीहि २२८
परराष्ट्रं महादुर्गं २१४
पराबीजं मध्यबाणं १४
पराबीजं समुच्चार्य १०,१२६, १२७
परापररहस्याख्य १६१
परापराख्यसिद्धौघे १४२
परारब्यान्पूजयेदादौ १४२
परा शाक्तेस्तथा देवि १४२
पराहन्तामये सर्व २२८
परितो दर्शनं शाक्तं १५५
परिभ्राम्यानामिकां तु १०९
परिवर्त्य करौ पश्चात् ३०
परिवर्त्याञ्जलिं कृत्वा १३४
परिषिंच्य ततो देवि ४१
परिस्तीर्य च दूर्वाभि: २०८
परं ब्रह्मस्वरूपं ७०
पर्णपूर्णे वरारोहे २५२
पर्यङ्के पुरुषार्थैस्तु २४२
पवर्गेण शनिर्नाभौ ११४
पवित्रवृन्दं सकलं २६३
पवित्रारोपणं वक्ष्ये २६२
पवित्रं गुरवे दद्यात् २६४
पश्चात्षट्चक्रविज्ञानं २५४
पश्चिमादिक्रमेणैव ३५, १६२
पश्चिमादिविलोमेन १५८, १६०, १६१
पश्चिमाशा तदा ज्ञेया ८३
पश्चिमाशा तदा देवि ३६
पश्चिमे भैरवी देवी ५५
पातकं नाशयेन्मन्त्री १८४
पातालतलनागेन्द्र १७०
पादाङ्गुलीयकक्षिप्त १३७
पादान्ते हृदये लिङ्गे १७
पादुकां वेतालसिद्धिं च १८१
पापं विनाशयेद्देवि १८४
पापेन रहितं पश्चात् १२
पापेन सहितं शुष्कं १२
पार्श्वद्वये पृष्ठनाभि १६
पालयन्ती जगत्सर्वं १०१
पालयन्ती जगत्सर्वं २८
पाशमुद्रा समाख्याता ३१
पाशाङ्कुशधनुर्बाणै १९६
पाशाङ्कुशधरां नित्यां ४८
पाशाङ्कुशवराभीती ६०
पाशाङ्कुशौ पुस्तकं च ५६
पिनाकं च शरान्देवि ५२
पिशङ्गपिङ्गलौ बभ्रु ११८
पीठानि संस्मरेद्विद्वान् ११९
पीतस्थाने समालिख्य १८०
पुटाञ्जलिकरौ कृत्वा १३३
पुण्यपापे हविर्देवि २२९
पुत्रवान् देवदेवेशि १९६
पुनर्बालां समुच्चार्य १२२
पुनर्विलिख्य तामेव ९१
पुन: सम्पूर्णया देहे १०८
पुरस्थिरं तथा पीठं ११९

पुरुषस्य तु यद्वीर्यं २३६
पुष्परागमहारत्न १८६
पुष्पं समग्रं जुहुयात् २१८
पुष्पं समर्पयेद्देवि १५५
पुस्तकं नाम मुद्रेयं ३१
पुस्तकं वरदानं च १७
पूजनीया विलोमेन १४०
पूजयित्वा ततो देवि २७०
पूजयेच्छुभ्रकुसुमै १९१
पूजयेत्परमेशानि २३८
पूजयेत्सर्वकार्यार्थं १५९
पूजयेत्सूर्यरूपं तु १०४
पूजयेद्विधिवद्विद्वान् १८०
पूजाध्यानादिकं देवि ४९
पूजां विधाय देवेशी ३६
पूर्णं दाडिमहोमेन २१६
पूर्णाहुतिं ततो देवि २२३
पूर्वक्रमेण नगरनाम १७६
पूर्वक्रमेण विधिवत् १८१
पूर्ववत्क्रमयोगेन २३९
पूर्ववत्परमेशानि १०६,१८६
पूर्ववद्बलिदानं च १६६
पूर्ववन्नाशयेत्पापं १८३
पूर्ववन्मेखलाः कार्या २०४
पूर्वशक्तीशवह्निभ्यां ७८
पूर्वशक्त्यग्रभागे तु २०,७८
पूर्वादक्रमतो देवि २०६
पूर्वादिपरितः पूज्या २६
पूर्वाम्नायाधिदेव्या तु ८०
पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा १७८
पूर्वाषाढां वकारेण ११५
पूर्वोक्तैः प्रणवैर्देवि ६८
पृथक्पञ्चसमायुक्तं १२८
पृथग्बीजत्रयस्याहं १९१
पृथ्वीबीजान्तवह्न्याढ्यं ४५
पृष्ठे सर्वाङ्गहृदयः १३०
पेटिकां व्यजनद्वन्द्वं २६
पौष्पं तरुमयं धान्य २३३
प्रकटाद्या न्यसेत्पश्चा १३०
प्रकाशयेद्दक्षकर्णे २५६
प्रकृतिः परमेशानि २४०
प्रक्षालयेत्ततोऽभ्युक्ष्या २६३
प्रज्ञाप्रज्ञानमेवेदम १३६
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य १४७
प्रणवं भुवनेशानि १२७
प्रतिपत्तिथिमारभ्य १४०
प्रतिपत्पौर्णमास्यन्त १४०
प्रपञ्चसागरे लीना १००
प्रबोधापादनेनापि २५९
प्रमोदश्च तथा भूमी ११३
प्रवालपल्लवाकार २३
प्रवालवल्लीविलसद् १३८
प्रसन्नः परमेशानि २५५
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रोऽयं १२
प्राणानायम्य विधिवच्छ २५०
प्राणापानौ तथा व्यान ४१
प्राणायामः स विज्ञेयः ११
प्राणायामं प्रकुर्वीत ६२
प्रातरुत्थाय देवेशि ९
प्रायश्चित्ते तु कथितं २३५
प्रीतिं वदेद्रतिस्थाने २६९
प्रीयतां ललिता देवी २७०

फ

फलं वा वस्तु यद्यत्तु १७३
फान्तं क्रमसमायुक्तं १४
फाल्गुने सर्वकार्याणि २६१

ब

बकुलस्य हुनेत्पुष्पैः २१८
बन्धूककुसुमैर्देवि १८३
बन्धूककुसुमैर्होमः २१८
बलिपञ्चकमाख्यातं १६६
बसन्तसहितं कामं २६८
बहिरप्यखिलैर्वर्णै १७५
बहिरष्टदलं पद्मं ५६
बाणद्वयमिदं प्रोक्तं १४
बाणमुद्रेयमाख्याता ३२
बालया पूजयेद्देवी २२३
बालयाऽथ वरारोहे २०९
बालाक्रमं मस्तकेऽस्याः २३९
बालायाः पीठशक्तीस्तु ५७
बालायास्त्रिपुरेशान्या १२२
बालां तारं च हृत्प्रान्ते १२४
बाह्यं मध्यगतं वाऽपि १९८
बिन्दुचक्रं वरारोहे ८१
बिन्दुत्रयसमायोगात् ६
बिन्दुत्रयसमायोगान् ७१
बिन्दुत्रये महेशानि ४
बिन्दुत्रयं प्रवक्ष्यामि ३
बिन्दुत्रिकोणे वस्वार ७९
बिन्दुनादकलाक्रान्तं ७, ५५, १२९
बिन्दुनादसमायुक्तं ९
बिन्दुनादाङ्कितं बीजं १११
बिन्दुना शिवरूपेण ७५
बिन्दुहीना नादहीना ९२
बिन्दुं हित्वा तत्र सर्गं ७४
बिल्वपत्रैश्च जलजैः १८३
बिसतन्तुस्वरूपां तां १९
बीजत्रयस्य देवेश १९०
बीजपंचकमेतत्तु ३९
बीजमुद्रामुपास्याथ १६२
बीजमुद्रेयमाख्याता १३४
बीजानि वक्ष्ये क्रमतो १३१
बीजं च भुवनेशानी ६२
बीजं तु वाग्भवं शक्ति १३
बृहत्कराभ्यां देवेशि १०३
बैन्दवे परमेशानि १४६
बंलंवर्णैः काकिनीं तु ११७
ब्रह्मणः परमेशानि २७
ब्रह्मबिन्दुर्महेशानि ३
ब्रह्मरन्ध्रस्थिता देवि ३३
ब्रह्मरन्ध्रस्फुरद्भृङ्ग २२
ब्रह्मरन्ध्रेऽलिके नेत्र १३०
ब्रह्मरूपे चित्स्वरूपे १६२
ब्रह्मविद्यास्वरूपेण ९९
ब्रह्महत्यादिजनितं १८४
ब्रह्महत्यादिदोषाणां १८२
ब्रह्महत्या शिरो यस्य ११
ब्रह्महत्त्यासुरापान २३३
ब्रह्माणं चैव विष्णुं च ३६
ब्रह्माणं तं समाराध्य ४७
ब्रह्माणं दक्षिणेऽभ्यर्च्य २१२
ब्रह्माण्डकोटिजननी १००
ब्रह्मानन्दमयी साक्षात् ४६
ब्रह्मानन्दमयं ज्ञानं २४६
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च २७,६०
ब्राह्म्यादियुग्मं संपूज्य ५४
ब्लेमात्मकमारोप्य ७३

भ

भक्तिहीनाय देवेशि २४८
भगगुह्ये भगप्रान्ते १२५
भगमालां ब्रह्मशक्तिम १६२

भगमालां महादेवि ३४
भगरूपे ततो लेख्यं १२५
भगानि मे ह्यानयेति १२५
भवबन्धं घातयन्ती १९०
भावाभावपरित्यक्ता ५
भीषणं चैव चामुडां ३४
भोगमोक्षप्रदा विद्या ९५
भोगस्तु परमेशानि २४५
भुवनेशी ध्रुवं चैव १४८
भुवनेशी महेशानि ६१
भुवनेशी श्रिया युक्ता ७३
भुवनेशीं समालिख्य १२५
भुवनेशीं समुच्चार्य १२६
भुवोर्मध्ये महेशानि ११७
भूतभूता खयुग्मावदे २७०
भूतशुद्धिविधिं कुर्यात् ११
भूप्रदेशे समे वर्ये ७७
भूमिमध्यगतं कृत्वा १७७
भैरवा दश संपूज्याः ३५
भ्रमणः शिखिनीयुक्तो १२१
भ्रान्तश्चामरलोला च १२१
भ्रूमध्यस्था महादेवि ३३

म

मकरध्वजसंज्ञं तु १९४
मकरं तु तवर्गेण ११८
मकारयुक्तं श्रवणं ११६
मण्डपं वेदिकां कृत्वा २४९
मण्डूकादींस्ततो देवि २३७
मत्तवाहनलोले च ११३
मदविह्वलनाम्नी च ११३
मध्यचक्रत्रये देवि १४६
मध्यत्रिकोणं देवेशि २०५
मध्यमे कुरु तन्मध्ये ३३, १३४
मध्यमे तर्जनीयुक्ते १३२
मध्यमे तर्जनीयुग्मे १३२
मध्ये पुष्पं विनिक्षिप्य २०८
मनोव्यावृत्तिविस्तारा ४
मनोहरे मृदुश्लक्ष्ण ७२
मनःकल्पितरूपं वा ४१
मनःप्रियाणि सर्वाणि २१९
मनःप्रियाहुतीः कृत्वा २२०
मनःप्रियैश्च खण्डैश्च २१९
मन्त्रभेदेन तेनैव २३२
मन्त्राद्यसाधकानां तु १५२
मन्त्राध्वाऽयं समाख्यातो ८३
मन्त्रिणा परमेशानि १७३
मन्त्री प्राप्नोति महतीं २१४
मरणं विस्मृतिर्मूर्छा ९६
मलयं च महापीठं ११९
मल्लिकामालतीजाती २६
महाक्षोभो योषितां तु १७६
महाङ्कुशां महामुद्रां १६१
महाकोशेश्वरावृन्द १५४
महाचण्डं समुद्धृत्य १५०
महात्रिपुरसुन्दर्याः १७५
महाधनुश्च सुमुखा १२१
महापातककोटीस्तु १९९
महापातकमुख्यानि १९९
महापातकयुक्तात्मा १७९
महामोक्षप्रदं देवि ७९
महालक्ष्मीमयं पीठ ११९
महार्हैश्चन्दनाद्यैश्च ७२
महाविद्येयमाख्याता १५१
महासनस्य मन्त्रोऽयं २९
महासौन्दर्यसुभगा ८
महिषाश्वपुरीषाभ्यां १७८

महिषीघृतसंयुक्तं २२३
माणिक्यमाला फलदा १६९
मातङ्गमालिनीयुग्मं १२१
मातङ्गिन्येति चांशं वाङ् १५०
मातृकार्णस्वरूपां च ११०
मातृकार्णास्तथा भद्रे १०१
मातृकार्णैर्न्यसेद्देवि १२२
मातृकावन्न्यसेद्वक्त्रे १२३
मातृकां विन्यसेत्तस्या २३८
मातृकां विलिखेच्चक्र १७४
मातृकां शृणु देवेशि १५
मातृगर्भाद्विनिर्गत्य २३६
मादकं धर्मसंछेदा २३३
मादकं वस्तु सकलं २३४
मादनं कामराजे तु ८९
मानवौघान्तिके पश्चात् १४३
मानवौघे तदा देवि १४३
मानसस्तु वरारोहे १९९
मानसोच्चारणात्तुल्य १९९
मायाबीजं तु कथितः १५०
मायाविकाररूपेण ८५
मारणं दक्षिणे चैव २२१
मालवं च ततः पीठं ११९
मालाकारेण संवेष्ट्य २१३
माषान्नभरितं नाना १६५
मासमात्रेण देवेशि १८२
मासमात्रं क्रमेणैव १८२
मासषट्कं चिन्तयेद्यः १७६
मासेन हन्ति कलुषं १८०
मिलितं मुष्टियुगुलं ३०
मीनकेतुर्महेशानि १४
मुक्ताफलस्फुरद्रूप १९१
मुक्ताफलामलमणि १९२
मुक्तामाणिक्यघटित १३८
मुक्ताहारलताराजत् ४६
मुखवृत्तं समुच्चार्य १२
मुखे कार्याणि सिध्यन्ति २०६
मुखे कृत्वा पूजनीयं १६६
मुण्डमालावलीरम्यां ५६
मुद्राः प्रदर्शयेत्पश्चात् ४८
मुद्राः संदर्शयेत्तत्र १०७
मुनिसंख्यास्तु गुरवः १४२
मुष्टिकाकृतिमुष्टिश्च १६४
मूर्तये नम आलिख्य २१०
मूर्तिविद्या समुद्दिष्टा ७४
मूलपीठेश्वरीविद्या १४९
मूलमन्त्रेण चाभ्यर्च्य ३९
मूलमन्त्रेण देवेशि ९
मूलमन्त्रेण बाणेन २१२
मूलविद्या महेशानि १४७
मूलविद्यास्त्रमुच्चार्य १०७
मूलविद्यां द्विरावृत्त्या १५
मूलविद्यां यजेत्तत्र १०७
मूलशक्तिदृढत्वेन १९
मूलादिब्रह्मपर्यन्तं १९२
मूलाधारे मूलविद्यां १९
मेखला पूर्ववद्योनिः २०४
मेखलासहितं देवि २०२
मेखलाः पूर्वत्कार्याः २०५
मेरूद्धतं समुच्चार्य ११०
मेषं दक्षिणपद्गुल्फे ११८
मोहिनी दीपनी चैव २३८
मोदिनीं पूजयेद्वाचां ११०
मोहयन्ति जगत्सर्वं १९३

य

यतो निरक्षरं वस्तु ९८

यत्र कुत्र स्थितं भद्रे १७७
यत्र कुत्रापि वा पश्येत् २०७
यथाशक्त्या जपेत्पश्चा १०
यथाशक्त्या जपेन्मन्त्रं १०
यथाशक्त्या तु मिलितै २२०
यथा श्रीत्रिपुराबाला ४५
यथा सूर्यप्रकाशोऽयं २४६
यथेच्छया वरारोहे २२०
यदेकान्ते चतुर्मार्गे १८१
यन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि ४८
यमाशाभिमुखो भूत्वा १८०
ययेदं धार्यते सर्वं २४३
यवगोधूममुद्गादि ३९
यवर्गान्ते जान्तकाल १११
यवर्गेणं क्षकारेण ११८
यस्मिन्कोष्ठे क्षेत्रनाम २०६
यस्या विज्ञानमात्रेण ९७
यस्याः फलं वरारोहे २४३
युग्मयुग्मप्रभेदेन ३४
यांकारं बीजमुच्चार्य ३६
येनेयं प्रार्थिता देवी ६१
येषां विज्ञानमात्रेण २२५
योगनिद्राछलाद्देवि ५१
योगिनीनां चतुःषष्टिं ६१
योगिन्यश्च तथा पूज्याः २२४
योगिन्यो योगिनश्चैव २६५
योजनानां शताद्वाऽपि १७६
योजयित्वा तर्जनीभ्याम १३२
योनिकुण्डं योनिरूपं २०४
योनिकुण्डं वाक्प्रदं २०१
योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ १६३
योनिवश्यं तदा चक्रे ७७
योनिस्तथैव देवेशि २०५
योनिं वह्निं च संयोज्य ७९
योन्यग्रगां पूर्वदेशे ७८
योन्याकारेण वामेन ४३
योषितो भ्रमयन्त्येव १७०
यः कर्ता च स्वयं हर्ता २८
र
रकारात् परमेशानि ७६
रक्तचन्दनहोमेन २१७
रक्तवस्त्रावृतः सम्यङ् १९२
रक्तवस्त्रं रक्तभूषं २६८
रक्ताम्बरपरीधानां ४६
रक्तोत्पलदलाकार २३, १३७
रचितान्यमलैः पञ्च २६४
रत्नपूजाविधानं तु १८५
रत्नस्वर्णाकृति स्फारं २६
रत्यादिकास्ततः पूज्याः ४९
रमणो लेलिहायुक्ता १२०
रविमुख्यान्कामरूपान् ११४
रश्मिवृन्दाय देवेशि २६४
रश्मिवृन्दं दलमितं १४१
राजानो ब्राह्मणा वैश्याः १७६
राजानो वाजिनः सर्पा १७५
राजिकालवर्णाभ्यां तु २१७
राज्यदे राजलक्ष्मीति १४९
राशिन्यासं ततः कुर्यात् ११७
रिपुजिह्वाग्रहा मुद्रा १३२
रुद्रस्तु परमं तत्त्वं २८
रुद्राक्षमालिका मोक्षे १६९
रुधिराक्तेन च्छागस्य २१४
रोचनाकुङ्कुमाभ्यां च २६३
रोचनाकुङ्कुमाभ्यां तु ७७
रोचनाकुङ्कुमे चैव १७७
रेखासु विलिखेत्तत्र १४०

ल

लकारश्चतुरस्रं स्यात् ८५
लकारात्पृथिवी देवि ७५
लकारेण ततो देवि ११६
लकारः पृथिवीबीजं ७६
लक्षमात्रं जपेद्यस्तु १९९
लक्षमात्रेण मन्त्रज्ञो २१६
लक्ष्मीस्तस्य गृहे रम्या १८२
लघिमामुत्तरद्वारे १५६
लम्बमानं तदाकाशे १७९
लम्बोदरश्च विघ्नेशी ११२
लयाङ्गं कल्पयेद्देहे ३२, १३९
लये मध्यगतां भूमिं १४७
ललाटगलहृन्नाभि १८
ललाटेऽनामिका कुर्यात् १०९
लसत्तण्डुलजो देवि ४०
लीला स्वात्माप्रियः पश्चान् १४३
लोकपालेषु सर्वेषु ६१
लोपमुद्रा प्रभावेन् ९०
लोपामुद्राख्यविद्याऽ १४४

व

वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु ८
वक्तुं न शक्यते सर्वै ९३
वटकः कुङ्कुमाकारः ४०
वरदानरतां नित्यं ४६
वरदायशोभाढ्यं २१०
वरान्ते वरदान्ते च ४३
वराभयकरो नित्यो २५४
वरेण्यश्चैव सुभगा ११३
वर्गाष्टकं मातृकाया ८२
वर्णाध्वा कथितो देवि ८२
वर्णाष्टकं चाष्टकोणे ८२
वर्णितुं नैव शक्येयं ९८
वशमानयते शीघ्रं १७७
वशवर्णस्थितां न्यस्य ११६
वशा भवन्ति देवेशि २१६
वशित्वसिद्धिं वायव्ये १५६
वशिनीं पूजयेद्वाचां ११०
वशिन्याद्यष्टकं तत्र २४९
वश्यमुद्रां प्रदर्श्याथ १५९
वश्या विंशतिसंख्याका २१६
वश्यास्तु दशसंख्याका २१६
वश्योन्मादौ क्रमेणैव १४
वषड्हुंवौषडन्तं च १५
वसवो द्वादशाऽऽदित्या ३६
वसुपत्रे महेशानि ६६
वहत्करोर्ध्वपुटतः १६५
वहन्नाडीक्रमेणैव २९
वह्निचैतन्यमुच्चार्य २१०
वह्निजायान्विता विद्या १२७
वह्निजायान्वितो मन्त्रो ४२, २१०
वह्निमण्डलमेतत्तु २०, ७८
वह्निमण्डलरूपं तु १०४
वह्नेः सकाशाद् बहवो १००
वह्नेर्देहे षडङ्गानि २१०
वाग्भवं पञ्चवर्णं तु ८६
वाग्भवं पूर्वमुद्धृत्य १५०
वाग्भवं बीजमुच्चार्य ४७, ६८
वाग्भवं भगशब्दान्ते १२५
वाग्भवं भुवनेशानि १४९, २६८
वादिसान्तैश्चतुर्वर्णैः २५४
वामकर्णेन्दुबिद्वाढ्यं १११
वामतः परमेशानि २५०
वामदक्षिणयोर्ध्यात्वा २६९
वामदेवस्तथा लज्जा ११३
वामनेत्रसमायुक्तं १४७

वामपाणितले चैक १३
वामभागे तु संपूज्या १५७
वामभागे स्थितो देवि १६७
वाममुष्टिं विधायाऽऽदौ ४३
वामहस्तेन मुष्टिं तु १३१
वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां ४३
वामा ज्येष्ठा च रौद्री २५
वामांसदेशे सौभाग्य १०८
वामेन पाणिनैकेन २३
वामं भुजं दक्षभुजे १३३
वायव्ये तु शवर्गेण १५८
वायुराक्षसकोणाग्ने ७९
वायुराक्षसकोणाभ्यां ७८
वायुश्च वामकर्णेन १०५
वाराही च तथा षष्ठी १५६
विकासयति सौभाग्यं २४४
विघ्नराड्रतियुक्तस्तु ११२
विचारयेत्सदा सर्वं २३३
विचारयेन्मन्त्रवित्तु २३५
विचिकित्साकारो मन्त्री २४१
विदर्भ्याद्येन कामेन १९४
विद्याकलाचतुष्कं तु २४४
विद्यादौ योजयेद्देवि ९६
विद्याधरीं दिव्यरूपा १७२
विद्याविमूढहृदयाः १६९
विद्यां सृष्टिक्रमेणैव १७
विद्वेषे जम्बुकं प्रोक्तं २२२
विधाय वामभागे तु १०५
विना गुरुपदेशेन ९९
विनायकस्तथा तुष्टिः ११२
विपरीतान् वद प्रौढे ५७
विपरीतौ तलौ कृत्वा १३२
वियत्तदादिकं तं च १५०
वियदग्निसमायुक्ता १५०
विरच्य घटिकाः कार्या १६४
विरलौ तु करौ कृत्वा १३२
विराट्स्वरूपी वर्णात्मा ११२
विलिखेत्सप्तसंख्याना २१
विलिखंश्चक्रयोगेण १७५
विलिख्य धारयेन्मन्त्री १७९
विवाहरहिताः स्युश्चेद २३१
विशुद्धक्षौमरचितां २३७
विशुद्धदेहो देवेशि १२
विशुद्धमुक्तारत्नाढ्यां २३
विशेषमुद्रां देवेशि ३३
विशेषेण सयापूर्य १०६
विस्फुलिङ्गप्रभैर्वर्णैः २५५
विहारोऽस्यैव हंसस्य २२७
वीरेण सहिता पश्चात् ११३
वृत्तं भूसदनोपेत ५३
वेदशास्त्रपुराणेषु २३४,२५७
वैदूर्यघटितैः स्वर्ण १८७
वैदूर्याभा सुवर्णा तु २११
वैनतेयसमो मन्त्री १९५
वैराग्यं च मुमुक्षत्वं ९७
वैरिणो नाशमायान्ति १८७
वैश्यो न वैश्यः शूद्रो २४६
वैष्णव्येकोनविंशार्णा ९८
व्यञ्जनत्वात्सदाऽऽनन्दे २
व्यापकान्ते योनिमुद्रां १०८
व्याप्य तिष्ठति विश्वं सा ७०
व्याप्य तिष्ठति सर्वत्र २२६
व्याप्यते सकलं तस्माद २२७
व्योमादिवह्निसंस्थं तु ४५

ष

षट्कूटा परमेशानि ९८

षट्कोणं चिन्तयेत्तत्र २११
षट्कोणं स्तम्भने चैव २२१
षट्कोणेषु षडङ्गानि २१२
षट्चक्रेषु ललाटे च १२२
षडङ्गानि प्रविन्यस्य ५९
षडङ्गावरणं देवि ५७, ६०
षड्दीर्घस्वरसंभिन्नं ४२
षडध्वरूपं श्रीचक्रं २५०
षडस्त्रं सर्वसंपत्ति २०२
षडाहुतीः षडङ्गानां १६५
षडाहुतीः षडङ्गेन ४१
षोडशस्वरसंयुक्ता २३८
षोडशार्णा ब्रह्मरूपा २४५
षोडशार्णां ब्रह्मरूपां २५८
षोडशार्णा मया भद्रे १०१
षोडशार्णा महाविद्या ९९
षोडशार्णां महाविद्यां ९४
षोडशार्णेन मनुना १६६
श
शक्रयोन्यङ्कितं देवि ७९
शक्तयः कुङ्कुमनिभाः १२०
शक्तिक्षेत्रेषु गङ्गायां २०१
शक्तिरेकादशस्थाने ७६
शक्तिर्जाग्रदिति ख्याता २५१
शक्तिः सकलह्रीमन्ते ६७
शक्त्याधिक्ये रजःस्थौल्यं २५१
शक्त्या विना शिवे देवि २९
शङ्खिनी तु यथा भद्रे २४३
शठत्वेन वरारोहे ९४
शतपत्रैर्मनोरम्यैः १८३
शतसंख्यास्तिला देवि २१८
शब्दाख्यं मातृकारूपम २२९
शब्दातीतं परं धाम ३
शरीरं व्याप्य सकलं २२६
शर्करापूरभरित १६५
शवर्गान्ते महेशानि १११
शाकिनीं हाकिनीं देवि ४९
शाम्भवेन च वेद्येन १३७
शिवचन्द्रौ महेशानि ५९
शिवचन्द्रौ मादनान्तं ५२
शिवचन्द्रौ वह्निसंस्थौ ४५
शिवतत्त्वेन चास्थ्यादि २३६
शिवरूपा शक्तिरूपा ९७
शिवशक्तिसमायोगाद् ९९
शिवस्य करणं नास्ति २७
शिवस्य वामतो देवि १५५
शिवाधिक्याद्गुणातीतं २५१
शिवं कुर्याद्वाग्भवे तु ८९
शिष्यस्तदा श्रीगुरोस्तु २५६
शुक्लपक्षे शुभदिने २६०
शुक्रे च सर्वकामास्तु २२२
शुद्धस्फटिकसंकाशां १७
शुद्धोदकेन सम्पूर्य १०५
शून्यं शिवमयं वस्तु २५१
शूलगूल्मादिरोगांश्च १७६
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि २५, ८६, ८८, ९१, १०३, १२४, १३५, १९८, २०२
शृणु देवि महाविद्यां ५९
शृणु सर्वांगसुभगे १६८
शेषवर्णैः प्रपूज्यास्तु ६६
शोषयन्दुग्धमूत्राणि २४७
श्र
श्रद्धातरङ्गिणीनीर २६०
श्रद्धा प्रीती रतिश्चैव २३८
श्रिया बीजं ततो दद्या १४७

श्रीखण्डघुसृणेन्द्राद्यै २६७
श्रीखण्डवल्लीसदृश २३
श्रीगुरोः कृपया देवि १६७
श्रीगुरोः कृपया भद्रे ७१
श्रीगुरोः कृपया लब्धा १००
श्रीचक्रमभितो देवि ४१
श्रीचक्रं तु वरारोहे ७७
श्रीबीजसंपुटं कुर्यात् १४८
श्रीबीजं च पराबीजं १४८
श्रीविद्या च तथा लक्ष्मी १४६
श्रीविद्या च परं ज्यौतिः १४६
श्रीविद्या त्वरिता चैव १४७
श्रीविद्याबीजसंलीनाः २५१
श्रीविद्या मूलपीठेशी १४७
श्रीविद्याया षोडशार्णे १०९
श्रीविद्यायां यथाऽव्यक्त २५८
श्रीविद्यां तोषयेत्तत्र २२४
श्रीविद्यां ब्रह्मरन्ध्रे च १२३
श्रीविद्यां व्यापिकां विद्धि २५९
श्रीविद्यां षोडशार्णां तु २५६
श्रीविद्यां सिद्धलक्ष्मीश्च १४७
श्रीविद्यां हृदये तस्य २६१
श्रीश्च हरीश्च स्वधा रात्रि ६६,१०४
श्वासोच्छ्वासतया देवि २५९
श्वेतं व्याघ्रे भवेच्छान्त्यै २२२
श्वेतां मुक्ताप्रभां देवि २११
श्वेतोत्पलैर्मिश्रितैस्तु १८३
श्वेतैश्च ब्रह्मकमलैर्लक्ष्मीं २१५

स

स आत्मा परमेशानि २२५
सकारः सर्गबिन्दुभ्यां ३
सगुणाः परमेशानि २८
सत्त्वान्भगेश्वरि ब्रूयाद् १२५
सदाशिवो महाप्रेतः २९
सद्योऽधिवासनं वाऽपि २६७
सन्धिभेदक्रमेणैव ७८,२०५
सन्मार्गवर्तिनि चाग्नि २४८
सपत्नान्नाशयेद्दृष्ट्वा १७६
सप्त भेदास्तु सकलाः ९७
सप्तलक्षजपान्मन्त्री २००
सप्ताक्षरी महाविद्या ६४
समग्रविद्यामुच्चार्य २४०
समस्तचक्रचक्रेशीं १६२
समस्तमपि देवेशि २४६
समस्तरश्मिसहितं १८२
समाधिर्जायते तत्र १३६
समावाह्य च सम्पूज्य २०९
समृद्धिमान् भवेद्देवि १८३
सम्पूर्णां चिन्तयेद्विद्यां १०८
सर्वकामप्रदा राज्य २०१
सर्वक्षेत्रमयी देवी ८
सर्वगङ्गामयी सर्व ७५
सर्वज्ञत्वे वरारोहे २३२
सर्वज्ञानमयी देवी १६०
सर्वतीर्थमयी देवी ८
सर्वत्र प्रोक्षणं कुर्यात् १०७
सर्वदर्शनवन्द्यां च ७४
सर्वदेवमयीमम्बां १३८
सर्वदेवमयी साक्षात् ८७
सर्वधातुगतां देवीं ११७
सर्वप्रियकरी देवी १५९
सर्वभूतेषु विज्ञानं २३४
सर्वमन्त्रमयीं नित्यां १३९
सर्वमन्त्रासनगता ७३
सर्वमन्त्रासनं दद्यात् १०७
सर्वमृत्युप्रशमनी १६०

सर्वयागमयीं विद्यां १३९
सर्वरक्षाकरे चक्रे १६०
सर्वरक्षाकरं चक्रं ८१
सर्वरोगहरे चक्रे १६१
सर्वलोका वशास्तस्य २१४
सर्वलोकेषु सुभगः १७२
सर्ववन्द्यः सदा सर्व २००
सर्ववश्यकरं देवि १८१
सर्वविद्राविणीं मुद्रां १५८
सर्वशास्त्रमयी विद्या ८६
सर्वसन्धिषु देहस्य १७४
सर्व समं विजानीयात् २४६
सर्वसाम्राज्यदं देवि ७९
सर्वसिद्धप्रदा नित्यं १६९
सर्वसिद्धिप्रदं चक्रं ८१
सर्वसिद्धिप्रदं रोग २०
सर्वसिद्धिप्रदां देवि १६०
सर्वसिंहासनमयी १२७
सर्वसौभाग्यजननी १५४
सर्वसौभाग्यदात्री च १२६
सर्वसौभाग्यदां नित्यां ५७
सर्वसौभाग्यदे चक्रे १४६, १५९
सर्वसंकल्परहिता २५३
सर्वसंक्षोभणं नाम ८०
सर्वसंक्षोभिणी शक्तिः १५९
सर्वसंपत्तिपूर्णा च १५९
सर्वसंमोहिनी शक्तिः १५९
सर्वाकर्षणमुद्रां च १५८
सर्वागममहामन्त्र ९३
सर्वाङ्गे विन्यसेत्पश्चाद् १३०
सर्वाणि च भगान्यन्ते १२५
सर्वानन्दमयी देवी १६०
सर्वाम्नायमयीं देवीं १३९
सर्वार्थरञ्जिनी शक्ति १५९
सर्वार्थसाधकं चक्रं ८१
सर्वाशापूरकं चक्रं १५७
सर्वाशापूरकं भद्रे ८०
सर्वोपचारैराराध्य १५५
सर्वं तल्लभते मन्त्री १८२
सवर्णाऽपि वरारोहे ९५
स वश्यो जायते देवि १७३
स सौभाग्यं महादेवि १४१
सहजानन्दसंदोह १३५
सहस्रे हस्तमात्रं च २२०
सहाद्या सैव देवेशि ६७
सहाद्यं वाग्भवं देवि ८९
सहितं बलिमालिख्य ४३
सहोदराय सर्वस्व २५७
साक्षात्संविन्मयी १०१
साक्षाद्ब्रह्ममयी देवी ९३
साक्षान्मदनसौभाग्यं १००
साङ्गं कामं प्रपूज्याथ २६९
साधकः खेचरो देवि १८१
साधारणास्तु गुरवः १४५
साधु पृष्टं त्वया भद्रे १५१
साध्यः सुसिद्धो भजनात् १५२
सानन्दमुद्यल्लोलाक्षीं ६४
साबाला भैरवीयुक्ता ८२
सामबाख्यः सर्वदेवश्च २६३
सामान्यगुरुपङ्क्तित्वान्न १४४
सामान्यार्घ्यस्य तोयेन १०५
सितासितारुणा बभ्रू ११६
सितासितारुणाश्याम ११८
सिद्धादिशोधनं देवी १५४
सिद्धाः परापरा ज्ञेया १४५
सिद्धाम्बावाहिनीमूर्ति ७४

सिद्धसुसिद्धः संग्राहात् १५२
सिद्धिप्रदा सिद्धिविद्या ६६
सिद्धिस्तदैव विज्ञेया २४७
सिन्दूररङ्गमालार्भि २४९
सिन्दूररजसा वाऽपि २२
सिन्दूररजसा वाऽपि २४९
सिंहासने दक्षिणे तु ६३
सुप्रकाशो महादीपः ३८
सुवर्णरत्नलेखिन्या २२
सुवर्णरश्मिभरितां २५६
सुवासिनीश्च सम्पूज्य २७०
सुवासिनीस्ततः पूज्याः २२३
सुवासिन्यो मदप्रौढ़ाः २३२
सुवृत्तनिबिडोत्तुङ्ग १३८
सुरादेव्यै ततो वौषड् १०५
सुरास्तस्य वशा देवि १८६
सुषुप्त्यन्ते जागरादौ ५
सुषुम्नावर्त्मना नित्यम २२९
सुसिद्धसाध्यो जपाद्यैः १५३
सुसिद्धस्तत्क्षणादेव १५२
सुसिद्धं तु तृतीयं स्याच १५२
सुस्थले श्रीभवे पट्टे २०
सूर्यभास्वन्महारत्न २३
सूर्यरूपं प्रपूज्याथ १०६
सूर्यवत्कान्तिमान्मन्त्री १८५
सूर्यस्वरं समुच्चार्य ७
सृष्टिसंहारपर्यन्तं १९४
सेनानीर्यामिनीयुक्तो ११३
सोपस्करैश्च वटकै २१७
सोमामृतं तु जानीहि २३२
सोमे सर्वाकर्षणं च २२२
सौभाग्यगर्वगहना १०१
सौभाग्यदण्डिनी मुद्रा १३१
सौभाग्यभाग्यसंपन्न १००
सौभाग्यवान्भवेन्मन्त्री १८३
सौभाग्येन विलासेन २१४
सौवर्णे राजते कांस्ये ३९
संकल्पेन विकल्पेन २५२
संकल्प्य परमेशान्यै १६५
संक्षोभद्रावणाकर्ष १३१
संक्षोभयति भूर्लोक १७१
संज्ञा प्रज्ञान यत्रैवं १३६
संतत्या नष्टरूपः सन १४१
संधिभेदक्रमेणैव २०
संध्यास्नानादिकं देवि ७२
संनद्धपिच्छैःसबलः २५२
संपत्प्रदा भैरवी च ६७
संपत्प्रदाया भैरव्याः ५२
संपुटादग्निखण्डं तु २०९
संपूज्य विधिवद्विद्वान् १८०
संप्रदाया अनेके च १४५
संयोज्य पूजयेत्सर्वाः १५६
संसिद्धेऽरिविशेषेण १५३
संस्थितां चिन्तयेत्तत्र १३९
संस्मात्तु सर्वं सिद्धानां १५३
संहाररूपी हंसस्तु २२७
स्तम्भने गजचर्माणि २२२
स्तम्भविद्वेषणव्याधि १८१
स्तम्भे स्तम्भिन्यै ह्युक्त १५०
स्त्रियः पराम्बाशब्दान्ता १४२
स्त्रीपुंभावेन सकलं १०१
स्थापितं देवि सप्ताहा २३३
स्थावरं जङ्गमं चापि १७५
स्थितिचक्रे तु सम्पूज्यं १५५
स्त्रीरजः परमेशानि २३५
स्पर्शाकर्षिणिरूपां च १५७

स्पर्शेन धातवः सद्यो २५३
स्फुरत्सुवर्णवर्णेन ९
स्फुरन्मदनकोदण्ड १३८
स्मरेण च युता कान्ता १२१
स्यन्दनत्वेन सकलं २५९
स्वगुरुश्च महेशानि १४३
स्वयंप्रज्ञातभेदस्तु १३६
स्वयंप्रज्ञातसंज्ञस्तु १३६
स्वयंभूबाणलिङ्गं वा २००
स्वरयुग्मं क्रमेणैव २०६
स्वरान्ते तु प्रवक्तव्यं ११७
स्वरैरर्कं हृदि न्यस्य ११४
स्वरैर्माणिक्यसंकाशै २५५
स्वर्णादिनिर्मिते पात्रे १६४
स्वर्णालंकारवस्त्रैश्च २६५
स्वाती वश्ये तथोच्चाटे २२१
स्रवद्रुधिरपङ्काढ्य ४६
स्रवद्रुधिरमुण्डालि ५२
स्रुवं गृहीत्वा वामेन २०९
स्रुवं स्रुचं ततः पश्चात् २०८
स्रूमात्मकं द्वितीयं च १२८
ह
हकाराच्छिवसंवाद ७५
हकारादिसकारान्ता ७०
हकारः परमेशानि ७१
हठादानयते शीघ्रं १७२
हस्तिनापुरपीठं च ११९
हसराद्या भैरवी सा ६७
हस्रौभस्तास्ततो देवि ६८
हास्यरोदनरोमाञ्च १३६
हित्वा मुखे शिवेन्द्वाढ्या ८८
हूंकारं क्षे परा चास्त्रं १२७
हृदन्तोऽयं मनुर्देवि १२९
हृदये बाहुमूले च १६
हृदयं च शिरा देवि १५
हेमप्रभाभासमानां १९४
होमादिकं तु सकलं २३१
होमान्तरं प्रवक्ष्यामि २२५
होमो दधिमधुक्षीर २१५
हंसाद्यं वाग्भवं चाऽऽद्यं ५९
हंसोऽजपार्णान्तः तत्र १४८

पारिभाषिक शब्दावली

अनाहतचक्र—शरीरस्थित षट्चक्रों में चौथा वायुतत्त्वमय द्वादशदल चक्र । स्थान—हृदय । काकिनी शक्तिसहित ईशान रुद्र का निवास स्थान । अनाहत ध्वनि का यही उत्पत्ति स्थान है ।

अन्तर्मातृकान्यास—मातृका — सभी अकारादि स्वर एवं ककारादि व्यंजन । योगशास्त्रानुसार शरीरस्थित षट्चक्रों पर इन मातृकाओं का अनुस्वारयुक्त न्यास पूजादि विधियों में किया जाता है । इसके अनन्तर भारती या अम्बिका का ध्यान करते हैं ।

अपराविद्या—चार वेद, छः वेदांग, पुराण, वैशेषिकादि छः दर्शन ।

अविद्या—परब्रह्म परमात्मा की अचिन्त्य, अनिर्वचनीय शक्ति जो अपनी आवरण शक्ति से सत्य को छिपाती है और विक्षेपशक्ति से उसी सत्य पर असत्य को प्रतिभासित करती है । इसी को वेदों में 'माया' कहा है । 'मायावाद' के आधार पर शांकर वेदान्त 'जगन्मिथ्या' सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है ।

अविद्या के पाँच पर्व—तमस्, मोह, महामोह, तामस्र और अंधतामिस्र । इन पाँच पर्वों के कारण अविद्या पँचपर्वा कहलाई जाती है ।

अश्विनी मुद्रा—हठयोग की एक मुद्रा, जिसमें गुदद्वार का आकुन्चन और प्रसारण बारम्बार होता है । इस मुद्रा के अभ्यास से शक्ति और ज्ञान का लाभ होता है।

अष्ट अंग—(योग के) १. यम, २. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान और ८. समाधि ।

अष्ट पाश—जीव को भवबंधन में रखने वाले आठ प्रकार के आध्यात्मिक दोष — १. घृणा, २. लज्जा, ३. भय, ४. शंका, ५. जुगुप्सा, ६. कुलाभिमान, ७. शील, ८. जाति का अभिमान । इन पाशों के प्रत्येकशः अनेक भेद होते हैं । भगवान् की कृपा से ही इन अष्टपाशों से मुक्त हो सकता है ।

अष्ट महासिद्धि—योगशास्त्र के अनुसार योगसिद्ध पुरुष को प्राप्त होने वाली, १. अणिमा, २. महिमा, ३. गरिमा, ४. लघिमा, ५. प्राप्ति, ६. प्राकाम्य, ७. ईशित्व और ८. वशित्व नामक सिद्धियाँ । योग समाधि में ये विघ्नस्वरूप मानी जाती है ।

अष्ट मुद्रा—१. सुरभि, २. ध्यान, ३. शूर्प, ४. योनि, ५. कूर्म, ६. पंकज, ७. लिंग और ८. निर्वाण नामक आठ हस्तमुद्राओं की प्रदर्शन विधि जप समाप्ति के बाद होती है ।

अष्टविध प्राणायाम—१. सूर्यभेदन, २. उज्जायी, ३. सीत्कारी, ४. शीतली, ५. भस्त्रिका, ६. भ्रामरी, ७. मूर्च्छा और ८. प्लाविनी ।

आगम—तन्त्रशास्त्र का प्राचीन विभाग । तीन प्रकार—शैवागम (१० प्रमुख भेद), रुद्रागम—(१८ प्रमुख भेद), और भैरवागम (६८ प्रमुख तथा ६४ गौणभेद)।

आगम—सृष्टि, प्रलय, देवतार्चन, सर्वसाधन, पुरश्चरण, षट्कर्मसाधन और ध्यानयोग — इन सात विषयों का प्रतिपादक तथा कर्म, उपासना और ज्ञान की प्राप्ति के उपायों का कथन करने वाले शास्त्रग्रन्थ । निगम (वेद) से विभिन्न ग्रन्थों को आगमग्रन्थ कहते हैं । शैव, शाक्त और पाञ्चरात्र आगम वेदबाह्य किन्तु वेदानुकूल होने से वैदिक माने जाते हैं । बौद्ध जैनादि आगम इसी दृष्टि से अवैदिक कहे गए हैं ।

आचारसप्तक—(शाक्तमतानुसार) **पशुभाव** में १. वेदाचार, २. वैष्णवाचार, ३. शैवाचार और ४. दक्षिणाचार । **वीरभाव** में ५. वामाचार और ६. सिद्धान्ताचार। **दिव्यभाव** में ७. कौलाचार ।

आज्ञाचक्र—योगशास्त्र में कथित द्विदल पद्म या दोनों भ्रुकुटियों का मध्यस्थान । गुरु की आज्ञा इसी में ग्रहण होती है । हाकिनी शक्तिसहित शिव का निवास स्थान।

उन्मनी—योगसाधक को प्राप्त होने वाली एक आनन्दमयी अवस्था, जिसमें संकल्पविकल्पात्मक मन के व्यापार बन्द रहते हैं ।

उपांशु जप—अत्यन्त मन्द स्वर में मन्त्रजप जो दूसरे को सुनाई न दे ।

ऊर्मिषट्क—क्षुधा, तृषा, दुःखावेग, उन्माद, ह्रास और मृत्यु । इन छः ऊर्मियों को आध्यात्मिक साधना का विघ्न माना जाता है ।

ऋषिन्यास—तान्त्रिक साधना के अनुसार पाँच प्रकार के न्यासों में एक । इसमें मन्त्रद्रष्टा ऋषि या गुरु का ध्यान करते हुए उसके भाव से तन्मयता का अनुभव करना होता है ।

ऐषणात्रय—पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा । (एषणा — अभिलाषा, कामना और आन्तरिक इच्छा

करन्यास—तान्त्रिक साधना के अन्तर्गत पाँच प्रकार के न्यासों में एक । अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका कनिष्ठिका तथा करमध्य में देवताओं की प्रतिष्ठापना का संकल्प ।

काकिनीमुद्रा—हठयोग की एक मुद्रा । काक चंचू के समान जिह्वा बाहर निकाल कर उसी से पूरक करना । काकिनी मुद्रा से सभी प्रकार के रोगों का प्रशमन होता है ।

कामकला—१. तीन बीज, तीन शक्तियाँ और तीन लिंग इन तत्त्वों का अविनाशी त्रिकोण । २. शाक्तमतानुसार नाद, बिन्दु (जो सृष्टि के आदि बीज है) का स्पन्दन । ३. नाद बिन्दु और बीज (अर्थात् सत्त्व, रज, तम) या ब्रह्मा, विष्णु रुद्र या वामा, ज्येष्ठा, रौद्री या चन्द्र, सूर्य, अग्नि इन त्रितयों का त्रिकोण ।

कुण्डलिनी—आसन, मुद्रा, प्राणायाम आदि योगक्रियाओं से जागृत होने वाली, मूलाधार चक्र से उत्थित होकर स्वाधिष्ठान, मणिपूर आदि चक्रों का भेदन करते

हुए सुषुम्ना नाडी के मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र या सहस्रारचक्र तक आरोहण करने वाली एक महाशक्तिमय सर्पिणी । मूलाधार चक्र में कुण्डलाकार अवस्था में निद्रित रहने के कारण उसे कुण्डलिनी कहते हैं । ब्रह्मरन्ध्र में परमशिव से जागृत कुण्डलिनी का मिलन होने पर साधक को दिप्तानन्द की अनुभूति होती है ।

कुलद्रव्य—कौलसम्प्रदाय की उपासना के द्रव्य—मद्य, मांस आदि पञ्च मकार ।

कुलनायिका—शाक्तों के उत्सवों में जिनकी पूजा होती है । नटी, कपालिका, वेश्या, नापितस्त्री, रजकी—इनके १२ प्रकार तन्त्रशास्त्र में कहे गए हैं ।

कुल—हठयोग में मूलाधार चक्र की संज्ञा (कु — पृथ्वी, ल — लीन होना) अर्थात् पृथ्वी तत्त्व के लीन होने का स्थान । मूलाधार चक्र को पृथ्वी तत्त्व का निवासस्थान माना गया है । तान्त्रिक मार्ग में शक्ति की संज्ञा (शिव को अकुल कहते हैं) । शक्ति का उपासक एक द्वैतवादी तन्त्र । अकुल तन्त्र अद्वैती और शिवोपासन—परक है ।

१. तन्त्र शास्त्र के अनुसार — जीव, प्रकृति, दिक् काल और पाँच महाभूतों का समुदाय । २. श्रीचक्र के अन्तर्गत त्रिकोण । ३. इसी को योनि कहते है ।

कुलकुण्डलिनी—तन्त्रशास्त्र के अनुसार परमात्मा की दो शक्तियों में से अचित् शक्ति की संज्ञा । दूसरी चित्शक्ति आत्मस्वरूप ही है । सर्प के साढ़े तीन कुण्डलों (या मण्डलों) में यह शक्ति मूलाधार चक्र में अवस्थित होती है।

कौलज्ञान—कुल (शक्ति) और अकुल (शिव) का सामरस्य ।

कौलमार्ग—तान्त्रिक मार्गों का एक प्रकार । अपर संज्ञा — समयाचार ।

कौलागम—तन्त्रशास्त्र या आगम की एक संज्ञा । कुलार्णवतन्त्र के अनुसार कौलागम एक वेदात्मक शास्त्र है ।

कौलाचार—शाक्तमतानुसार दिव्यभाव के साधक का आचार । कुल (कुण्डलिनी शक्ति) और अकुल (शिव) का सामरस्य करने वाली योगसाधना । इस सामरस्य को ही पञ्च मकारों के अन्तर्गत मैथुन कहते हैं ।

खेचरी मुद्रा—एक यौगिक मुद्रा जिसमें जीभ उल्टी करके कण्ठ नाल में काक जिह्वा तक पहुँचाना ।

चक्र—सुषुम्ना नाडी में प्रवाहित शक्ति के विशिष्ट केन्द्रस्थान, कुलसंख्या ६ — मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा । इनके अतिरिक्त सहस्रार नामक चक्र (या कमल) माना गया है ।

चीनागम—चीनाचार — चीन से भारत में आया हुआ तन्त्रमार्ग ।

जप—(चार प्रकार)—रसनाजप, ओष्ठजप, श्वासजप और उपांशुजप (या मानसजप)।

जालन्धर बन्ध—कण्ठ को संकुचित करते हुए हनु से हृदय भाग को स्पर्श करने की यौगिक क्रिया ।

ज्ञानमार्ग—उपनिषदों के सिद्धान्तों का नित्य श्रवण, मनन (प्रमाणपूर्वक चिन्तन) और निदिध्यासन (आध्यात्मिक साधना द्वारा अनुभव) ।

ज्ञानेन्द्रियाँ—श्रोत्र, चक्षु, त्वक्, रसना और घ्राण । अपर संज्ञा — बहिरिन्द्रिय । अन्तरिन्द्रिय — मन की संज्ञा है ।

डाकिनी—आज्ञाचक्र में स्थित परमशिव की शक्ति का नाम ।

डामर—तन्त्र का एक प्रकार । छः प्रकार के डामर — योगडामर, शिवडामर, दुर्गाडामर, सारस्वतडामर, ब्रह्मडामर, गन्धर्वडामर ।

तत्त्व—सृष्टि का मूलघटक । विविध दर्शनों में तत्त्वसंख्या भिन्न—भिन्न मानी गई है । **अद्वैत वेदान्ती**—सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म यही एकमेव तत्त्व मानते हैं। **शून्यवादी** बौद्ध मतानुसार शून्य ही एकमेव तत्त्व है । **जैन** मतानुसार जीव और अजीव दो तत्त्व हैं । **रामानुज** मतानुसार द्रव्य और अद्रव्य दो तत्त्व हैं । **पाशुपत** मतानुसार पशु, पति और पाश तीन तत्त्व हैं । **चार्वाक** मतानुसार पृथ्वी, जल, तेज और वायु चार तत्त्व हैं । **शाक्त** मतानुसार मद्य, मांस, मत्स्य मुद्रा और मैथुन (इन शब्दों के पारिभाषिक अर्थ उस दर्शन में प्रधान माने जाते हैं) नामक पाँच तत्त्व हैं । **वैष्णव** तान्त्रिक मतानुसार—गुरु, मन्त्र, मन, देव और ध्यान पाँच तत्त्व हैं । **शैव** मतानुसार कला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण—सात तत्त्व हैं । **सांख्य** मतानुसार ५ महाभूत ५ शब्दादि गुण, ६ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, मूल प्रकृति, महत् (बुद्धि), अहंकार और पुरुष कुल २५ तत्त्व है । **योग** दर्शनानुसार सांख्यदर्शन के २५ और ईश्वर कुल २६ तत्त्व हैं। प्रत्येक दर्शन में उक्त तत्त्वों के ज्ञान से मोक्ष प्राप्ति होती हैं । इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है ।

तन्त्र—सृष्टि, लय, मन्त्रयन्त्रनिर्णय, तीर्थ, आश्रमधर्म, कल्प, ज्योतिष, व्रत, शौच, अशौच, स्त्री—पुरुष लक्षण, राजधर्म, युगधर्म, दान, व्यवहार, अध्यात्म, स्नानविधि, भूतशुद्धि, प्राणायाम, न्यास, जप, तर्पण, पूजा, दीक्षा, अभिषेक, प्रायश्चित्त, चक्रपूजा, मुद्रा आदि विषयों का प्रतिपादन करने वाला तन्त्रशास्त्र के अन्तर्गत एक विभाग ।

तन्त्र प्रकार—शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर, गाणपत्य, तारा, बुद्धकपाल, योगिनी, संचर्या, वज्र, संपुटतिलक, कृष्णयमरि, महामाया, कालचक्र, कुलाचार ।

तान्त्रिक उपासना के भेद—मन्त्र, यन्त्र, चक्र, न्यास, मुद्रा, दीक्षा, भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, चर्या, क्रिया, योग, लतासाधना, चक्रसाधना, रहस्यसाधना (गुरु के सान्निध्य में करने योग्य विशिष्ट साधना)

तुरीया—व्यष्टिरूप विश्व, तैजस और प्राज्ञ एवं समष्टिरूप विराट् हिरण्यगर्भ, ईश्वर से अतीत चैतन्य की वेदान्ती संज्ञा । इसे अव्याकृत या शुद्धब्रह्म कहते हैं ।

त्रिरत्न—तान्त्रिक मतानुसार शिव, शक्ति और बिन्दु । (बिन्दु — कार्यात्मक शुद्ध जगत् का मूल उपादान कारण) । इसे ही सम्पूर्ण परिणत स्वरूप में **शुद्ध अध्वा** कहते हैं ।

दिशाओं के स्वामी –

दिशा	देवता	ग्रह
पूर्व	इन्द्र	सूर्य
आग्नेयी	अग्नि	शुक्र
दक्षिण	यम	मंगल
नैर्ऋत्य	निर्ऋति	राहु
पश्चिम	वरुण	शनि
वायव्य	वायु	चन्द्र
उत्तर	कुबेर	बुध
ईशान्य	ईश	गुरु
अधरा	अनन्तनाग	–
ऊर्ध्वा	ब्रह्माप्रजापति	–

देवीप्रणव–ह्रीं अक्षर की संज्ञा । देवी मन्त्रों के जप में इसका उच्चारण होता है।

द्रव्य के २१ प्रकार–(माध्वमतानुसार) – परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, अव्याकृत, प्रकाश, प्रकृति, गुणत्रय, महत्तत्त्व, अहंकारतत्त्व, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, मात्रा, भूत, ब्रह्माण्ड, अविद्या, वर्ण, अन्धकार, वासना, कला, प्रतिबिम्ब ।

धौती–हठयोग के षट्कर्मों में से एक शरीर शोधन का कर्म । शरीरस्थ कफ एवं पित्त आदि दोष इस कर्म से मुख द्वारा बाहर निकाले जाते हैं । तीन प्रकार – जलधौति, वस्त्रधौति, दण्डधौति । इनके अतिरिक्त अन्तर्धौति, दन्तधौति, हृदयधौति, मूलशोधन धौति – नामक चार प्रकारों की धौति भी कही गई है ।

ध्यान–(स्थापनरूप योग का अंग) – अहं ब्रह्मास्मि – 'इस वृत्ति की अखण्ड भावना तथा देहादि का विस्मरण और यदृच्छालाभसंतोष ।

नाडीत्रय–इडा, पिङ्गला एवं सुषुम्णा ।

नामरूपात्मक–सम्पूर्ण दृश्य सृष्टि का निर्देश इस विशेषण से होता है ।

नियम–योग के आठ अंगों में दूसरा अंग । पाँच प्रकार डामर–शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान । हठयोग प्रदीपिका के अनुसार–तप, संतोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वरपूजा, सिद्धान्तवाक्य–श्रवण, लज्जा, मति, जप एवं होम–ये दस भेद कहे गए हैं । (स्थापनरूप योग का एक अंग)–आत्म साक्षात्कार के अनुरूप वृत्ति को प्रवाहित करना और देहादिबाह्य वृत्ति का तिरस्कार करना ।

नेती–हठयोग के षट्कर्मों में एक । दो प्रकार – १. सूत्रनेती – नाक में सूत्र डाल कर मुख से बाहर निकालना । २. जलनेती – एक नासाछिद्र से पानी पीकर दूसरे छिद्र से बाहर निकालना ।

न्यास–तान्त्रिक साधना की नित्य विधि में 'भूतशुद्धि' (काय एवं मनःशुद्धि का संकल्प) के बाद यह विधि होती है । इसमें शरीर के विविध अंगो में उस स्थान

की देवता की प्रतिष्ठापना का संकल्प होता है । पाँच प्रकार – अंगन्यास, करन्यास, मातृकान्यास, ऋषिन्यास और व्यापकन्यास ।

पञ्च अवस्था–जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्या और उन्मनी अवस्था ।

पराविद्या–अध्यात्मविद्या या ब्रह्मविद्या जो सर्वश्रेष्ठ मानी गई है ।

पुरश्चरण–मन्त्रजप की विशिष्ट संख्या का संकल्प करने पर उसकी पूर्णता करना ।

प्रणव बीज–ॐकार की संज्ञा । यह सभी मन्त्रबीजों का मूल है ।

प्राणायाम–(स्थापनरूप योग का एक अंग)–इसके तीन अंग हैं । १. रेचक–प्रपंच का निषेध । २. पूरक–'अहं ब्रह्मास्मि' भावना । ३. कुम्भक–अहं ब्रह्मास्मि भावना को निश्चल रखना ।

बन्ध–योगशास्त्र के अनुसार प्राणायाम की क्रिया में वायु को शरीर के विशिष्ट भाग में स्थिर रखना । हठयोगी बन्ध के योगबन्ध, महाबन्ध, महावेध, उड्डियान, मूल, जालन्धर इत्यादि प्रकार होते हैं ।

बिन्दु–१. तान्त्रिक मतानुसार त्रिरत्नों में एक । कार्यात्मक शुद्ध जगत् का मूल उपादान कारण । यह शिव और शक्ति के प्रभाव से क्षुब्ध होकर देह, इन्द्रिय, भोग और भुवन के रूप में परिणत होता है । २. शब्दरूप बिन्दु की तीन अवस्थाएँ तन्त्रशास्त्र में मानी जाती हैं । १. स्थूल, २. सूक्ष्म (चिंतामय) और ३. पर (चिन्तनरहित) ।

बीजमन्त्र–मन्त्रशास्त्र के अनुसार अं, यं, रं, लं, वं इत्यादि स्वरवर्णों तथा ह्रीं, क्लीं इत्यादि एकाक्षर शब्दों की संज्ञा । बीजाक्षरों में ही मन्त्रों की शक्ति मानी जाती है । मन्त्र के देवता का जागरण बीजाक्षरों के उच्चारण से होता है । ॐकार को प्रणवबीज अर्थात् सभी बीजाक्षरों की उत्पत्ति का मूल माना जाता है ।

बीजाक्षर–जपनीय मूल मन्त्र के पूर्व ॐ, ह्रीं, क्लीं, श्रीं इत्यादि अक्षरों का उच्चारण करते हैं । उन्हें बीजाक्षर कहते हैं । बीजाक्षरों से मन्त्र सम्पुटित होता है । मन्त्र के अन्त में उल्टे क्रम से भी बीजाक्षरों का प्रयोग होता है।

भावत्रय–तन्त्रशास्त्र के अनुसार साधक की तीन अवस्थाएँ होती हैं – १. पशुभाव, २. वीरभाव, ३. दिव्यभाव । ये क्रमशः अधम, मध्यम और उत्तम आध्यात्मिक अवस्था के सूचक हैं ।

भूचरी मुद्रा–एक यौगिक मुद्रा । नासिकाग्र के आगे चार अंगुल पर दृष्टि एकाग्र करना ।

मणिपूरचक्र–नाभिचक्र के पीछे मेरुदण्ड में एक विशिष्ट स्थान । पूषा और अलंबुषा नाडियाँ यहीं से कर्णेन्द्रिय तक जाती हैं । शुक्ला नाडी भ्रूमध्य तक जाती है और शंखिनी नाडी मस्तक तक जाती है । शरीरस्थित षट्चक्रों में तीसरा तेजोमय दशदल चक्र । लाकिनी शक्तिसहित रुद्र का निवास स्थान ।

मातृका–मन्त्रों में रहने वाली भगवती की दिव्यशक्ति ।

मातृकान्यास–इसके दो प्रकार होते हैं–१. अन्तर्मातृकान्यास–इसमें शरीरस्थ षट्चक्रों

में मातृकाओं का ध्यान होता है । २. बहिर्मातृकान्यास—इसमें करांगुलियों से शरीर के विविध अवयवों का नामनिर्देश सहित स्पर्श होता है ।

मूलबन्ध—एक यौगिक बन्ध । एडी से गुदद्वार को दबाकर अपानवायु ऊपर खींचने की क्रिया ।

मूलाधारचक्र—मनुष्य शरीर में लिंग के अधोभाग का शक्ति केन्द्र । षड्चक्रों में प्रथम चक्र । यह पृथ्वीतत्त्वमय तथा डाकिनी सहित, ब्रह्मा (या सद्योजात) का निवासस्थान माना जाता है । यह चक्र चतुर्दल है ।

यन्त्र—तान्त्रिकों की उपासना में उपयुक्त त्रिकोण, चक्र, कमल आदि आकृतियाँ। इन्हें देवनगर भी कहा जाता है ।

यामल—तन्त्रशास्त्र का आगमोत्तर विभाग । यामल तन्त्र में जाति—वर्ण आदि भेद नहीं माना जाता । यामल तन्त्र के अन्तर्गत सृष्टितत्त्व, ज्योतिष, नित्यकृत्य, क्रम, सूत्र, वर्ण, भेद और युगधर्म का प्रतिपादन होता है ।

योनिमुद्रा—हठयोग की एक क्रिया । इसमें मूलाधार चक्र में स्थित कुण्डलिनी शक्ति का सुषुम्णा नाडी द्वारा ब्रह्मरन्ध्र तक प्राणशक्ति से आरोहण तथा ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार (या ब्रह्मयोनि) तक अवरोहण की क्रिया होती है ।

विश्वमातृका—मूलबिन्दु (परावाक्) सहित पश्यन्ती, मध्यमा, और बैखरीरूप तीन बिन्दुओं का त्रिकोण । अपर संज्ञा योनिस्वरूप ।

शक्तिपात—दर्शन, स्पर्शन, या उच्चारण के माध्यम से गुरु द्वारा अपनी क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति आदि समस्त दिव्य शक्तियों का शिष्य के व्यक्तित्व में समर्पण । अपरसंज्ञा — महायोग, सिद्धयोग या शक्तिसंचार ।

शाम्भवी मुद्रा—अर्धोन्मीलित दृष्टि को भ्रूमध्य में स्थिर रखने की योगमुद्रा ।

शुभागमपञ्चक—समयाचार या कौलमार्ग के अन्तर्गत पाँच संहिताओं की संज्ञा। १. वसिष्ठ संहिता, २. सनक संहिता, ३. सनन्दन संहिता, ४. शुकसंहिता और ५. सनत्कुमार संहिता ।

शौच—आन्तरिक और बाह्य शुद्धता । इनके पाँच प्रकार कहे गए हैं—१. मनः शौच, २. कर्मशौच, ३. कुलशौच, ४. वाक्शौच और ५. आभ्यन्तर शौच ।

श्रद्धा—देवता, परलोक आदि अदृष्टविषयों के अस्तित्व पर शास्त्रवचन या गुरुवचन का प्रामाण्य मान कर अविचल विश्वास । (श्रत् — सत्यं । तत् अस्यां धीयते सा श्रद्धा — दुर्गाचार्य) । गीता के अनुसार आत्मज्ञान के उदय का कारण — (श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्) । श्रद्धा के तीन प्रकार बताए गए हैं—सात्त्विकी, राजसी और तामसी ।

श्रीयन्त्र—इस तान्त्रिक यन्त्र की नाप ९६ इकाइयों पर रखी गई है । मध्य बिन्दु बीजशक्ति स्वरूप है । प्रथम केन्द्रीय त्रिकोण, शम्भु का स्थान है । अष्टकोण वसुगण का स्थान है । आन्तर और दश—दश त्रिकोण दस प्राणों के द्योतक है। षोडश दश चन्द्रमा की विशुद्ध १६ कलाएँ हैं तथा आठ दलों में १६ कलाओं

का समावेश है । तीन बाह्य रेखाएँ त्रैलोक्य, चार द्वार ऋद्धिसिद्धियों के प्रवेशद्वार, इस यन्त्र में चार सीधे और पाँच उल्टे त्रिकोणों से मिलकर ४३ त्रिकोणों की सृष्टि होती है । इसकी आराधना का जपमन्त्र 'ॐ श्री, क्लीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः' ।

श्रीविद्या—१. तन्त्रशास्त्रानुसार ब्रह्मविद्या की संज्ञा । २. महात्रिपुरसुन्दरी का तत्त्व प्रतिपादन करने वाली विद्या । महात्रिपुर — १. इडा, पिंगला और सुषुम्णा। २. इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति । ३. ब्रह्मा, विष्णु और महेश। ४. ऋग् यजुः, साम । ५. भूः भुवः और स्वः नामक तीन लोक ।

षट्चक्रभेदन—हठयोग की एक श्रेष्ठ प्रक्रिया । मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध आज्ञा—इन छह चक्रों के द्वारा मूलबंध, उड्डीयानबंध कि क्रिया से कुण्डलिनी नामक प्राणशक्ति का सुषुम्णा नाडी से मस्तकस्थित सहस्रार चक्र तक संक्रमण होने की प्रक्रिया को षट्चक्रभेदन कहते हैं ।

संहार—देहादि जन्य पदार्थों का अपने मूल कारण में विलय ।

सदाशिव—अनादि और अनन्त उन्मेष—निमेषों के द्वारा अभिव्यक्त होने वाला तत्त्व (काश्मीरीय शैव दर्शन का मत) ।

समयाचार—तन्त्रमार्ग का एक प्रकार । अपर संज्ञा कौल मार्ग । तान्त्रिक श्रीचक्र की मानसपूजा या ध्यानात्मक उपासना ।

सहस्रार चक्र (सहस्रदल पद्म)—योगशास्त्रोक्त षट्चक्रों में एक । यह मस्तक में शंखिनी नामक नाडी के ऊपर होता है । कुण्डलिनी का उत्थान होने पर वह इसी चक्र में स्थिर होती है । यही जीव और शिव के ऐक्य का स्थान माना गया है । मस्तकस्थित अधोमुखी चक्र (या पद्म) । पुरुषोत्तम की अधिष्ठानभूमि। जीव—शिव के सामरस्य का स्थान । अतः इसे अद्वैतभूमि भी कहते हैं ।

सुषुम्णा—मनुष्य देह की १४ प्रमुख नाडियों में प्रमुख नाडी । यह मूलाधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्र तक होती है । इसके अन्तर्गत चित्रा नाडी और चित्रा के अन्तर्गत ब्रह्मनाडी होती है । इसकी बाँयी ओर इडा और दाहिनी और पिंगला नामक नाडी होती है । इडा को गंगा, पिंगला को यमुना और सुषुम्णा को सरस्वती कहते हैं । इन तीन नाडियों का संगम आज्ञाचक्र (भ्रूमध्य स्थान) में होता है । अतः उसे त्रिवेणी कहते हैं । सुषुम्णा के छह केन्द्रस्थानों को 'षट्चक्र' कहते हैं।

स्वाधिष्ठान चक्र—योगशास्त्र में निर्दिष्ट, द्वितीय ज्ञानचक्र । इसका स्थान शरीर में मेरुदण्ड के आरम्भ स्थान तथा लिंग के उपरि भाग में होता है । अपान तथा धनञ्जय वायु इसी चक्र के स्थान में होता है । डाकिनी शक्ति सहित श्रीनारायण का स्थान प्रदेश यह चक्र छह दलों का माना जाता है ।

हंसविद्या—'सोऽहं, हंसः' इस मन्त्र का श्वास एवं उच्छ्वास के साथ जप या मनन करते हुए आत्मानुभव पाने की साधना ।

पुस्तकालय
पु. सं. .....
15766
संस्कृत भवन, लखनऊ

कुलार्णवतन्त्रम्

(ऊर्ध्वाम्नायतन्त्रात्मकम्-'कल्याणी'-हिन्दी व्याख्या सहितश्च)

सम्पादक एवं भूमिका लेखक : डॉ. सुधाकर मालवीय

हिन्दी अनुवादक : पं. चितरञ्जन मालवीय

कौल शब्द 'कुल' शब्द से निष्पन्न होता है। कुल शब्द के अन्यान्य अर्थ पाये जाते हैं—१. मूलाधारचक्र, २. जीव, प्रकृति, दिक्, काल, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश—इन नौ तत्त्वों की 'कुल' संज्ञा है। ३. श्रीचक्र के अन्तर्गत त्रिकोण की कुल संज्ञा है, इसी को योनि भी कहते हैं। सौभाग्यभास्कर ग्रन्थ में कौलमार्ग शब्द का स्पष्टीकरण 'कुल' = शक्ति, अकुल = शिव के रूप में किया गया है। कुल से अकुल का अर्थात् शक्ति से शिव का सम्बन्ध ही कौल है। कौलमतानुसार शिवशक्ति में कोई भेद नहीं है। कुलार्णव तन्त्र कौल सम्प्रदाय का अत्यन्त प्राचीन एवं प्रामाणिक ग्रन्थ है।

प्रस्तुत संस्करण का मूल पाठ आर्थर एवलोन के संस्करण पर आधृत है। महामना संस्कृत शोध संस्थान के विद्वान् पं. चितरञ्जन मालवीय द्वारा इस ग्रन्थ की इदं प्रथमतया हिन्दी व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। इस ग्रन्थ के सम्पादक एवं भूमिका लेखक डॉ. सुधाकर मालवीय, संस्कृत विभाग, कला संकाय, का. हि. वि. वि. वाराणसी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं। इस प्रकार काशी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों द्वारा संशोधित एवं व्याख्यात यह ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय है और शोधार्थियों द्वारा संग्रहणीय है।

पृ. ३९२ मूल्य : रु. २००-००

फोन : ३३३४५८

अपरञ्च पुस्तक-प्राप्तिस्थानम्

(सहयोगी संस्था)

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफ़िस

के. ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन, गोलघर (मैदागिन) के पास

पो. बा. नं. १००८, वाराणसी-२२१ ००१ (भारत)

E-mail : cssoffice@satyam.net.in

Design by : SADHANA PRESS

ISBN : 81-218-0069-2 Price : Rs. 200.00